श्री ईश्वरदास जालान अभिनन्दन ग्रन्थ

प्राक्कथन

कलकत्ता से गौहाटी–इम्फाल की विमान-यात्रा। अचानक बात चली कि श्री ईश्वरदासजी जालान का अभिनन्दन, जो कार्य आज से बहुत पहले हो जाना चाहिए था, उस पुनीत कार्य को क्यों न अविलम्ब प्रारम्भ किया जाय। पूरा दल याने भाई भंवरमलजी सिंघी, बजरंगलालजी जाजू, प्रसन्नकुमारजी वाकलीवाल सभी रजामन्द ही नहीं, बल्कि अन्तस से चाह रहे थे यह कार्य अविलम्ब सम्पन्न हो। तत्क्षण योजना बनी और इम्फाल और गौहाटी के भाइयों ने उसे अपने श्रद्धा-बिन्दुओं से सींच कर सुदृढ़ कर दिया।

कलकत्ता लौटने पर चर्चा आगे बढ़ी। भाई कृष्णचन्द्रजी अग्रवाल अत्यन्त उत्साहित दिखे और नन्दलालजी सुरेका ने पूरा समय देने का आश्वासन दिया। योजना दृढ़ से दृढ़तर हुई। किन्तु केवल मनुष्य की इच्छा सर्वोपरि नहीं होती, कोई मार्ग सीधा-सपाट नहीं होता, वही यहाँ भी हुआ। व्यवधान उपस्थित होते गये। उधर सामने थी— ईश्वरदासजी की आन्तरिक अनिच्छा। उनका कहना था—'मनुष्य आता है, अपनी बुद्धि अनुसार कार्य करता है, और चला जाता है—अभिनन्दन ग्रंथ किस बात का?' योजना पूर्णता की ओर बढ़ती-बढ़ती बीच रास्ते में थम गई।

दो वर्षों का मूल्यवान समय बीत गया। न कहीं कुछ हुआ, न कहीं कुछ कर पाया। इस बीच ईश्वरदासजी का स्वास्थ्य तीव्रगति से गिरने लगा। भय हुआ कि कहीं यह सारी योजना अधर में ही लटकी न रह जाये। अतः पुनः ईश्वरदासजी से मैंने और मित्रों ने बात की, हमारे आग्रह को समझाया-बुझाया और इस योजना की पूर्ति के लिये उनकी स्वीकृति प्राप्त की। और फिर से सहकर्मियों का गुट इसकी पूर्ति की ओर अग्रसर हुआ।

पुराने-नये सभी साथी जुट गये। अभिनन्दन समिति का श्री राधाकृष्णजी कानोड़िया की अध्यक्षता में गठन हुआ। श्री मोहनलाल चोखानी और श्री रतनशाह ने रथ की बागडोर संभाल ली। उपाध्यक्ष के रूप में सहयोग उपलब्ध हुआ श्री भगवतीप्रसादजी खेतान, श्री मोहनलालजी जालान, कृष्णचन्द्रजी, भंवरमलजी का, और मुझे भी उसके साथ जड़ दिया गया। आशीर्वाद के साथ-साथ सहयोग प्राप्त था कार्यकारिणी की सदस्यता के रूप में सर्वश्री सीतारामजी सेकसरिया, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, रामकुमारजी भुवालका, राधाकृष्णजी नेवटिया, बजरंगलालजी लाठ, बनारसीलालजी कोटरीवाल, दीपचन्दजी नाहटा, नन्दलालजी सुरेका, नारायणप्रसादजी बुधिया आदि-आदि का।

अभिनन्दन ग्रन्थ की संरचना का प्रश्न आया तो उसके सम्पादन का भार मुझ पर आया, यह जानते हुए कि साहित्य की दिशा में मेरी सीमाएँ हैं, मैंने स्वीकार लिया। फिर अभिनन्दन ग्रंथ का काम किसी स्वतंत्र साहित्यकार व लेखक या कवि का काम तो होता नहीं जो अपनी चिन्तनधारा या भावना के आधार पर बिना किसी व्यवधान के अपनी इच्छित वस्तु का प्रणयन कर स्वतंत्रता की साँस लेता है। मेरे कार्य के चारों ओर चौहद्दी थी। उसके

उपरान्त, न कहीं किसी एक जगह उपलब्ध सामग्री को अंधेरे गर्तों में डुबकी लगा कर नि‍कल लाना था; उनका संकलन, चयन, आकलन और फिर संपादन करना था। कार्य काफी कठिन होते हुए भी दु:साध्य तो नहीं ही था, यद्यपि समय की परिधि हरदिन भयभीत करती रहती थी। किन्तु लक्ष्य सामने था और भूल-भटकन व अन्य झंझटों से समय-समय पर मन्द पड़ती हुई गति से भी उस तक पहुँचना तो था ही। आज इस ग्रन्थ के प्रकाशन से मन को सन्तोष का मधुर प्रसाद मिला है कि आखिर जो कुछ जैसा बना, समय-निर्धारित लक्ष्य में ही प्रस्तुत है, श्रद्धा के साथ समर्पित है।

श्री ईश्वरदासजी का समाज के प्रति पक्ष हमेशा सजोर रहा है। बालपन के बीतते न बीतते उनमें वे प्रवृत्तियाँ जागृत हुईं, जहाँ रुपये-आठ आने मासिक चन्दे से समाज-शिक्षा का स्थानीय कार्य कराने के वे अगुआ रहे और आगे चलकर अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के देशव्यापी संगठन के केन्द्र में स्थित रहे हैं और उसकी प्रेरणा से सुदूर प्रान्तों में फैले हुए समाज के मानव को विभिन्न विषयों पर आलोड़ित कर आगे बढ़ने को प्रेरित किया है।

ईश्वरदासजी का राजनैतिक पक्ष भी कम पुरुषार्थी नहीं रहा है। जब डिपुटी मजिस्ट्रेटी के लिये सब लालायित रहते थे, उस समय उसे ठुकरा कर वे देश की स्वतंत्रता की सिद्धि के कंटकाकीर्ण मार्ग पर से आगे बढ़े और पश्चिम बंगाल के राजनैतिक क्षितिज पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। क्रान्तिकारी स्वाधीनता संग्रामी न सही, आर्म-चेयर राजनीतिज्ञ के रूप में जिस निश्छल, निष्कलंक प्रतिमा का आपने सर्जन किया, वैसी प्रतिमाएँ दूरबीन से खोजने पर भी कहीं आसपास दृष्टिगोचर नहीं होतीं। सम्पूर्णता का अधिकारी तो भगवान ही है, लेकिन एक नहीं, अनेक गुणों की यह प्रतिमा अपने आप ही अभिनन्दनीय हो उठी थी।

इस अभिनन्दनीय व्यक्तित्व के प्रति अभिनन्दन ग्रन्थ तो प्रस्तुत हुआ, लेकिन इसमें जितना जो समाहित हो सका वह सब अनेक मित्रों और कर्मियों के सहयोग का ही परिणाम है। ईश्वरदासजी के अनेकानेक मित्रों, परिचितों व प्रशंसकों ने अपने संस्मरण व श्रद्धा-सिक्त लेख भेज कर मुझे अत्यन्त आभारी किया है, किन्तु साथ ही मैं उनसे क्षमाप्रार्थी भी हूँ कि उनके सभी शब्दों को समय व स्थानाभाव के कारण अवतरित न कर सका। आवश्यक अर्थ कीं पूर्ति में और इसके संयोजन में सर्वश्री राधाकृष्णजी कानोड़िया, लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला, भागीरथजी कानोड़िया बजरंगलालजी जाजू, भगवतीप्रसादजी खेतान, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका मोहनलालजी, जालान, बद्रीप्रसादजी पोद्दार, शान्तिप्रसादजी जैन, राजेन्द्रप्रसादजी पोद्दार, रामप्रसादजी पोद्दार बम्बई, मदनलालजी सराफ एडवोकेट, बनारसी प्रसादजी केड़िया, नन्दलालजी कानोड़िया, दीपचन्दजी नाहटा, माधोदासजी मूँधड़ा, सत्यनारायणजी टाँटिया, रंगनाथजी बागड़, रघुनाथ प्रसादजी खेतान, भगवतीप्रसादजी किल्ला, सज्जनकुमारजी बगड़िया, मोतीलालजी पेड़ीवाल, किशोरीलालजी जालान, रघुनाथदासजी सोमानी, प्रभुदयालजी अग्रवाल, एन० एल० जैन, राधेश्यामजी चितलांगिया, लेखराजजी कनोई, राजेन्द्रप्रसादजी मोदी; शिवभगवानजी गोयनका, रामकुमारजी भुवालका, राधेश्यामजी बाजोरिया, धर्मचन्दजी सरावगी, बनारसीलालजी कोटरीवाल आदि से जो सहायता मिली है, उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

इस ग्रंथ की सामग्री के संकलन एवं प्रेस सम्बन्धी विभिन्न कार्यों में श्री हर्षनाथजी से जो सहयोगादि मिला है, वह विशेष उल्लेखनीय है और मैं उनका आभार मानता हूँ। सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री इन्द्र दुगड़ ने ईश्वरदासजी का जो रेखा चित्रांकन कर एवं अन्य सलाह आदि से जो सहयोग दिया, उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। कलकत्ता में हर दिन बिजली-वन्दी के वावजूद जनवाणी प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा० लि० के कर्मचारियों और मैनेजर श्री रामजी प्रसाद शर्मा ने एवं चित्रों का ब्लाक वनाने में रेडियेन्ट प्रोसेसर्स के श्री एस. सी. मुखर्जी के सहयोग व चेष्टाओं के कारण हर बाधा के बावजूद इतने थोड़े समय में इस ग्रंथ का प्रकाशन संभव हो पाया है, इसके लिये वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

डा० (श्रीमति) प्रतिभा अग्रवाल ने मंच की साज-सज्जा एवं श्री नरनारायण हरलालका आदि मित्रों ने बिभिन्न सहयोग दिये हैं, उसके लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद है। सवों का सहयोग होते हुए भी मेरी अपनी कमी के कारण ग्रंथ में जो कुछ कमियाँ और त्रुटियाँ एवं मुद्रण की भूलें रह गई हैं, उनके लिये मैं विशेषतः क्षमा प्रार्थी हूँ।

अन्त में मैं श्री ईश्वरदासजी के पुनः स्वास्थ्य लाभ व सुदीर्घ जीवन की हार्दिक मंगल कामना करता हुआ सभी सहयोगियों का पुनः आभार प्रदर्शन करता हूँ।

२६, एमहर्स्ट स्ट्रीट,
कलकत्ता-७००००९
२९ अगस्त, १९७७

नन्दकिशोर जालान
संपादक

श्री ईश्वरदास जालान अभिनन्दन ग्रन्थ

अनुक्रमणिका

द्वितीय खण्ड—विचार विन्दु

तृतीय खण्ड—साहित्य

चतुर्थ खण्ड—ईश्वरदासजी की आत्मकथा

श्री ईश्वरदास जालान अभिनन्दन ग्रन्थ

सम्पादक : नन्दकिशोर जालान

प्रकाशक :
श्री ईश्वरदास जालान अभिनन्दन समिति
१५२ बी, महात्मा गाँधी रोड
कलकत्ता–७००००७

प्रथम आवृत्ति
१००० प्रतियाँ
२९-८-१९७७

मूल्य––रुपये २०)

मुखपृष्ठ रेखांकन
श्री इन्द्र दुगड़

चित्र
रेडियेन्ट प्रोसेसर्स
६ ए, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी रोड,
कलकत्ता–१३

मुद्रक :
जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लि० प्रा० लि०
१७८, अपर चितपुर रोड,
कलकत्ता–३

श्री ईश्वरदास जालान

प्रथम खण्ड

श्रद्धा
और
संस्मरण

भारत के उप-राष्ट्रपति

श्री बासप्पा दानप्पा जत्ती

शुभकामना

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री ईश्वरदास जालान का दिनांक २९ अगस्त को सार्वजनिक अभिनंदन किया जा रहा है एवं इस अवसर पर उन्हें एक अभिनंदन ग्रन्थ भेंट किया जायेगा। इस आयोजन की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ। उनके दीर्घजीवन, स्वास्थ्य एवं सुख की मैं कामना एवं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ।

प० बंगाल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री, वरिष्ठ राजनेता

श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन

दायित्वपूर्ण व ईमानदार व्यक्तित्व

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि 'श्री ईश्वरदास जालान अभिनंदन समिति' द्वारा उन्हें अभिनंदन ग्रंथ समर्पित किया जा रहा है। श्री ईश्वरदास जालान ने अपने छात्र-जीवन से स्वतंत्रता-आन्दोलन में भाग लेना प्रारम्भ किया। वे उच्चकोटि के सोलीसिटर हैं और सांसद (पार्लियामेन्टेरियन) के रूप में उनकी भारतव्यापी ख्याति है। बंगाल विधान सभा के स्पीकर के रूप में उनकी भूमिका बड़ी ही गौरवपूर्ण रही और सरकार एवं विरोधी पक्ष दोनों का ही उन्हें सम्मान प्राप्त हुआ। यह उल्लेख करते हुए हर्ष एवं गौरव का बोध हो रहा है कि पश्चिम बंगाल के मंत्री के रूप में उन्होंने अपने विभाग का कार्य बहुत ही दायित्वपूर्ण और ईमानदारीपूर्वक सम्पन्न किया। कांग्रेस-पार्टी के सदस्य के रूप में न केवल वे कांग्रेसपार्टी के प्रति निष्ठावान ही थे, बल्कि सदा इस बात का ध्यान रखा, जिसमें संस्था का सुनाम बना रहे। अस्वास्थ्य के कारण सक्रिय राजनीति से अलग हो गये हैं, फिर भी देश के कल्याण में अब भी काफी दिलचस्पी लेते हैं। मैं ईश्वरदासजी के दीर्घजीवन और स्वास्थ्य की कामना करता हूँ।

पश्चिम बंग के वाणिज्य-उद्योग सहकारिता और बन्द एवं रुग्ण उद्योग मंत्री

डा० कन्हाईलाल भट्टाचार्य

कुशल वक्ता, सुदक्ष प्रशासक

श्री ईश्वरदासजी जालान से मेरा निकट का सम्पर्क रहा है। वे उदार हृदय राजनीतिज्ञ हैं एवं इस शताब्दी के पांचवें एवं छठे दशक के एक प्रमुख राजनीतिज्ञ थे। जब

वे स्पीकर एवं डा० वी. सी. राय के मंत्रिमंडल के कैबिनेट स्तर के मंत्री थे, उस समय की उनकी अनेक मधुर स्मृतियाँ मेरे मन में अंकित हैं। श्री जालान सज्जन-हृदय व्यक्ति हैं, साथ ही उनमें अपने मित्रों एवं परिचितों के प्रति मानवता एवं सज्जनतापूर्ण व्यवहार करने के दुर्लभ गुण हैं। यद्यपि मैं उनसे आयु एवं पद में छोटा था, किन्तु मेरे साथ वे मित्रवत् व्यवहार करते थे और समय-समय पर वे सद्-सलाह दिया करते थे। वे प्रसन्न-चित्त स्वभाव के व्यक्ति हैं और अपने मजाकों से हमलोगों को हंसाते रहते —वे मधुर स्मृतियां आज भी मेरे मानस-पटल पर अंकित हैं। वे अच्छे वक्ता और कुशल प्रशासक रहे हैं।

मैं इस वृद्ध महारथी के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करता हूँ और उनके निरोग दीर्घजीवन की भगवान से प्रार्थना करता हूँ।

सुप्रीमकोर्ट के न्यायाधीश
श्री नन्दलाल ऊँटवालिया

प्रेरक आदर्श

श्री ईश्वरदास जालान ने मेरे छात्रजीवन से लेकर अद्यावधि तक मेरे जीवन-निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका स्नेह और उनकी आत्मीयतापूर्ण सन्निकटता, इस सीमा तक मुझसे रही है कि उनके विषय में संस्मरण लिखना मेरे लिए झिझक उत्पन्न करता है। संक्षेप में मैं यही उल्लेख करना चाहता हूँ कि वे हमलोगों के लिए प्रेरक और आदर्श के रूप में रहे हैं। सार्वजनिक जीवन में उनकी पवित्रता, संगठनात्मक क्षमता, विद्वत्ता, अद्भुत वक्तृता कला में उनका स्थान अद्वितीय रहा है।

भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री
श्री राजनारायण

प्रशंसनीय उपलब्धियाँ

सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में श्री ईश्वरदासजी का सक्रिय योगदान और उपलब्धियाँ प्रशंसनीय हैं। मुझे आशा है कि श्री जालान आगामी वर्षों में देश को अपने सुलझे और परिपक्व विचारों से लाभान्वित करते रहेंगे। इस आयोजन की सफलता के लिए मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

भारत सरकार के विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री

श्री शान्तिभूषण

कुशल राजनीतिज्ञ

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि वयोवृद्ध, समाजसेवी एवम् कुशल राजनीतिज्ञ श्री ईश्वरदास जालान का २९ अगस्त, १९७७ को सार्वजनिक अभिनन्दन होगा और इस अवसर पर उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जाएगा। आयोजन की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ एवम् श्री जालान के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें चिरायु करे।

विधि आचार्य, कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश

श्री शङ्करप्रसाद मित्र

गरीब वर्ग के सच्चे हितैषी

मुझे श्री ईश्वरदास जालान के साथ पश्चिम बंग धारा सभा में १९५२ से १९५७ तक कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुछ समय तक मैं उनके साथ महाजाति-सदन का ट्रस्टी भी था। उन्होंने विधि-ज्ञाता के रूप में, धारा सभा के अध्यक्ष (*Speaker*) के पद से, पश्चिम बंगाल के मंत्रिमंडल में एक मंत्री की हैसियत से जन-नेता की तरह जो महत्वपूर्ण अवदान दिए हैं, उनके सभी परिचित व प्रशंसक उन्हें सर्वदा स्मरण करते रहेंगे। जनता के गरीव वर्ग के वे सच्चे मित्र व हितैषी रहे हैं और उनकी आवश्यकताओं और उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए अपनी सारी उम्र चेष्टारत रहे हैं।

मैं आशा करता हूँ कि अनेक वर्षों उन्हें हमारे बीच रहने और जनता का कार्य करने का अवसर प्राप्त होगा। मैं इस अवसर पर उन्हें अपनी श्रद्धा और शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

स्वातंत्र-आन्दोलन के नेता, भारत सरकार के शिक्षा व समाज कल्याण मंत्री

डा० प्रतापचन्द्र चन्दर

शुभकामनाएँ

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि एक सार्वजनिक आयोजन में श्री ईश्वरदासजी को एक अभिनन्दन ग्रंथ, जिसमें उनकी जीवनी समाहित है, समर्पित किया जायेगा। इस शुभ-अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

प्रिय दर्शन, कर्मयोगी, स्त्री-शिक्षा के युग-निर्माता, लोक-सेवक

श्री सीताराम सेकसरिया

विशेष महत्व और उच्च स्थान रखनेवाले

शायद सन् १९१० की बात होगी। मैं राजस्थान के अपने गाँव नवलगढ़ में था। उस समय हिन्दी की एक प्रतिष्ठित सुप्रसिद्ध पत्रिका मासिक 'सरस्वती' का प्रकाशन इलाहाबाद से होता था। उस पत्रिका की उस जमाने में हिन्दी-साहित्यकारों अथवा साधारण पाठकों में बहुत प्रतिष्ठा थी। मैं कौतूहलवश एक मित्र के कहने से उसका पाठक बन गया था। उस पत्रिका में 'ईश्वरदास मारवाड़ी' के नाम से एक लेख पर मेरी दृष्टि पड़ी और मैं चकित हुआ कि मारवाड़ी समाज के किसी व्यक्ति का लेख 'सरस्वती' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में छप सकता है। लेख का शीर्षक क्या था और उसमें पाठ्य-सामग्री क्या थी, उसका आज स्मरण नहीं है पर वह लेख मैं आद्योपान्त पढ़ गया था और वह बड़ा ही रुचिकर प्रतीत हुआ था। मेरे लिये यही आश्चर्य की बात थी कि एक मारवाड़ी व्यक्ति लिख सकता है और वह 'सरस्वती' जैसी पत्रिका में छप सकता है, मन में इससे बड़ी प्रसन्नता थी। मैंने कोशिश भी की कि यह कौन व्यक्ति है, कहाँ रहता है, पर यह जानने का कोई साधन उस समय उपलब्ध नहीं हो सका था।

समय बीत गया। ७-८ वर्षों के बाद ईश्वरदास नाम के व्यक्ति से मेरा परिचय कलकत्ता में हुआ, तो मुझे उस बात का स्मरण हो आया। मैंने उनसे पूछा कि ५-७ वर्ष पहले मैंने इस प्रकार का लेख सरस्वती में पढ़ा था तो भाई ईश्वरदासजी ने मुस्कराते हुए बताया—"वह व्यक्ति मैं ही हूँ, जिसका लेख साहित्य शिरोमणी श्री महावीरप्रसादजी द्विवेदी मुझे प्रोत्साहन देने के लिये छाप दिया करते थे।" यह सुनकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इसके बाद तो दिन-प्रति-दिन हम घनिष्ठ मित्र होते गये और साथ-साथ काम करने के अनगिनत अवसर मिले। ईश्वरदासजी के लिखने-पढ़ने, व्याख्यान आदि देने का मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ता था, उसकी भूमिका उस १९१० के लेख से संबंधित हो गयी थी।

ईश्वरदासजी खेतान कम्पनी के साथ संबंधित होकर वकालत करने लगे तो सामाजिक कामों में श्रद्धेय भाई प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, स्व० देवीप्रसादजी खेतान आदि के साथ बैठ कर सोचने-विचारने के अनेक अवसर आते रहते। उस जमाने की अनेक घटनायें आज के युवकों को विश्वसनीय प्रतीत नहीं होंगी क्योंकि आज के ३० वर्षीय युवकों के सामने घटित होनेवाली अनेक घटनाएँ, आज का वातावरण, आज की स्थिति उनसे बिलकुल असंबद्ध हो गई हैं।

उस समय मारवाड़ी समाज में बी. ए. पास करनेवालों की संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती थी। खड़े होकर बोलनेवाले आदमी कम थे। ईश्वरदासजी के साथ वह युग व स्थितियां जुड़ी हुई हैं और आज का बड़ा परिवर्तन भी जुड़ा हुआ है। उस समय के सामाजिक कार्य करनेवाले लोगों में बहुत थोड़े लोग आज जीवित बच रहे हैं और उनमें ईश्वरदासजी अपना विशेष महत्व और उच्च स्थान रखते हैं। यह हम

सबके लिये सौभाग्य की बात है। यद्यपि वे २-३ वर्ष से अस्वस्थ चल रहे हैं, तब भी वे हैं यह भी एक ऐसी बात है जो प्रेरणाप्रद है।

इस लम्बे अर्से में २ महान युद्ध हो गये। हमारा देश स्वाधीन हो गया। गांधीजी एवं गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महापुरुष इस युग में रहे और उनका पथ-प्रदर्शन हमें मिला। हममें से अनेक मित्रों को उनका सामीप्य भी प्राप्त हुआ और उनके उद्देश्यों से हम सभी प्रभावित भी हुए। राजनीति और सामाजिक परिवर्तनों में जिन लोगों ने सक्रिय भाग लिया, उनमें भाई ईश्वरदासजी का अपना महत्व है। ईश्वरदासजी स्वभाव के सरल और विचारों में सुलझे हुए और अच्छे लिखने-बोलने वाले हैं। उस युग के हमारे सामाजिक सुधार के कार्यों में वे सदा नरम और समझौते की नीति के समर्थक रहे हैं। वे मध्य मार्ग अपनाने वाले रहे हैं, इसलिये जो लोग उन दिनों उग्र आन्दोलक थे या सामाजिक प्रवृत्तियों के अन्दर बड़ा परिवर्तन चाहते थे, उनका साथ वे संपूर्ण रूप से नहीं दे सकते थे। पर हमारे मतभेदों के कारण कभी व्यक्तिगत मित्रता, स्नेह और सम्बन्धों में अन्तर नहीं आया। उदाहरण अनेक हैं, उस समय का अपना एक इतिहास है। मारवाड़ी समाज में ४-५ बड़े-बड़े आन्दोलन हुए हैं, जिनका इतिहास आज के लोगों को शायद कम मालूम है। इस कड़ी का अन्तिम आन्दोलन १९२६ में विधवा विवाह का हुआ, जो बड़ा आन्दोलन था और अधिक उग्र माना गया था ; जिस संघर्ष में एक प्रकार से पुराने विचार वाले लोगों की संपूर्ण हार हुई थी और नवयुवक अपने को काफी सफल मानते थे। उसके बाद भी मृतक बिरादरी भोज, पर्दा-प्रथा-निवारण के आन्दोलन चले पर वे बहुत अधिक संघर्ष के नहीं थे, कारण पुराने विचार रखनेवालों की ताकत उस समय टूट चुकी थी।

स्वाधीनता के बाद देश की राजनीति में जो परिवर्तन आये और हमारे जो साथी लोक सभाओं और विधान सभाओं में गये, उनमें ईश्वरदासजी का स्थान बहुत अच्छा कहा जा सकता है। वे बंगाल विधान सभा के अध्यक्ष रहे और उनकी अध्यक्षता निष्पक्ष और योग्यता वाली मानी गयी। इसके बाद वे हमारी बंगाल सरकार के मंत्रियों में रहे ; वहाँ भी आपने योग्यता और बड़ी सफलता के साथ काम किया।

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन सन् १९३५ में स्थापित हुआ। ईश्वर-दासजी उसके जनक हैं और सम्मेलन के प्रति उनकी सेवायें अनन्त हैं। वे सम्मेलन को अपनी प्यारी-से-प्यारी अच्छी संस्था मानते हैं, इसका भी एक अपना इतिहास है। बम्बई अधिवेशन के अध्यक्ष स्व० ब्रिजलालजी बियाणी थे, उस अधिवेशन में सम्मेलन की नीतियों एवं उद्देश्यों व कार्यकलापों में बड़ा परिवर्तन हुआ। सम्मेलन ने स्वीकार किया कि सम्मेलन के मंच से सामाजिक काम भी किया जायेगा। पहले केवल व्यापारिक और वैधानिक राजनीति में ही काम करने की नीति थी। इससे समाज-सुधार चाहने वाले लोगों के मन में सम्मेलन के प्रति और रुचि पैदा हुई।

भाई ईश्वरदासजी के सम्बन्ध में ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यह बहुत आवश्यक था। ईश्वरदासजी ने स्वयं अपने जीवन की कथा लिखी है, जो बहुत ही महत्वपूर्ण होगी। उनके जीवन की सच्चाई, सच्चरित्रता और योग्यता

हमने देखी है, वह भी उनके ग्रन्थ में प्रकट हुई होगी। उनका चरित्र निश्चय ही आज के लोगों का पथ-प्रदर्शक बनेगा।

सौहार्द मूर्ति, सुप्रसिद्ध समाज-सेवी
श्री भागीरथ कानोड़िया

निष्कलंक जीवन

श्री ईश्वरदासजी जालान ने अपने जीवन में समाज की काफी सेवा की है। उनका अभिनन्दन आज से बहुत पहले ही हो जाना चाहिए थे, किन्तु 'जब जागे तभी सबेरा' के अनुसार देर-सबेर से ही सही, आखिर हो तो रहा है, यह प्रसन्नता की बात है।

श्री ईश्वरदासजी ने जितने वर्ष वकालत का धंधा किया तथा जितने वर्ष राजनैतिक कार्य किया या जितने वर्ष सामाजिक कार्य किया, सदा ही अपना चरित्र उज्ज्वल रखा। ईश्वरदासजी के आज तक के जीवन में कभी किसी ने उनकी ओर अंगुली नहीं उठाई। ऐसा बहुत कम लोगों के जीवन में होता है। इस माने में उनका जीवन धन्य रहा है।

ईश्वरदासजी को मैं बहुत वर्षों से जानता हूँ और सदा ही उनके प्रति आदर-भाव रखता आया हूँ। ईश्वर उन्हें लम्बी आयु और सुस्वास्थ्य दे, जिससे कि वे देश और समाज को अपने अनुभवों तथा सेवा-वृत्ति का लाभ दे सकें।

भूतपूर्व संसद-सदस्य, चिरयुवा, समाजसेवा व्रती
श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

तुम सलामत रहो हजार बरस

भाई ईश्वरदास जालान विद्यार्थी जीवन से ही मेरे साथी हैं। जब वे पहले सन् १९१२ में कालेज में पढ़ने के लिये कलकत्ता आये, तो वे फूलकटरा में स्थित अपनी गद्दी में रहते थे। मैं भी फूलकटरा में मारवाड़ी लौज के नाम से चलाये गये एक छोटे से छात्रावास में उनके आने के पहले से रहता था। इस महानगरी में तथा देश के दूरवर्ती अंचलों में गत ५०-६० सालों में न मालूम छोटी व बड़ी कितनी सामाजिक, राजनैतिक एवं क्रान्तिकारी घटनाएँ घटीं, उन सबके हम दोनों साक्षी हैं।

भाई ईश्वरदासजी एक प्रतिभाशाली छात्र रहे हैं। उन दिनों समाज में ग्रेजुएट छात्र इने-गिने ही मिलते थे। बी० ए० पास करते ही इन्हें डिपुटी मजिस्ट्रेट का पद मिल गया था। पर इन्हें राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण कार्य करना था, इसलिए इस सरकारी नौकरी से उन्हें सन्तोष कैसे होता। डिपुटी मजिस्ट्रेट के पद की नियुक्ति को अस्वीकार कर वे कलकत्ता चले आये। आगे अध्ययन किया और कलकत्ता हाईकोर्ट के सोलीसिटर बन गये। समाज-सेवा के हर कार्य में आप रुचिपूर्वक भाग लेते थे।
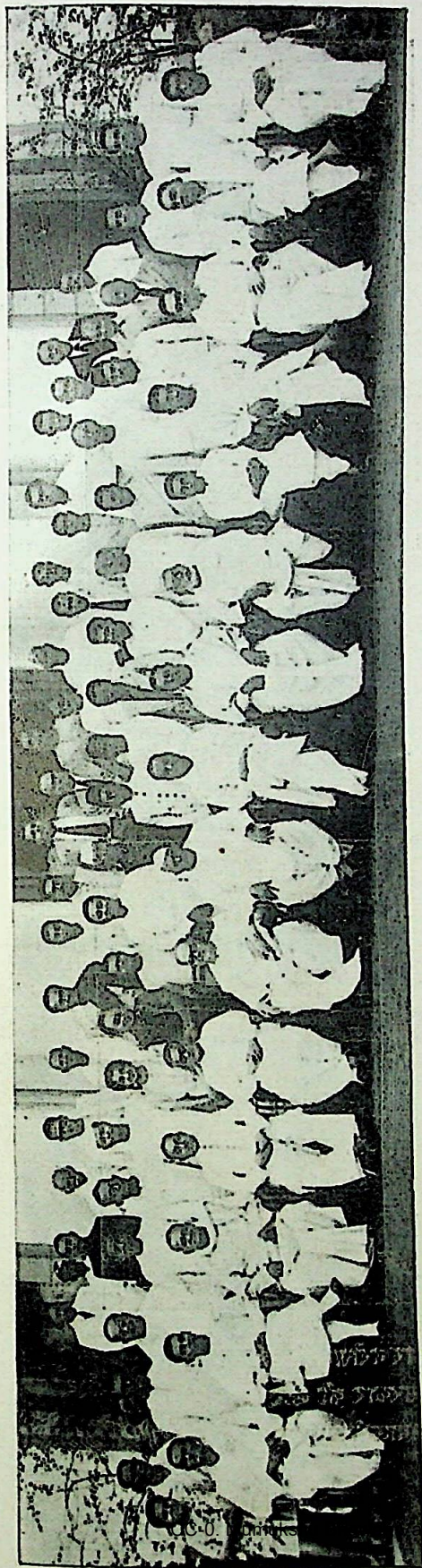
WEST BENGAL ASSEMBLY—1947-52

Sitting (*left to right*)—Sj. Anna prasad Mandal, Hon'ble Rai Harendra Nath Choudhury, Sj. Bankubehari Mandal, Janab Modassir Hossain Hon'ble Bhupati Majumdar, Hon'ble Nalini Ranjan Sarkar, Hon'ble Iswar Das Jalan (speaker), Hon'ble Dr. Bidhan Chandra Roy, Sh. J. C. Gupta, Sj. Pramatha Nath Bandyopadhyay, Hon'ble Nikunja Behari Maiati, Hon'ble Kali Pada Mukherjee, Hon'ble Bimal Chandra Sinha, Hon'ble Hemchandra Naskar Sj. Ashutosh Mallick (Deputy Speaker.

Middle Row (*left to right*)—Sj. Sushil Kumar Banerjee, Hon'ble Prafulla Chandra Sen, Sj. A.K. Ghose, Sj. Umesh Chandra Mandal, Sj. Birendra Nath Roy Sarkar, Hon'ble Niharendu Dutt Mazumdar, Mrs. E.M. Ricketts, Sj. Sheo Kumar Rai, Sj. Arabinda Gayen, Sj. Ardhendu Sekhar Naskar, Janab Abdus Shokur, Janab Mohammad Sayeed, Mia, Sj. Nishapati Majhi, Janab, S.M. Abdullah, Janab Mohammad Kased Ali, Sj. Basantlal Murarka, Janab Mohammed Qumruddin, Haripada Chatterjee, Janab, A.M.A. Zaman, Sj. Charu Chandra Mahanty, Hon'ble Dr. Rafiuddin Ahmed, Sj. Joyti Basu , Sj. Radha Nath Das.

Back Row (*2nd from left*)—Sj. Charu C. Chowdhury (special Officer) Hon'ble Jadabendra Nath Panja, Sj. Bepin Behari Ganguli Sj. Satish Chandra Roy Singh Sarker, Sj. Sibnath Banerjee, Sj. Shyamapada Bhattacharya, Shahkbza Kawan Jah, Saiyid Kazem Ali Mirza, Mr. R. E. Patel, Mr. L.R. Pentony, Sj. Khagendra Nath Das Gupta, Sj. Iswar Chandra Mal, Mr. D. Gomes, Sj. Charu Chandra Bhandari, Sj. Harendra Nath Dolui, Sj. Sowrindra Mohan Misra. Sj. Satish Chandra Chakravarty, Sj. Dhirendra Narayan Mukherjee Sj. A.R. Mukherjee (Secretary).

प्रमुख उद्योगपतियों एवं व्यवसाइयों की
सभा को सम्बोधित करते हुए
श्री ईश्वरदासजी जालान

कम्बोडिया के शासनाध्यक्ष, राजकुमार नरोत्तम सिंहनुक का
दमदम हवाई अड्डे पर प० बंग सरकार की ओर से
स्वागत करते हुए श्री ईश्वरदासजी जालान

सन् १९३७ में बंगाल एसेम्वली के चुनाव थे। वड़ावजार क्षेत्र से एसेम्वली की एक सीट के लिए हम दोनों ही उम्मीदवार थे। मेरी रुचि बिल्कुल नहीं थी कि मैं एसेम्वली में जाऊं और न यह चाहता था कि चुनाव में भाई ईश्वरदास के साथ विरोध हो, पर कुछ मित्रों का आग्रह था कि मुझे चुनाव में खड़ा होना चाहिए। तब मेरे और भाई ईश्वरदास के बीच एक समझौता हुआ। उस समझौते के अनुसार यह तय हुआ कि मैं सिर्फ दो साल की अवधि तक एसेम्वली में रहूँगा और उसके बाद मैं त्यागपत्र दे दूँगा और भाई ईश्वरदास मेरे स्थान पर चुन लिये जाएँगे। इस समझौते को वे तुरन्त मान गये और दो साल के वदले मैंने एक साल में ही इस्तीफा दे दिया और मेरे स्थान पर ईश्वर-दास चुन लिये गये। उनके चुने जाने पर मुझे बड़ा ही सन्तोष और सुख मिला। आज-कल जहाँ छोटे-से-छोटे चुनावों में आपस में कितना विरोध और संघर्ष होता है, वहाँ उसी प्रतिद्वन्द्विता में किस तरह से समझौता करके प्रेम से एक ही सीट का दो प्रतिपक्षों में बँटवारा किया जा सकता है, यह इसका उदाहरण है।

भाई ईश्वरदास एक बड़े ही सफल सोलीसिटर रहे हैं। उनके पेशे में सदा पवित्रता और शालीनता रही है। वे सही अर्थ में अपने मुवक्किल की सेवा करते थे और सच्चे केस को ही लेते थे। एक वार वे मेरे एक मुवक्किल के विरुद्ध केस लड़ रहे थे; मेरे मुवक्किल के खिलाफ एकतरफा डिग्री करवा कर और डिग्री जारी करके गिरफ्तार करवा देने का आर्डर करवा चुके थे। केस की गहरी छानबीन हो जाने के बाद उनके मुवक्किल के वही-खातों में ऐसी झूठी कलमें पकड़ में आ गईं, जिससे उनके मुवक्किल को जेल हो सकती थी। कोर्ट की नजर में यह बात पहुंचाने के पहले मैंने भाई ईश्वरदासजी से कहा कि आप अपने मुवक्किल को समझा दें, नहीं तो उसको जेल हो जाएगी। ईश्वर-दासजी ने विरोधी पक्ष का वकील होते हुए भी मेरी बात मान ली। पहले तो उनका मुवक्किल मान नहीं रहा था, पर जब ईश्वरदासजी ने उसे जोर देकर कहा तो उनके मुवक्किल ने अपनी भूल कबूल कर ली। मामला आपस में सलटा लिया गया। यह तो लम्बे अरसे की प्रैक्टिस का एक छोटा-सा उदाहरण है कि किस तरह से ईश्वरदासजी मुकदमा करने वालों को लड़ाने के स्थान पर उन्हें नेक सलाह देकर कोर्ट के बाहर सलटाने के पक्ष में रहते थे।

आगे चलकर तो देश और समाज के प्रति की गई उनकी सेवायें और भी निखर आईं, जब कि वे अपनी प्रैक्टिस को तिलांजलि देकर राजनीति में पूर्ण रूप से उतर आये। नये संविधान के अन्तर्गत देश में नये चुनाव हुए। ईश्वरदासजी बड़ाबाजार में बराबर ही विजयी हुए। सर्वप्रथम प० बंगाल विधान सभा के स्पीकर चुने गये। स्पीकर के कार्य को बड़ी ही दक्षता और निष्पक्षता के साथ निबाहा। फिर वे मन्त्री चुन लिये गये। मन्त्रीपद से भी उन्होंने देश और समाज की बड़ी सेवायें की हैं। इस लम्बी अवधि में आपने कितने मानपत्र और अभिनन्दन प्राप्त किये हैं, उनकी क्या गिनती है। जैसी सफलता भाई ईश्वरदासजी ने अपने जीवन में प्राप्त की है, वैसी बहुत कम लोगों को नसीब होती है।

अन्त में गालिब के एक शेर से अपने मित्र के प्रति अपनी शुभकामनाएं प्रगट करता हूँ:

तुम सलामत रहो हजार बरस
हर बरस में हों दिन पचास हजार।

उत्तर प्रदेश के प्रतीक उद्योगपति व चिन्तक

श्री पद्मपत सिंहानियां

समाजोत्थान एवं प्रगति के प्रेरक

श्री ईश्वरदासजी जालान से मेरे संबंध अत्यन्त घनिष्ठ, निकटतम एवं आत्मीय रहे हैं। अनेक वर्षों पूर्व उन्होंने मुझे भी मारवाड़ी सम्मेलन में आमंत्रित किया था। उक्त समारोह में मारवाड़ी समाज के अनेक गण्यमान्य, वयोवृद्ध एवं नवयुवक समाजसेवी एकत्र हुए थे। उनके हृदय की समाजोत्थान एवं प्रगति हेतु सच्ची भावना से बड़ा प्रभावित हुआ था। श्री ईश्वरदासजी की कामना थी कि समाज की युवा पीढ़ी व्यापार के अतिरिक्त औद्योगिक विकास, आध्यात्मिक चिन्तन, राजनीतिक चेतना तथा समाजोन्नति के द्वारा एक शक्तिशाली एवं प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण की दिशा में अपना महत्वपूर्ण योगदान करे। उन्हीं की प्रेरणा, साधना, कठिन तपस्या एवं मार्ग-दर्शन के परिणामस्वरूप आज के मारवाड़ी युवक राष्ट्रीय प्रगति की दिशा में अधिकाधिक गतिविधियों में भाग लेते हुए अपनी वहुमुखी प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं। कहीं वे व्यापार और उद्योग के द्वारा शक्तिशाली अर्थव्यवस्था का निर्माण कर रहे हैं, कहीं शिक्षा-प्रचार द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने में जुटे हैं, कहीं राजनीति एवं न्याय-माध्यम से जनतन्त्र को सुदृढ़ वनाने में रत हैं, और कहीं मानव के धार्मिक-आध्यात्मिक विकास की चेष्टा में अग्रगण्य एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों द्वारा देश की सेवा में सर्वोपरि हैं।

श्री जालान की यह भी इच्छा थी कि समाज की स्त्रियां पर्दे जैसी कुरीतियों का परित्याग कर देश की प्रगति में भागीदार वनें तथा पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिला कर नये समाज का सृजन करें। मुझे हर्ष है कि उनकी पवित्र कामनाएं उनके जीवन काल में ही साकार हो रही हैं।

सुप्रसिद्ध विधि-ज्ञाता, शिक्षाप्रेमी और समाज़-सेवक

श्री भगवती प्रसाद खेतान

शुद्ध आचरण एवं सादा जीवन के आग्रही

श्री ईश्वरदासजी से मेरा संपर्क छात्र-जीवन से ही प्रारम्भ हुआ, वह कार्यकाल के अनुसार बढ़ता गया। मेरा परिवार प्राचीन काल से शिक्षा के मामले में अग्रणी रहा है। श्री ईश्वरदासजी जालान उस जमाने में उच्च शिक्षा प्राप्त मारवाड़ी समाज में प्रसिद्धि-प्राप्त व्यक्ति थे, जिन्होंने मुजफ्फरपुर से आकर कलकत्ता में ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी। इनके स्व० पिता मुजफ्फरपुर में एक बहुत ही संभ्रान्त, धनीमानी, प्रभावशाली व्यापारी तथा वहाँ के सारे समाज में प्रतिष्ठित माने जाते थे। मेरे भाई स्व० श्री देवीप्रसाद जी, दुर्गाप्रसादजी व कालीप्रसादजी के सान्निध्य में श्री जालानजी आये और

सोलीसिटर परीक्षा में उत्तीर्ण होकर खेतान कम्पनी में एक पार्टनर के रूप में उन्होंने कार्य करना प्रारम्भ किया।

संन् १९२७-२८ की बात है, जब मैंने भी खेतान कम्पनी में काम सीखना आरम्भ किया तो उस समय श्री जालानजी के साथ सुबह से शाम तक बैठकर काम करने का अवसर मिला। जिन आदमियों से मैंने काम सीखा, उनमें प्रमुख मेरे भाई श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान, श्री कालीप्रसादजी खेतान, श्री एस. एन. बनर्जी एवं श्री ईश्वरदासजी जालान थे। इस प्रकार श्री जालानजी से हमारा और परिवार का संपर्क बढ़ता गया और आगे चलकर तो उनकी एक लड़की से मेरे ज्येष्ठ पुत्र का विवाह भी सम्पन्न हो गया। सोलीसिटर के रूप में जितने ऊँचे ख्यालात होने चाहिए, जालानजी में पूरे रूप में विद्यमान थे। वकालत के पेशे में वे बड़े ही माहरीन थे। कानून की बारीकियों की तह तक पहुँचकर अपनी कार्यकुशलता का परिचय देते, उनकी बहस हृदयग्राही होती थी। यही कारण था कि उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफलता भी मिल जाती।

जालानजी छात्रों के संगठन और उनकी गतिविधियों में प्रमुख रूप से प्रभावशाली रहे हैं। उनकी लेखन-शैली, कार्यों एवं प्रभावशाली भाषणों से छात्रों पर उनका असर काफी अच्छा हो गया था। बहुत दिनों तक वे प्रति वर्ष उत्तीर्ण छात्रों को आमंत्रित करते और उन्हें उत्साहित करते। उन्हीं की प्रेरणा और सहयोग से मैं मारवाड़ी छात्र संघ का पहले मंत्री और बाद में अध्यक्ष भी हो गया था। उनमें काम करने की लगन शुरू से ही रही है, जिसने आगे चलकर उन्हें अभूतपूर्व सफलता की ऊँची मंजिल पर पहुंचा दिया, जिसके द्वारा उन्होंने देश और समाज की जो भी सेवा की उसके लिये लोग उनको आज भी श्रद्धेय और चरित्रवान के रूप में याद करते हैं। वह चाहे कोई सरकारी कर्मचारी, मिनिस्टर, आफिसर या जज हो अथवा पश्चिम वंग का एक साधारण नागरिक, सभी उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं।

देश के स्वाधीन होते ही जब वे प० वंग विधान सभा के डा० बी० सी० राय के जमाने में अध्यक्ष निर्वाचित हुए, उस समय उनको खेतान कम्पनी में काम करना संभव नहीं रहा। तथापि हमलोगों का आपसी स्नेह-सूत्र पहले से भी मजबूत बनता रहा और उनकी जगह उनका पुत्र श्री कृष्णानन्द खेतान कम्पनी का पार्टनर बना। बाद में जब श्री कृष्णानन्द ने जालान कम्पनी की स्थापना कर ली, तब जालानजी ने कानूनी कार्य क्षेत्र से पूर्ण अवकाश ले लिया और समाज-सेवा में लग गये।

कोर्ट की छुट्टियों में हमलोग बहुत बार एक साथ ही बाहर जाया-आया करते थे। उनके साथ बाहर घूमने एवं सैर सपाटे में बड़ा आनन्द आता, उनकी आकर्षक बातों से सारी यात्रा आनन्दपूर्ण रहती और समय बीतते देर नहीं लगती ; अकेलापन तो कभी अनुभव किया ही नहीं। जालानजी का मुझपर काफी भरोसा सदा रहा और मैं भी यही चेष्टा रखता आया कि उन्हें सार्वजनिक जीवन या अन्य कहीं किसी कारण से कठिनाइयाँ न हों। यथासंभव उनको सहयोग देने के लिये तैयार रहता।

इनका जीवन धार्मिक वृत्तियों से अधिक प्रभावित है। शुद्ध आचरण, सदा सच्चा जीवन एवं सादगी इन्हें पसन्द रही। समाज के प्रति सदा उदार भावना रहती। स्पीकरशिप के बाद काफी वर्षों तक ये स्वायत्त शासन एवं कानून मंत्री पद पर रहे। उनका

कार्य-संचालन इन्होंने जिस सुन्दर ढंग, ईमानदारी, योग्यता तथा निष्पक्षता से किया उसको आज भी लोग याद करते हैं। ये ऊँचे दर्जे के वक्ता रहे हैं। खुशामद से बिल्कुल दूर, पर बहुत ही मिलनसार हैं। यही कारण था कि बड़े-बड़े पदाधिकारी, नेता इनसे मिलने में संकोच नहीं करते। एक साधारण कोटि का आदमी भी इनसे मिलकर सम्मान पाकर खुशी-खुशी घर जाता रहा है।

एक बार जब लन्दन में बृटिश साम्राज्य के सभी देशों के स्पीकरों की कान्फ्रेन्स हुई थी, उस समय लन्दन की पार्लियामेण्ट में जालानजी का अंग्रेजी में ओजस्वी और सारगर्भित भाषण हुआ था। उसकी प्रशंसा उस समय उपस्थित श्रोताओं ने की थी और कई अंग्रेजों ने बाहर आने पर ईश्वरदासजी को ऐसी सुन्दर अंग्रेजी बोलने के लिये दाद दी थी।

ईश्वर उनको चिरायु करे, जिससे वे देश और समाज की और भी सेवा कर सकें, यही मेरी शुभ कामना है।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, राजनीतिज्ञ
श्री कृष्णकुमार बिरला

सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक

श्री ईश्वरदासजी जालान के सार्वजनिक अभिनन्दन का अवसर जन-सेवा की दिशा में श्री जालान की उपलब्धियों की याद दिलाने के साथ-साथ युवकों को भी सेवा-भावना की प्रेरणा देता है।

श्री जालान से मेरा बहुत वर्षों से निकट सम्पर्क रहा है। उन्होंने युवावस्था में ही जनता की सेवा का बीड़ा उठाया और जीवनपर्यन्त इस कार्य को निर्लिप्त भाव से करते रहे हैं। ३० वर्ष तक वे पश्चिम बंगाल विधान सभा के सदस्य रहे हैं। पश्चिम बंगाल विधान सभा के स्पीकर, स्वायत्त शासन मंत्री तथा विधि मंत्री के रूप में श्री जालान की सेवाओं को कोई नहीं भुला सकता। बहुत-सी सार्वजनिक संस्थाओं से वे सम्बन्धित रहे हैं। जीवन के प्रारम्भिक काल में अंग्रेजी शासन द्वारा डिपुटी मजिस्ट्रेट के पद को, जिसके लिये प्राय: लोग लालायित रहते थे, अस्वीकार करना उन्हीं का काम था।

"सादा जीवन उच्च विचार" वाली कहावत श्री जालान पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। इस शुभ अवसर पर मैं इस आयोजन की सफलता की तथा श्री जालान की दीर्घायु की कामना करता हूँ, जिससे वे आनेवाली पीढ़ी का मार्ग इसी प्रकार प्रशस्त करते रहें।

भूतपूर्व राज्यसभा सदस्य, समाज-सेवी, साहित्य-प्रेमी
श्री रामकुमार भुवालका

लगन के पक्के

मेरी ईश्वरदासजी से मेरे अनुमान से पचास वर्ष से पहले से जान-पहचान है। बहुत नजदीक से देखने का मौका मिला, साथ में काम करने का भी। कई ऐसे मौके आये कि

ईश्वरदासजी की सलाह सर्वोपरि मानी गई। ईश्वरदासजी की यह विशेषता रही कि जब कोई ऐसा मौका आया जिसमें कोई बड़ा वाद-विवाद खड़ा हो गया तो उनकी सलाह से वह वाद-विवाद खत्म हो गया। ईश्वरदासजी सार्वजनिक सेवायें आज से नहीं, वर्षों से करते आ रहे हैं। जब भी कोई उनके पास जाता है, तो वह उसको अपने व्यवहार द्वारा हंसते हुए अपनी तरफ खींच लेते हैं, यह उनकी विशेषता है। बंगाल की विधान सभा में मेरे अनुमान से वे तीस-बत्तीस वर्ष सदस्य रहे। उसमें उन्होंने अपना उत्तरदायित्व बड़े अच्छे ढंग से निभाया। यह सर्वविदित बात थी कि इनके कोई निज की लाग-लपेट नहीं थी, जो उनकी विशेष खूबी रही। आज भी उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहते हुए भी जो कोई उनके पास मिलने जाता है, उसके लिए वे अपनी तरफ से जो भी कुछ कर पाते हैं उसे करके खुश होते हैं। श्री ईश्वरदासजी मेरे अनुमान से एक वर्ष मेरे से बड़े हैं लेकिन हमलोगों का आपस में बड़े-छोटे का सवाल नहीं रहा। सेवाओं के कामों में निर्लेप रहते हुए सेवा की भावना ही रही, यह ईश्वर की कृपा है।

ईश्वरदासजी की खूबियां क्या बताऊँ! एक दफा बंगाल एसेम्बली में मैं और स्व० बसंतलालजी मुरारका इनके पास बैठे हुए थे। उन्होंने एक दिलचस्प बात बतलाई और कहा, मेरे कमरे में चलिये मैं आपको नई बात बताऊंगा। हमलोग गये तो वहाँ उन्होंने एक पुस्तक निकाल कर सुनाई। वह पुस्तक एक जर्मन राजनीतिज्ञ की लिखी हुई थी। उसमें राजनीति का वर्णन लिखा था कि जो आदमी राजनीति में जाता है, नेता बनता है उसे इन बातों को याद रखना चाहिए:

(१) कोई भी पार्टी बुलाये तो उसके यहाँ जरूर जाये।

(२) स्टेज पर खड़े होकर अपने व्याख्यान में किसी पार्टी की निन्दा न करे।

(३) कभी भी अपने पद से इस्तीफा नहीं दे।

इन तीनों बातों को मानने वाला राजनीति में कभी नीचा नहीं देखता।

हमलोगों को बहुत हंसी आई उनकी बात सुन कर।

जितने दफे ये चुनावों में खड़े हुए, उन सभी में हरएक पार्टी, सब धर्मवालों, और काम करने वालों सब भाइयों तथा सब साथियों को अपनी तरफ खींचते हुए, अच्छे वोटों से जीतते रहे। यह ईश्वरदासजी की अतुलनीय खूबी रही। बहुत-सी बातें उनसे सीखी जा सकती है, हर आदमी में अच्छाई की बहुतायत ज्यादा है। दुख हमारे देश में यह है कि हम केवल बुराई को ही देखते हैं, हम गुणों की तरफ नहीं देखते। लकिन ईश्वरदासजी में अवगुण भी देखने को कहाँ?

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वरदासजी दीर्घायु हों, रोग से उनकी निवृत्ति हो और फिर वे हमारे बीच में अच्छी तरह लोगों की सेवा करने में अपना मन, समय, बुद्धि दें।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, साहित्य-प्रेमी

श्री जयदयाल डालमिया

त्यागी और प्रेरणादायी जीवन

बंगाल में समाज-सेवी के रूप में श्री ईश्वरदासजी जालान का नाम सुविख्यात है। मारवाड़ी समाज में ऐसा कौन होगा जो उनके नाम से अवगत न हो। अखिल भारत-

वर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के माध्यम से किये हुए उनके समाजोपयोगी कार्य सदैव स्मरण रहेंगे। व्यापक कार्यक्षेत्र में उनकी सफलता के पीछे त्याग, लगन और ध्येय-निष्ठा की जो भावना निहित है, उससे वर्तमान नव-युवकों को प्रेरणा लेनी चाहिये। मुझे वह समय याद आता है जब राजस्थान से व्यापार के अवसरों की तलाश में लोग निकलकर देश के सुदूर प्रान्तों में साधनहीन अवस्था में जाते थे और पारस्परिक सौहार्द, सहयोग, सद्‌गुण और परिश्रम से एक अपरिचित समाज में अपना स्थान ही नहीं बनाते थे, वरन् सम्मान पाते थे। उनके पास न तो किसी विश्वविद्यालय की डिग्री ही होती थी, न व्यापार जमाने के लिये आवश्यक धन और न जमे-जमाये साधन। होता था एक आत्म-बल, दूसरों को अपना बना लेनेवाला मृदु व्यवहार-बल तथा कुछ कर गुजरने की लगन।

मैं जिस पीढ़ी की बात कर रहा हूँ श्री जालानजी भी उसी में से हैं। अतएव सदैव अभिनन्दनीय हैं वे सद्‌गुण, जिनसे समाज-सेवी का निर्माण होता है। मेरी प्रार्थना है कि परमात्मा की प्रेरक सत्ता इन सद्‌गुणों के रूप में वर्तमान पीढ़ी में भी उद्‌भासित हो।

श्रीईश्वरदासजी जालान के स्वस्थ शतायुष्यपूर्ण दीर्घ जीवन की शुभ कामनाओं के सहित।

समाज के नित-चेतक, समाज-सेवी, 'विश्वमित्र' के संचालक-संपादक

श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल

मारवाड़ी समाज के सजग प्रहरी और अद्वितीय शुभचिन्तक

श्री ईश्वरदासजी जालान का "विश्वमित्र" परिवार से उस समय से घनिष्ठ सम्बन्ध है जब जालानजी और "विश्वमित्र" संचालक श्री मूलचन्द्रजी अग्रवाल ने कलकत्ते में अपना कर्ममय जीवन प्रारम्भ किया। "विश्वमित्र" संचालक की बरात में जालान जी बराती बन कर भी गये थे। यह सम्बन्ध दिनोंदिन दृढ़ होता गया।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व समाज में रूढ़ि-रिवाजों को लेकर जो गहरा तनाव और द्वन्द्व चला, उस झंझावात में भी समाज के ये दोनों प्रमुख कार्यकर्ता, दो विरोधी दलों में रहने पर भी, उनकी मित्रता एवं आपसी सम्बन्धों में कभी अंतर नहीं आया, क्योंकि सौभाग्य से रूढ़िवादी एवं प्रगतिशील दलों में जालानजी एवं अग्रवालजी उग्र विधारधारा के पक्ष-पाती कभी नहीं रहे और उद्देश्य पूर्ति के लिए समझाने-बुझाने और बीच का रास्ता निकालने में विश्वास रखते थे। इस कारण जहाँ जालान जी को कट्टरपंथी मित्रों एवं सहयोगियों से प्रायः उलाहना सुनने को मिलता था, उधर अग्रवाल जी को भी कईबार प्रगतिशील सहयोगियों को क्षुब्ध एवं असंतुष्ट करना पड़ता था।

जब समाज-सुधार-आंदोलन का गहरा विवेचन भविष्य में इतिहास का शोध करने-वाले करेंगे तो एक अप्रगट तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आयेगा जो अपने में अत्यधिक महत्व-पूर्ण है—जालानजी और अग्रवालजी ने दो दलों में अपने प्रभाव का उपयोग कर पूरे

मारवाड़ी समाज को खंडित होने से बचाया, जो विचारों एवं आदर्शों की गहरी टक्कर में टूटने के किनारे पर पहुंच गया था।

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ काल तक तो इन दो महारथियों का सीधा सम्पर्क रहा ; किन्तु जब मैं अट्ठारह वर्ष की उम्र में सामाजिक, साहित्यिक एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में ग्रेजुएट एवं विवाहित होते ही प्रवेश कर गया, तो जालान जी से मेरा सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया और वह उनके कर्ममय जीवन के अंत तक बिना किसी बाधा के निरन्तर गहरा होता गया। हम दोनों में आयु के अंतर से कोई बाधा नहीं पड़ी ; क्योंकि जालान जी ने कर्ममय जीवन के अंत तक कभी भी "बुजुर्गियत" की धौंस किसी को भी नहीं दी और हर कार्यकर्त्ता के विचारों का स्वागत ही उनका स्वभाव रहा।

कानपुर में मेरा विवाह जे. के. उद्योग समूह के संचालक सर पद्मपत सिंहनिया ने अपने सबसे घनिष्ठ मित्र लाला रामनारायणजी गर्ग, एम० एल० सी० की कन्या से मुझे समझा-बुझा कर करा दिया था ; क्योंकि उस समय देश में जैसी हवा चल रही थी, मैं भी अविवाहित रहने के चक्कर में था। संयोग से सर साहब ही अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और यह भी संयोग ही था कि यह अधिवेशन मेरी ननिहाल भागलपुर में आयोजित हुआ। मैं उसमें सम्मिलित हुआ और तब से ही मारवाड़ी सम्मेलन के अखिल भारतीय आयोजनों और प्रांतीय सम्मेलनों में भाग लेने का सिलसिला शुरू हुआ और इसके साथ ही सम्मेलन के कर्णधार जालान जी के साथ निकटता बढ़ती गयी।

जालान जी किस प्रकार कार्यकर्त्ताओं पर नियंत्रण करते थे, देखते ही बनता था। नये व्यक्तियों को ठोंक-पीटकर वैद्यराज बनाने की भी उनकी अपनी कला थी। मारवाड़ी सम्मेलन के माध्यम से इस प्रकार पचासों कार्यकर्त्ता उन्होंने देश के हर कोने में तैयार किये जो आगे चलकर अच्छे समाजसेवी और राजनीतिज्ञ बने।

जालान जी को कभी थकावट तो आती ही नहीं थी। सम्मेलन अधिवेशन के समय वे हर समय ही व्यस्त रहते थे और भोजन या विश्राम भूल जाते थे। तड़के सबेरे से वे प्रस्तावों को लिखने में जुट जाते, प्रातः नौ बजे तक विषय निर्वाचिनी समिति शुरू हो जाती, दिन के भोजन के समय और लोग भोजन-विश्राम करते किन्तु वे युवा सम्मेलन, महिला सम्मेलन, प्रांतीय बैठकों में व्यस्त रहते। वह खत्म होते-होते खुला अधिवेशन शुरू हो जाता और रात्रि नौ बजे जब और कार्यकर्त्ता भोजन-विश्राम की छुट्टी लेते, वे कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ाने के लिए इस अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उपस्थित हो जाते। इस प्रकार एकाध घंटे का भी अवकाश उन्हें नहीं मिलता, किन्तु वे प्रसन्नचित्त रहते। कई बार विषय समिति में कटु, आक्षेपपूर्ण, व्यंग्य के भाषण भी होते तो वे मुस्करा कर रह जाते ; किन्तु जब कोई बड़े से बड़ा नेता अनधिकार चेष्टा करता तो उस समय वे एक कठोर कमांडर की तरह उग्र रूप धारण कर लेते। वे गजब के संवेदनशील और हर दिल-अजीज नेता थे। महिला समाज के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी, किन्तु उच्छृंखलता उन्हें कभी बर्दाश्त नहीं हुई।

जालान जी ने मारवाड़ी सम्मेलन के मंच से सदैव शिक्षा-प्रसार और संगठन को ही बल दिया। समाज-सुधार के नाम पर वे समाज और सम्मेलन को विभक्त करने के सदैव

विरोध में रहे। उनका कहना था कि राजनैतिक और सामाजिक सुधार के लिये अलग से मंचों को स्थापित करना चाहिये। अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन या प्रांतीय सम्मेलन को मुख्य रूप से संगठन पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इस विषय पर वे लगातार स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद तक दृढ़ रहे किन्तु जब देश में, समाज में हवा बदली और उन्होंने अनुभव किया कि समाज-सुधार की चर्चा होने से अब सम्मेलन के अस्तित्व को खतरा नहीं होगा, तभी उन्होंने मंच पर से चर्चा पर प्रतिबन्ध हटाया। किन्तु पीछे उन्हें दुख रहा कि मारवाड़ी सम्मेलन का असली उद्देश्य "संगठन" गरमागरम भाषणों एवं प्रस्तावों में ठंडा पड़ता गया।

जालानजी की कुछ मेरे साथ इतनी आत्मीयता हो गयी थी कि वे निःसंकोच अपनी भावना को मुझसे प्रगट करते थे। वे अद्वितीय शुभचिन्तक मारवाड़ी समाज के रहे। इस समाज में सैकड़ों शिक्षित, संस्कृतज्ञ, राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता हो चुके हैं और हैं। किन्तु मैं कह सकता हूँ कि जालानजी इस समाज के एक अनोखे सजग प्रहरी थे। वे किसी प्रकार का भी व्यंग्य, आरोप, लांछना समाज पर सहन नहीं कर सकते थे। वे प० बंगाल प्रांतीय विधान सभा के अध्यक्ष रहे या मंत्री, इससे उनमें अन्तर नहीं पड़ा। बिना हिचकिचाहट के हर अन्याय का सामना स्वयं करते और कार्यकर्त्ताओं को प्रेरित करते।

एक बात और, इस समाज के नेता पर लिखते हुए कहना जरूरी समझता हूँ। जालान जी देश के बड़े-से-बड़े उद्योगपति एवं धनकुबेर के सम्पर्क में आये, जिन लोगों के स्पर्श मात्र से राह चलते लोग करोड़पति बन गये; किन्तु जालानजी ने कभी एक क्षण के लिये भी इसे महत्व नहीं दिया। अपने ऊपर किसी का उपकार नहीं होने दिया। यह एक अनोखी मिशाल है। कपड़ा मिलों के मालिकों के बीच वे फटी चादर पर ही बैठे रहते थे। धन का संसर्ग उन्हें अपदस्थ, विचलित, हताश या क्षुब्ध नहीं कर सका। यह उनके प्रति श्रद्धा बढ़ानेवाला मेरे लिये सबसे प्रमुख कारण रहा। सम्मेलन में कुछ कार्यकर्त्ता उद्योगपतियों और सेठ-साहूकारों के सम्पर्क से लाभान्वित हुए, किन्तु जालान जी सबों से परिचित होने पर भी, सबों पर प्रभावशाली होते हुए भी, स्वयं स्वभाव के बादशाह और तन के फ़कीर रहे।

मेरे मन में उनसे सम्बन्धित पचासों घटनाएँ हैं, जो स्वयं में रोमांचक, गुदगुदा देनेवाली, आश्चर्यजनक और सत्य हैं।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति
श्री मंगतूराम जैपुरिया

प्रतिभावान समाजसेवी

श्री ईश्वरदासजी जालान से मेरा बाल्यावस्था से ही बहुत निकट का सम्पर्क रहा है। उनके जैसे विद्वान, प्रतिभावान और समाजसेवी का अभिनन्दन करना निश्चय ही हमारे समाज और देश के लिए गौरव की बात है।

श्री ईश्वरदासजी जालान के गुरु
पण्डित योगानन्द कुमर

प० वं० विधान सभा के सत्रारम्भ पर राज्यपाल डा० कैलाशनाथ काटजू को विधान सभा में प्रवेश कराते हुए स्पीकर श्री ईश्वरदासजी जालान
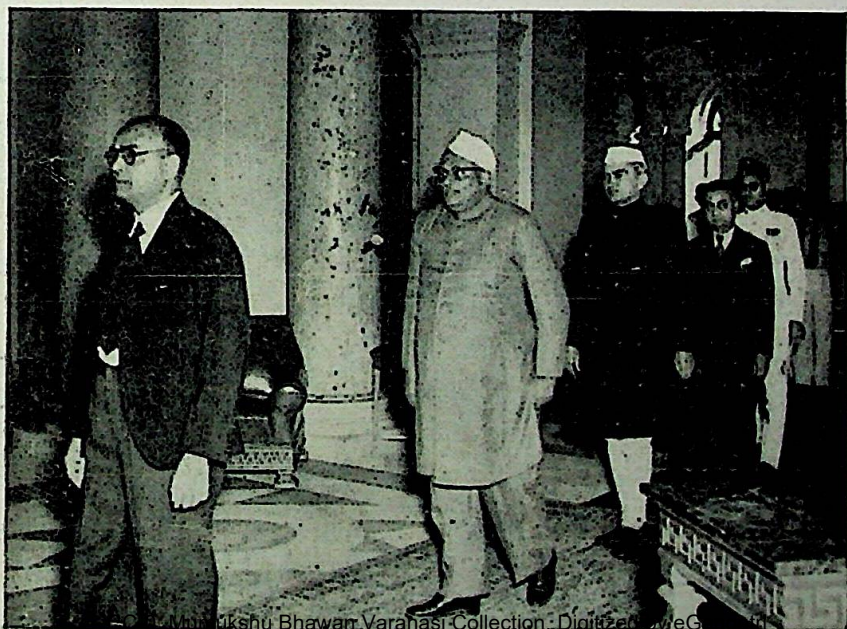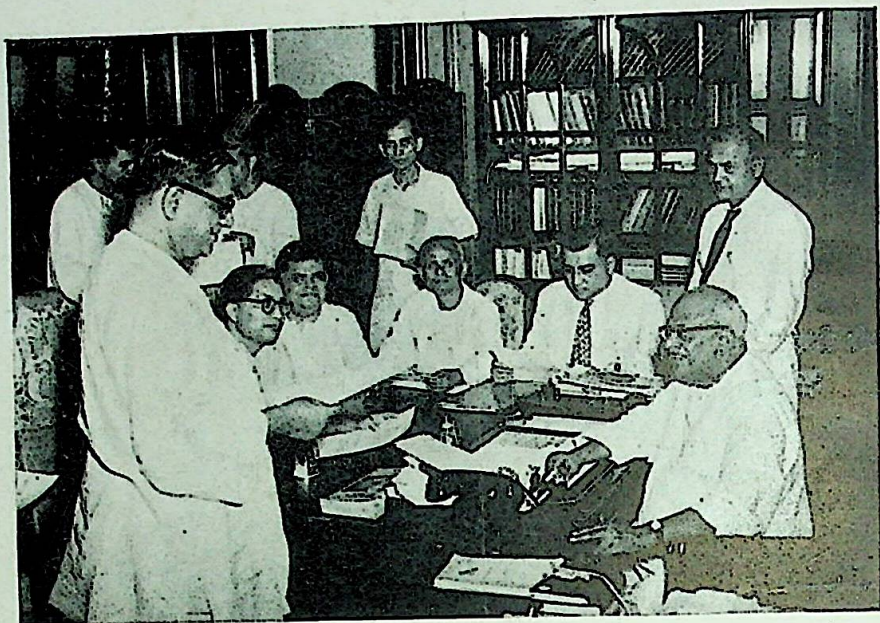
प० बं० विधान सभा के अपने कक्ष में कांग्रेसी और विरोधी पक्ष के नेताओं के साथ। कलकत्ता हाईकोर्ट के वर्तमान मुख्य न्यायाधीश श्री शंकर प्रसाद मित्रा ईश्वरदासजी के दायें बैठे हुए

राजकुमारी अमृतकौर (भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्रिणी, भारत सरकार) द्वारा सम्बोधित प्रादेशिक मंत्रियों की सभा में प० बंगाल का प्रतिनिधित्व करते हुए श्री ईश्वरदासजी जालान

मैं श्री जालानजी को हार्दिक बधाई देते हुए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें शतायु करे, ताकि दीर्घकाल तक हम सब उनकी सेवाओं से लाभान्वित होते रहें।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति
श्री शान्तिप्रसाद जैन

हितकर जीवन

श्री ईश्वरदासजी जालान का सार्वजनिक अभिनन्दन करने के लिए 'श्री ईश्वरदास जालान अभिनन्दन समिति' का गठन किया गया है और उनकी जीवनी सहित एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित हो रहा है, जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। श्री ईश्वरदासजी जालान का जीवन समाज के लिये सब प्रकार से हितकर रहा है।

क्रान्तिकारी, सुधारक, स्वतंत्रता संग्रामी, चिन्तक, लेखक,
शिक्षाविद, अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष
श्री भँवरमल सिंघी

एक समाज-समर्पित व्यक्तित्व

श्री ईश्वरदासजी जालान के साथ मेरा सम्बन्ध लगभग चालीस वर्षों से है। सन् १९३७ ई० के उस दिन को क्या मैं कभी भूल सकता हूँ, जब प्रथम बार उनसे मिलने का संयोग हुआ था? बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर कलकत्ता आया ही था और यहाँ एम० ए० (अंग्रेजी) में पढ़ने लगा था। उस समय यहाँ राजस्थान रीसर्च सोसाइटी नाम की संस्था राजस्थानी साहित्य के शोध और प्रकाशन के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम कर रही थी। सोसाइटी के मंत्री द्वय थे—श्री रघुनाथप्रसाद सिंघानिया (स्वर्गीय) और श्री भगवतीप्रसाद सिंह बीसेन और सभापति-स्वर्गीय रामदेवजी चोखानी जो राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और कला के बड़े प्रेमी थे। चोखानीजी ने एक दिन अचानक सोसाइटी के कार्यालय में आकर हमलोगों से कहा—"विश्व-विश्रुत् विद्वान सर फ्रांसिस यंग हसबैंड कलकत्ता आये हुए हैं। उनकी राजस्थानी साहित्य में गहरी रुचि है। उनके सम्मान में मैंने राजस्थान रीसर्च सोसाइटी की ओर से एक संगोष्ठी आयोजित की है, जो कल ही होगी। सर फ्रांसिस राजस्थानी साहित्य की महत्ता और विशेषता के सम्बन्ध में जानने को उत्सुक हैं। समय तो बहुत कम है, पर मुझे विश्वास है कि भंवरमल चाहे तो वह तुरन्त राजस्थानी साहित्य पर अंग्रेजी में प्रबन्ध तैयार कर दे सकता है।" मैंने अपनी योग्यता की प्रशंसा सुन कर उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और सारी रात बैठकर प्रबन्ध लिख डाला और फौरन दूसरे ही दिन वह छप भी गया। सायंकाल जब संगोष्ठी में मैंने प्रबन्ध पढ़ा तो सर फ्रांसिस की ओर से तो प्रशंसा के शब्द सुनने को मिले ही, परन्तु दो व्यक्तियों ने प्रबन्ध पाठ के पश्चात् मुझे उत्साह एवं

प्रेरणा के जो शब्द कहे, वे सदैव अविस्मरणीय रहेंगे। दो व्यक्तियों में एक थे डा० (स्व०) सुनीतकुमार चटर्जी, दूसरे थे श्री ईश्वरदास जालान। श्री जालानजी को मेरा प्रवन्ध वहुत अच्छा लगा और विशेष कर मेरे अंग्रेजी लेखन की उन पर अच्छी छाप पड़ी। उन्होंने वहीं मेरी शिक्षा-दीक्षा आदि के वारे में बातें कीं और वाद में बराबर उनसे मिलते रहने का आग्रह किया। मारवाड़ी समाज में एक प्रकार से यहीं से मेरे सार्वजनिक जीवन की शुरूआत हुई।

दूसरे वर्ष ही मारवाड़ी छात्र-संघ का, जिसकी स्थापना में श्री ईश्वरदासजी का मुख्य हाथ था, मैं मंत्री चुन लिया गया। फिर तो उक्त संघ के कामों के सिलसिले में उनसे लगभग रोज ही मिलना होता था। उनके स्नेह और अपनत्व ने मेरा हृदय जीत लिया। अपने हर सार्वजनिक कार्य में वे दिल खोलकर मुझसे बातें करते और मेरे विचारों को महत्व देते थे। जिस दूसरी संस्था के साथ श्री ईश्वरदासजी घनिष्ठ रूप में जुड़े हुए थे, वह थी अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन, जिसकी स्थापना सन् १९३५ ई० में हुई थी। सम्मेलन की गतिविधि का केन्द्र भी मारवाड़ी छात्र-निवास ही था और सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं में अधिकांशतः मारवाड़ी छात्रसंघ के कार्यकर्त्ता ही प्रमुख थे। स्वाभाविक ही था कि मेरा भी सम्मेलन के साथ सम्बन्ध हो गया और ज्यों-ज्यों दिन वीतते गये, मैं उसमें अधिकाधिक अन्तर्भुक्त होता गया।

सन् १९३८ ई० में जव सम्मेलन का द्वितीय महाधिवेशन हुआ, तो उसमें एक ऐसी वात हो गई जिससे श्री ईश्वरदासजी के साथ मेरा मतभेद पैदा हो गया। पश्चिम बंगाल सरकार के 'व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों की छुट्टियों सम्बन्धित' विधेयक के विरुद्ध प्रस्ताव लाया गया था और भाई ईश्वरदासजी भी उस प्रस्ताव के समर्थकों में थे, परन्तु मैंने उसका विरोध किया। यद्यपि मैं सम्मेलन के मंच पर बिल्कुल नया था और समाज में मेरी कोई परिचिति नहीं थी, परन्तु वात इतनी महत्वपूर्ण वन गई कि अधिवेशन में उपस्थित हजारों लोगों ने मेरे विचारों का समर्थन किया। मंच पर बैठे बड़े-बड़े उद्योगपति और व्यवसायियों ने हजार कोशिश की कि विरोध का प्रस्ताव पास हो जाये परन्तु वैसा हुआ नहीं और अंत में यह निश्चित हुआ कि एक समिति, जिसका मैं संयोजक चुना गया, प्रस्तावित विधेयक का भलीभांति अध्ययन करे और समाज के लिये उपयोगी सम्बन्धित नीति का निर्देश दे। मेरा विचार स्वीकृत हुआ इसकी तो मुझे खुशी हुई परन्तु भाई ईश्वरदासजी के साथ मतभेद हो जाने का मन में दुख। जो हो, भाई ईश्वरदासजी ने मंच की बात मंच पर ही छोड़ दी और हम दोनों के संबंधों में जरा-सी भी खरास नहीं पैदा हुई। श्री जालानजी की इस विशेषता का यह पहला परिचय था।

सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन स्व०श्री बद्रीदासजी गोयनका के सभापतित्व में कानपुर में हुआ, उसमें मैं सम्मेलन का सहकारी प्रधानमंत्री चुन लिया गया। प्रधान मंत्री के पद पर भाई रामेश्वरलालजी नोपानी थे। हमलोगों ने सम्मेलन के कार्य को अधिक व्यापक और प्रभावकारी वनाने की दृष्टि से एक चतुर्विध योजना वनाई, लेकिन यह सारा कार्य श्री जालानजी के परामर्श और निर्देशन के अनुसार ही हुआ।

इस प्रकार से सम्मेलन में विशिष्ट भूमिका अदा करते हुए और केन्द्रीय, प्रांतीय और जिला अधिवेशनों में भाग लेते हुए, जिनमें प्रायः प्रस्ताव-लेखन का काम मेरे ही जिम्मे

आता रहा, समाज-सुधार के विषयों को लेकर पुनः कई वार श्री ईश्वरदासजी के साथ विचार-भेद के मौके आये। समन्वयवादी जालानजी और उग्रवादी मैं, और आपसी विचारों का टकराव व आलोचना, फिर भी कभी कोई झिझक नहीं, क्योंकि श्री जालानजी की ओर से मुझे यह दृढ़ विश्वास था कि वे मतभेद को मन-भेद नहीं वनाते थे।

स्वराज्य-प्राप्ति के वाद सन् १९४८ ई० में जव सम्मेलन का अधिवेशन वम्वई में हुआ, जिसके सभापति स्व० श्री व्रिजलालजी वियाणी थे, तव से अव तक सम्मेलन ने एक लम्वी यात्ना तय की है। पर्दा-प्रथा के विरुद्ध किए गये सत्याग्रह व आन्दोलन में श्री जालानजी ने प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया, किन्तु उन्होंने उसका तहेदिल से समर्थन किया। धीरे-धीरे सम्मेलन काफी प्रगतिशीलता का मंच वन गया। पर्दा और दहेज आदि सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध तो वातावरण वना ही, किन्तु विधवा-विवाह और परिवार-नियोजन आदि के पक्ष में भी सम्मेलन के मंच से आवाज उठने लगी। श्री जालानजी ने समय के अनुसार इस परिवर्तन को सहर्ष स्वीकार किया। हमलोगों को यथायोग्य नेतृत्व देते रहे।

इन चालीस वर्षों की लम्वी यात्ना के दौरान मैंने भाई ईश्वरदासजी को सार्वजनिक कार्यों में ही मुख्यतः रत देखा। वास्तव में जीवन के प्रारंभ से ही समाज-सेवा के प्रति ही उनका विशेष रुझान था। वे सुप्रसिद्ध सोलीसिटर-फर्म खेतान कम्पनी के भागीदार के रूप में वकालत का काम करते थे, परन्तु उस समय भी मैंने उनमें उपार्जनकी दृष्टि कम और समाज-सेवा की दृष्टि विशेष देखी। उनका कार्य वाद में मारवाड़ी समाज तक ही सीमित नहीं रहा। वे वड़ावाजार के क्षेत्र से कलकत्ता कारपोरेशन के काउंसिलर चुने गये और तत्पश्चात् जव देश स्वतंत्र हो गया तो पश्चिम वंगाल के राजनीतिक क्षेत्र में भी उन्होंने उल्लेखनीय भाग लिया। स्वराज्योदय के वाद वे पश्चिम वंगाल की प्रथम विधान सभा के अध्यक्ष हुए और वर्षों तक उस पद पर कार्य करते हुए उन्होंने जिस योग्यता, सच्चाई और न्याय-दृष्टि का परिचय दिया, वह कभी भुलाया नहीं जायेगा। वाद में वे पश्चिम वंगाल के कांग्रेसी मंत्रिमंडल में सम्मिलित किये गये तथा स्वायत्त शासन एवं कानून विभाग उनको दिये गये। इस पद पर भी उन्होंने काफी अच्छी सूझ-वूझ और परिश्रमशीलता के साथ कार्य किया। सवसे वड़ी वात जो उनमें थी और जिसका लोहा सभी मानते थे, वह यह थी कि उनका सार्वजनिक जीवन हर पद पर और हर स्थिति में विलकुल निश्छल और निःस्वार्थता का रहा है। न उनमें कभी सत्ता का गुमान दिखाई दिया और न किसी प्रकार की स्वार्थपरता। सत्तारूढ़ लोगों के सम्वन्ध में जितनी और जैसी कहानियां हम सुनते रहे हैं और आज भी सुनते हैं, उनको ध्यान में रखते हुए जव हम श्री ईश्वरदासजी के सम्वन्ध में सोचते हैं तो वड़ा सुखद आश्चर्य मालूम होता है। उनका चरित्र विलकुल निष्कलंक और निर्दोष रहा। उनके सादे और सरल रहन-सहन ने इस चारित्र्य के निर्वाह में वड़ी मदद की। इन चालीस वर्षों में मैंने उनका और उनके घर का जो रहन-सहन देखा है, वह सदा एक-सा ही रहा है। जव काउंसिलर और मंत्री पद पर थे तव भी वैसा ही और जव किसी पद पर नहीं थे तव भी वैसा ही। उनका दरवाजा सदैव सवके लिये खुला रहता था। किसी भी समय किसी की भी वात सुनने

और उसकी हो सके उतनी सहायता करने के लिये वे तत्पर रहते थे। इस बात ने उनके व्यक्तित्व को एक विशेष गरिमा प्रदान की।

वे बहुत अच्छा लिखते हैं, बहुत अच्छा बोलते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी पर तो उनको पूरा अधिकार है ही, पर विधान सभा में कई बार उन्होंने बंगला में भी अच्छे भाषण दिये।

वास्तव में उनको बहुत अच्छी शिक्षा-दीक्षा मिली थी। शिक्षा के साथ-साथ उनको अपने शिक्षकों और गुरुओं से जो जीवन-संस्कार मिले थे, वे भी बहुत उच्चकोटि के थे। शिक्षा और चारित्र्य के जो महान् संस्कार उनको मिले, उसी से उनका महान् व्यक्तित्व निर्मित और निर्वाहित हुआ। मारवाड़ी समाज में जन्म लेकर और व्यावसायिक क्षेत्र में रहते हुए भी उन्होंने धनोपार्जन की ओर कभी कोई आकांक्षा नहीं रखी। वे वास्तव में बौद्धिक व्यक्तित्व के धनी हैं और इस धन का उन्होंने केवल अपने लिये ही नहीं, सारे समाज के लिये, देश के लिये उपयोग किया है। अपने पुत्रों और पुत्रियों, पौत्रों और पौत्रियों आदि को भी इसी प्रकार के संस्कार दिये। आज उनका परिवार वकीलों और डाक्टरों का परिवार है। इस मामले में वे धन्य हैं और उनको पैदा करके समाज भी धन्य है।

श्री जालानजी आज तिरासियवें वर्ष में चल रहे हैं। पिछले तीन वर्षों से वे रोग-शैया पर हैं। इस विवशता के बावजूद वे देश और समाज की वर्तमान स्थिति के बारे में सोचते रहते हैं, पूछते और जानते रहते हैं और उसके लिये सुख-दुख एवं आशा-निराशा का अनुभव करते रहते हैं। मारवाड़ी समाज के सन्दर्भ में वे इस बात से गहरी पीड़ा अनुभव करते हैं कि विगत पचास वर्षों में जो और जितना कार्य किया गया, उसका जितना फल मिलना चाहिये था, उतना नहीं मिला। अभी कुछ दिनों पहले ही अपनी रोग-शैया से एक स्थानीय पत्रकार को दी गई भेंट में अपने मन का यह उद्‌गार प्रकट किया—"हम करोड़ों रुपये खर्च करते हैं, पर उन कामों में कुछ भी खर्च नहीं करना चाहते, जिनसे समाज का संगठन सुदृढ़ हो, उसकी स्थिति देश में इज्जत के साथ देखी जाये।" इस वार्धक्य और अस्वस्थता की स्थिति में भी श्री जालानजी समाज के वर्तमान का चिन्तन करते हैं और भविष्य के बारे में सोचते हैं। जिनके पास समाज के बारे में इतने अनुभव-सिद्ध विचार हैं, इतनी संवेदना का वेग है और इतनी साधना का सार है, उसका अभिनन्दन कर हम स्वयं धन्य हैं।

शिक्षा-प्रेमी, समाज-सुधारक, गो-सेवक
अ० भा० मा० सम्मेलन के उप-सभापति
श्री बजरंगलाल लाठ

अद्वितीय वक्ता, पर शान्त

श्री ईश्वरदासजी जालान से मेरा परिचय सन् १९३४-३५ ई० से है। उनके साथ रहकर काम करने का मौका मुझे मिला, जब मैं अ० भा० मा० सम्मेलन का प्रधान मंत्री

बना और वे उप-सभापति। श्री रामगोपालजी मोहता सभापति थे, लेकिन वे बिजनौर रहते थे। हिन्दू कोड बिल को लेकर कार्यकर्त्ताओं में मतभेद हो जाने से उन्होंने सभापति पद से त्यागपत्र दे दिया था। इसीलिये प्रत्यक्ष रूप से श्री जालानजी के तत्वावधान में रहकर ही मुझे कार्य करने का सुअवसर मिला। वे चतुर वक्ता हैं और अपने विचारों को कितने नाप-तोल की भाषा में श्रोताओं के दिलों में पहुँचा सकते हैं, इसकी जानकारी मुझे आज से पचास वर्ष पहले ही हो चुकी थी। जोड़ाबगान पार्क में अ० भा० अग्रवाल महासभा के अधिवेशन में सनातनी और सुधारकों के गुटों के बीच एक प्रस्ताव पर इतना विवाद चल रहा था कि अच्छे-से-अच्छे वक्ता आते, लेकिन जनता पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाते। श्री जालानजी को जब खड़ा किया गया तो उनके विद्वत्तापूर्ण एवं ओजपूर्ण भाषणों का जनता पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह प्रस्ताव बड़ी आसानी से पास हो गया।

सम्मेलनों के अधिवेशनों पर भी जालानजी के भाषणों का चामत्कारिक प्रभाव पड़ता रहा। सम्मेलन को चलाना यह श्री जालानजी के जिम्मे ही था। मंत्री या सभापति कोई भी क्यों न हो, सारी जिम्मेदारी श्री जालानजी की रहती थी। ऐड़ी से चोटी तक सम्मेलन के कार्य को उन्होंने अनेक वर्षों तक किया। पिछले तीन-चार वर्षों से स्वास्थ्य के खराब हो जाने से वे कार्य देखने में असमर्थ हो गये, फिर भी रोग-शैया पर पड़े सारी जानकारी रखते रहते हैं और उन्हें बड़ा सन्तोष है कि प्रस्तुत पदाधिकारियों की सुदक्षता में सम्मेलन फिर से समाज-सेवा में पूर्णतः रत है।

जब श्री जालानजी पुनः प० वंग विधान सभा के सदस्य सन् १९४७ ई० में निर्वाचित हुए, तब हमलोगों की बड़ी इच्छा रही कि वे मंत्री बनें। मेरे और भाई राधाकृष्णजी नेवटिया के जिम्मे पड़ा कि हमलोग तत्कालीन मुख्य मंत्री डा० प्रफुल्ल घोष से मिलें। डा० घोष ने बड़ी सहानुभूति से हमारी बातें सुनीं और प्रस्ताव किया कि इन्हें मंत्री तो नहीं, डिपुटी-स्पीकर बना लेंगे। हमलोगों ने सुझाया-बुझाया कि यदि वे स्पीकर बनाना स्वीकार करें तो बातें आगे बढ़ सकती हैं। श्री जालानजी स्पीकर बनाये गये और स्पीकर के रूप में बहुत ही सफल रहे। डा० विधानचन्द्र राय के काल में उन्होंने सफलता और जिम्मेदारी से महत्वपूर्ण मंत्री-पदों को संभाला। उनके जैसे मातबर व निष्पक्ष स्पीकर की कमी डा० राय ने महसूस की और उन्हें पुनः स्पीकर बनने का जोर दिया। लेकिन मंत्री से फिर स्पीकरशिप में जाने की बात ईश्वरदासजी को नहीं जंची। उन्होंने हम लोगों से भी राय की और हमलोगों की राय भी यही रही। श्री जालानजी ने डा० राय को वैसा ही कहा और वे मंत्री ही बने रहे।

सम्मेलन के सर्वे-सर्वा होते हुए भी उन्होंने सर्वदा कार्यकर्त्ताओं की राय को प्रधानता दी। श्री जालानजी समाज के बारे में बराबर चिन्तन करते रहे हैं। सामाजिक मामलों में या राजनीति में वे कभी क्रान्तिकारी विचारों के नहीं रहे। वे बड़े शान्तभाव से इसी का स्वप्न बराबर देखते रहे कि समाज की और देश की प्रगति पनपे, सदृढ़ हो। समाज ने श्री जालानजी को बराबर प्यार व सम्मान दिया है।

श्री जालानजी अस्वस्थ चल रहे हैं, फिर भी कार्यकर्त्ताओं को बुलाकर देश और समाज की जानकारी करते रहते हैं। भगवान श्री जालानजी को स्वस्थ करे।

समाज-सेवी, शिक्षा-प्रेमी
अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के प्रधान मंत्री
श्री नन्दकिशोर जालान

मानव-ईश्वर का वह दास

सन् ४९ या ५०, वह थी पहली-पहली मुलाकात,
स्थूलकाय गजानन गणपति की तरह विराजमान,
नाम था ईश्वरदास,
शनैः-शनैः कपाट खुलते गये, पता चलता गया,
सच ही है समाज व देश के
मानव-ईश्वर का वह दास।

श्वेत वस्त्र, श्वेत केश, श्रद्धेय पीढ़ी का अधिकारी,
लेकिन युवक, प्रौढ़ व बालकों के बीच,
आयु-विभेद, प्रौढ़-प्रगल्भता छू-मन्तर हो जाती
वह सौम्य पुरुष रह जाता केवल
मनुष्यत्व भरा मनुष्य, एक स्नेहिल मित्र।

देश का कोना-कोना, फैला हुआ समाया हुआ समाज,
उसकी क्षमता-अक्षमता, उसके अंतस की वेदना, उसकी व्यथा,
सोचा-समझा इस सौजन्यभरी मूर्ति ने,
यह शील मूर्ति बन गई उस ओर,
एक आत्मदानी, सेवाभावी, अद्वितीय आदर्श शक्ति।

पद का मान, शक्ति की सामर्थ से दूर, बहुत दूर,
सर्वदा सहयोगी, प्रेरक, पथ प्रदर्शक,
इस निष्कलंकित, निराभिमानी, निःस्वार्थ, निस्पृह,
समाज-धर्म, समाज-कर्म में नित रत विभूति को,
जिसका जैसा नाम वैसा काम,
मेरे शत-शत प्रणाम!

दक्षिण भारत के समाज के स्वातंत्र-संग्रामी, समाजसुधारक व चिन्तक
श्री रामकृष्ण धूत

बंगभूमि की श्रेष्ठ विभूतियों में

ईश्वरदास यह नाम मारवाड़ी समाज के गुणों का परिचायक हो गया है। श्री जालानजी ने मारवाड़ी समाज को ऊँचा उठाने में बड़े लम्बे अर्से तक कार्य किया है और

देश के उत्थान का जो कार्य किया है, उससे उनका नाम तो उज्ज्वल हुआ ही है, मारवाड़ी समाज की कीर्ति में भी चार चाँद लगे हैं। श्री ईश्वरदासजी ने जो निःस्वार्थ, अथक सेवा की है तथा आज भी जिस भाँति वे रात-दिन समाज के हित के लिए चिंतन, मनन करते एवम् प्रेरणा देते हैं, उसके लिये समाज उनका सदा ऋणी रहेगा।

वही धन्य संसार में जन्म उसका सार हो
निज जाति और समाज का जिससे कुछ उपकार हो।

इस कथन को श्री जालानजी ने अपने जीवन में परिपूर्ण किया है, वह भी बड़ी निर्भीकता के साथ।

कोई कहे बुरा या अच्छा, लक्ष्मी आए या जाए।
कैसा ही कोई भय दिखलाए या लालच देने आए
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा दिल कभी न डिगने पाए।

श्री भर्तृहरिजी के इस संस्कृत श्लोक का सार श्री जालानजी में पूर्णरूप से प्रकट हुआ है। इससे न केवल उनका मान बढ़ा है, अपितु उनके कारण मारवाड़ी समाज का भी आदर बढ़ा है।

पूज्य बापू के प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' की पंक्तियों के एक-एक अक्षर पर अमल करने में ईश्वरदासजी सदैव सचेष्ट रहे हैं। ऐसे व्यक्ति का अभिनन्दन कर हम न केवल अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, अपितु उनके पदचिह्नों पर चलने की भावना भी व्यक्त करते हैं।

न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गम् न चापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनामार्तिनाशनम्।

इस श्लोक को ध्यान में रखकर श्री जालानजी ने जो सामाजिक या राजनीतिक कार्य किए हैं, वे त्याग-भावना से पूर्ण हैं।

वंगभूमि ही नहीं, बंगाल की जलवायु में भी विशेषता है कि वहाँ हर वर्ग तथा हर क्षेत्र में श्रेष्ठ विभूतियाँ उत्पन्न तथा प्रकट हुई हैं, इनमें श्री ईश्वरदासजी भी एक हैं। मुझे विश्वास है समाज, खासकर मारवाड़ी बन्धु श्री जालानजी के पदचिह्नों पर चलकर न केवल अपने आपको वरन् मारवाड़ी समाज को भी समाज और देश के उत्थान में सक्रिय बनाएँगे।

मध्य भारत की राष्ट्र-कर्मी, सुप्रसिद्ध समाज-सेविका
और भूतपूर्व विधायिका
श्रीमती राधादेवी गोयनका

निष्कलंक श्रद्धेय भाईजी

समाज व राष्ट्र में नवजीवन लानेवाले मार्ग-द्रष्टा व समाज-सुधार और राष्ट्रनिर्माण के कार्यों में सतत् प्रयत्नशील श्री ईश्वरदासजी जालान के साथ अनेक स्मृतियाँ जुड़ी हैं। मारवाड़ी सम्मेलन कानपुर, अग्रवाल महासभा, नागपुर आदि अनेक सामाजिक सम्मेलनों

में मुझे उनकी सुव्यवस्थित सुदृढ़ कार्यप्रणाली देखने का और उनकी निर्भीक, सुलझी हुई विचारधारा को सुनने और समझने का सौभाग्य मिला। कई बार आपसे बातचीत करने के अवसर आये, तब मैंने श्री जालानजी के व्यक्तित्व में यह विशेषता देखी कि उठते-बैठते, खाते-पीते तथा व्यक्तिगत बातचीत में भी आपकी दृष्टि में समाज-सुधार और राष्ट्र-निर्माण की ही तस्वीर बनी रहती है।

श्री जालान अत्यंन्त मिलनसार, हँसमुख व प्रसन्नचित्त व्यक्ति हैं। आपकी सहृदयता और समाजसेवा तथा समाज-सुधार की लगन हम सबके लिए आदर्श व अनुकरणीय है। पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा, शिक्षा-प्रचार, व्यापार में सच्चाई व विकास, स्वस्थ समाज-व्यवस्था आदि अनेक विषयों पर आपके सुलझे हुए विचार और कार्य-तत्परता आज की नई पीढ़ी के लिए प्रकाश-स्तम्भ बनी रहेगी।

अनेक सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध निडरतापूर्वक संघर्ष करने तथा मारवाड़ी समाज और उस समाज की स्त्रियों में जागृति पैदा करने का स्तुत्य कार्य आपने अपने जीवन में किया है। आपकी निःस्वार्थ सेवाओं के लिए मारवाड़ी समाज ही नहीं; बल्कि संपूर्ण देश आपका सदैव आभारी रहेगा।

श्री जालानजी का कार्यक्षेत्र केवल समाज तक ही सीमित नहीं रहा। प्रारंभिक जीवन में ही डिपुटी मजिस्ट्रेट पद की नियुक्ति को अस्वीकार करनेवाले श्री ईश्वरदासजी ने लगभग ३० वर्षों तक अविभाजित बंगाल व पश्चिम बंगाल की विधान सभा के सदस्य, स्पीकर, स्वायत्त शासन मंत्री एवम् विधि मंत्री के रूप में राष्ट्र को अपनी सेवाएँ अर्पित की हैं। इस अवधि में उनका निष्कलंक व त्यागमय जीवन समाज के लिए एक उदाहरण रहा है।

श्री ईश्वरदासजी जालान अभिनन्दन समिति को मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, जो नव समाज के इस प्रणेता का जीवन-दर्शन नई पीढ़ी के सामने लाने का चिरस्थायी कार्य कर रही है। "श्रद्धेय भाईजी की सेवाएँ और कार्य अमर रहेंगे", इन्हीं शब्दों के साथ मैं परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि श्रद्धेय श्री ईश्वरदासजी जालान को वह स्वस्थ और चिरायु रखे और इनके द्वारा समाज व राष्ट्र के अनेक लोकहितकारी कार्य सदैव होते रहें।

सुप्रसिद्ध समाज-सुधारिका, महिला नेत्री
मारवाड़ी बालिका विद्यालय की मंत्रिणी
श्रीमती सुशीला सिंघी

एक अनुपम स्नेहिल व्यक्तित्व

भाई ईश्वरदासजी जालान को मैं अपने बचपन से जानती हूँ। भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत विचारोंवाले जालानजी सम्मेलन के प्राण तो हैं ही, साथ ही सारे पश्चिम बंगाल में उनकी बड़े आदर की प्रतिमा है।
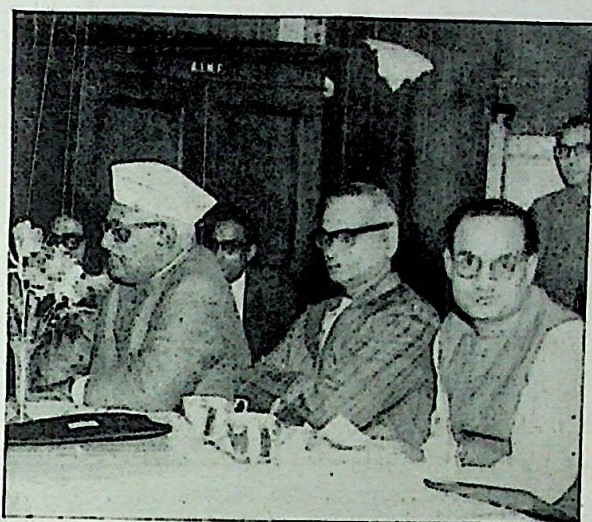
प० वंगाल में एक वृहत् सभा को सम्बोधित करते हुए बायीं ओर श्री ईश्वरदासजी जालान, बीच में श्री राधाकृष्णजी नेवटिया और दायें किनारे बैठे हैं, इस ग्रन्थ के सम्पादक व अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के प्रधान मंत्री श्री नन्दकिशोर जालान ।
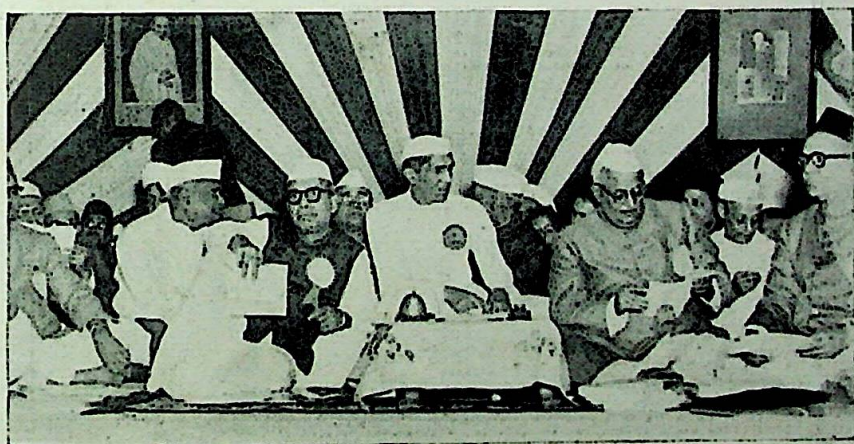
अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के अधिवेशन में बायें से सर्वश्री स्व० तुलसीरामजी सरावगी, स्व० मूलचन्दजी अग्रवाल, स्व० सेठ गोविन्ददासजी, स्व० वसन्तलालजी मुरारका (बीच में पीछे), स्व० ब्रिजलालजी बियाणी, ईश्वरदासजी जालान, स्व० दीपचन्दजी पोद्दार (पीछे), स्व० चौथमलजी सराफ ।

उत्तर प्रदेश मारवाड़ी सम्मेलन के अधिवेशन में बायें से श्री ईश्वरदासजी जालान, श्री मंगतूरामजी जैपुरिया (बीच में), राजस्थान के वरिष्ठ नेता श्री मोहनलाल सुखाड़िया एवं देश के वरिष्ठ नेता स्व० श्री श्रीप्रकाशजी

अ० भा० मा० सम्मेलन के सभापति, साहित्यिक, श्री भंवरमल सिंघी के निवास-स्थान पर दायें से श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्री ईश्वरदासजी जालान (दोनों भोजन करते हुए), श्री भंवरमलजी सिंघी, श्री गोविन्दप्रसादजी कानोड़िया, आदि

कभी धारा सभा में स्पीकर के रूप में और कभी राइटर्स बिल्डिंग में मिनिस्टर के रूप में उनसे मिलने जाते वक्त लोगों में जो बातचीत होती तो गर्व हो उठता कि हमारे समाज के, हमारे अपने जालानजी को लोग कितनी श्रद्धा करते हैं। मिनिस्ट्री और राजनीति इतनी गड़बड़ चीज है कि लोग किसी-न-किसी प्रकार का कलंक लगा ही देते हैं। जालान जी की स्थिर-गंभीर प्रतिभा सभी के लिये श्रद्धेय है। एक स्वर से लोग कहते हैं कि ऐसा आदमी बहुत कम मिलता है।

समाजिक आन्दोलनों और सम्मेलन की मीटिंगों में प्रायः मैं जोश में कुछ कह बैठती तो भी उन्हें कभी गर्म होते हुए नहीं देखा। वे बड़ी गंभीरता से करते वही थे जो उन्हें करना होता, पर बोलते कुछ नहीं। मैं हतवाक् होकर उन्हें देखती रहती।

उनका व्यवहार हम दोनों के साथ इतना स्नेहमय है कि उसे सार्वजनिक रूप से भाषा देना संभव नहीं। पर इतना अवश्य कहूँगी कि जालानजी समाज के वह वटवृक्ष हैं जिसने न जाने कितने जरूरत-मंद और थके-हारे सामाजिक कार्यों के पथिकों को अपनी छाया में आश्रय दिया और अपने प्यार के फल से तृप्त और निर्देशित किया है।

समाज में उन जैसे कितने लोग हैं? उनकी-सी निष्ठा, सादगी, हार्दिकता और उदार हृदय हममें जगे, यही कामना है। वे अपने परिवार, जिसमें हम भी सम्मिलित हैं, को अपने इस सर्वप्रिय व्यक्तित्व का एक अंश भी दे पाये हैं; यह भी उनकी एक बड़ी देन है।

समाज जिनकी चिन्ता है, विचार है, कार्य है, ऐसे समाज श्रेष्ठकर्मी को प्रणाम।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से समाज की पहली डाक्टरेट प्राप्त महिला
नाटचाभिनेत्री व नाटच-निर्देशिका
डा० (श्रीमती) प्रतिभा अग्रवाल

मार्ग-दर्शक बुजुर्ग एवं सहृदय मित्र

यद्यपि हर देश और हर काल में राज्य और राजनीति का महत्व रहा है, शासकों का बोलबाला रहा है, तथापि व्यक्तिगत निष्ठा, ईमानदारी और मानवहित की दृष्टि से इनके प्रति मन कभी भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो पाया है। लगता रहा है कि जहाँ भी व्यक्तिगत या दलगत स्वार्थ के साथ वृहत्तर स्वार्थ का द्वन्द्व होगा, वहाँ राजनीतिज्ञ या शासक पहले को अधिक महत्व देगा; उसकी खातिर आवश्यकता हुई तो वृहत्तर स्वार्थ का बलिदान कर देगा। किन्तु अपवाद सर्वत्र होते हैं। श्री ईश्वरदासजी जालान ऐसे ही एक व्यक्ति हैं जो राजनीति में रहते हुए भी उसके कल्मष से मुक्त रह सके, उसकी खातिर उन्होंने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य या वृहत्तर हित का कभी बलिदान नहीं किया। आम तौर पर हर व्यक्ति के खिलाफ कहने को कुछ रहता ही है—आर्थिक लाभ करने की उसकी दुर्बलता, स्वभावगत रुक्षता या टेढ़ापन, चारित्रिक स्खलन आदि ऐसे विषय हैं, जिनकी कसौटी पर अधिकतर लोग खरे नहीं उत्तर पाते; किन्तु ईश्वरदासजी उतरे हैं। उनके दीर्घ जीवन-काल एवं कार्यकाल में ऐसे बहुत ही कम प्रसंग आये हैं जब दूसरों ने उनके

कार्यों या उनकी नीयत की आलोचना की हो, उन पर संदेह किया हो और वे लज्जाजनक स्थिति में पड़े हों। संभवतः इसका एक कारण उनका सामाजिक कार्यों से जुड़े रहना है। राजनीति में पड़कर यदि व्यक्तिगत स्वार्थों को महत्व देने की दुर्बलता घर करती है, तो सामाजिक कार्यों में पड़ कर उनसे ऊपर उठने की प्रवृत्ति बलवतीं होती है। श्री ईश्वरदासजी ने पहले प्रकार की दुर्ब्रलता का शिकार होने से अपने-आपको बिलकुल बचाये रखा। अतः दूसरे प्रकार की उनकी शक्ति निरन्तर बढ़ती गयी। उनकी ईमानदारी, सत्य-निष्ठा, अनुशासनप्रियता, नियमितता, अपने कहे या किये काम का पूरा दायित्व लेने का साहस आदि ऐसे गुण हैं, जो उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं और जिनके कारण वे सचमुच पूज्य हैं, वंदनीय हैं।

कलकत्ता के हिन्दी रंगमंच का इतिहास तैयार करने के सिलसिले में 'विश्वमित्र' की पुरानी फाइलें देख रही थीं। सहसा नजर पड़ी २३ मई सन् १९५२ ई० के अखबार में छपे ईश्वरदासजी के दो पत्रों पर—एक जो उन्होंने विश्वमित्र के सम्पादक के नाम अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा था, दूसरा उस पत्र की प्रतिलिपि थी जो उन्होंने 'लोकमान्य' के सम्पादक को भेजी थी और जिसे 'लोकमान्य' ने प्रकाशित नहीं किया था। प्रसंग बाबूलाल राजगढ़िया के नव-विवाह का था।

लोकमान्य को लिखे गये पत्र का कुछ अंश उद्धृत है :—

"मैंने कभी भी नहीं कहा कि बड़ाबाजार के सब कर्मी पेशेवर गुंडे हैं। न यही कि एक सप्ताह में बड़ाबाजार की गंदगी दूर करना है। यह सर्वथा मिथ्या और भ्रमपूर्ण है। मैंने अपनी समझ में कोई मिथ्या आक्षेप नहीं किया। मेरा सत्य कटु अवश्य था, क्योंकि कोई समय ऐसा आ जाता है जब कि बिना कटु सत्य कहे काम नहीं चलता। आपने मेरे इलेक्शन के समय जो सहयोग दिया, उसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। किन्तु मेरी बुद्धि में यह कोई कारण नहीं कि उस कारण आप जो करें, उचित या अनुचित, मैं कुछ न बोलूं। मैं समझता हूँ कि आप इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करेंगे। मैं कांग्रेस की तरफ से खड़ा था और आप कांग्रेस के सभापति थे। उसके नाते भी आपने अपना कर्त्तव्य किया। बड़ाबाजार के सार्वजनिक जीवन में जो गंदगी आ गयी है, वह इस सार्वजनिक जीवन को ही नष्ट कर डालेगी। अतएव प्रत्येक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, विशेषकर पत्रों का कर्त्तव्य है कि वे इसको उखाड़ फेंकें। न तो मेरी कोई आतंकवाद फैलाने की इच्छा है और न कोई अभियान। कुछ क्रोध अवश्य है। इस पर भी यदि कार्यकर्त्तागण मेरे घर पर प्रदर्शन करना चाहेंगे, तो मैं उनका हृदय से स्वागत करूँगा। अंत में मेरा यही निवेदन है कि आप मानें या न मानें, मैंने जो कुछ किया है, पवित्र भावना से ही किया है। और मैं अनुरोध करूँगा कि आप भी उद्विग्न न होकर उसे इसी दृष्टि से देखें।

('विश्वमित्र'–२३ मई, १९५२)

उपर्युक्त पंक्तियों से श्री ईश्वरदासजी के चरित्र की दृढ़ता, निर्भीकता, सामाजिक जीवन को स्वच्छ बनाने की उनकी आंतरिक इच्छा तथा सत्य के मार्ग पर चलकर जो भी संकट झेलना पड़े, उसे सहर्ष झेलने की उनकी मानसिक प्रस्तुति का परिचय प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति सच्चा और ईमानदार होता है, जिसकी कथनी और करनी में अंतर नहीं होता, वही इस ढंग से अपनी बात कह सकता है। व्यक्तिगत रूप से उन्हें निकट से देखने-जानने का अवसर वहुत नहीं मिला किन्तु उनके परिवार के विभिन्न सदस्यों के माध्यम से उनकी जो मूर्ति सामने आयी, वह वड़ी आकर्षक लगी। विना किसी प्रकार का लोभ किये, जब जैसी परिस्थिति थी, उसके अनुकूल चलकर उन्होंने एक बड़े परिवार का पालन-पोषण किया, सवको शिक्षा-दीक्षा दिलवायी, उन्होंने नियम और अनुशासन के अनुकूल चलने के लिए संयमित किया। खाने-पीने आदि के समय के संवंध में प्राय: उनकी पर्ची टंग जाया करती थी, उसके अनुसार चलना सवके लिए अनिवार्य था। इतने व्यस्त जीवन के वावजूद परिवार के सवसे वड़े होने के दायित्व को उन्होंने सदा निभाया। किसकी हजामत बने काफी दिन हो गये हैं, वढ़ गयी है, किसकी पढ़ाई ठीक नहीं चल रहो है, कौन मनमानी कर रहा है, कौन अस्वस्थ है, सवकी जानकारी उन्हें रहती थी। वे उस सवंध में बराबर उचित आदेश दिया करते थे। आश्चर्य होता है यह देखकर कि साल भर से विस्तर पर पड़े होने के वावजूद घर के मुखिया वही हैं। होता वही है जो उनके मन और सिद्धान्त के अनुकूल है। घर का हर वड़ा-छोटा व्यक्ति उनका आदर करता है, उनकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य मानता है, उन्हें सुख पहुँचे, ऐसा कार्य करके संतोष प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, आज भी परिवार का कोई भी व्यक्ति कोई परेशानी आने पर या उलझन उठ खड़ी होने पर, उनसे खुल कर अपनी समस्या की चर्चा कर सकता है, उनसे निर्देश पा सकता है। उनके परिवार के सदस्यों को उनका विश्वास प्राप्त है, उन्हें परिवार का। यही कारण है कि परिवार वालों के लिये वे सदा दिशा-निर्देशन करने वाले बुजुर्ग और सहृदय मित्र दोनों रहे हैं। उनके ये गुण मुझे विशेष प्रिय रहे हैं, और मैंने इस कारण उनका सदा आदर किया है।

भूतपूर्व सांसद, सुप्रसिद्ध आयकर विधिवेत्ता

श्री वेणीशंकर शर्मा

यादों के झरोखे से

'बात शायद १९२८ ई० की है। भागलपुर से बी० ए० पास कर मैंने कलकत्ता के मारवाड़ी छात्रनिवास में डेरा डाला था और 'ला' पढ़ने लगा था। सार्वजनिक कार्यों से भी थोड़ा परिचित होने लगा था।

हिन्दी नाटच परिषद् द्वारा आमन्त्रित अलफ्रेड थियेटर में समाजसेवकों द्वारा अभिनीत एक नाटक देखने गया तो गेट पर मिले दिव्य ललाट, आकर्षक व्यक्तित्व, हाफ पैन्ट और शर्ट की स्काउट-ड्रेस में स्थूल शरीर ईश्वरदासजी जालान। उनसे परिचय हुआ, वे हंस रहे थे जैसे वर्षों के साथी हों। प्रथम दिन के उस हंसते हुए चेहरे को मैं आज भी नहीं भूल पाया हूँ।

भोजनोपरान्त हम लोग छात्र-निवास में जुटते और घंटों गप्पें चलतीं। आयु की असमानता का अन्तर छिप जाता और हमलोगों में हमउम्र दोस्तों की तरह वातें होतीं। अगले वर्ष ही उन्हें छात्र-निवास का प्रधान सचिव बना दिया गया।

धीरे-धीरे हमारी चर्चा का विषय मारवाड़ी समाज की उच्च शिक्षा-दीक्षा पर काफी केन्द्रित हो गया। समाज में इने गिने ग्रेजुएट या वकील थे, डाक्टर या इंजीनियर तो कोई नहीं। इस कमी को पूरी करने के लिए छात्रसंघ की स्थापना की योजना बनी और १९१३ ई० में स्व० सर वद्रीदास गोयनका के सभापतित्व में वह स्थापित भी हो गया।

यद्यपि मंत्री मैं था और ईश्वरदासजी ने कोई पद नहीं लिया था, लेकिन छात्रसंघ के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े आयोजनों में उनकी प्रेरणा और उनका सक्रिय सहयोग सर्वोपरि था। इसके विशाल वार्षिक समारोह में समाज के बी० ए०, एम० ए०, डाक्टर आदि सफल छात्रों को सम्मानित कर उच्च शिक्षा के प्रति सारे समाज को प्रेरित किया जाता था। ये समारोह काफी लोकप्रिय होते थे, लेकिन इनके पीछे प्रेरणा और सक्रिय सहयोग ईश्वर-दासजी का होता था।

ईश्वरदासजी के लिए लिखना मारवाड़ी समाज के पिछले पचास वर्ष के इतिहास को लिखना है। फिर भी इस संवंध में कुछ खास घटनाओं को दिये वगैर मन नहीं मानता।

कलकत्ता में वहुत पहले से ही पुरानी परम्पराओं और मान्यताओं से चिपके रहने वाला सनातनी दल और उनको आमूल उखाड़ कर समाज को नवीन रूप देना चाहने वाला सुधारक दल था। हिन्दी दैनिक 'भारतमित्र' और 'विश्वमित्र' क्रमशः इन दोनों के अलग-अलग पोषक और प्रचारक थे और इनमें खूब चों-चों हुआ करती थी। वाद में 'भारतमित्र' का स्थान 'सन्मार्ग' ने ले लिया। लेकिन महाशय ईश्वरदास जी (याद नहीं मैंने कव से इस विशेषण से उनको संवोधित करना प्रारम्भ किया है) दोनों दलों में से किसी का पूरा साथ नहीं देते थे। उच्च शिक्षित एवं उच्च विचारों के होते हुए भी वे मध्यममार्गी थे। मेरे ध्यान में उनकी मान्यता थी कि समाज में शीघ्र से शीघ्र स्त्री और पुरुषों दोनों में ही शिक्षा का व्यापक प्रचार हो, जिससे स्वयमेव समाज अच्छी वातें ग्रहण कर लेगा और आन्दोलनों की आवश्यकता नहीं होगी। मेरे विचार, स्व० चौथमल सराफ और स्व० मदनगोपाल पोद्दार से इस विषय के, उनसे मिलते-जुलते थे। उनके नेतृत्व में मारवाड़ी छात्रसंघ के माध्यम से हमलोग इस उद्देश्य को काफी सफलतापूर्वक आगे बढ़ा पाये। अपने विचारों के प्रसार के लिए एक त्रैमासिक पत्रिका 'मारवाड़ी' का प्रकाशन भी मेरे सम्पादन में प्रारम्भ किया गया, लेकिन उस विचार के भी प्रणेता थे—ईश्वरदासजी।

सन् १९३५ के राजनैतिक सुधारों की घोषणा में देखा गया कि राजपूताने के प्रवासी भाइयों को मौलिक आधारभूत मतदान से ही वंचित कर दिया गया है। महाशय ईश्वरदास सबसे पहले व्यक्ति थे जो इससे वहुत चिन्तित हुए। चपकनिया पार्टी और सुधारक दल के ३६ के संवंध के कारण एक साथ वैठकर विचार-विमर्श कर सकने की स्थिति नहीं बन पा रही थी कि महाशय ईश्वरदास के प्रयत्नों से दोनों पार्टियाँ इस प्रश्न को एक साथ सुलझाने में समर्थ हुईं। वाद में स्व० रामदेवजी चोखानी के प्रयत्नों और इनके प्रयत्नों से अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य था समाजकी सर्वांगीण उन्नति और जिसमें समाजसुधार के विषयों को एक बार अलग कर दिया गया था। फलस्वरूप दोनों ही दल इस मंच पर एकत्रित हुए और महाशय ईश्वर-

दासजी के प्रयत्नों से यह संस्था चल निकली और फिर तो सुदूर प्रान्तों के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं जैसे स्वर्गीय ब्रिजलाल जी बियाणी, जो राजनैतिक आकाश के देदीप्यमान नक्षत्र थे और जिनसे मेरी प्रथम मुलाकात त्रिपुरा कांग्रेस में हुई थी, सर पद्मपत सिंहानिया, स्व० आनन्दीलाल पोद्दार आदि ने भी इसे अपना पूर्ण समर्थन दिया।

द्वितीय महायुद्ध के वाद क्षीण प्राण दोनों दलों के लिए एकमात्र सम्मेलन का प्लेटफार्म ही वच गया था। उनकी अन्य सभी संस्थायें निष्क्रिय थीं। स्व० बसन्तलाल जी मुरारका चाहते थे कि काफी विवादग्रस्त जैसे विधवा विवाह आदि को छोड़ कर पर्दा-प्रथा, मृतक विरादरी भोज, फिजूल खर्ची आदि विषय सम्मेलन को उठाने चाहिए। लेकिन स्व० वैजनाथजी वजोरिया के नेतृत्व का दल इन छोटे-मोटे सुधारों का भी घोर विरोधी था। धीरे-धीरे सुधारक दल का सम्मेलन में प्रवेश होता गया और इन सभी विषयों को उसने काफी सुदृढ़ता के साथ लिया। आज तो न वह राम है और न वह अयोध्या ही। सनातनियों की भी दूसरी और तीसरी पीढ़ी इन विषयों में सुधारकों से पीछे नहीं है और कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है।

चूंकि ईश्वरदासजी ही सम्मेलन थे और सम्मेलन ईश्वरदास, इसलिए मैंने सम्मेलन की इतनी चर्चा कर दी। ईश्वरदासजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे वृद्धों में वृद्ध, युवकों में युवक और वच्चों में बच्चे वन जाते हैं। सन् १९४६ ई० में हिन्दू-मुस्लिम दंगों के कारण वे परिवार को मुजफ्फरपुर छोड़कर लौटे तो मेरी कुटिया में आ पहुँचे। ब्राह्मणी साग-सत्तू तैयार करती, उसे वड़ी प्रसन्नता से ग्रहण करते। जब तक मैं सोने के लिए नहीं जाता, वे मेरा इन्तजार करते और इस बीच पास-पड़ोस के बच्चोंके साथ खेलते रहते।

आपकी अनुशासन-प्रियता की भी मैं क्या दाद दूं! 'मारवाड़ी' का संपादन करते समय महाशयजी ने मेरे अनुरोध पर एक लेख भेजा और मैंने उसे दो-बार उनसे ठीक करवाने के उपरांत भी उन्हें लौटा दिया कि इसमें कुछ और पालिश की दरकार है। तीसरी बार वे लेख के साथ खुद आये और मेरी जागरूकता के लिए मेरी पीठ ठोंकी।

संघर्ष से दूर रहनेवाले तथा भीड़ में घुसकर तमाशा न देखने की आदतवाले महाशय ईश्वरदासजीने यह महसूस किया कि उन्हें राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए ही। उधर यारों ने भी एक तरह से धक्का देकर उन्हें एसेम्वली में पहुँचा दिया। न कभी जेल गये, न सत्याग्रह आन्दोलनों में भाग लिया, फिर भी मौलाना आजाद से हमारा डेपुटेशन मिला और लड़-झगड़ कर हमने उन्हें कांग्रेस का टिकट दिलवा दिया। बाद में तो उन्होंने एसेम्वली में अपनी वक्तृता, सजगता आदि का ऐसा सिक्का जमाया कि वे स्पीकर चुन लिए गये और उसके बाद उन्हें मंत्रिमण्डल में भी काफी महत्वपूर्ण पद मिला। उन्होंने जिस जिम्मेदारी और गरिमा से अपने पदों का संचालन किया, वह इतिहास की बात है।

स्व० मूलचन्दजी अग्रवाल ने 'विश्वमित्र' के एक संपादकीय में हम दोनों की बड़ी व्यंग्यात्मक चर्चा की थी।

कहाँ तक लिखें, क्या लिखें; कुछ समझ में नहीं आता।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, कलकत्ता कारपोरेशन के भूतपूर्व उप-मेयर

श्री किशोरीलाल ढांढनिया

मित्र, दार्शनिक व सलाहकार

लम्बे अरसे से श्री ईश्वरदास जी जालान से परिचित हूँ, लगभग ४० वर्षों से। सक्रिय राजनैतिक और सामाजिक जीवन में उनके साथ सम्बद्ध रहने के कारण मुझे प्रसन्नता है कि मुझे उनके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदन करने का अवसर अभिनन्दन समिति के कारण उपलब्ध हुआ है।

श्री ईश्वरदास जालान स्वयं में एक संस्था रहे हैं और उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने विभिन्न तरीकों से देश की सेवा करने का अवसर उन्हें प्रदान किया है। देशवासियों के लिए उनका पथ अनुकरणीय है।

श्री ईश्वरदास जालान एक मध्यवर्गीय परिवार में उत्पन्न हुए। अपने प्रयत्नों, बुद्धि कौशल और कठोर परिश्रम से वे जीवन में उन्नति के शिखर पर पहुँचे।

अपने जीवन के प्रातःकाल में ही एक सफल विधिवेत्ता के रूप में वे उभरे, उन्होंने शीघ्र ही अपनी रुचियाँ अनेक क्षेत्रों में फैला लीं। अपेक्षाकृत युवाकाल में ही वे राजनीति में प्रवेश कर गए। स्वाधीनता से पूर्व की विधानसभा में वे प्रभावशाली वक्ता के रूप में उभरे। मुस्लिमलीगी मंत्रिमण्डल की नीतियों और रीतियों पर उन्होंने अपनी अनुपम वक्तृताओं में जो आक्षेप किए और मन्त्रिमण्डल के कुछ प्रमुख सदस्यों के 'प्रिटोरिया हाउस गुट' से जो सम्बन्ध उजागर किए, उन भाषणों को जिन सौभाग्यशाली व्यक्तियों ने सुना, वे उन्हें हमेशा याद रखेंगे।

वास्तव में वे श्रेष्ठ वक्ता थे और विश्वास के साथ हिन्दी की भाँति ही अँग्रेजी और बंगला में भी धाराप्रवाह बोल सकते थे। अपने तथ्ययुक्त भाषणों से, जिसमें हास्य-व्यंग्य की छटा भी रहती थी, वे श्रोताओं को मुग्ध कर लेते थे।

यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि उनकी बौद्धिक श्रेष्ठता और राजनैतिक पवित्रता को स्वाधीनता के प्रारंभिक दिनों में ही पश्चिम बंगाल के वरिष्ठ नेता डा० बी० सी० राय ने पहचान लिया और उन्हें अपने मन्त्रिमण्डल में ले लिया, इसके पहले वे पश्चिम बंगाल विधान सभा के अध्यक्ष थे। अपने द्वारा सुशासन और स्वाधीनता के क्षेत्र में प्रदत्त नेतृत्व और दिए गए कार्यों को निष्पक्षतापूर्वक सम्पन्न करने के कारण दोनों पदों को उन्होंने गौरवान्वित किया और सभी क्षेत्रों से अकुण्ठ प्रशंसा प्राप्त की।

उनकी गतिविधियाँ राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहीं, उन्होंने सभी अच्छे कार्यों के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कीं और जो उनसे उपकृत हुए, वे उन्हें सदा स्मरण रखेंगे। कलकत्ता के मारवाड़ी समाज के वे एक अग्रणी सदस्य रहे हैं और सब उनका सम्मान करते हैं।

ईश्वरदासजी नम्र और मधुर तथा शिष्ट आचार के व्यक्ति हैं। वे एक अच्छे मित्र, दार्शनिक और सलाह माँगनेवालों के लिए अच्छे पथ-प्रदर्शक हैं। चाहे राइटर्स बिल्डिंग हो या विधानसभा-भवन या उनका घर, उनका दरवाजा हर व्यक्ति के लिए

हर समय खुला रहता था और उनके मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए वे सच्चे मन से प्रयत्नशील रहे हैं।

यद्यपि आज ८३ वर्ष की परिपक्व आयु में अस्वस्थता के कारण वे उतने कार्यक्षम नहीं हैं, फिर भी हर अच्छे कार्य के लिए और मित्रों के लिए, जिनके कि वे हमेशा विश्वास-भाजन रहे, वे आज भी शक्ति के स्रोत हैं।

मैं उनके सभी मित्रों और प्रशंसकों के साथ उनके बौद्धिक और हार्दिक गुणों के प्रति श्रद्धानत हूँ और मेरी यह कामना है कि आगामी अनेक वर्षों तक हमारे बीच रहकर वे सदुपयोगी मार्गदर्शन बने रहें।

अ० भा० माहेश्वरी महासभा के अध्यक्ष

सुप्रसिद्ध उद्योगपति व समाजसेवी

श्री लक्ष्मीनारायण राठी

योगी पुरुष

१९३६ के लगभग पूना की राजस्थानी संघ संस्था अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन से संलग्न हुई, उसी समय से श्रद्धेय ईश्वरदासजी के बारे में जानकारी मिलती रही, उनके लेख भी बारबार पढ़ने का अवसर मिलता रहा है। समाज-सुधार के बारे में उनकी लगन अति प्रेरणास्पद रही है और उसी प्रेरणा के कारण ही पूना में अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन का अधिवेशन १९६७ में सम्पन्न हुआ। यह अधिवेशन सब दृष्टि से अपूर्व व ऐतिहासिक रहा। तीनों दिन लगभग हजारों की उपस्थिति रही। महाराष्ट्र एवं राजस्थान के मुख्यमंत्री भी उपस्थित थे। श्रद्धेय ईश्वरदासजी स्वयं उपस्थित थे। वे उस वक्त बंगाल के कानून मंत्री थे। उनका भाषण अधिवेशन में सबके हृदय को अत्यंत प्रेरणास्पद रहा।

श्रद्धेय ईश्वरदासजी से कलकत्ता में मैं जब आया, मिलने का सौभाग्य मिला। मारवाड़ी सम्मेलन के बारे में वे अत्यधिक चिन्तित रहे हैं। सम्मेलन का अस्तित्व सदैव बना रहे, उनकी हृदय की इस तड़प से मैं बराबर सहमत रहा हूँ।

श्रद्धेय ईश्वरदासजी समाज के एक योगी पुरुष हैं। उनके विचार हृदय में तड़प पैदा करनेवाले और समाज-सुधार में प्रेरणास्पद हैं। वे सदा अधिकार, प्रतिष्ठा, सत्कार को कल्याण में बाधक समझते हैं, जो अनुकरणीय आदर्श है। पराये दुःखों को देखकर उनका हृदय पसीजता है। सेवा करना एवं उनके सुख की कामना करना यही उनका सदा लक्ष्य रहा है। मैं उनके दीर्घायु जीवन की परमपिता भगवान से हृदय से प्रार्थना करता हूँ।

वे हमारे समाज के ही नहीं, किन्तु सभी मानवजाति के एक आदर्श सन्त हैं।

पश्चिम बंग के भूतपूर्व राज्यमंत्री, समाज-सेवी

श्री रामकृष्ण सरावगी

राजनैतिक क्षेत्र के अजातशत्रु

आजादी के उपरान्त सन् १९४७ में डा० प्रफुल्ल चन्द्र घोष पश्चिम बंगाल में जब अपना प्रथम कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल गठित कर रहे थे, तब उन्हें महात्मा गाँधी का एक पत्र मिला था। पत्र की भाषा इस प्रकार थी :—

"सरदार ने एक सन्देश भेजा है कि आपके मन्त्रिमण्डल में एक मारवाड़ी को स्थान मिलना चाहिए। बद्रीदास गोयनका अथवा देवीप्रसाद खेतान। मुझे लगता है कि ऐसा करना ठीक रहेगा और नहीं करना गलत।" ('With Dr. B.C. Ray'—by Saroj Chakravorty. Page 344)।

आन्तरिक कारणों से डा० घोष ने महात्मा गाँधी के सुझाव को स्वीकार नहीं किया। न सर बद्रीदासजी गोयनका ही मन्त्रिमण्डल में आ सके और न श्री देवीप्रसादजी ही। किन्तु बंगाल के राजनैतिक इतिहास में प्रथम बार मारवाड़ी समाज का एक व्यक्ति मन्त्री-पद से ऊपर विधान सभा अध्यक्ष पद पर आसीन हुआ और वे थे श्री ईश्वरदास जालान।

अढ़ाई दशक बाद जब मैंने डा० घोष से इस बारे में जिज्ञासा की, तो उन्होंने कहा था—"मैं श्री गोयनका या श्री खेतान की योग्यता के सम्बन्ध में निश्चिन्त था; किन्तु, दोनों ही या तो स्वयं उद्योगपति थे या उनसे निकट सम्पर्क के थे। मैं चाहता था कि ऐसा व्यक्ति उभरे जो योग्यता के साथ-साथ जनसाधारण में से हो। जो आम लोगों के साथ रहे और मिले। और इसीलिए मैंने ईश्वरदास जालान को स्पीकर-पद के लिए चुना। मुझे आज भी गर्व है कि मेरा चुनाव गलत नहीं था।"

विधान सभा से स्पीकर, स्पीकर से मन्त्री, और मंत्रित्व भी साल-छः महीनों का नहीं, पूरे पन्द्रह वर्षों तक और वह भी क्रान्ति एवं स्वतन्त्र विचारों की भूमि बंगाल की राजनीति में। किन्तु श्री ईश्वरदासजी सदा सबके प्रिय रहे, सबके अपने बने रहे और सबसे बड़ी बात तो यह कि जिस स्थिति में स्पीकर-मन्त्री बने थे, उसी स्थिति में ही बने रहे। राजनैतिक क्षेत्र में उन्हें अजातशत्रु माना गया।

किन्तु अजातशत्रु का भी विरोध होता है और जालानजी के अन्तिम चुनाव १९६७ में जब कुछ विरोधियों ने नारा उठाया था कि 'ईश्वरदासजी ने क्या किया' तो जालानजी ने उत्तर दिया था कि 'भाई ठीक ही पूछते हो कि मैंने क्या किया। न कोई जूट मिल बनाई, न काटन मिल; न घर बनाया, न मकान। जिस घर में रहता था, आज भी उसी में रहता हूँ, जिस खाट पर सोता था, उसी पर सोता हूँ। बनिये का बेटा, कुछ करने लायक होता, तो बीस वर्षों के स्पीकर-मंत्रित्वकाल में एक-आध जूट मिल, काटन मिल न खड़ी कर लेता।

माकूल उत्तर था, पर मन की व्यथा उभरी थी। वे जीते उस चुनाव में भी, पर मन जैसे टूट गया था। अर्थ-प्रधान समाज ने उनके कृतित्व को अर्थ से तौला, चरित्र और राजनैतिक उपलब्धियों से नहीं।

भारत सरकार के रक्षामंत्री, श्री जगजीवन राम के साथ
श्री ईश्वरदास जालान
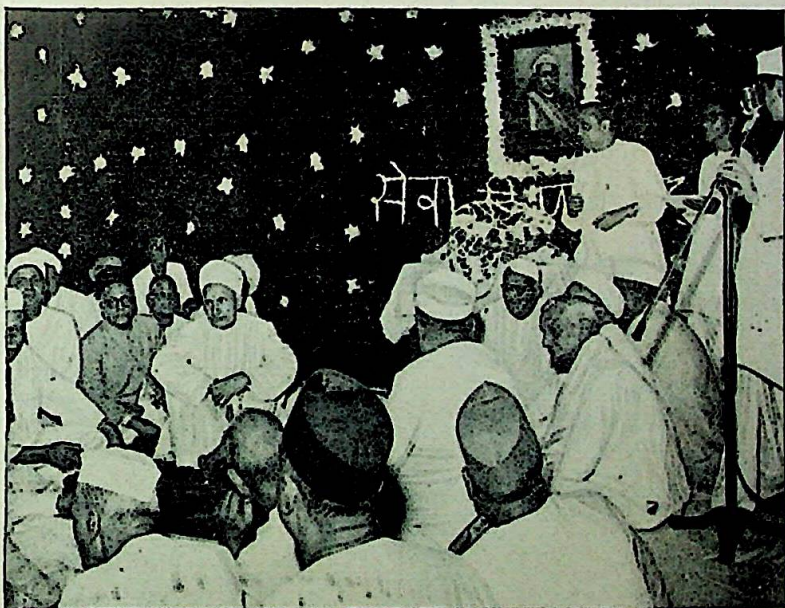
स्व० रामदेवजी चोखानी सम्बन्धी सभा में चित्र के बगल में श्री बजरंगलाल लाठ, पास में बैठे हुए ईश्वरदासजी एवं बाईं ओर से बैठे हुए सर्वश्री स्व० छोटेलालजी कानोड़िया, मंगतूरामजी जैपुरिया, स्व० ओंकारमलजी सराफ, स्व० जुगलकिशोर जी बिड़ला एवं पीछे पीठ किए हुए सीतारामजी सेकसरिया

बड़ाबाजार पुस्तकालय की हीरक-जयन्ती
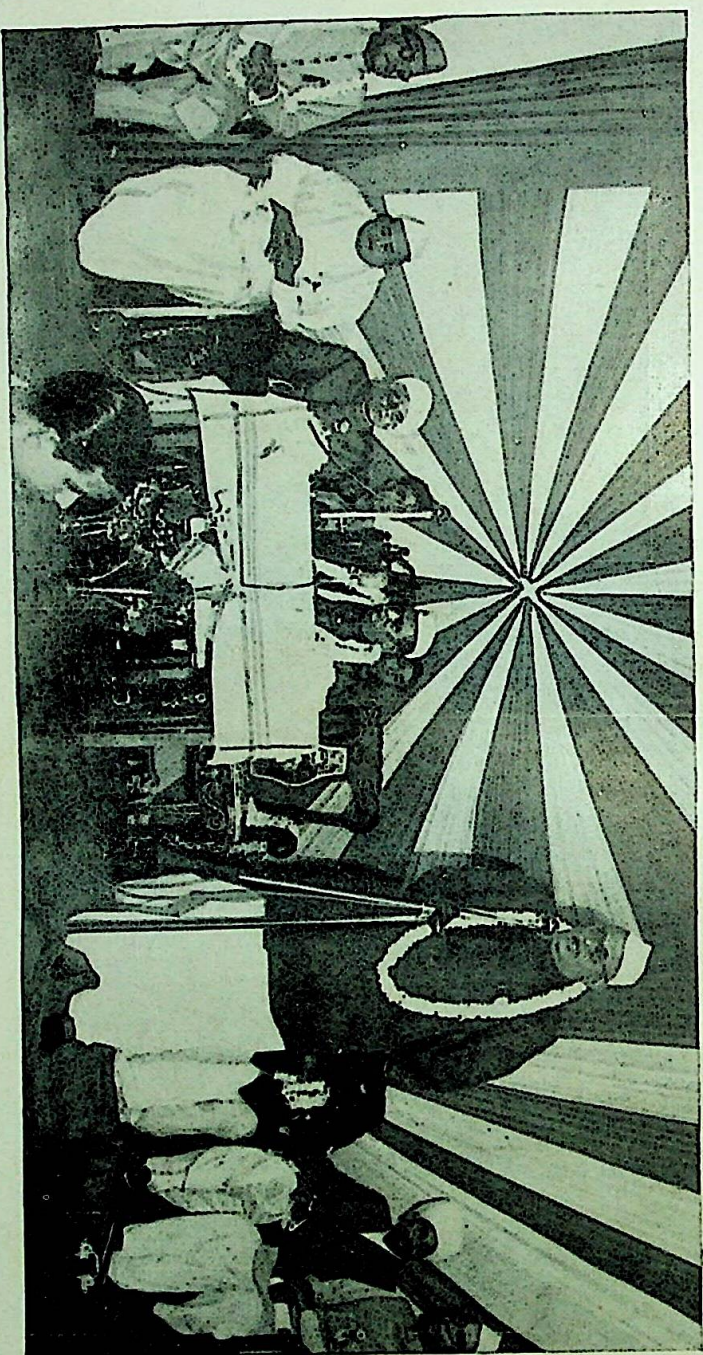
प्रथम पंक्ति में सर्वश्री : स्व० कालीप्रसाद खेतान, स्व० मूलचन्दजी अग्रवाल, स्व० (सर) बद्रीदासजी गोयनका, स्व० राजेन्द्र प्रसाद (भारत के राष्ट्रपति), भाषण देते हुए ईश्वरदासजी जालान, स्व० सोहनलालजी दूगड़, स्व० नटवरजी

मेरे जीवन का यह परम सौभाग्य रहा कि मुझे अपने राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में श्री ईश्वरदासजी का सान्निध्य एवं मार्गदर्शन सदा प्राप्त होता रहा।

वे शतायु हों, ईश्वर से यही कामना है।

काले हीरे के सुप्रसिद्ध उद्योगपति

श्री ओंकारमल अग्रवाल

मिलनसार सुहृद

श्री ईश्वरदासजी जालान से संबंधित अनेक स्मृतियाँ मेरे पास हैं, जिनमें से एक संस्मरण मैं नीचे लिख रहा हूँ—गर्मी के दिन थे। मैं सुबह ६ बजे कोलियरी चला गया था। करीब ११ बजे मुझे फोन मिला कि श्री ईश्वरदासजी तीन-चार आदमियों के साथ वराकर मेरे घर पर पधारे हैं तथा आज बराकर में ही ठहरने का विचार है। मैंने फोन पर स्पष्ट निर्देश दिया कि उनके खाने-पीने का इन्तजाम करके मेरे एयर कण्डीशण्ड कमरे में मेरी पलंग पर उनके सोने की व्यवस्था की जाय। जब ११-३० बजे मैं घर आया तो देखा कि वे दूसरे अन्य सबों के साथ कमरे में पलंग पर आराम कर रहे हैं और मेरी पलंग खाली पड़ी है। जब मैंने उनसे पूछा कि आपने मेरी पलंग इस्तेमाल क्यों नहीं किया, तो उन्होंने कहा कि यह आपके लिए है, आप बाहर से थके-मांदे लौटे हैं, इस विस्तर की जरूरत मुझ से ज्यादा आपको है। मेरे बहुत आग्रह करने पर भी उन्होंने मेरी पलंग का इस्तेमाल नहीं किया।

श्री ईश्वरदासजी की दानशीलता, परोपकारिता एवं अध्यवसायी तथा सादगीपूर्ण समाजसेवी व्यक्तित्व अपने समाज में मैंने दूसरा नहीं पाया। उनके गुणों की चर्चा के लिये तो पूरा ग्रंथ चाहिये। समाज एवम् देश-हितार्थ उनकी दीर्घायु की कामना करता हूँ।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति

श्री किशनलाल पोद्दार

सादगीपूर्ण व्यक्तित्व

भाई श्री ईश्वरदासजी से मेरा परिचय बहुत पुराना है। पुराना भी पड़ गया, क्योंकि इधर बहुत समय से उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। श्री जालानजी के पिताजी मुजफ्फरपुर में रहते थे और वहाँ के बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति एवं समाज-सुधारकों में थे। श्री ईश्वरदासजी ने अपने पिताजी के चरण-चिह्नों पर चलकर कलकत्ता में आकर बहुत उन्नति की और इसका प्रमाण यह है कि पश्चिम बंगाल की कांग्रेस सरकार में स्पीकर के पद को एक मारवाड़ी भाई श्री ईश्वरदासजी को सुशोभित करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने मारवाड़ी समाज को भी बहुत प्रशंसनीय सेवायें प्रदान कीं और सदा यशस्वी रहे। उनकी योग्यता उन तक ही सीमित नहीं रही। भगवत् कृपा से उनके सुपुत्रों ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की।

मुझे सन् १९२० में उनके साथ हरिद्वार से मसूरी जाने का तथा कुछ दिन साथ रहने का भी सुअवसर मिला था। उनसे इसके बाद भी कई बार मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। वे बहुत मिलनसार तथा प्रेमी व्यक्ति हैं। मैं उनके स्वास्थ्य एवं यशस्वी दीर्घ जीवन के लिये प्रभु से प्रार्थना करता हूँ। वे हमें यावज्जीवन शुभ प्रेरणा देते आये हैं, ऐसे ही देते रहें तथा उनके पुत्र भी समाज की सेवा करके अपने पिता के चरण चिह्नों पर चलकर अपनी योग्यता का परिचय देते हुए यशस्वी बनें।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति, कला-प्रेमी

श्री माधोदास मूँधड़ा

लोक-सेवक

श्री ईश्वरदासजी जालान भारत वर्ष की उस पुरानी पीढ़ी के एक योग्य स्तम्भ हैं, जिन्होंने देश के स्वातंत्र्य-संघर्ष में सक्रिय सहयोग दिया है। बड़ाबाजार अंचल की सामाजिक, शैक्षणिक व राजनीतिक जागृति में आपने भरपूर सहयोग दिया है। राज-नीति व पद आपके लिए सदा लोक-सेवा के माध्यम रहे हैं।

आप सबको हमेशा सुलभ रहे हैं। कोई भी व्यक्ति आपसे कहीं भी सदा बे-झिझक मिलकर अपनी बात कह सकता है। जालानजी सरल हैं, सादगी में विश्वास रखते हैं। आडम्बर व शान-शौकत से दूर रहकर आपने जो त्यागमय आदर्श रखा है, वह हमारे लिए प्रेरक, उत्साहवर्द्धक एवं पथ-प्रदर्शक है।

सुप्रसिद्ध व्यवसायी

श्री शिवभगवान गोयनका

मानवीय गुणों से परिपूर्ण

श्री ईश्वरदासजी जालान कर्मठ, मिलनसार एवं सच्चे अर्थ में मानवीय गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति हैं। उन्होंने जो भी सार्वजनिक कार्य किया, उस पर उनकी विशेषता परिलक्षित है। श्री ईश्वरदासजी ने समाज एवं राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय कार्य किया। उनकी कार्यकुशलता, लगन एवं निष्ठा सर्वविदित है। आपके सभी कार्य जनसेवा व समाज-सेवा से प्रेरित होते थे। प्रतिदान एवं प्रतिफल की इच्छा आपके मन में कभी नहीं रही। आपका जीवन सरल एवं सादगीपूर्ण रहा।

इन्हीं गुणों के कारण हिन्दी भाषी होते हुए भी, आपको पश्चिम बंगाल की राजनीति में शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ।

पश्चिम बंगाल की विधान सभा के अध्यक्ष (स्पीकर) पद को आपने अपनी दक्षता एवं प्रवीणता के कारण सफलतापूर्वक संभाला एवं सभी दलों के प्रशंसापात्र बने। जब आप बंगाल सरकार के न्याय मंत्री थे, तब आपने अनेक उपयुक्त एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को 'जस्टिस आफ पीस' बनाकर उत्साहित किया।

आप समाज के एक सुदृढ़ स्तम्भ के रूप में रहे, अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन का कार्य तत्परता एवं लगन के साथ वर्षों तक किया। श्री जालानजी के लगन एवं परिश्रम की एक घटना मुझे याद आ रही है। आसनसोल में अनेक वर्ष पूर्व मारवाड़ी सम्मेलन की एक बड़ी सभा हुई। उसमें उनकी प्रेरणा से मारवाड़ी शिक्षा कोष की स्थापना हुई। इस कोष की वृद्धि के लिए आप अपने व्यस्त जीवन में से समय निकाल कर अनेक सज्जनों के पास गये और सफलता प्राप्त की। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक नये ट्रस्ट की स्थापना की गई और जालानजी अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते रहे। इस कोष द्वारा समाज के अनेक छात्र लाभान्वित हो रहे हैं।

आज के युग में इनके सरीखे अन्य व्यक्ति समाज में बहुत खोजने पर मिलते हैं। श्री जालान का जीवन सच्चे अर्थों में सार्थक रहा है। वे दूसरों के लिए जीये। उन्होंने समाज और देश की निःस्वार्थ भाव से सेवा की है।

महाराष्ट्र के राज्यमंत्री, सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक

श्री जमनलाल गोइनका

समाज के गौरव

आदरणीय श्री ईश्वरदासजी जालान से मेरा संबंध बहुत निकट का तो नहीं रहा। मैं उनसे केवल कुछ बार मिला हूँ। परन्तु मैंने जो उनके बारे में पढ़ा है एवम् सुना है, उससे एक बात निश्चित है कि समस्त समाज को उन पर गौरव होना स्वाभाविक है। उन्होंने सामाजिक एवं राजकीय क्षेत्र में जो सेवा की है, वह सारे समाज के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय है। उनके जीवन से समाज के नवयुवकों को प्रेरणा एवं स्फूर्ति मिलती रहेगी।

मैं ईश्वर से उनके दीर्घायु और स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।

प्रधान मंत्री : पू० प्र० मारवाड़ी सम्मेलन, समाजसेवी

श्री बिहारीलाल लोहिया

स्वयंसिद्ध संस्था

कुछ व्यक्ति स्वयं में एक संस्था होते हैं। उनके निजी कार्य भी जनहिताय प्रतीत होते हैं। जीवनक्रम जैसे अपना न होकर समाज के लिए हो जाता है। ऐसे ही विरल पुरुषार्थी पुरुषों में हैं श्री ईश्वरदासजी जालान। श्री जालानजी ने अपने विगत जीवन में जो कुछ भी स्वयं के लिए किया, शिक्षा-दीक्षा, मंतव्य-वक्तव्य, आचार-विचार आदि, वह स्वतः समाज एवं देशहित के लिए हो गया। आज भी आप अपनी प्रौढ़ अवस्था में समाज के लिए चिन्तन करते नहीं थकते।

श्री ईश्वरदासजी से मेरा प्रथम परिचय सन् १९५५ में हुआ। मध्यप्रदेश के वित्त मंत्री स्व० ब्रिजलाल बियाणी ने मुझे आकोला से अ० प्रा० मा० सम्मेलन के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये बुला लिया था। मैं कार्यक्रम के अनुसार कलकत्ता पहुँचा।

फिर कलकत्ता से तिनसुकिया तक श्री जालानजी का साथ रहा, जो मेरे जीवन का उनके साथ निकटतम सम्बन्ध बन गया। अधिवेशन के पश्चात् असम के विभिन्न क्षेत्रों में दौरे के कार्यक्रम में मैंने देखा कि श्री जालानजी के अन्तर में सामाजिक कुरीतियों से ग्रसित समाज के लिए पीड़ा थी। अभी हाल ही में पिछले वर्ष उनके कलकत्ता स्थित निवास पर मैं उनसे मिला था। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दिनों से लेकर अब तक मारवाड़ी समाज ने जो प्रगति की है, उस पर संतोष व्यक्त करते हुए आपने कहा, "मैं भविष्य के प्रति आशावान हूँ।"

श्री ईश्वरदासजी जालान का जीवन महत्वाकांक्षाओं का, पुरुषार्थ और त्याग का आदर्श है। आपकी महत्वाकांक्षाओं ने आपको जहाँ अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के संस्थापकों में अग्रणी रखा, वहीं आपने तीन दशकों तक बंगाल व पश्चिम बंगाल के विधान सभा के सदस्य, स्पीकर, स्वायत्तशासन मंत्री एवं विधि मन्त्री के रूप में राष्ट्र की सेवा की। अब भी आप इस वृद्ध अवस्था में समाज एवं देश-सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। मुझे उनका आशीर्वाद सदा प्राप्त रहा है। मैं श्री ईश्वरदासजी जालान का हृदय से साभिवादन अभिनन्दन करता हूँ।

उत्कल के सुप्रसिद्ध उद्योगपति, समाजसेवी

श्री जगदीश प्रसाद लाठ

सर्वोपरि नेता

श्री ईश्वरदासजी का अवदान मारवाड़ी समाज के उत्थानार्थ अमूल्य है। अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के लिये तो उनका अनुदान है ही, किन्तु इसके अतिरिक्त भी वे उत्कल प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन के जन्मदाता हैं। सम्बलपुर में अधिवेशन के पीछे उन्हीं की प्रेरणा एवं सहयोग प्रमुख था, जिसके फलस्वरूप शिक्षा-कोष भी बना। उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर उत्कल का भ्रमण किया तथा अपने पथ-प्रदर्शन के द्वारा समाज को जागृत करने और शिक्षा-कोष को सबल बनाने में पर्याप्त प्रयास किया। उन्हीं के अथक परिश्रम और उत्साह को देखकर कार्यकर्त्ताओं को भी प्रेरणा मिली। उत्कल मारवाड़ी समाज आज भी उन्हें सर्वोपरि नेता मानता है। उत्कल के मारवाड़ी समाज एवं मेरी ओर से सादर अभिनन्दन समर्पित है।

दक्षिणांचल के सुपरिचित समाजसेवी, आन्ध्र प्रा० मा० सम्मेलन के प्रधान सचिव

श्री छगनलाल विजयवर्गीय

कुशल मार्गदर्शक

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मारवाड़ी समाज के क्षितिज पर एक प्रकाशमय नक्षत्र का प्रादुर्भाव हुआ—श्री ईश्वरदास जालान। युवावस्था से ही आपने सामाजिक जीवन में प्रवेश किया एवं सम्पूर्ण क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैलाया।

पश्चिमी बंगाल विधान सभा के सदस्य, स्पीकर, स्वायत्तशासन मंत्री एवं विधि मंत्री के रूप में राष्ट्र को सेवाएं अर्पित कीं। मारवाड़ी सम्मेलन के जन्मदाता मारवाड़ी समाज का जीर्णोद्धार करने के लिए कमर कसकर मैदान में आए। समाज में फैली हुई रूढ़ियों को जड़मूल से नष्ट करने का बीड़ा उठा लिया। निर्भीकता के साथ अपने मंतव्य को मारवाड़ी सम्मेलन के माध्यम से समस्त देश में उद्घोष करते रहे।

आपके त्यागमय जीवन की छाप समाज के अनेकानेक कार्यकर्त्ताओं के जीवन पर पड़ी। पारस की भाँति आपके सम्पर्क में जो भी कार्यकर्त्ता आए, वे भी पारस बन गए।

मुझे आज भी स्मरण है कि एक अवसर पर व्यापारी वर्ग ने जालानजी से मार्गदर्शन चाहा, तो आपने बताया कि समाज को अगर सम्मान के साथ जीवन व्यतीत करना है, तो अपने को धन का मालिक न समझकर धन का ट्रस्टी समझना चाहिए। प्रवासियों को, जहाँ भी वे रहते हैं, वहाँ के जनजीवन में समरस हो जाना चाहिए एवं रूढ़ियों का परित्याग कर समाज का स्वच्छ रूप सामने लाना चाहिये।

परमात्मा से प्रार्थना है कि श्री जालानजी को स्वास्थ्य एवं लम्बी आयु प्रदान करे।

अ० भा० मा० सम्मेलन के प्रथम प्र० मंत्री
मारवाड़ी रीलीफ सोसाइटी के प्रधान सचिव

श्री बासुदेव थरड़

मार्ग-प्रदर्शक

बात १९२४ की है। आल इन्डिया सेवा समिति ब्वाय स्काउट एसोसियेशन, इलाहाबाद की बंगाल प्रान्तीय-शाखा कलकत्ता में स्थापित हो चुकी थी। इसका प्रधान कार्यालय श्रद्धेय श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका के चितरंजन एवेन्यू स्थित सराफ भवन में रखा गया। श्रद्धेय श्री ईश्वरदासजी जालान इसके प्रांतीय मानद सचिव निर्वाचित हो चुके थे। मुझे श्रीजालानजी का सहायक सचिव निर्वाचित किया गया। उनके साथ मैंने कई वर्ष कार्य किया। उनकी प्रशासन-क्षमता, कार्य-कुशलता, पथ-प्रदर्शन, साथियों के साथ प्रेमभाव अवर्णनीय है। उनके सचिवकाल में इस संस्था की काफी उन्नति हुई। उनके साथ काम करने में जो आनन्द आता था, अभी तक नहीं भुलाया जा सकता है।

बात शायद १९३३ की है, हम कई मित्रों ने मिलकर 'अपर इन्डिया क्लब' की स्थापना की। पूरा मकान किराये पर लिया और सदस्य शुल्क पाँच रुपया प्रतिमाह रख लेना निश्चित हुआ। हर रविवार को रात्रि-भोजन होता और समाज के प्रतिष्ठित एवम् समाजसेवकों को इसमें आमंत्रित किया जाता। उस समय समाज के लोग राजनीति में नगण्य संख्या में भाग लेते थे और उनका संसद तथा प्रान्तीय विधान सभाओं, कारपोरेशन एवम् म्यूनिसिपैलिटियों में प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर ही था। अतः इस कमी को पूरा करने के लिये हमलोगों ने एक अखिल भारतीय संस्था की योजना बनाई और श्रद्धेय श्री ईश्वरदासजी के पास पहुंचे। इसी बीच १९३५ के इंडिया एक्ट एवं समाज के वोटाधिकार का प्रश्न आ खड़ा हुआ। फलतः अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का

जन्म हुआ और स्वर्गीय श्री रायबहादुर रामदेवजी चोखानी इसके प्रथम अधिवेशन के सभापति हुए, जिसका मैं प्रथम स्वागत मंत्री निर्वाचित हुआ।

श्री जालानजी का सक्रिय भाग इस संस्था में इसके जन्मकाल से ही रहा और जहाँ कहीं भी आल इन्डिया वर्किङ्ग कमिटि की बैठकें हुईं, इन्होंने भाग लिया। बम्बई, कानपुर इत्यादि स्थानों में मैं भी उनके साथ था। उनका मार्ग-प्रदर्शन एवम् समाजोन्नति चिंतन सर्वदा बना रहा और आज भी इस अस्वस्थ अवस्था में भी वे सम्मेलन को लेकर काफी चिंतन करते हैं।

उनके साथ कार्य करने में जो बन्धुत्व, नेतृत्व एवम् कार्यकुशलता का आभास होता है, वह स्मरणीय है। जगत्‌नियंता से हार्दिक प्रार्थना है कि वे उन्हें पुनः निरोगी एवम् स्वस्थ करे ताकि मानवोन्नति, समाजसेवा में उनका पथ प्रदर्शन बहुकाल तक मिलता रहे।

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी एवं भूतपूर्व कलकत्ता कारपोरेशन के कौंसिलर

श्री पुरुषोत्तम केजड़ीवाल

कुशल कार्य-संचालक

श्रद्धेय श्री ईश्वरदासजी के साथ मुझे सम्मेलन के वार्षिक आधिवेशनों के अवसरों पर प्रायः सभी स्थानों पर रहने का सौभाग्य प्राप्त रहा है।

श्रद्धेय जालानजी को कार्य-सञ्चालन का अद्‌भुत गुण है और मैंने प्रत्येक सम्मेलन के अवसर पर सुन्दर ढंग से उन्हें कार्य-सञ्चालन करते पाया है।

सम्मेलन द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में तो इन्होंने अद्वितीय कार्य कराया है।

मेरी हार्दिक कामना है कि इनका नेतृत्व दीर्घकाल तक समाज को प्राप्त रहे।

नेशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लि० के चैयरमेन व प्रधान निदेशक, समाज-सेवी

श्री काशीप्रसाद मोदी

धनोपार्जन के लोभ से दूर

पोद्दार छात्र-निवास जो कि उस समय मारवाड़ी छात्र-निवास के नाम से जाना जाता था, कलकत्ता में बाहर से आनेवाले छात्रों के लिए एक आकर्षण-केन्द्र था। साथ में मारवाड़ी छात्रसंघ के कार्यों की चर्चा भी सुनने को मिलती थी। इन दोनों संस्थाओं के ईश्वरदासजी जालान प्राण रहे हैं।

मैं सन् १९३६ में दुमका जिला स्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास कर कलकत्ता उच्च शिक्षा के लिए आया। सेन्टपाल्स कालेज में भर्ती होने के साथ-ही-साथ छात्र-निवास में भी स्थान मिला और फिर श्री जालानजी से व्यक्तिगत परिचय का सौभाग्य प्राप्त हुआ। समय-समय पर वे छात्र-निवास में छात्रों के बीच आकर उनकी समस्याओं के विषय में विचार-विमर्श करते थे। छात्रों को उनके प्रति अपार श्रद्धा थी और जो पुराने छात्र उनसे परिचित हैं, उनके मन में आज भी उनके प्रति बहुत आदर एवं श्रद्धा की भावना है।

श्री ईश्वरदासजी बंगाल के राजनैतिक जीवन में समाज का प्रतिनिधित्व बहुत वर्षों तक करते रहे एवं उनके प्रति जनता एवं राजनीतिज्ञ दोनों का ही अपार प्रेम एवं श्रद्धा रही है।

समाज में उस समय दो विभिन्न विचारधारा साथ-साथ चल रही थी। जहाँ एक तरफ मारवाड़ी एसोसियेशन कट्टर विचार पन्थियों का प्रतिनिधित्व करती थी, वहाँ दूसरी ओर छात्रसंघ और छात्र-निवास के छात्र एवं युवक वर्त्तमान विचारधारा के प्रतीक माने जाते थे। यद्यपि दो विचारधारा विलकुल भिन्न थी, पर समय-समय पर दोनों से ही सम्वन्धित व्यक्ति एक मंच पर आकर बैठते थे। श्री ईश्वरदासजी में एक विशेषता रही कि वे दोनों वर्ग के लोगों के श्रद्धा के पात्र रहे हैं।

समाज में एक नया युग आ रहा था और शिक्षित युवकों को आदर के भाव से देखा जाता था। श्री ईश्वरदासजी जालान शिक्षित युवकों को प्रेरणा देने में अग्रणी माने जाते थे। अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का तो सारा कार्य उनकी प्रेरणा से ही चलता था। उन्होंने बराब्र सादगी का जीवन विताया और धन उपार्जन के प्रलोभन से दूर रहे। समाज ऐसे व्यक्ति से गौरवान्वित रहा है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनको स्वास्थ्य-लाभ दे और दीर्घायु करे।

सुप्रसिद्ध लेखा-जोखा परीक्षक व समाजसेवी

श्री यशवन्त सिंह लोढ़ा

कर्त्तव्यपराणता पर समर्पित व्यक्तित्व

श्री ईश्वरदासजी से मेरा अति निकट का संबंध रहा है। उनकी सादगी, सरलता, सहृदयता, मिलनसारिता, कर्त्तव्यपरायणता एवं आदर्शों के प्रति निष्ठा अनुकरणीय एवं सराहनीय है। उन्होंने अपनी जीवनचर्या को एक सच्चे समाजसेवी के रूप में निर्वाह किया है। आपके जैसे व्यक्तित्व के निकट सम्पर्क में आना एक गौरव का विषय है। वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को आपके सद्गुणी जीवन से प्रेरणा मिलती रहे, यही मेरी हार्दिक कामना है।

समाजसेवी

श्री गणेशमल वैद

नूतन और पुरातन के सेतु

ईश्वरदासजी से मेरा जितना भी सम्वन्ध हुआ, उस पर से मेरे मन पर यह छाप पड़ी कि जालानजी को सामाजिक सुधारों से प्रेम अवश्य था, लेकिन वे नये और पुराने के बीच कुछ समझौता करके चलना चाहते थे। पुराना सारा खत्म करो और सारा नया ग्रहण करो, यह विचार जालानजी को पसन्द नहीं था। इसीलिये अक्सर युवकों के साथ उनकी झड़प हो जाया करती थी। फिर भी उस व्यक्ति के प्रति सबके मन में आदर भाव रहता था।

ईश्वरदासजी में योग्यता के साथ-साथ एक निष्पक्ष वृत्ति थी, संभवतः इसीलिये बंगाल जैसे प्रतिभा प्रधान, जागृत प्रान्त में भी वे वर्षों तक विधान सभा के स्पीकर और मंत्री रहे।

मैं ईश्वर से ऐसे व्यक्ति के दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

समाज-सेवी, साहित्य-प्रेमी

श्री नथमल केड़िया

अशोक की लाट

श्री ईश्वरदासजी जालान के जीवन पर जब-जब विचार करने बैठता हूँ, तब-तब मुझे दिल्ली की कुतुब मीनार के सामने खड़ी अशोक की लाट की याद आती है। विगत २ हजार वर्षों से वर्षा, आतप, शीत ऋतु के अलग-अलग व लगातार प्रहार सहती हुई यह लाट, पता नहीं कौन-से इस्पात की निर्मित हुई है कि आज भी उसमें वैसी ही चमक और वैसा ही चिकनापन है। कहीं कोई जंग नहीं, कहीं खुरदरापन नहीं।

जालानजी भी बहुत लम्बी अवधि तक लगातार बंगाल सरकार के मन्त्री, स्पीकर रहे हैं। एक तो राजनीति, दूसरे इतना ऊँचा पद, उसमें मद आना भी स्वाभाविक था और जिस समाज के वे हैं उसमें धनवान बनने की ओर प्रयत्नशील होना भी। परन्तु इनको तो जैसे वे विचार छुए भी नहीं। यह सचमुच बहुत ही आश्चर्य की बात लगती है कि इन पिछले वर्षों में जब कि धन हमारे समाज के सभी व्यक्तियों के सिर पर आसन जमाकर बैठ गया था, बहुत ही कम व्यक्ति, उंगलियों पर गिनने तक ही हैं, जिन्होंने उसकी महत्ता को इस तरह नज़र अन्दाज किया।

मैंने अशोक की लाट की उपमा इसलिये दी कि धातु के दो हजार वर्ष की अवधि से किसी भी मनुष्य जीवन के कुछ वर्षों की अवधि कम नहीं होती, जहाँ प्रतिक्षण लालच, फिसलन, प्रलोभन और प्रभाव अपना काम करते हैं।

स्थूल शरीर का, शुभ्र खादी के वस्त्रों से आच्छादित, प्रभावशाली व्यक्तित्व, सबके साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार, बात-बात में मुक्त हास्य—गांधी-युग की ये निधियां विरल-प्राय होती जा रही हैं। काश ! हम इन अच्छाइयों को अपने जीवन में कुछ अंश भी ग्रहण कर पाते।

राजनीतिज्ञ, समाजसेवी

श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया

युवाकाल से ही समन्वयवादी

सन् १९३०-३१ ई० की बात होगी, जब कलकत्ता के मिनर्वा थियेटर के रंगमंच पर मारवाड़ी समाज की रूढ़िगत विकृतियों के विरोध में एक नाटक समाज-सुधारक कुछ मारवाड़ी समाज के युवकों ने खेला था। महिलाओं का अभिनय भी पुरुषों द्वारा किया गया

था। कारण उन दिनों समाज की महिलायें अशिक्षित, अनपढ़ थीं और गृहस्थी का काम करना और बच्चों का पालन-पोषण ही उनकी दिनचर्या थी। सार्वजनिक कार्य तो निकृष्ट माना जाता था। उस नाटक में श्री जालानजी भी अपने अन्य बन्धुओं के साथ स्टेज पर उतरे थे। कला की दृष्टि से वह नाटक नहीं था, वह तो भावात्मक था; इसलिये उसमें कलाकार का महत्व कम और विचारों का महत्व अधिक था।

मैंने वह नाटक देखा और उसके वाद हमेशा जालानजी तथा उनके साथियों को देखा कि सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं को आगे लाने का बीड़ा उठाये किस तरह विभिन्न कार्यों में एवं गांधी के खादी-आन्दोलन में भी महिलाओं द्वारा खादी विक्रय, चर्खा-आन्दोलन चलाने आदि में समाज के महिला वर्ग को आगे लाया जा रहा है।

सदा-सर्वदा से समाजसेवा के लिये जीवन का अधिकांश भाग समर्पित करते रहने वाले महापुरुष होते रहे हैं। अहर्निश समाज का चिन्तन करते हुए उसके उत्थान और प्रगति के लिये कर्त्तव्यरत रहना अपने जीवन का ध्येय वनाने वाले समाजसेवियों में श्री ईश्वरदास जी जालान का नाम अमिट रहेगा। कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और संगठनात्मक कार्यों में अपने को सदैव प्रस्तुत रखने वाले श्री जालानजी युवावस्था से ही समन्वयवादी रहे हैं। समाज के सभी वर्गों से मिलकर चलना और संगठन को दृढ़ करना यह उनके समन्वयात्मक भाव का जीता-जागता उदाहरण था।

राजनीति में सम्मिलित परिवार का दायरा दलगत होने के कारण संकुचित हो जाता है और अनुशासन का वन्धन उतना उदार तथा संकोचरहित होने नहीं देता। यह समन्वयवादी जालानजी की ही विशेषता थी कि राजनैतिक क्षेत्र में भी वे विरोधी पक्ष वालों से उसी उदारता एवं सौहार्दता से व्यवहार करते थे, जैसा सामाजिक क्षेत्र में।

समन्वयवाद की आधार-भूत भावना लेकर श्री जालानजी ने सामाजिक संगठन को प्रगति के पथपर अग्रसर किया और उसी भावना का पोषण वे आज तक कर रहे हैं। ईश्वर उनको दीर्घायु प्रदान करे और समाज के कार्यकर्त्ताओं को उनके उज्ज्वल चरित्र का अनुकरण करने की प्रेरणा मिलती रहे। इन भावनाओं के साथ मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ।

वाड़ावाजार के सुपरिचित कार्यकर्त्ता

श्री सच्चिदानन्द पाण्डेय

चरित्रवान व समाजसेवी

श्री ईश्वरदासजी जालान ऐसे चरित्रवान, समाजसेवी, बुद्धिजीवी, निर्भीक वक्ता का अभिनन्दन वहुत पहले ही करना चाहिए था। समाजसेवी पुरुष जो समाज व क्षेत्र की, जनता जनार्दन की सेवा करते हैं, उनको समाज से सिवाय अभिनन्दन पुष्पहार के अतिरिक्त और भी कुछ हो जाय तो अति उत्तम हो। श्री ईश्वरदासजी जालान को मैं वहुत नजदीक से जानता हूँ और उनके सरीखे व्यक्ति स्वभाव से चरित्रवान, ओजस्वी वक्ता, स्वाभिमानी, सब को आदर से देखने वाले कम मिलेंगे, बड़ाबाजार के क्षेत्र के निवासियों को उनके ऊपर गर्व, अभिमान है। सर हमेशा ऊँचा रहता था। पार्टी के दलगत राजनीति में न पड़कर सब के प्यारे थे। उन्होंने अपने एवं अपने परिवार के लिये सत्ता का दुरुपयोग कभी

नहीं किया। अपने विरोधियों को भी वे आदर की दृष्टि से देखते थे और उनका भी वे कभी अहित व बुरा नहीं सोचते थे। अत्यन्त सरल स्वभाव, मधुर भाषी, मिलनसार अपने ही जालानजी के प्रति बड़ाबाजार क्षेत्र आभारी है और रहेगा। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि भगवान उनको सुखी-सम्पन्न एवं शान्तिमय जीवन व्यतीत करने में सहायक हो।

समाजसेवी, कर्त्तव्यनिष्ठ व कर्त्तव्यपरायण—

श्री विश्वनाथ लोहिया

कर्त्तव्यनिष्ठ व कर्त्तव्यपरायण

श्री ईश्वरदासजी जालान एक सफल राजनीतिज्ञ एवं प्रशासक के रूप में प्रसिद्ध हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ११ मार्च, १९६९ ई० तक ये प्रत्यक्ष रूप से पश्चिम वंग सरकार से सम्बद्ध रहे हैं। प्रथम पांच वर्षों में विधान सभा के अध्यक्ष के रूप में तत्पश्चात् मंत्रिमण्डल के महत्वपूर्ण सदस्य के रूप में इन्होंने पश्चिम बंगाल की सेवाएँ की हैं। साथ ही सार्व-जनिक सेवा तथा समाज-सुधार की दिशा में भी इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने के पूर्व आपने समाज-सुधार के क्षेत्र में जो कार्य किया है, उसको कलकत्तावासी कभी भी विस्मृत नहीं कर सकते। स्त्री-शिक्षा-प्रचार, पर्दा-प्रथा उन्मूलन, दहेज-विरोधी अभियान, बाल-विवाह एवं अनमेल विवाह-विरोधी आन्दोलनों को सफल वनाने की दशा में इनका योगदान वहुत ही महत्वपूर्ण है। वास्तव में ये प्रेरणा के स्रोत थे। इनको शामिल कर जब कोई आन्दोलन प्रारम्भ होता, समाज के युवक स्वभावत: उसमें टूट पड़ते थे। अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का संगठन कर इन्होंने सम्पूर्ण मारवाड़ी समाज को एकसूत्र में आवद्ध कर एवं मारवाड़ी समाज की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए एक मंच तैयार करने की पृष्ठभूमि तैयार कर अभूतपूर्व सराहनीय कार्य किया है। देश के किसी भी क्षेत्र में रहनेवाले मारवाड़ी समाज के साथ यदि कोई अन्याय करता है, अनुचित व्यवहार करता है, उसे क्षतिग्रस्त करता है, तो मारवाड़ी सम्मेलन उसके विरुद्ध आवाज उठाता है, प्रतिवाद करता है एवं पीड़ित व्यक्तियों के साथ खड़ा होकर उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त करता है।

राइटर्स बिल्डिंग में इनके एक मंत्री के रूप में बैठे रहने से व्यापारी वर्ग तथा सम्पूर्ण हिन्दी भाषा-भाषियों को एक बड़ा सम्बल मिलता था। जब कभी उनके समक्ष कोई समस्या उपस्थित होती, झट ये ईश्वरदासजी को स्मरण करते थे। क्योंकि सम्पूर्ण मंत्रिमंडल में ये एकमात्र ऐसे मंत्री थे, जो सदा उनकी बातें सुनने के लिए तैयार रहते थे।

ये इतने कर्त्तव्यनिष्ठ एवं कर्त्तव्यपरायण थे कि मेरे साथ निकट सम्पर्क रहने तथा छोटे भाई की भांति स्नेहपूर्ण व्यवहार करने के बावजूद मैंने जब कभी कांग्रेस के विरुद्ध चुनाव प्रतिद्वन्द्विता की, उन्होंने मेरे विरुद्ध खड़े कांग्रेस प्रत्याशी के समर्थन में काम किया है एवं मेरे विरुद्ध चुनाव सभाओं में भाषण दिया है, क्योंकि राजनीति में व्यक्तिगत सम्बन्धों

का कोई स्थान नहीं होता। राजनीतिक मतभेद होने के बावजूद व्यक्तिगत संबंध को वे तिलमात्र भी उससे प्रभावित नहीं होने देते थे।

मैं इनके दीर्घ जीवन की कामना करते हुए ईश्वर से इन्हें स्वस्थ रखने की प्रार्थना करता हूँ ताकि इनके त्याग एवं कर्मनिष्ठ जीवन से प्रेरणा मिलती रहे।

आ० प्रा० मा० सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान सचिव

श्री जयदेव खण्डेलवाल

हर प्रदेशवासियों की प्रेरक शक्ति

मुझे श्री ईश्वरदासजी जालान से प्रथम बार मिलने का अवसर सन् १९४८ ई० में असम प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन के गोलाघाट अधिवेशन में मिला। उक्त अधिवेशन स्वाधीन भारत के उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ था। सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे—स्वर्गीय श्री गजानन्द जालान और स्वागत मंत्री का भार मेरे कंधों पर था। माननीय श्री ईश्वरदासजी जालान के सभापतित्व में सम्पन्न हुए उक्त अधिवेशन को एक ऐतिहासिक अधिवेशन कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि उसी अधिवेशन में पहली बार असम प्रदेश में घूंघट-प्रथा-निवारण; दहेज-विरोधी अभियान आदि कार्यक्रम हाथ में लिए गए और प्रदेश की स्थानीय जनता के साथ समरसता का आवाहन किया गया। अधिवेशन में पारित प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए श्री जालान ने पन्द्रह दिन तक पूरे प्रदेश का दौरा भी किया। सदिया से लेकर डीमापुर, इम्फाल तक प्रचार कार्य किया गया। सामाजिक क्रान्ति की जो मशाल श्री जालान ने असम प्रदेश में जलाई थी, उसका प्रकाश कलकत्ता पर भी पड़ा और उसके बाद ही यहाँ भी समाज-सुधार समिति ने पर्दा-प्रथा एवं दहेज-विरोधी आन्दोलन शुरू किए।

श्री जालान उस समय पश्चिम बंगाल की विधान परिषद् के स्पीकर के पद को सुशोभित कर रहे थे और उनके वक्तव्यों एवम् भाषणों से स्थानीय जनता और मारवाड़ी समाज के मानसिक एकीकरण में बहुत सहायता मिली और 'असम ट्रिब्यून' जैसे अँग्रेजी के दैनिक पत्रों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

असम एवम् पूर्वोत्तर भारत में बसा हुआ मारवाड़ी समाज उनके द्वारा प्रदत्त सहानुभूति एवम् उनके नौगाँव तथा गौहाटी में दिये गये प्रेरणाप्रद भाषणों का बहुत अनुगृहीत है। उस प्रदेश की सभी समस्याओं को दूर करने में वे तत्पर रहे तथा पथ-प्रदर्शन किया। अपनी रुग्णावस्था में भी वे हमारी समस्याओं के प्रति सहानुभूतिशील रहे। इस अवस्था में भी उनका आशीर्वाद हमारे साथ है। ईश्वर से उनके दीर्घायुष्य और स्वस्थता की कामना करता हूँ, जिससे उनका मार्गदर्शन हमें भविष्य में भी मिलता रहे।

हिन्दी हाई स्कूल व मारवाड़ी सम्मेलन की, झालदा शाखा के सचिव

श्री श्रीनिवास परशुरामपुरिया

जाति, भाषा और प्रान्तीयता से परे

झालदा के मारवाड़ी समाज और यहाँ की जनहितैषी सुविख्यात संस्था 'हिन्दी हाई स्कूल' की ओर से गजेन्द्र समाज के वयोवृद्ध श्री ईश्वरदासजी जालान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

आपका व्यक्तित्व सदैव निर्विवाद रहा है। जाति, भाषा और प्रान्तीयता से परे हटकर आपने देश की महान् सेवा कर मारवाड़ी समाज के गौरव और मर्यादा को बढ़ाया है। इसके लिए समाज अनुगृहीत है।

झालदावासी आपके उपकार को कभी नहीं भूल सकते। हमारे इस "हिन्दी हाई स्कूल" को सन् १९६३ ई० में प्राइमरी से "जूनियर हाई" और सन् १९६५ ई० में जूनियर हाई से "हाई स्कूल" के रूप में प० वं० सरकार द्वारा मान्यता दिलाने में आपका महत्वपूर्ण एवं सक्रिय सहयोग रहा है।

झालदा सदृश उपेक्षित शहर में समाज-सुधारार्थ पधार कर आपने प्रेरणा के वीज वोये थे।

हमें याद आती है आपकी वह निर्भीक वाणी, जो आपने "पुरुलिया मारवाड़ी सम्मेलन" के अधिवेशन के अवसर पर "झालदा" के नवयुवकों को कही थी। आपने समाज के गरीव वर्ग का आह्वान किया था कि वे धनिकों के फिजूल खर्ची एवं आडम्बरों के निवारण के लिए उनके कार्यों का वहिष्कार करें। आज आपकी उसी दूरदर्शिता को सम्मेलन कार्यान्वित कर सफलता अर्जित कर रहा है।

परमात्मा आपको चिरायु करे।

पूर्वी भारत के प्रसिद्ध समाजसेवी व समाज-बन्धु

श्री छगनलाल जैन

समाज के भीष्म पितामह

जिन व्यक्तियों को आदर्श मानकर मैंने अपने जीवन में प्रेरणा ग्रहण की है, उनमें मानवीय ईश्वरदासजी जालान भी एक हैं। मारवाड़ी छात्रावास में रहते वक्त जब भी मैं उनसे मिलता, उनकी वातें सुनता, मुझे एक नई शक्ति और दृष्टि मिलती। उनका आकर्षक व्यक्तित्व, वोलचाल की मधुर शैली, सभी के प्रति अपनत्व की भावना, और एक-एक शब्द से जाहिर होनेवाला उनका आत्म-विश्वास—देखकर मैं ठगा-सा रह जाता।

मारवाड़ी समाज में सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की एक लम्बी कतार उनकी प्रेरणा से तैयार हुई है। कुछ ही वर्ष पूर्व नौगाँव में कही उनकी बात मुझे आज भी याद है। "आप

व्यवसाय में अति व्यस्त होने के कारण आप सार्वजनिक जीवन में नहीं उतरते, किन्तु यदि समाज का यही रवैया रहा तो वह दिन भी दूर नहीं जब इस समाज के हाथ में कोई काम ही नहीं रहेगा।" बड़ी गहरी और मार्मिक चेतावनी थी यह समाज को, एक ऐसे अनुभवी वृद्ध नेता की, जिसने अपने जीवन का एक-एक क्षण इस समाज की भलाई में खर्च किया।

सन् १९४८ के कलकत्ता में बिना घूँघट के मेरी शादी हुई, तो आप आशीर्वाद देने पधारे।

एक अवसर पर उन्होंने मारवाड़ी बन्धुओं को सलाह दी कि आप लोग "अपनी पितृभूमि राजस्थान को भूल कर जहाँ रहें वहीं पूरी तरह से समरस हो जाना चाहिये। अन्यथा न हमें आदर मिल सकता है और न हम शांति से ही रह सकते हैं।"

समाज का यह ८३ वर्षीय भीष्म पितामह आज रुग्ण-शय्या पर लेटा हुआ है। उसकी प्यास हमारे इन शाब्दिक अभिनन्दनों से नहीं, कार्मिक आहुतियों से ही बुझ सकती है। इस मर्म को समझनेवाला समाज में शायद ही कोई गाण्डीवधारी अर्जुन हो।

समाज के इस शुभचिंतक, कर्मठ, उदार और सफल नरपुंगव को मैं नतमस्तक होकर शत-शत बार प्रणाम करता हूँ। यह "समाज-बन्धु" स्वस्थ-प्रसन्न रहकर दीर्घ काल तक अपने अनुभवपूर्ण अमूल्य उपदेश बाँटता रहे—यही भगवान से प्रार्थना है।

भूतपूर्व विधान व राज्यसभा सदस्य, शिक्षाशास्त्री

प्रो० रामलगन सिंह

एक अनुकरणीय साधु व्यक्तित्व

श्री ईश्वरदासजी जालान मूलतः एक जाने-माने प्रबुद्ध समाजसेवी हैं। वे एक अति सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत व्यक्ति हैं। एक लम्बी अवधि तक राजनीति से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और एक राजनेता के रूप में भी कई एक दायित्वपूर्ण पद का सफलतापूर्वक निर्वाह कर उन्होंने अपनी प्रतिभा, क्षमता, बहुज्ञता का परिचय दिया है। वे स्वभाव से सरल, विचारों में उदार, व्यवहार में मिलनसार, संकल्प में दृढ़ और निष्ठा-लगन वाले बड़े ही सहृदय साधु पुरुष हैं। श्री जालानजी अब अपने जीवन के ८३ वें वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं। इतनी बड़ी लम्बी आयु उनके स्वस्थ, निर्मल और संयमपूर्ण जीवन की एक गाथा है।

ऐसे तो मैं श्री जालानजी के नाम से कुछ-कुछ सन् १९५० से पहले से भी परिचित था। पर उनके निकट सम्पर्क में आने और नजदीक से उन्हें देखने-समझने का सुअवसर मुझे सन् १९५२ में ही मिला। श्री जालानजी पश्चिम बंगाल विधान सभा के लिये बड़ाबाजार क्षेत्र से कांग्रेस-प्रत्याशी थे और मैं कांग्रेस-प्रत्याशी था जोड़ाबागान निर्वाचन-क्षेत्र से। श्री जालानजी राजनीति के पुराने योद्धा थे। वे इसके पहले भी बंगाल विधान सभा के सदस्य रह चुके थे। चुनाव अभियान और तत्सम्बन्धी संगठन के वे माहिर थे। श्री आनन्दीलालजी पोद्दार जोड़ासाँकू से विधान सभा के लिये और श्री प्रभुदयालजी

हिम्मतसिंहका लोकसभा के लिए कांग्रेस-प्रार्थी थे। नामांकनपत्र भरने के बाद मैंने इस संबंध में श्री जालानजी से परामर्श किया और एक शिष्य की भाँति उनसे चुनाव अभियान की दीक्षा ली।

विशुद्ध राष्ट्रवादी होते हुए भी श्री जालानजी कतिपय स्थानीय एवं अन्तर्देशीय संस्थाओं से घनिष्ठ रूप में संयुक्त हैं। कई एक जातीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं में वे शीर्षस्थ नेता के रूप में कार्य करते रहे हैं, पर जातिविशेष को वे समाज या राष्ट्र की एक इकाई ही मात्र मानते हैं।

श्री जालानजी शतवर्षायु हों, यही हमारी प्रभु से प्रार्थना है। उनका त्यागमय आदर्श-जीवन भावी पीढ़ी के लिये पथप्रदर्शक एवं अनुकरणीय बन सके, यही युग की माँग है और यही उनका सबसे बड़ा अभिनन्दन होगा।

पूर्वोत्तर प्रदेश के समाज-सेवी, सुप्रसिद्ध अधिवक्ता

श्री केदारनाथ शर्मा

समाजोन्नति के आह्वानकर्त्ता

जब मैं कलकत्ता में पढ़ने गया तब श्री ईश्वरदासजी से मैं पहले-पहल सन् १९३१ ई० में मिला। मारवाड़ी छात्रनिवास उस समय ताराचन्द दत्त स्ट्रीट में था। मैं, ताराचन्द सराफ, स्व० मदनगोपाल पोद्दार, स्व० चौथमल सराफ आदि उसमें रहते थे और लॉ का अध्ययन करते थे। अति व्यस्त सोलीसिटर होते हुए भी श्री ईश्वरदास प्रायः हमारे छात्रनिवास में आते और हमें उत्साहित करते रहते। केवल परीक्षा पास करना ही हमारा उद्देश्श नहीं रहे, वल्कि हम समाज तथा देश के उत्थान में सहायक हों, इसके लिये वे हमें प्रायः प्रेरित करते रहते थे। वे युवावस्था में भी बहुत सादगी से रहते थे, वही धोती और वही कुर्त्ता जो वे आज व्यवहार करते हैं। सन् १९३२ ई० में पूजा की छुट्टियों में हमारे छात्रनिवास के अधिकांश लड़कों ने दार्जिलिंग जाने का आयोजन किया और श्रद्धेय ईश्वरदासजी से अनुरोध करते ही वे हमारे साथ जाने को तैयार हो गये। हमारे साथ ही तीसरे दर्जे में यात्रा की और हमारे साथ ही धर्मशाला में ठहरे। दार्जिलिंग में हम सभी एक साथ ही घूमने निकलते थे। एक वार तो सभी लड़के तथा ईश्वरदासजी घोड़ों पर सवार होकर कई घन्टों तक घूमते रहे थे।

सन् १९४८ ई० में असम प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन का अधिवेशन गोलाघाट में उनके सभापतित्व में हुआ। अपने भाषण में आपने पर्दा-प्रथा तथा दहेज दूर करने पर खास तौर से जोर दिया तथा उससे उत्साहित होकर वहुत से युवकों ने दहेज न लेकर विवाह करने को प्रतिज्ञा की तथा बहुत-सी महिलओं ने भी पर्दा त्यागा। आपने भाषण देकर ही सन्तोष नहीं किया। बल्कि समूचे असम का दौरा किया। आप जहाँ भी गये, वहाँ अच्छी बड़ी सभा होती थी तथा सभी जगह उन्हें मानपत्र दिये गये थे। इस यात्रा में वे पर्दा-प्रथा त्यागने तथा मातृमुक्ति-दिवस मनाने हेतु जोर देते थे। आपने जिस समय असम का दौरा

किया था, उस समय हमारे समाज में इने-गिने ग्रेजुएट थे। उस दौरे का फल आज हम देख रहे हैं कि इन ३० वर्षों में हमारे समाज में सैंकड़ों वकील, डाक्टर तथा इन्जीनियर आदि हो गये हैं तथा काफी संख्या में ग्रेजुएट हैं। ईश्वरदासजी बंगाल सरकार के मंत्री तथा विधान-सभा के 'स्पीकर' थे। फिर भी उन्हें किसी प्रकार का अभिमान नहीं था तथा साधारण-से-साधारण व्यक्ति से भी वे विना रोक-टोक के मिलते थे।

ईश्वरदासजी अस्वस्थ होने के उपरान्त भी नौगाँव के अ० प्रा० मा० सम्मेलन के अधिवेशन में आये थे। उस समय उन्होंने जो बात अपने भाषण में कही, वह मैं भुलाये भी नहीं भूल सकता।

संमाजसेवी व सांहित्यप्रेमी,

श्री मोहनलाल चोखानी

विपक्षी दलों के श्रद्धास्पद

सन् १९३४-३५ ई० की बात है जब समाज सनातनी एवं सुधारक दलों में विभाजित हो रहा था। कुछ व्यक्ति सुधारक कहलाने वालों के साथ न तो एक साथ बैठकर विचार-विमर्श करते और न इनमें आपसी सम्बन्ध या व्यवहार ही होते। तत्कालीन समाज के कतिपय शुभचिन्तक इसके घातक परिणामों को सोचकर चिन्तित हो उठे कि किस प्रकार समाज में व्याप्त दो विपरीत धाराओं में सामञ्जस्य लाया जाय। उन्हीं चिन्तनशील व्यक्तियों में श्रद्धेय ईश्वरदासजी जालान भी रहे। बिखरती हुई श्रृंखला को एकजुट करने तथा समाज के सम्मुख प्रस्तुत समस्याओं पर विचार करने के निमित्त जालानजी एवं उनके मित्र मेरे पिता श्री स्व० रामदेवजी के साथ विचार-विमर्श में काफी अर्से तक लगे रहे। ये लोग प्रतिदिन प्रातःकाल एक साथ मैदान घूमने जाते। मैं प्रायः श्री भूरामल अग्रवाल, श्री वेणीशंकर शर्मा, श्री राधाकृष्ण नेवटिया एवं स्व० चौथमल सराफ को इनके साथ देखता था। इनके अलावा अन्य और भी कई साथी मैदान में जुट जाते और इन विषयों पर खूब बहस-मुवाहिसा चलता। अन्त में सबने मिलकर यह निर्णय लिया कि समाज के दोनों दलों को मिलाकर एक ऐसी संस्था की स्थापना की जाय, जिसके मंच पर दोनों दलों के लोग एक साथ बैठकर बोल और विचार-विमर्श कर सकें। यह भी तय हुआ कि विरोधात्मक विचारधारा से संबन्धित विषयों को इससे दूर रखा जाय ताकि कोई विवाद का विषय उपस्थित न हो। इसी को ध्यान में रखकर अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना करने का निश्चय किया गया। ऐसे मंच के लिये इन्हें एक सर्वमान्य नेता का चयन करना था, जिनके विचार युग की धारा के अनुसार प्रगतिशील भी हों और दोनों दलों को मान्य भी हों। और स्व० रामदेवजी चोखानी के नाम की घोषणा कर दी गई।

सन् १९३५ ई० में कलकत्ता के मध्य स्थित मुहम्मदअली पार्क में अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन बड़े उत्साह एवं उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ;

जिसमें सभी वर्ग के लोगों ने सहर्ष भाग लिया। इस प्रकार इन मित्रों का स्वप्न साकार हुआ एवं धीरे-धीरे समाज के मतभेदों की जो बहुत वड़ी खाई हो गयी थी, वह भावना काफी हद तक दूर हो गयी और फिर दोनों वर्ग के लोग एक-दूसरे से मिलने-जुलने एवं विचार-विशर्श करने लगे तथा सम्बन्ध-व्यवहार भी पूर्ववत् होने लगे। इसके बाद सम्मेलन की गतिविधि शनैः-शनैः वढ़ती गयी तथा समय के साथ उन विषयों का भी स्वागत किया गया, जिन पर पहले विरोध था।

सन् १९४६ ई० के दंगे के समय श्री जालानजी को एक बार अपना जकरिया स्ट्रीट स्थित मकान छोड़ना पड़ा। उस समय जालानजी अपने परिवार के लोगों के साथ अन्यत्र न जाकर अपने सुहृद स्व० रामदेवजी के साथ रहना ही बेहतर समझे और चोखानी निवास में चले आये। श्री ईश्वरदासजी हमेशा मध्य-मार्गी रहे हैं, यही कारण था कि दो विरोधी विचारधाराओं को जोड़ने की कड़ी का काम करते रहे हैं। जालानजी एवं चोखानीजी दोनों ही समान विचार के व्यक्ति थे, अतएव मैं देखता था कि वे दोनों ही प्रायः घंटों सामाजिक, राजनैतिक आदि विषयों पर वातें करते रहते थे।

इसी समय प० बंग के मंत्रिमण्डल में सम्मिलित होने के लिए इन्हें आमन्त्रित किया गया। सवाल उठा कि स्पीकर बनें या मंत्री? इस विषय पर श्री जालानजी ने अपने सहकर्मियों से सलाह-मशविरा किया। उनके सामने मेरी उम्र तो वहुत कम थी, फिर भी मुझसे उन्होंने इस वारे में राय ली, यह भी उनकी एक महत्ता थी। पश्चात् इन्होंने स्पीकर का पद स्वीकार कर लिया। श्री जालानजी की विशेषता है कि अपने से छोटे या बड़े जो भी सम्वन्धित लोग हों, उनसे भी सदैव महत्वपूर्ण कार्यों में राय लेते हैं।

सम्मेलन तो मानो इनके जीवन का एक अंग ही है। जब कार्यक्षेत्र में रत थे, तब तो उसको सींचकर पुष्पित-पल्लवित इन्होंने किया हीं, अब भी जबकि वर्षों से अस्वस्थ हो चारपाई पर पड़े हुए हैं, प्रतिदिन सम्मेलन के कामों की चिन्ता करते रहते हैं और उसके समाचारों के लिये व्यग्र रहते हैं। गत तीन दशकों से श्रद्धेय जालानजी समाज के ऐसे नेता हुए जिन्हें बंगाली, गुजराती, सिख, मुसलमान सभी वर्ग के लोग श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। अपने स्पीकर-शिप के दौरान इनके निष्पक्ष निर्णयों के कारण केवल सरकारी ही नहीं, बल्कि विरोधी दल के लोग भी श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे। जालानजी, परिमार्जित तथा आकर्षक वक्तृताओं के कारण श्रोताओं के मन को बरवस अपनी ओर खींच लेते। इनकी कही बातें जनता के मन को छू जाती हैं। ये गंभीर एवं शिष्ट भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करते, जिससे सत्य कटु होते हुए भी किसी को अप्रिय नहीं प्रतीत होते।

लन्दन में जब कामनवेल्थ पार्लियामेन्टरी कान्फ्रेन्स सन् १९६१ ई० में हुई थी, तब वहाँ इनकी धारावाहिक प्रभावोत्पादक अंग्रेजी भाषण को सुनकर सभी प्रभावित हुए एवं वहाँ से बाहर होने पर कई अंग्रेज विद्वानों ने, अंग्रेजी में इतने सुन्दर भाषण के लिए, इनकी सराहना की और कहा कि हम नहीं समझ सकते थे कि कोई गैर अंग्रेज इतनी सुन्दर अंग्रेजी बोल सकता है।

ऐसे परम आदरणीय देश और समाज के हितैषी राजनीतिज्ञ का अभिनन्दन होने जा रहा है, तो सहज ही मेरा मन उल्लास एवं उत्साह से भर गया। ईश्वर से प्रार्थना है कि श्रद्धेय जालानजी को निरोग एवं शतायु बनावे।

विहार के कर्मठ समाज-सेवी

श्री जयनारायण लाठ

गौरवजन्य विभूति

हमारे मुजफ्फरपुर (बिहार) के एक दबंग और स्वाभिमानी हस्ती थे, जिनका नाम सेठ गौरीदत्त जालान था। उन्हीं स्वर्गीय सेठजी के सुपुत्र हैं हमारे समाज की विभूति श्रद्धेय श्री ईश्वरदासजी जालान, जिनमें बाल्य-काल से ही पिता के दबंग गुण विकसित हुए हैं। आप हमारे मारवाड़ी समाज के एक महान रत्न तो हैं ही, साथ ही देश के लिये भी एक गौरव-जन्य विभूति हैं।

आप हमारे मुजफ्फरपुर (बिहार) में जन्म लेकर यहीं शिक्षा ग्रहण की और बंगाल की महानगरी कलकत्ता में जाकर किस प्रकार सर्वप्रथम अधिवक्ता का पेशा ग्रहण किया और बिहार राज्य के मारवाड़ी होकर भी वंग प्रान्त की विधान सभा के स्पीकर तथा वंग राज्य मंत्रिमंडल के वरिष्ठ सदस्य लम्बे समय तक रहकर लोकप्रियता प्राप्त की। मारवाड़ी समाज के विकास का चिन्तन भी आप करते रहे, जिस संदर्भ में अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना करके प्रेरणा, मार्गदर्शन तथा सेवायें समाज को अर्पित की तथा कर रहे हैं।

आप साल में एक-दो बार कुछ दिनों के लिये मुजफ्फरपुर अवश्य ही आते रहते थे। मुझे आपके मुजफ्फरपुर आवास के समय में अपने घर सुरसंड से आकर आपके सन्निकट रहकर प्रेरणा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। वंग प्रान्त की विधान सभा के माननीय स्पीकर तथा राज्य के माननीय वरिष्ठ मंत्री रहने के कारण जब आप मुजफ्फरपुर आते थे, तो आपके पद-गौरव के अनुकूल राज्य सरकार की ओर से आपकी सुरक्षा के लिये सशस्त्र सैनिक दल कलकत्ता से ही आपके साथ आता था, जिनको आपकी वापसी में आपके साथ ही कलकत्ता लौट जाना होता था। परन्तु आप अपने घर मुजफ्फरपुर पहुंचते ही अपने पास केवल अपना आदेश पालक (चपरासी) मात्र ही रख कर बाकी सभी अंगरक्षकों को अपने-अपने घर जाने की छुट्टी कर देते थे और एक साधारण नागरिक की अवस्था में ही मुजफ्फरपुर में रहते थे। आपके अंगरक्षकों में अधिकतर इस बिहार प्रान्त के ही होते जो घर जाने के लिये आपकी यात्रा में सम्मिलित होने का अवसर बनाते रहते। आप इतने सरल होते कि अपने घर मुजफ्फरपुर में आपको कोई भी तड़क-भड़क अथवा रोब दिखावा कतई पसंद नहीं था। एक साधारण नागरिक की तरह नित्य ही सायं-सुबह किसी भी धनिक-गरीब, किसी भी स्वजन के यहाँ एकदम ही सादगी के साथ पैदल ही चलकर उनके घर पर अनायास ही जाकर मिलते। उनका हाल, चाल, कुशल, क्षेम जानने का प्रयत्न करते। यहाँ के उच्च अधिकारी से लेकर सामान्य नागरिक तक आपके मुजफ्फरपुर प्रवास समय में किसी भी समय असमय बगैर किसी औपचारिकता या पूर्व सूचना के आपसे मिलकर प्रसन्नता तथा सौभाग्य अनुभव करता था।

आपकी देश तथा समाज-सेवा को ध्यान में रख कर आपका शत्-शत् अभिनन्दन करते हुए गौरव अनुभव करता हूँ। हमारे श्रद्धेय जालानजी दीर्घायु हों।

शायर, साहित्य-प्रेमी

श्री शान्तिस्वरूप गुप्त

मारवाड़ी समाज का ओरेटर

"ये च वेदविदो वैश्या, ये चाध्यात्म वियोजना,
ते वदन्ति महात्मनम्, कृष्णम् धर्मं सनातनम्।"

जीवन में संघर्षरत होकर धन का सुमेरु खड़ा करनेवाले सेठों का तो समाज में अभाव नहीं है, लेकिन न्यायपूर्वक आजीविका अर्जित करते हुए सरस्वती के कृपापात्र हों, ऐसे समाज में कितने व्यक्ति होंगे ?

"चतुर्भि पुरुषा परीक्ष्यन्ते, ज्ञानेन शीलेन कुलेन कर्मणा।"

श्री ईश्वरदास जालान का मुजफ्फरपुर (बिहार) के एक समृद्ध परिवार में जन्म हुआ, वहीं उन्होंने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। पिता व्यावहारिक वेदान्ती थे—अतः उन्होंने अपने पुत्र को एक आदर्श सन्तान वनाने का सदा प्रयत्न किया। वचपन से ही उन्होंने इनके ऊपर एक संरक्षक नियुक्त कर रखा था, जो स्कूल की शिक्षा के अतिरिक्त व्यायाम, चरित्र-निर्माण तथा युवावस्था के स्वाभाविक दोषों से दूर रहने की शिक्षा देता था। ईश्वरदासजी उन्हीं के संरक्षण के कारण विद्वान्, बुद्धिमान, अध्यवसायी, कार्य-कुशल, सच्चरित्र, सदाचारी वन सके। एटर्नी का पेशा अपनाकर भी उसमें सचाई का पालन करना दुर्लभ है। प्रियंवद के ये मूर्तिमान उदाहरण हैं। मिलनसारिता तो ऐसी है कि जो इनसे एक वार मिल लेता है, प्रभावित हुए विना नहीं रहता। एक वार इनके भाषण से प्रभावित होकर श्री घनश्यामदास जी बिड़ला ने इन्हें 'मारवाड़ी समाज का ओरेटर (वक्ता)' करार दिया था। ये सीधे-सादे, झूठी दिखावटी प्रशंसा से दूर हैं।

"आयु के शत वर्षों की निधि परमात्मा ने मनुष्य को प्रदान की है। शत वत्सरों की इस अवधि पर पहुँचकर हमारा यह शरीर जीर्ण-शीर्ण होने लगता है। इस अवधि तक हम अपने पुत्रों को पिता वनते देखते हैं और सुखी होते हैं। हे परमात्मा ! आयु की यह वेगवती धारा कहीं रिसे नहीं।"—ऋग्वेद

इस मंत्र के अनुसार श्री ईश्वरदासजी का कुल शिक्षित पुत्र, पौत्र एवम् प्रपौत्रों से युक्त है। मनुष्य लोक के सब सुख उन्हें प्राप्त हैं। इधर कुछ वर्षों से वे रोगग्रस्त हैं, फिर भी धैर्यपूर्वक भगवच्चिंतन करते हुए जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसे महान् पुरुष का अभिनन्दन कर हम अपने को ही गौरवान्वित कर रहे हैं। इनके सदृश सदाचारी, संयमी, प्रतिभाशाली, मिलनसार, मृदुभाषी व्यक्ति की समाज को सदा-सर्वदा ही आवश्यकता रहेगी। मैं परमात्मा से ऐसे मनीषी को पूर्ण स्वस्थ कर शतंजीवी करने की प्रार्थना करता हूँ ताकि आपकी गुण-गरिमा से हमारा सारा समाज गौरवान्वित हो।

सामाजिक कार्यकर्त्ता

श्री नथमल बजाज

सहजता के परिचायक

श्री ईश्वरदासजी जालान के अभिनन्दन में अगणित स्वर मुखरित होंगे। वंदना के उन स्वरों में मेरा भी एक स्वर मिला लें।

श्री जालानजी राष्ट्र एवं मानवता के उस महान परम्परा में से हैं, जिन्होंने अपने कृतित्व एवं व्यक्तित्व से राष्ट्रीय, सामाजिक एवं जातीय संगठन तथा गौरव को एक उज्ज्वल स्वरूप प्रदान किया है। मैं उनके निष्कलंक व्यक्तित्व को इसलिये नमन नहीं करता हूँ कि वे मारवाड़ी समाज या यों कहिये हिन्दी भाषाभाषी समाज के पहले नररत्न हैं, जिन्होंने इस बंग प्रदेश की सरकार में सर्वप्रथम एक गौरवमय पद को सुशोभित किया, मैं उन्हें इसलिये भी नमन नहीं करता हूँ कि वे राष्ट्रीय आंदोलन एवं गांधीवादी विचार-धारा के समर्थ वाहक थे, मैं उन्हें इसलिए नमन करता हूँ कि उनके भीतर एक ऐसे अकुण्ठित आदमी का निवास है, जो सरलता, सहजता, स्नेह एवं संवेदनशीलता का जीवन्त प्रतीक ही नहीं, अपितु प्रतिकूलताओं में भी अविचलित एवं अम्लान रहता है।

श्री जालानजी शासन एवं कांग्रेस में एक वर्चस्वी व्यक्ति थे। लेकिन जब भी कोई अवसर आया, वे बड़े-बड़े नेताओं के बीच में न बैठकर हम लोगों के ही बीच बैठकर अपनी सहजता का परिचय देते थे। वे अपने स्नेही जनों को कभी भी यह एहसास नहीं होने देते हैं कि दुनिया की उपाधियां स्नेही जनों के मध्य एक दीवाल बनकर खड़ी हो सकती हैं। उनके अन्दर जो एक सही आदमी है, वही उनका यथार्थ परिवार है। वे घोर विरोध में भी अपनी सहज प्रवृति को नहीं छोड़ते हैं। व्यवधानों एवं विरोधों की अग्नि में तपकर वे निरन्तर कुन्दन की भाँति चमकते चले गये। राजनीति की काजल की कोठरी में जाकर जहाँ बड़े-बड़े सयाने भी कालिख से नहीं बचते हैं, वहीं जीवन- पर्यन्त रहकर भी उन्होंने दम्भ, पाखण्ड, छल आदि को जैसे जाना ही नहीं। संत कबीर के शब्दों में मैं केवल यही कह सकता हूँ कि—

यह चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि कै मैली कीन्ही चादरिया।
दास कबीर जतन ते ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया।।

जालानजी का अभिनन्दन एक सही आदमी का अभिनन्दन है, एक राष्ट्र, समाज एवं मानवता के सेवाव्रती के स्रोत का अभिनन्दन है और अभिनन्दन है प्रेरणा के एक अजस्र स्रोत का। अर्चना की इस पावन वेला में मेरी विनम्र श्रद्धा की छोटी डाली के अंकिचन सुमन ऐसे मनस्वी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर सादर सम्मान एवं सोल्लास समर्पित। वे हमारे समाज के गौरव हैं, हिन्दी भाषा-भाषियों के कण्ठहार हैं। बस इतना ही कहकर मैं पुन: उनके पावन स्वरूप को प्रणाम करता हूँ।

उस मंदिर तक जानें का है यह पहला सोपान।
अभिनन्दन शतबार तुम्हारा वंदन हो जालान।।

ईश्वरदासजी की सुशिक्षिता पुत्री

श्रीमती उमा गुप्ता

खड़ाऊँ की आवाज

अपने ही बाबूजी के बारे में क्या कहूँ! व्यक्तियों को उनकी सारी कमजोरियों के बावजूद प्यार करने वाले बाबूजी का जीवन बहुत व्यस्त था। राजनीति उनका कर्म था, लेकिन वे प्यार करते थे मारवाड़ी समाज और अपने परिवार को। मारवाड़ी समाज को उन्होंने अपने परिवार से अलग नहीं माना। इसी प्रेम की अधिकता के कारण वे समाज को शिक्षित बनाना चाहते थे, उसे दहेज और पर्दा जैसी कुरीतियों से मुक्त करना चाहते थे।

बचपन से ही हमने उनके जीवन को नियमों से बँधा देखा और वही नियमितता वे हम बच्चों के जीवन में भी लाना चाहते थे। सुबह छः बजते ही उनकी खड़ाऊँ बज उठती थी। घर के हर सदस्य और विशेषकर बच्चों की गतिविधि में उनकी गहरी रुचि थी और थी उनके जीवन को सँवारने की सतत् चेष्टा। बाहर से आये व्यक्ति भी इस वातावरण में साँस लेते ही इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहे।

सुबह आठ बजे अपनी टेबिल पर बैठते ही वे सबसे पहले परिवार के सब सदस्यों और बच्चों को इन्स्ट्रक्शन शीट (Instruction Sheet) भेजते थे। इस स्लिप में तुलसी, कबीर, रहीम जैसे महान कवियों के दो-तीन दोहे लिखे रहते थे, जिन्हें याद करना पड़ता था। व्यस्तता के बीच भी वे बच्चों के अत्यन्त करीब थे। उन्होंने कभी किसी को डाँटा नहीं, पर उनका प्यार ही उनसे डराता था।

नियम के प्रति अटूट आस्था रखने वाले बाबूजी हृदय से बहुत ही कोमल थे। उन्होंने हमें जीवन भर इतना प्यार दिया कि उसी स्नेह की छाया में पलकर हम सब एक माला में पिरोये हुए मोतियों की तरह अलग-अलग रहकर भी कहीं से बहुत अधिक जुड़ गये। राजनैतिक और सामाजिक जीवन में वे हजारों व्यक्तियों से मिले। जिसके लिये जो कुछ भी कर सके किया और जिसके लिये कुछ भी नहीं कर सकते थे उसकी भी दुःख-गाथा बहुत ही ध्यान से सुनते थे। एक बार ऐसे ही तेल मालिश करवाते समय एक व्यक्ति उन्हें अपनी जीवन-कहानी सुना रहा था। बहुत देर हो गई, फिर भी बाबूजी ने उसमें बाधा नहीं डाली। बाद में जब वह चला गया, तब मुझसे नहीं रहा गया और मैंने पूछ ही लिया, 'बाबूजी, यह जानते हुए कि आप इस बारे में कुछ भी नहीं कर सकते, फिर भी आप इतनी देर तक उसकी राम कहानी सुनते रहे।' इस पर वे अपनी मधुर हँसी हँस पड़े और कहने लगे, 'बेटा, जिसके लिये कुछ भी न कर सको, उसकी बात तो सुन सकते हो।' उनकी कही यह बात हृदय में कहीं बहुत गहरे उतर गई।

उनका कार्यक्षेत्र बहुत विशाल था। एक ओर राजनीति थी—दूसरी ओर मारवाड़ी समाज के प्रति गहन प्रेम। साथ ही बड़े परिवार का भारी दायित्व। यह सब कुछ उनके जीवन में इस तरह से जुड़ा था कि उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

जीवन को पूर्ण रूप से प्यार करने वाले बाबूजी ने जीवन में हमें स्नेह और संतुलन का संदेश दिया। आज बाबूजी अस्वस्थ हैं, पर उन्हें देखते ही उनसे जुड़ी हजारों बातें एक-एक करके याद आने लगती हैं और सबसे अधिक याद आती है—उनकी खड़ाऊँ की आवाज। जिस खड़ाऊँ की आवाज से कभी हम इतना डरते थे, आज मन तरस जाता है, उसी आवाज को एक बार फिर से सुनने के लिये।

शिक्षाप्रेमी, साहित्यकार

श्री हर्षनाथ

सहज मानव

श्री ईश्वरदासजी की सहज मानवता का बोध पिछले तीन-चार वर्षों में मुझे विशेष रूप से हुआ, जब मैं उनके अत्यन्त निकट सम्पर्क में आया। वे अपनी आत्म-कथा लिख चुके थे और प्रकाशित होने के पहले उसे पढ़ने के लिए उन्होंने मुझे दिया। उस अवसर पर घंटों मैं उनके साथ रहता; और अपने जीवनकी उन छोटी-छोटी घटनाओं पर वे बातें करते, जिन्हें उन्होंने अपनी आत्म-कथा में स्थान नहीं दिया या स्पर्श करके आगे बढ़ गये थे—बड़े राजनेताओं की व्यक्तिगत स्वार्थ-साधन की प्रवृत्ति, पद-लोलुपता और राजनैतिक दांव-पेंच; जिसे हम कूटनीति भी कह सकते हैं, से उनका मन खिन्न हो उठता था। किस प्रकार एक सम्मानित राजनेता ने मुख्य मंत्री बनने के लिए विधान सभा में अपना बहुमत कायम किया, जब कि वे अल्पमत में थे—इसका उल्लेख करते समय वे स्वतन्त्र भारत की राजनीति में छल-छद्म से दुखी होते थे।—यह उनकी अपने को श्रेष्ठ दिखाने की प्रवंचना नहीं थी, बल्कि उनका सहज रूप था। जीवन में वे आस्थावान्, भारतीय परम्परा के पोषक और सात्विक-जीवन पद्धति में विश्वास करने वाले व्यक्ति हैं। इसीलिए राजपुरुषों में जवाहरलाल नेहरू की जीवन-पद्धति से वे उतने प्रभावित नहीं थे, जितने होचीमिन्ह की सहजता से प्रभावित थे। इसका वे बार-बार उल्लेख करते थे। जब उत्तर वियतनाम के राष्ट्रपति होचीमिन्ह भारत यात्रा के दौरान कलकत्ता आये और कलकत्ते में उनका नागरिक अभिनन्दन हुआ, तब स्वायत्त-शासन मंत्री के रूप में ईश्वरदासजी को उनके साथ रहना था। राजभवन के कक्ष से निकलने पर कुछ विलंब देखकर राष्ट्रपति राजभवन के लान में हरी घास पर पालथी मारकर बैठे गये। ईश्वरदासजी भी उनके साथ बैठ गये ईश्वरदासजी इस घटना का जिक्र प्रायः मुझसे करते थे। होचीमिन्ह की राष्ट्र के राजनेतारूप के साथ उनकी यह संत प्रवृत्ति और सहज मानवता जालानजी को बहुत भाई। इसका कारण यही है कि ईश्वरदास की प्रवृत्ति भी सहज मानवता से जुड़ी हुई है।

इसी प्रकार और एक घटना का ईश्वरदासजी प्रायः जिक्र करते थे। पश्चिम बंगाल सरकार में जब वे विधि-मंत्री थे, तब फाँसी की सजा पाये हुए अभियुक्तों के क्षमा-दानकेलिए राज्यपाल के पास आये प्रार्थना-पत्रों पर कानूनी दृष्टि से विधि मंत्री को नोट देना पड़ता था।

ईश्वरदास स्वयं भी विशिष्ट विधि-वेत्ता रहे हैं, अपने विभागीय सेक्रेटरी को वे यही सलाह देते थे कि कानून की मर्यादा का ध्यान रखते हुए ऐसा नोट तैयार करो, जिससे अभियुक्त फाँसी के फन्दे से बच जाये। जब कभी ईश्वरदासजी अभियुक्त की प्राणरक्षा का कोई कानूनी पक्ष रिमार्क में नहीं दे पाते थे, तो उनके ही शब्दों में "मेरा हृदय कचोटने लगता था और सेक्रेटरी निर्लिप्त रहता था कि जब कानून अनुमति नहीं देता तो हम क्या करें?" वास्तव में यहाँ हृदयपक्ष और बुद्धिपक्ष का द्वन्द्व था। ईश्वरदासजी हृदय-प्रधान हैं, इसी से उनका दिल कचोटता था।

ईश्वरदासजी के जीवन से इस प्रकार की अनेक छोटी-छोटी घटनाएँ जुड़ी हैं, किन्तु ये ही छोटी-छोटी घटनाएँ आन्तरिक जीवनधारा की मूल-प्रवृत्ति की साक्षी हैं और उनको सहज-मानवता की प्रतीक हैं। ईश्वरदासजी राष्ट्रीय स्तर के नेता नहीं और राजपुरुष नहीं थे, न राष्ट्रव्यापी ख्याति के समाज-सुधारक। किन्तु इससे उनकी महानता में कोई फर्क नहीं पड़ता। उन्होंने अपनी क्षमता भर राष्ट्र और समाज को अपना योगदान दिया।

धनि रहीम जल सरवरहिं, लघु जिव पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥

श्री ईश्वरदासजी की महत्ता इसी सन्दर्भ में है।

पूर्वोत्तर भारत के समाज-सेवी

श्री जुगुलकिशोर केडिया

निष्ठावान और कर्त्तव्यपरायण व्यक्तित्व

श्री ईश्वरदासजी जालान का जीवन निःसंदेह त्यागपूर्ण रहा है। अनेक संस्थाओं को उनका अमूल्य योगदान रहा है। उन्होंने राष्ट्र को विभिन्न रूप से अपनी सेवाएँ दी हैं। उदाहरणार्थ बंगाल में ३० वर्षों तक उनका अनेक रूपों से योगदान रहा है। यह उनके निःस्वार्थ एवं त्यागपूर्ण जीवन का ही उदाहरण है कि उन्होंने डिपुटी मजिस्ट्रेट पद की नियुक्ति को अस्वीकार कर दिया। साथ ही 'अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन' की स्थापना भी इनकी ही देन है।

इस पुनीत अवसर पर इस प्रकार के निष्ठावान, लगनशील, त्यागी और कर्तव्यपरायण व्यक्तित्व के दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

समाज-सेवक

श्री शंकरलाल बाजोरिया

मेरे मंत्रदाता

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोऽपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥

जो वयोवृद्धों को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लेते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है।

पूज्य श्री ईश्वरदासजी जालान से मैं विगत तीस वर्षों से प्रेरणा ग्रहण करता आ रहा हूँ। बिहार प्रान्तीय मारवाड़ी सम्मेलन के देवघर अधिवेशन के अवसर पर एक युवा-सम्मेलन का आयोजन हुआ था। इस युवा-सम्मेलन को पूज्य जालानजी ने संबोधित किया था। उन्होंने कहा था कि प्रत्येक समाज-बन्धु को समाज-सेवा के लिए नित्य कुछ समय देने का संकल्प करना चाहिए। उनके इस आह्वान पर समय देने का निश्चय करने वालों में एक मैं भी था। मैंने तब से यथासाध्य इस व्रत का पालन करने का प्रयत्न किया है। यत्किंचित मैं जो भी कर पाया हूँ, उसका मुख्य श्रेय उनकी अविस्मरणीय प्रेरणा को ही है। मेरी परमपिता से प्रार्थना है कि वे शतायु होकर अपने मार्गदर्शन से समाज को प्रेरित करते रहें।

वयोवृद्ध पत्रकार

आचार्य जी० एस० पथिक

जैसा मैंने उन्हें देखा

ईश्वरदासजी जालान विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं। धर्म, संस्कृति, नैतिकता और समता की भावनाओं से उनका व्यक्तित्व पूर्ण है। कर्मठता, कार्यशीलता और सेवा की प्रवृत्ति से उनके जीवन में अनोखा निखार आया।

जालानजी से मेरा सम्पर्क श्री दुर्गाप्रसाद खेतान के माध्यम से हुआ। उस समय वह खेतान कम्पनी के पार्टनर थे। यहीं से उनका कानूनी उद्भव हुआ था। उनकी समाजसेवा का कार्यक्षेत्र मारवाड़ी छात्र-निवास था। इस संस्था के द्वारा समाज के अनेक व्यक्ति कार्यक्षेत्र में आगे बढ़े।

ईश्वरदासजी जालान स्वतंत्र भारत की पश्चिम बंगाल की प्रथम विधान सभा के अध्यक्ष के पद पर निर्वाचित हुए। अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने गौरवपूर्ण कार्य किए। विश्व के लोकतन्त्रीय देशों के स्पीकरों की जो सभा लन्दन में हुई, उसमें जालानजी का जो सारगर्भित भाषण हुआ, वह ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

हिन्दी में जालानजी का उद्भव छात्र-जीवन से हुआ था। इसी समय से उनकी हिन्दी सम्बन्धी गतिविधियाँ प्रारम्भ हुईं। उन्होंने हिन्दी की अपनी दो-तीन रचनाएँ सरस्वती में प्रकाशित होने के लिये पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के पास भेजीं। श्री द्विवेदी ने जालानजी की रचनाओं को साज-संवार कर सरस्वती में स्थान दिया।

पश्चिम बंगाल विधान सभा की सदस्यता से जालानजी का राजनीति में उद्भव हुआ। डॉ० विधानचन्द्र राय और श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन—दोनों मुख्यमंत्री उनकी कार्यक्षमता से सदा प्रभावित रहे। श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन के मुख्य मंत्रित्वकाल में उन्होंने विधि मंत्री का पद ग्रहण किया था। अपने मंत्रित्वकाल में जालानजी ने कभी किसी को निराश

नहीं किया। इस सेवा में उनका मंत्रित्व पद कभी आड़े नहीं आया। बड़ावाजार के व्यक्ति जालानजी के पत्रों को दर्शनी हुण्डी मानते रहे। ऐसा रहा, उनका सार्वजनिक जीवन।

जालानजी ने वैश्यकुल में जन्म लिया, पर प्रवृत्ति उनकी ब्राह्मण जैसी रही। जमनालालजी वजाज जब रायवहादुर थे—अपनी उसी युवावस्था में उनमें समाजसेवा की भावना का उदय हुआ। उन्होंने मारवाड़ी अग्रवाल महासभा को जन्म दिया। इस संस्था का पहला अधिवेशन वर्धा में सेठ खेमराज के सभापतित्व में हुआ था। वाद में उसका कार्यालय कलकत्ता चला आया। इस संस्था का देश में इतना व्यापक संगठन हुआ कि कांग्रेस के उपरान्त ही उसकी गणना थी। इस संस्था के अन्त होने पर ईश्वरदासजी जालान समाज सेवा में आगे आए और उन्होंने अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना की। इस संस्था का देश में व्यापक प्रसार करने में उन्होंने कोई परिश्रम उठा न रखा। अपने रक्त और पसीने से सींचकर उसे शक्तिमान बनाया। और जव वे शरीर से अस्वस्थ हो गये तो श्री भंवरमल सिंघी और श्री नन्दकिशोर जालान जैसे कर्मठ व्यक्तियों के हाथ में सम्मेलन की वागडोर सौंप कर उसे नवजीवन प्रदान करने में सफलता प्राप्त की।

आज जालानजी रुग्णावस्था में शय्या पर पड़े हुए हैं। मेरी कामना है कि वे रोगमुक्त और शतंजीवी हों।

दैनिक 'सन्मार्ग' के संचालक, समाजसेवी

श्री रामअवतार गुप्ता

मिलनसरिता व उदारता के प्रतीक

स्वर्ण की परीक्षा उसे कसौटी पर कस कर और अग्नि में तपा कर की जाती है और व्यक्ति की परीक्षा उसके त्याग, गुण, शील और कर्मों द्वारा की जाती है। ऐसे लोगों की संख्या बहुत होती है, जो अपने कार्यों, सद्भावना और परिश्रम द्वारा समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेते हैं। उन लोगों का महान् व्यक्तित्व वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाता है, जिनका समाज और देश के प्रति विशेष अवदान होता है। श्री ईश्वरदासजी जालान का व्यक्तित्व भी वैसे ही विशिष्ट व्यक्तियों की श्रेणी में है।

श्री जालान का जीवन प्रारम्भ से ही संघर्षमय रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्रास के वे एक सेनानी थे। वैभव सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के नाते वे चाहते तो अपना सारा जीवन वैभव-विलास में बिता सकते थे, लेकिन उन्होंने उसे ठुकरा कर त्याग और कष्टमय जीवन को वरण किया।

सन् १९५२ ई० के आम चुनाव के बाद प० बंगाल में डा० राय के नेतृत्व में जो मंत्रिमण्डल बना, उसमें वे स्वायत्तशासन विभाग के मंत्री बनाये गए। इसके पूर्व वे राज्य

विधान सभा के स्पीकर रह चुके थे। आपकी योग्यता, कुशलता एवं कर्मठता का ही यह सुपरिणाम रहा कि जो भी पद आपको दिया गया, उसे आपने बड़ी ईमानदारी और कुशलता से संभाला। सन् १९५७ ई० के आम चुनाव के वाद आप प० वंगाल के विधि मंत्री वनाये गए थे। इस विभाग को भी आपने बड़ी दक्षता से संभाला।

प्रारम्भ से ही श्री जालान की रुचि समाज-सेवा की तरफ रही है। अखिल भारत-वर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के आप संस्थापक हैं। इस सम्मेलन के माध्यम से समाज की पर्याप्त सेवा की जा रही है। इसके अतिरिक्त आप अनेक संस्थाओं के प्रमुख प्रणेता रहे हैं।

आपके सम्पर्क में जो भी आता है, वह आपकी मिलनसारिता और उदारता से पूर्ण रूप से प्रभावित हो जाता है। आपसे मतभेद रखने वाले भी आपका पूर्ण सम्मान करते हैं। आपके राजनीतिक विरोधी भी आपको अपने अभिन्न मित्र के रूप में देखते हैं। प० वंगाल में जव ज्योति वसु मुख्य मंत्री वने तव श्री जालान ने उनके प्रति अपनी शुभकामना प्रकट की और कहा कि मैं आज रुग्ण शय्या पर हूँ, अन्यथा मैं स्वयं श्री वसु से मिलकर उन्हें हार्दिक शुभकामनायें प्रकट करता। श्री जालान के उपर्युक्त उद्‌गार राजनीतिक विरोधियों के प्रति अपार सद्‌भावना का द्योतक है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्रदान करे, ताकि वे वर्तमान पीढ़ी को अपने ज्ञान एवं गुणों से लाभान्वित करते रहें।

आर्यवीर शान्ति परिषद सचिव
डा० चन्द्रमोहन पोद्दार

भारतीयों के प्रिय

श्री ईश्वरदासजी जालान प्रख्यात राजनीतिज्ञ, विचारक और समाजसेवी के रूप में भारतीयों के अत्यन्त प्रिय और सुपरिचित हैं। उन्होंने सर्वत्र ही सर्वप्रियता और प्रसिद्धि प्राप्त की है। अब वे वहुत वृद्ध हो गये हैं। परन्तु उनका मन और मस्तिष्क दोनों ही सवल और स्वस्थ हैं। सत्य अनुभूतियों की व्यापकता और प्रौढ़ता ने जालानजी के सौन्दर्य को वहुत अधिक बढ़ा दिया है। अपनी साधना के द्वारा वे जन-मानस को छूने में समर्थ हुए हैं, वे सभी प्रकार से अभिनन्दनीय हैं।

समाज-सेवी
श्री भोलानाथ झा, कहलगांव

सफलता के प्रतीक

माननीय जालानजी एक-साथ विद्वान्, समाज-सेवक, प्रशासक, विधान सभाध्यक्ष एवम् मंत्री के रूप में सफल रहे हैं।

यद्यपि उनके वाल्यकाल में समाज में शिक्षा का प्रचलन न था, फिर भी उन्होंने उच्चतम शिक्षा प्राप्त की।

ईश्वर से उनको शतायु बनाने की कामना करता हूँ।

इण्डिया-एशिया कल्चरल सोसाइटी के सचिव

श्री जी० एन० कपूर

शक्ति-स्तम्भ

मुजफ्फरपुर निवासी मेरे स्वर्गीय मामा श्री गंगा विशनजी के मित्र श्री ईश्वरदासजी जालान मेरे अग्रज हैं। सन् १९२६ ई० के लगभग स्वर्गीय श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान ने अपने कार्यालय में उनसे मेरा परिचय कराया था। तब से श्री जालान के सम्पर्क में रहा हूँ और जब भी किसी सहायता की आवश्यकता पड़ी, उन्होंने मेरी सहायता की। समाज और संस्थाओं के लिए भी वे शक्ति-स्तम्भ हैं। मैं उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ, जिससे वे मानवता की सेवा कर सकें।

समाजसेवी, शिक्षाप्रेमी

श्री नथमल भुवालका

उस समय का ग्रामीण पंच

श्री ईश्वरदासजी से मेरा करीब ४५ वर्षों का परिचय है। मैंने उनको शुरू से ही सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करते देखा है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में वे अग्रणी थे। समाज में विधवा-विवाह, बिरादरी भोज, पर्दा-प्रथा, अशिक्षा, दहेज, आदि अनेक सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये वे सतत कार्यरत रहे। इन्हीं सामाजिक सुधारों के अन्तर्गत ड्रामा देखा था, उसमें ईश्वरदासजी ने स्वयं एक ग्रामीण पंच के रूप में पार्ट लिया था एवं श्री रामकुमारजी भुवालका ने हरिजन का पार्ट किया था।

कार्यकर्त्ताओं के मार्गदर्शन का जालानजी ने जिस खूबी के निर्वाह किया, वह अनुकरणीय है। उस जमाने में प्राचीन विचार के सनातनधर्मी एवं समाज-सुधारकों के विचारों में बहुत अन्तर था, यहाँ तक कि उनमें एक दूसरे के साथ विचारों का आदान-प्रदान भी नहीं हो पाता था। जालानजी ऐसे व्यक्ति थे कि दोनों विरोधी विचार-धाराओं का समन्वय करने की चेष्टा करते थे।

श्री ईश्वरदासजी एक कानूनवेत्ता, योग्य शासक, कर्त्तव्य परायण, सुदक्ष वक्ता, धर्मपरायण, अपने क्षेत्र के लोकप्रिय नेता तो हैं ही। अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना कर देश के अन्दर फैले समाज को संगठित करने में इनका महत्वपूर्ण अवदान है। यही कारण है कि देश के किसी कोने में चले जाइये, समाज के लोग ईश्वर-दासजी के नाम से प्रभावित मिलेंगे। सामाजिक सुधारों की गतिविधियाँ सम्मेलन के माध्यम से देश के कोने-कोने में आज देखी जा सकती हैं।

बंगाल की विधान सभा के स्पीकर के पद पर वर्षों तक रहकर उन्होंने जिस योग्यता व निष्पक्ष नीति का अवलम्बन किया उसकी सराहना उनके विरोधी दलवाले भी करते

रहे। मंत्रिमण्डल में यही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनकी आलोचना कोई भी दल वाला नहीं करता था। स्पीकर के पश्चात् इन्होंने स्वायत्तशासन, पंचायत एवं बाद में कानून मंत्री के रूप में भी अनेक वर्षों तक जिस कुशलता के साथ काम किया और अन्त तक जिस प्रकार अपने कर्तव्य का पालन किया उसकी सराहना आज भी आम लोगों द्वारा की जाती है। कोई भी किसी काम से उनके पास पहुँच जाता तो उसकी यथासाध्य सहायता या सहयोग करते रहे। इनकी योग्यता और निष्पक्ष होकर कार्यनिष्ठ रहने का यही प्रमाण है कि केवल राजस्थानी समाज ही नहीं, अपितु अन्य सभी जातियों एवं वर्गों के लोग इनको आज भी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

राजस्थानी व्यापारी समाज के एक ऐसे नर-पुंगव ने राजस्थानी समाज के लोगों का अन्य समाज वालों की दृष्टि में गौरव-वर्धन किया। यही कारण है कि हम आज भी, जब कि वे ८३ वर्ष की आयु में हैं, अपने बीच पाकर गौरव का अनुभव करते हैं और उनके स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन की कामना करते हैं, जिससे वे और भी देश और समाज की सेवा करते हुए समाज को गौरव-मंडित करते रहें।

सुप्रसिद्ध कलाकार

इन्द्र दुगड़

सफेद खादी के वस्त्रों का वह व्यक्तित्व

१९३७ ई० की बात है। जीयागांव से दसवीं तक पढ़ाई करके उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु कलकत्ता आया। मारवाड़ी छात्र-निवास का बोर्डर बना और कलकत्ता के वृहत् सामाजिक जीवन से धीरे-धीरे परिचित होता गया। उस समय की गतिविधियों के दौरान तथा सभा-समितियों के माध्यम से जिन लोगों से परिचय हुआ श्री ईश्वरदासजी जालान उनमें अन्यतम हैं। सफेद खादी के वस्त्रों में श्री जालानजी का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक लगता था। उनके प्रति स्वतः ही श्रद्धा के भाव पैदा हो जाते थे। आज भी उनका ध्यान आते ही मुझे बरवस उनका पहनावा भी याद आ जाता है।

छात्र-निवास की ही बात है—किसी बात को लेकर हमलोगों का छात्र-निवास के प्रबन्धकर्त्ताओं से थोड़ा तनाव हो गया। जालानजी हमारे बीच में आये, बैठे, बातें सुनीं और बातें कही सारी समस्या दूर हो गई। उनका समस्या को समझने और समाधान तक पहुँचने का तरीका अनूठा रहा।

जालानजी से मेरा सम्बन्ध फिर और गहरा और मधुर होता गया। अन्ततः मैं तो यह कहूँगा कि उनका मुझे पिता-तुल्य स्नेह मिला। सम्मेलन के दौरे में मैं उनके साथ भागलपुर, मुंगेर आदि स्थानों पर गया। उन्होंने मेरा परिचय वहाँ बड़े ही गौरव के साथ दिया, मेरे चित्र बिकवाये। मेरी चित्र-प्रदर्शनियों में कई दफा आते थे और कला के विकास को देखकर खुशी से फूले नहीं समाते थे।

श्री जालानजी के जकरिया स्ट्रीट निवासस्थान पर मैं कितनी ही दफा गया—कभी उनके बुलाने पर, कभी कुछ उपदेश व मार्गदर्शन प्राप्त करने के मन्तव्य से उनके घर का आतिथ्य हमेशा प्यार व दुलार के साथ सम्मान देता—जो बहुत कम जगह मिलता है।

मुझे गर्व महसूस होता है कि मैं श्री जालानजी का स्नेह-पात्र रहा हूँ। जालानजी सरीखे पिता-तुल्य व्यक्तित्व हेतु मंगलमय ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ, वे शतायु हों और स्वस्थ रहकर हमें कर्त्तव्य-मार्ग पर बढ़ने की शक्ति दें।

प्रसिद्ध अधिवक्ता

श्री ताराचन्द सराफ

पुरुषोत्तम आदर्श

सन् १९२७ ई० में मैं बोगरा (पूर्वी बंगाल) से कलकत्ता आकर डा० राममनोहर लोहिया के साथ एक ही कमरे में मारवाड़ी छात्र-निवास में रहता था एवं १९३० ई० में इसका मंत्री बनने पर श्री जालानजी के अति निकट आने का अवसर मिला।

श्री ईश्वरदासजी उस समय खेतान एण्ड कम्पनी में सोलीसिटर थे। छात्रों के भविष्य की चिन्ता करते हुए मारवाड़ी छात्र-संघ की स्थापना की गई और उसका पहला काम था—"पुस्तक बैंक।" लेकिन उस समय समाज के सुधारवादी वर्ग का नेतृत्व सर्वश्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, बसन्तलालजी मुरारका, सीतारामजी सेकसरिया, मूलचन्दजी अग्रवाल, तुलसीरामजी सरावगी करते थे और अपरिवर्तनशील रूढ़िवादी वर्ग के नेतृवृन्द थे सर्वश्री बैजनाथजी बाजोरिया, सर बद्रीदास गोयनका, रायबहादुर रामदेव चोखानी प्रभृति। गाँधीजी के अनुसरण में चलनेवाला दल सरकार में प्रभावहीन था और रूढ़िवादी दल को सरकारी संरक्षण प्राप्त था। इनका मतमतान्तरों में इतना गहरा अन्तर था कि छात्रों के संबंध में भी काफी बाधाएँ उपस्थित होने लगी थीं।

अस्तु समाज की भावी उन्नति के लिये दोनों वर्गों में मेलजोल होना परमावश्यक था। अतः छात्रसंघ के कार्यकर्त्ताओं में मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना करने की प्रेरणा हुई। सुधारवादी दल का प्रतिनिधित्व ईश्वरदासजी जालान ने किया और रूढ़िवादियों का राय-बहादुर रामदेवजी चोखानी ने और यह निश्चय किया गया कि दोनों दल एक ही मंच पर बैठकर समाज का काम करेंगे, लेकिन ऐसा कोई विवादास्पद विषय, जिसमें वैमनष्य बढ़ता हो, उसका प्रकरण नहीं उठाया जायेगा। इस प्रकार कलकत्ता में सर्वप्रथम अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और बाद में शीघ्र ही दिनाजपुर में उत्तर बंगाल का, जिसके प्रेरक-प्रणेता भी ईश्वरदासजी ही थे।

सन् १९३८ ई० में श्री जालानजी विधान सभा के लिये खड़े हुए तो सभी मित्रों-परिचितों का पूरा समर्थन आपको मिला। उन्होंने १९३७ से १९६७ ई० के सुदीर्घ ३० वर्षों तक विधान सभा के अध्यक्ष एवं प० बंग सरकार के मंत्री पदों पर गौरवपूर्ण रूप में रह कर अपनी पवित्रता, सरलता, कार्यकुशलता एवं निःस्वार्थ सेवा के मार्ग को प्रशस्त करते हुए तथा बंग समाज के सामने पुरुषोत्तम आदर्श उपस्थित करते हुए हमारे समाज

को गौरवान्वित किया है। इस हेतु समस्त मारवाड़ी समाज श्री जालानजी का परम आभारी है तथा इनके आदर्शों का अनुकरण कर हमारी वर्त्तमान व भावी संतान ऐसे ही गौरवमय पदों की प्राप्ति करेंगी, यही हमारी मंगल कामना है।

समाज-सेवी, कला, काव्य-प्रेमी

श्री नन्दलाल सुरेका

नरपुंगव ! जिससे हम गौरवान्वित हैं

मैं जब समझने लगा कि देश, राजनीति व समाज क्या है, तब से ही समाज के नेताओं के बारे में आदरणीय जालानजी का नाम सुनता रहा और उनके सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकलापों की चर्चा समाज के लोगों में होते देखी। इससे मैं उनकी ओर अनायास खिंचता गया। जैसे ही मैंने सामाजिक कामों में भाग लेना प्रारम्भ किया, जालानजी का प्रभाव मुझ पर भी स्पष्ट परिलक्षित होता गया।

अपने छात्रजीवन से ही सामाजिक कार्यों में भाग लेनेवाले संगठन की शक्ति को उजागर करने वाले, मारवाड़ी छात्र संघ के निर्माण में प्रमुख, समाज के दो विरोधी मनोवृत्ति एवं विरोधी कार्यों से छिन्न-भिन्न हुए समाज को पुनः एक मंच पर विराजमान करने वाले श्री ईश्वरदासजी का समाज को अद्भुत अवदान रहा है। आपके सुलझे और समन्वयवादी विचारों का ही प्रभाव था कि आपस में कट्टर विरोध रखनेवाले समाज के सभी कार्यकर्त्ता मित्र सन् १९३५ ई० में अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के मंच पर पुनः एक साथ एकत्रित हुए। इसने पूरे भारत के समाज के व्यक्तियों को संगठित करने का एवं समाज कल्याण की भावना से प्रेरित सुगठित मार्ग को प्रशस्त किया। तब से अब तक, ४२ वर्ष हुए कि सम्मेलन के द्वारा देश व समाज की अनवरत सेवा का कार्य चला है। सभी जानते हैं कि हमारी यही एकमात्र अखिल भारतीय संस्था समाज के कल्याण, समाज-सुधार के पथ की देश-व्यापी रूप में वाहक है।

श्रद्धेय जालानजी का जीवन सदा आदर्श जीवन रहा। अपने कानूनी पेशे के बाद जब से उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया, स्पीकर एवं प० बंग सरकार में काफी वर्षों तक मंत्रीपद पर जिस ससम्मानपूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए विरोधी एवं अपनी पार्टी के श्रद्धा के पात्र बने रहे और आज भी हैं, वह समाज के लिये अनुकरणीय है। जालानजी की यह विशेषता रही है कि मारवाड़ी सम्मेलन के जन्मदाता या पोषक होते हुए कभी उनमें संकीर्णता की भावना नहीं आयी। और अन्य समाज के व्यक्तियों के लिये वे समानरूप से कार्य करते रहे। यही कारण है कि गैर मारवाड़ी समाज के लोगों में उनकी लोकप्रियता आज भी विद्यमान है। आप बड़े - बड़े राजनीतिज्ञों की तरफ दृष्टि-पात करें तो देखेंगे कि इतने लम्बे जीवन में जहाँ अनेक लोगों के नाम के आगे अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ जनता में हैं, श्री जालानजीके प्रति कभी नहीं रहीं।

समाज के बीच एक ऐसे नरपुंगव को पाकर हम सभी गौरवान्वित हैं।

समाज सेवी, अधिवक्ता, वि० प्रा० मारवाड़ी सम्मेलन के सभापति

श्री हरिराम गुटगुटिया

आज भी जिज्ञासु

श्रद्धेय श्री ईश्वरदासजी जालान से मेरा सर्वप्रथम परिचय सन् १९२७ ई० में, जब मैं मधुपुर से कलकत्ता पढ़ने के लिए आया, तब हुआ। उन्होंने मुझे सदा ही अपने छोटे भाई की तरह माना और जब कभी मेरी मुलाकात होती तो बड़े प्रेम के साथ मिलते और बातें करते।

सन् १९२८ में विधवा विवाह के प्रश्न को लेकर समाज के दो टुकड़े हो गए और आपस में कटुता चरम सीमा पर पहुँच गई। इससे स्व० रामदेवजी चोखानी और श्री जालानजी चिन्तित रहने लगे कि किस तरह वापस प्रेम भाव बढ़े पर नौजवान छात्रों में इस कटुता का लेश मात्र भी असर नहीं था। अतः इन्होंने विचार किया कि छात्रसमूह के द्वारा क्यों न बड़ों को मिलाया जाय। सन् १९३१ ई० में स्व० श्री चोखानीजी एवं श्री जालानजी ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, मारवाड़ी छात्र निवास में पधारे और श्री वेणीशंकरजी शर्म्मा, स्व० श्री मदन गोपालजी शर्म्मा, स्व० भाई चौथमल शर्म्मा, मुझे एवं श्री ताराचन्दजी को बुलाया। मेरे सुझाव से इस संगठन का नाम मारवाड़ी छात्र संघ रक्खा गया और इसके सदस्यों की न्यूनतम योग्यता थी मैट्रिक। दोनों दलों के अभिभावकों ने इस संस्था का हार्दिक स्वागत किया और सहर्ष इसके सदस्य बने। छात्र संघ का सालाना जलसा जिसमें छात्रों के अभिभावक भी निःसंकोच आते थे, किसी बगीचे में सहभोज के साथ होता था। वहाँ न तो अमीर-गरीब या इन दोनों दलों के सदस्य में कोई भेद भाव रहता था। यहाँतक कि स्व० सर बद्रीदासजी गोयनका, जो सनातनी दल के शिष्ट सदस्य थे स्व० श्री तुलसीरामजी सरावगी, जो एक कट्टर सुधारवादी और नौकरी पेशा थे, उनको टैनिया में रसगुल्ला लेकर अपने हाथ से खिलाते थे और कहते जाते "और ल्यो तुलसीरामजी और ल्यो।" श्री जालानजी का स्वप्न शनैः-शनैः साकार हो गया।

फिर जब भारत का १९३५ ई० का बिल आया और उसमें देशी राज्यों के वासियों को, जो भारत सरकार के प्रान्तों में आकर बस गये थे; उनको मताधिकार देने की व्यवस्था नहीं थी, तो सारा समाज व्याकुल हो उठा और भेद-भावों को भुलाकर समाजके सभी वरिष्ठ व्यक्तियों ने विभिन्न मंचों से प्रयत्न करना आरंभ कर दिया। इस कार्य में श्री जालानजी का प्रमुख हाथ रहा और हमें मतधिकार मिल गया।

फिर स्व० श्री चोखानी जी एवं श्री जालान जी के प्रयत्न द्वारा मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना कलकत्ता में हुई जो अबाधगति से दिनोंदिन प्रगति कर रहा है। प्रायः सभी प्रान्तों में इसकी प्रान्तीय शाखाएँ हैं और समाज में सामाजिक सुधार, शिक्षा एवं अब राजनैतिक चेतना का प्रचार जोरों से हो रहा है।

एक बार सन् १९३४में जब मारवाड़ी हाईस्कूल, रानीगंज का सम्बन्धीकरण कलकत्ता विश्वविद्यालय ने तोड़ दिया गया था, तो उसके पुर्न-संबन्धीकरण के प्रयत्न में श्री जालानजीने आगे आकर स्व०श्री कालीप्रसादजी खेतान, स्व० श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान,

स्व० श्री वैजनाथ जी देवड़ा एवं श्रद्धेय श्री प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका को साथ लेकर तत्कालीन कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति स्व० श्री श्यामाप्रसादजी मुखर्जी, के पास पहुँचे थे। स्व० श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने हमारे अनुरोध को मान लिया और रानीगंज मारवाड़ी हाईस्कूल का पुर्नसंवधीकरण हो गया।

इस तरह श्री जालान जी समाज के सभी कार्यों में हर समय दिलचस्पी लेते रहे हैं। इनके हृदय में सम्मेलन के प्रति इतना दर्द रहता है कि अभी गत २० अगस्त १९७७ को जब मैं इनसे मिलने गया, तो उन्होंने जिज्ञासा की कि तुम विहार के मारवाड़ी समाज की जो इन्साईक्लोपीडिया तैयार कर रहे थे, उसका क्या हुआ। इस ग्रंथ के मेरे कुछ प्रकरणों का इन्होंने निरिक्षण भी किया है और जहाँ-जहाँ इनके कुछ प्रकरणों पर सन्देह हुआ, इन्होंने मुझ से स्पष्टीकरण मांगा और स्पष्टीकरण से सन्तुष्ट होने पर उसे स्वीकार किया।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वे स्वस्थ व दीर्घायु हों और समाज के प्रति उनका प्रेम अटूट रहे।

भूतपूर्व राज्य मंत्री, विहार सरकार

श्री मोहनलाल गुप्त

न भूल सकने वाली विशेषताएँ

आदरणीय श्री ईश्वरदास जालानजी का विहार के मुजफ्फरपुर नगर में जन्म लेकर वंगाल में इतनी लोकप्रियता प्राप्त करना कि १९३९ में वहाँ की विधान सभा का सदस्य वनना, १९४७ में सर्वसम्मति से विधान सभा के महान उत्तरदायी अध्यक्ष पद को सर्व-सम्मति से सुशोभित करना और पुनः मंत्रि मंडल में स्वायत शासन एवं पन्चायत विभाग के मंत्री पद पर आसीन होना और विधि विभाग का कार्य संभालना, मुजफ्फरपुर के लिए ही नहीं, सम्पूर्ण विहार के लिए सौभाग्य और गौरव की वात है। जीवन में इतनी सारी उपलब्धियां प्राप्त करना प्रमाणित करती हैं कि इनकी क्षमता, योग्यता, कार्यकुशलता के अतिरिक्त इनमें समाज सेवा की भावना भी भरपूर मात्रा में मौजूद है। प्रारम्भ से ही इनका चरित्र ऊँचा, विचार उदार, व्यवहार मधुर, और हृदयग्राही रहा है। सार्व-जनिक जीवन में रहते हुए भी अपनी सभी सन्तानों को योग्य बना देना विरले ही नेता में दृष्टिगोचर होता है। ऐसे महान देश प्रेमी के सम्मान में उनके ८३ वें वर्ष पर अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा उनका अभिनन्दन करना और स्मृति को कायम रखना एक अत्यन्त ही प्रशंस-नीय प्रयास है। इससे उनका ही सम्मान नहीं, सम्पूर्ण समाज का सम्मान होता है।

मैं अपने वचपन से ही जानता हूँ कि न इनमें प्रान्तीयता का ध्यान न जातिवाद में लेशमात्र भी आस्था। मेरे स्व० पूज्य पिता श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त से इनकी गाढ़ी मित्रता ही नहीं, पारिवारिक सम्बन्ध भी हो गया था। आज तक भी मैं इन्हें भैय्या अथवा भाईजी ही कहकर सम्बोधित करता हूँ।

जब विधान सभा के ये अध्यक्ष थे और मुजफ्फरपुर आये थे तो कलक्टर को इसकी सूचना हुई। उन्होंने इनके यहाँ तुरत सुरक्षा के लिए पुलिस की व्यवस्था की। परन्तु इन्होंने एक भी पुलिस को अपने यहाँ नहीं रखा, धन्यवाद सहित लौटा दिया। यह थी इनकी सादगी की वानगी और स्वयं में आत्मविश्वास।

देश प्रेम, राष्ट्रीयता और महात्मा गांधी के स्वातंत्र्य आन्दोलन के प्रति इनका कितना अनुराग था और ये कितने निर्भीक थे, उसके प्रमाण में एक घटना है। वात १९३३ की है। कांग्रेस गैरकानूनी घोषित कर दी गयी थी और पहली अप्रेल को कलकत्ता में श्रीमती नेलीसेन गुप्ता की अध्यक्षता में कांग्रेस अधिवेशन घोषित हो चुका था। उसके प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति रखना अपराध था। सारा शहर पुलिस, फौज, गुप्तचरों से आच्छादित था, गिरफ्तारी जारी थी। विहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी की ओर से ५० स्वयंसेवकों को लेकर मैं किसी तरह कलकत्ता पहुंचा। प्रश्न आया, हम वाकी चार-पांच आदमी कहाँ ठहरें? हम लोग अपने सामान के साथ इनके निवास ४, जकरिया स्ट्रीट में पहुंच गये। इनके बारे में हमारी आशंका निराधार निकली और इन्होंने हम सवों को प्रसन्नतापूर्वक अपने यहाँ ठहराया, भोजन इत्यादि का प्रवन्ध किया और एक तरह से इनका मकान ही हम लोगों के कार्य संचालन का केन्द्र वन गया। १ अप्रेल १९३३ को इन्हीं के घर से हमलोगों की विदाई हुई और श्रीमती नेलीसेन गुप्ता के साथ धुआंधार लाठी प्रहार के वीच हमलोगों की गिरफ्तारी हुई। एक सप्ताह वाद जेल से छूटने के वाद हम लोग पुनः इनके यहाँ आये। जहाँ इनके परिवार वालों द्वारा शानदार स्वागत हुआ।

कलकत्ता रहते हुए भी इनके मानस पटल से मुजफ्फरपुर विस्मृत नहीं हुआ। १९६३ में कांग्रेस ने मुझे उपचुनाव में अपना उमीदवार घोषित किया था। मेरे समर्थन में रक्षामंत्री श्री जगजीवनराम, मुख्यमंत्री श्री विनोदानन्द झा, श्री के. वी. सहाय, श्री वीरचन्द्र पटेल, श्री ईश्वरदासजी थे। तिलक मैदान में हो रही सभा में जव विरोधियों की ओर से ईंटे, ढ़ेला और पत्थरों की वर्षा शुरू हुई तो अन्य सवों की तरह श्री जालानजी भी निर्भीक, निर्भीकता पूर्वक आक्रमणों का सामना करते रहे। और मेरी जीत को वरकरार कर दिया।

श्री जालान जी के उच्च आदर्शों और गुणों के कारण मैं वरबस श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता हूं। प्रभु से प्रार्थना है कि वह स्वस्थ और दीर्घजीवी हों। इनमें ऐसी विशेषताएं है, जिन्हें मैं कभी भूल नहीं सकता।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति

श्री केशव प्रसाद गोयनका

आदर्श व्यक्तित्व

श्री ईश्वरदासजी जालान मेरे स्वर्गीय पिताजी सर वद्रीदासजी गोयनका के अन्यतम मित्रों में से एक हैं, जो अपने समाज के अस्तित्व को अक्षुण्य वनाये रखने के साथ-साथ इसे

और अधिक प्रभावशाली ढंग से राष्ट्र-हित में लगाने के बारे में विचार-विमर्श हेतु अक्सर उनके पास आया करते थे। इसी सिलसिले में मैं श्री जालानजी के घनिष्ठ सम्पर्क में आया और तभी से मुझे उनके आदर्श व्यक्तित्व और विशिष्ट चारित्रिक गुणों को और करीब से देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

तत्पश्चात जब वे डा० विधान चन्द्र राय के नेतृत्व में पश्चिम बंगाल सरकार में कार्य संलग्न थे, तब भी बराबर मैं उनके सम्पर्क में आता रहा। यहाँ भी उन्होंने बहुत ही शानदार भूमिका निभाई। विधान सभा के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने जिस निष्पक्षता का परिचय दिया, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। राष्ट्र-हित के कार्यों में उनकी कृतियां अनुकरणीय हैं, जो हमें सदा पथ-प्रदर्शित करती रहेंगी।

अपने निजी जीवन में मैंने श्री ईश्वरदासजी को हमेशा सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्राप्त व्यक्ति के रूप में माना है और आज जब अपने ही बन्धु-गण उनकी सेवाओं को सम्मानित करने के प्रयास में एक ग्रंथ प्रकाशित करने जा रहे हैं, इससे ज्यादा खुशी मुझे और किस बात से हो सकती है।

सधन्यवाद !

समाज-सेवी, प० बंग मारवाड़ी सम्मेलन के सभापति

श्री जगन्नाथ प्रसाद जालान

मेरे अभिभावक, मेरे पथप्रदर्शक

सन् १९४७ में आदरणीय ईश्वरदासजी प्रथम बार बंगाल की विधान सभा के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। उस वक्त समाज का उमड़ता हुआ उल्लास देखते हुए ही बनता था, क्योंकि बंगाल में प्रथम बार एक राजस्थानी विधान सभा का अध्यक्ष बना था। श्री ईश्वरदासजी जालान के अभिनन्दनार्थ 'स्पीकर अभिनन्दन समिति' का गठन हुआ और मुझे उसका संयोजक होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय से मुझे श्रद्धेय ईश्वर-दासजी के सान्निध्य का लाभ प्राप्त हुआ। यह मेरे जीवन की अभूतपूर्व घटना सिद्ध हुई। तब से आजतक श्री ईश्वरदासजी के सान्निध्य में रहकर मैंने जो दिशा-निर्देश प्राप्त किये हैं, वह मेरे जीवन की अमूल्य निधि बन गयी है। तीस वर्ष की इस अवधि में मैं उनके साथ निरन्तर रहा। आज यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि श्रद्धेय ईश्वरदासजी जैसा विशुद्ध चरित्र का व्यक्ति इस समाज में खोजने से ही मिले। मिलनेवालों से खुले मन से बात करना, अपने विरोधियों की भी यथासाध्य सहायता करना, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक कार्यों में आलोचना सुनते हुए भी प्रचार से दूर रहकर काम कर देना इनके स्वभाव का अंग रहा है। गो-वध-आन्दोलन के अवसर पर इनके वरिष्ठ मंत्रीपद पर होने के कारण हमारे अनेक बन्धु इनकी खूब जी भरकर आलोचना करते थे। परन्तु उन आलोचनाओं को सुनी-अनसुनी करते हुए इन्होंने हजारों-हजार गायों की प्राण-रक्षा कानूनन करवाई। इनकी उन कार्यवाहियों को उनके निकट रहने-

वाले व्यक्ति ही जानते हैं। विधिवेत्ता, राजनीतिज्ञ एवं कुशल प्रशासक के साथ-साथ धार्मिक मनोभावना से ओतप्रोत व्यक्तित्व श्री ईश्वरदासजी का है।

उत्तर बंगाल में निरन्तर होते रहते प्रान्तीय झगड़े के दिन आंखों के सामने आ जाते हैं। सन् १९६० में बड़े-बड़े वृक्ष काटकर उनके तनों से घेरकर अलीपुरद्वार का नगर अर्ध रात्रि में आगजनी, लूटपाट आदि घटनाओं से आतंकित था और समाज के लोगों में भगदड़ मच रही थी, उस समय कई महीनों तक वहाँ पर शान्ति की सुव्यवस्था कर पुनः सुरक्षा की भावना बनाना श्री ईश्वरदासजी का ही काम था। यहीं तक नहीं, कुछेक बन्धुओं को सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान भी दिलाया था। कूचविहार, दिनहट्टा, जलपाईगुड़ी, धूपगोड़ी एवं मैंनागुड़ी आदि क्षेत्रों में भी अवस्था बिगड़ी, तो इन्होंने उसे संभलवाया। उन दिनों उपरोक्त सारे क्षेत्रों में कम-से-कम २० या २५ बार हमारे दौरे हुए और उन सबमें माननीय श्री जालानजी सम्मिलित रहे एवं समाज को आश्वस्त किया। उनके द्वारा प्रदत निम्न महामन्त्र किसी भी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के लिये कितना सटीक है कि :—

"एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के लिये परिवार चलाने के लिये अर्थोपार्जन के अलग एवं स्वतन्त्र क्षेत्र अत्यावश्यक हैं, तभी वह सेवा-मार्ग पर अडिग भाव से आगे बढ़ सकता है। अन्यथा वह सदा शंका की दृष्टि से देखा जायेगा।"

श्री ईश्वरदासजी के सम्पर्क में आकर ही मुझे बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला। उन्होंने मुझे सदैव पिता जैसा स्नेह दिया। मेरी गलतियों पर दुखी भी हुए और मुझे अच्छे कार्यों में प्रोत्साहन दिया। मैं जीवन-पर्यन्त उनका ऋणी रहूँगा। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे इन्हें शीघ्रातिशीघ्र रोग-मुक्त कर शत वर्ष तक उनसे समाज एवं राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन कराता रहे।

समाज-सेवी अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के उप-प्रधान मंत्री

श्री रतन शाह

राजनैतिक चेतना का अमिट हस्ताक्षर

श्री ईश्वरदासजी जालान की राजनैतिक व सामाजिक प्रतिभा ने समाज के पिछले ५ दशकों के इतिहास को इतना प्रभावित किया है कि वह निश्चित रूप से प्रशंसा और प्रेरणा का विषय है।

मारवाड़ी समाज जन्मभूमि को छोड़कर रोटी और रोजी की तलाश में देश के बीहड़ जंगलों सुदूर सुनसान स्थानों पर आकर बसा। इस काल में कुछ थोड़ी-बहुत परिवर्तन की हवा जो अन्दर घुसी उससे सामाजिक-सुधार, पर्दा-प्रथा, मिलावट-विरोध, बालविवाह बिरोध, विधवाविवाह-समर्थन आदि आन्दोलनों को लेकर लोगों ने कार्य प्रारम्भ किया।

राजनैतिक चेतना व आधारभूत परिवर्तन का चिन्तन समाज में पैठ नहीं पा सका। प्रखर विचारों के धनी डा० लोहिया को छोड़ दें तो जमनालाल बजाज व विदर्भ केशरी

बृजलाल वियाणी के अलावा अन्य नाम नजर नहीं आते। उस समय अपनी जमी हुई सोलीसिटरशिप को छोड़कर समाज का एक विशिष्ट व्यक्तित्व श्री ईश्वरदासजालान अपनी पैनी सूझ-बूझ के साथ पूर्वी भारत की राजनीति में समाज का प्रतिनिधित्व करने को उतरा। सफलता का उन्हें आशीर्वाद रहा—बंगाल जैसे प्रान्त की विधानसभा के अध्यक्षपद पर, तथा कैबिनेट स्तर के मन्त्री रहकर श्रीजालानजी ने समाज के युवकों को राजनीति की तरफ आकर्षित किया। जिस समाज का बहुत ही नगण्य प्रतिशत हिस्सा राजनीति में भाग लेनेवाला रहा हो, उसका एक सुयोग्य सपूत बंगाल प्रान्त की राजनीति में शुक्रतारे की तरह चमका, वह व्यक्तित्व श्रद्धा और सम्मान का हकदार है। मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना करके अखिल भारतीय स्तर पर अपने समाज को सुसंगठित व राजनैतिक रूप से सुदृढ़ इकाई बनाने का जो प्रयत्न किया, वह पूरे समाज के लिये विशिष्ट अवदान है। उनकी विविध गतिविधियों में से उपयुक्त दो उपलब्धियां ही नई पीढ़ी के लिये प्रकाश-दीप ही नहीं, प्रेरक भी हैं। मुझे खुशी है कि उनका कृतित्व एवम् व्यक्तित्व ग्रन्थ के रूप में समाज के समक्ष रखा जा रहा है।

समाज-सेवी, अ० भा० मा० सम्मेलन के कोषाध्यक्ष

श्री दीपचंद नाहटा

मन, वचन और कर्म से एक ईश्वरदासजी

यथा नाम तथा गुण बहुत कम देखने में आता है। बहुत कम लोग ऐसे होते हैं, जो अपने ही वचनों और कार्यों से सर्जित होती रहती गरिमा से निरे निर्लिप्त रहते हैं। ऐसे निर्लिप्त और अनवरत प्राणवान लोगों में मैंने ईश्वरदासजी को देखा है।

उन्हें समाज के सर्वतोमुखी विकास की चिंता में राजनीति से समाज-सेवा के छोटे से छोटे कार्य में जिस तत्परता और आत्मिक भाव से जुड़ते देखा है, तब-तब मुझे लगा है इन सृजनात्मक प्रवृतियों में ही ईश्वरदासजी अपने ईश्वर के दर्शन करते हैं। मैंने तो उन्हें सृजन में अन्तर्निहित ईश्वर की अनवरत सेवा में और वह भी सख्य भाव से नहीं, निरे विनम्र, यूँ कहूँ, दास भाव से एक रूप होते देखा है।

उनकी चिंता, उनका चिंतन और उनका कर्म, फिर वह पश्चिम बंगाल के स्पीकर रहे हों या मंत्री रहे हों, समाज-सेवी के रूप में बम्बई, बिहार, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश या फिर राजस्थान गये हों, एक-सा रहा है। चिंतन की तीव्रता उनकी कार्य-क्षमता को पूर्वापेक्षा अधिक ही गतिशील करती रही है।

ईश्वरदासजी जहाँ बंगाल की आत्मा में घुले और यहाँ के प्रत्येक संवेग के साथ सम्पूर्ण संवेदन के साथ जुड़े रहे, यही कारण है कि दो दशक से अधिक सक्रिय राजनीति और सरकार के सहयोगी रहनेवाले ईश्वरदासजी विरोधी दल के नेताओं के आत्मीय रहे।

बंगाल के साथ एकात्म ईश्वरदासजी राजस्थान एवं हरियाणा के लाख-लाख प्रवासियों को कभी नहीं भूले। वे अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के प्राण रहकर उसकी गतिविधियों को अनवरत रूप से गति देते रहे।

मारवाड़ी समाज किस प्रकार भारतीय जन-जीवन में घुल-मिलकर भारत की चतुर्मुखी उन्नति करने में अधिक-से-अधिक हिस्सा बंटा सके—यही श्री ईश्वरदासजी के जीवन का उद्देश्य रहा और इसके लिए वे अनवरत प्रयत्नशील रहे।

मन-वचन और कर्म एक व्यक्ति का, एक व्यक्ति में विराट संस्था का और संस्था के वृहत्तर कार्यों के निष्पादन की मूर्धन्य इकाई के रूप में आदरणीय ईश्वरदासजी जालान का मैं अपने विनम्र शब्दों से अभिनंदन नहीं अर्चन करता हूँ।

सुविख्यात शिक्षाविद और साहित्य-चिन्तक
आचार्य और अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय
प्रो० कल्याणमल लोढ़ा

भारतीय समाज के शीर्ष व्यक्ति

आदरणीय ईश्वरदासजी जालान का अभिनंदन वस्तुतः उस युग का अभिनन्दन है, जिसने समाज को परम्पराओं से संघर्ष करने की शक्ति दी, अन्धविश्वासों से जूझने का साहस दिया और दिया ऐसा संकल्प, जिसने ऐक्य और आत्मबल के साथ-साथ पूरे समाज-तंत्र को स्वस्थ मानसिकता प्रदान की। वे एक युग के मूर्तमान रूप हैं। यही कारण है कि केवल मारवाड़ी समाज ही नहीं, वे भारतीय समाज के शीर्ष व्यक्ति गिने जाते हैं। यही उनका व्यक्तित्व है। एक ओर कोमल, तो दूसरी ओ कठोर, एक ओर सहज मानवीय संवेदना से पूर्ण, तो दूसरी और बौद्धिक उत्कर्ष और चिन्तन के धनी। उनकी सांस्कृतिक निष्ठा का भी यही स्वरूप है। सही अर्थ में वे भारतीय हैं।

भारतीय संस्कृति के उदात्त, विराट और व्यापक तत्त्वों में उनकी अडिग आस्था रही है। इसीलिए वे जहाँ अन्ध परम्पराओं के विरोधी रहे हैं, वहीं दूसरी ओर स्वस्थ मान्यताओं के पोषक भी। मुझे उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला है। सरल, निश्छल, आत्मीय, संवेदनशील, परोपकारी, व्यक्ति-चैतन्य उनका सहज कर्म और आचरण है। जीवन में कर्त्तव्य और अधिकार का, आचार-विचार का ऐसा प्रभावी समन्वय कम ही देखने में आता है। उनका जीवन आज की पीढ़ी के लिए जितना प्रेरक है, उतना ही अनुकरणीय भी। वे हमारे समाज और जीवन की स्वस्थ एवं उच्च विचारधारा के उन्नायक और पुरोधा रहे हैं। उन्हें मेरी सश्रद्ध प्रणति।

भारत सरकार के रेल-मंत्री
श्री मधु दंडवते

नई पीढ़ी के लिए अनुकरणीय

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि वयोवृद्ध समाजसेवी एवं नेता श्री ईश्वरदास जालान का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जा रहा है और उन्हें उनकी आत्म-कथा भेंट की जा रही है।

८३ वर्षीय श्री जालान की निःस्वार्थ सामाजिक सेवाएँ और स्वस्थ राजनीतिक् परम्पराएँ नयी पीढ़ी के लोगों के लिए अनुकरणीय हैं। वे इस आयु में भी सामाजिक सेवा में लगे हुए हैं, यह और भी सराहनीय है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि जालान जी दीर्घजीवी हों, जिससे समाज को उनकी सेवाओं का अधिकाधिक लाभ मिल सके और वे अपने जैसे ही अनेक समाजसेवी तैयार कर सकें।

अभिनन्दन समारोह की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

द्वितीय खण्ड

विचार-विन्दु

व्यक्ति की महानता उसकी भौतिक उपलब्धियों, बहुल-प्रचार एवं लौकिक पद-प्रतिष्ठा के आधार पर नहीं आंकी जा सकती। इस प्रकार का आकलन कभी भ्रामक भी सिद्ध हो जाता है, कारण कि भौतिक उपलब्धियाँ, प्रचार-प्रसार, पद-प्रतिष्ठा कभी तो सहज रूप से व्यक्ति की महानता के आधार पर उसे प्राप्त हो जाती है और कभी उसके अपने कौशल, अपने अभिनेतारूप, जिसे हम प्रवंचना भी कह सकते हैं, से प्राप्त होती है। अथच, व्यक्ति की महानता हम उसके बाह्य स्वरूप से नहीं आंक सकते। फूल का बाह्य सौन्दर्य उसकी सुगंधि का प्रतीक नहीं, वह तो उसकी आत्मा का गुण है, जो स्वतः प्रस्फुटित होती है। फूल की सुगंधि से ही हम उसकी जाति को पहचानते हैं।

व्यक्ति की महत्ता भी उसके गुणों के आधार पर ही आंकी जा सकती है। उसके हृदयगतभाव और मानसिक चिन्तन और विचार यदि लोक-मंगल-भावना के पोषक हैं, तो वह व्यक्ति निःसन्देह महान है। उसे फिर दस-पाँच व्यक्ति जानें, अथवा लाख-करोड़ व्यक्ति जानें, उसकी महानता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। स्थूल रूप से हम कहें कि राजनेता, तानाशाह, राजपुरुष, श्रीमन्त आदि अपनी शक्ति-सामर्थ्य और अपने कौशल से प्रचारित हो जाते हैं, किन्तु उनका मानस कुंठाओं और क्षुद्रताओं से मलिन रहता है। काल-पुरुष एक झटके में उनका रंग उड़ा देता है और प्रकृत-रूप अपने वीभत्स रूप में खड़ा हो जाता है, लेकिन ईश्वरदासजी इसके अपवाद रहे हैं।

यहाँ हमने श्री ईश्वरदास जालान के विचार उद्धृत किये हैं। ये विचार-कण उनके लेखों, भाषणों आदि में बिखरे पड़े थे। ये विचार राजनीति, समाज और दैनिक जीवन के कार्य, व्यापार आदि सभी आयामों को समेटे हुए हैं। इन विचारों की मूल भावना आचरण की शुद्धता, विचारों की पवित्रता और लोक-मंगल-कामना की आत्मिक सुगंध से आपूरित है। यहीं हमें लगता है कि जालानजी की भौतिक उपलब्धियाँ चाहे जिस सीमा पर रही हों, मनुष्य के रूप में अपनी अन्तरात्मा की पवित्रता उन्होंने अकलुषित रखी है—एक दीप-शिखा की भांति।

तीन दशकों में बिखरे उनके विचार-विन्दु अपने आप में प्रतीक हैं।

१९४७

१

यद्यपि हमारे हजारों युवक जेल गये और कष्ट झेले, तथापि नेतृत्व ग्रहण करनेवालों की कमी रही है। जहाँ अन्य समाजों में अखिल भारतीय ख्याति के सैकड़ों आदमी मिल जाते हैं, वहाँ राजनैतिक क्षेत्र में ख्याति-प्राप्त आदमियों की हमारे समाज में कमी है।

२

मारवाड़ी समाज में कार्यपटुता है, तीव्रबुद्धि है, साहस है, व्यापारिकता है, अगर कमी है तो सार्वजनिक जीवन में दिलचस्पी लेने की।

३

दूसरों को दोष देने से कोई लाभ नहीं, हमें अपने दोषों को देखना और दूर करना होगा, तब हमारी प्रगति को कोई रोक नहीं सकता।

४

हमारे स्कूल उसी बाबा आदम की परिपाटी पर चलते हैं, परन्तु किसी के कानों पर जूं भी नहीं रेंगती कि कुछ करना है।

५

समाज में भीषण क्रान्ति की दरकार है, समाज का रूप बदल देने की दरकार है। इसके बगैर हम जीवन धारण नहीं कर सकते।

६

जिस समाज में सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं की कमी होती है, वह समाज कदापि उन्नति नहीं कर सकता।

१९४८

७

कन्ट्रोल की सफलता दो बातों पर मुख्यतया निर्भर करती है—शासन की तरफ से बना कार्यक्रम उत्तम हो और सरकारी कर्मचारी पूरी ईमानदारी और दियानतदारी काम में लावें। देश के दुर्भाग्य से इन दोनों बातों की ही कमी है।

८

मनुष्य स्वभावतः 'अरस्तू' के शब्दों में स्वार्थी जीव है।

९

राजनैतिक स्वतन्त्रता ही हमारे ध्येय की सिद्धि नहीं है। ध्येय है मानवी जीवन का सुख।

१०

जनता को आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सबल बनाना है और यह तबतक संभव नहीं है, जबतक कि हम उन सामाजिक कुरीतियों को दूर न कर दें, जो कि घुन की तरह हमारे जीवन का सत्यानाश कर रही हैं।

११

सामाजिक सुधारों से ही हम समाज का वह पुर्ननिमाण कर सकेंगे जिससे कि भारत, इसके स्त्री और पुरुष, सब को हम वास्तव में मजबूत बना सकें।

१२

हमारा रहन-सहन, बर्ताव व जीवन ऐसा हो कि जिनके बीच हम रहते हैं, वे हमें विदेशी न समझें।

१३

जब तक स्त्री-समाज में पर्दा रहेगा, कभी भी हमारा समाज दूसरे समाजों की दृष्टि में ऊँचा नहीं उठ सकता।

१४

व्यक्ति, समाज या जाति के लिये रुपये का महत्व अवश्य है, परन्तु यदि यही माँ-बाप हो जाय और मनुष्यता नष्ट हो जाये, तो इसका परिणाम घृणा का पात्र होना है।

१५

आज पूंजीवाद के समर्थक को भी पूंजीवादी कहना गाली देना समझा जाता है।

१६

हमारे यहाँ व्यापारिक चैम्बरों और सभाओं की भरमार है। परन्तु वे व्यापार को उचित व नियमित रास्ते पर रखने में असमर्थ हैं, क्योंकि जब रक्षक ही भक्षक हो जाय तो कौन किसकी रक्षा कर सकता है।

१७

हमारे देश में साम्यवाद, समाजवाद, पूंजीवाद आदि कई प्रकार के सिद्धान्तों का संघर्ष चल रहा है और चलता रहेगा। इसीके बीच से देश को गुजरना है और अपनी उन्नति का रास्ता बनाना है।

१८

जितने पाश्चात्य और उन्नत समाज हैं, वे अपने बच्चों की शिक्षा में यथेष्ट खर्च करते हैं, लेकिन हम शिक्षा को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं।

१९५८

१९

देश में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनके कारण हमारे जीवन में भी बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा है, पुराने आधार टूटते जा रहे हैं, नये आधारों की विचारों और भावनाओं की सृष्टि हो रही है। परन्तु हमारा समाज है कि इस सत्य को समझना नहीं चाह रहा है।

२०

युग की मांग तो यह है कि चेतना-भावना हमारे जीवन और आचरण में गहराई और व्यापकता से बसती और फैलती, किन्तु इसके स्थान पर आता जा रहा है सार्वजनिक चेतना का दिनोंदिन अभाव।

१९५९

२१

दुख के बाद सुख, सुख के बाद दुख, उन्नति के बाद अवनति और अवनति के बाद उन्नति का क्रम उसी तरह ध्रुव सत्य है, जिस तरह रात्रि के बाद दिन और दिन के बाद रात्रि।

२२

संसार एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता, बराबर परिवर्तित होता रहता है। जिस तरह से नदी में जल एक स्थान में क्षण भर के लिए भी स्थिर नहीं रहता, उसी तरह मनुष्य का जीवन, देश का जीवन, संसार का जीवन निरन्तर बदलता रहता है। जो विचार-धारा किसी समय जीवन को संचालित करती थी, कुछ समय के बाद उसीके प्रतिकूल वातावरण हो उठता है।

२३

मनुष्य की सामर्थ्य के परे भी एक महान शक्ति होती है, जिसे हम देखते नहीं हैं, समझते नहीं हैं, लेकिन है अवश्य।

२४

हिन्दू समाज जो मनु-याज्ञवल्क्य इत्यादि मनीषियों के वनाये हुए नियमों के द्वारा संचालित होता था, वह आज विल्कुल वदल दिया गया और भारतीय विधान सभा के वनाये हुए नियमों पर संचालित होने लगा है। जो स्त्री और पुरुषों का सम्बन्ध अटूट समझा जाता था, वह आज टूट सकता है। पातिव्रत-धर्म की जो महिमा हजारों वर्षों से गायी जाती थी, उसके आधार भी छिन्नभिन्न हो गये हैं। कन्याओं को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार इतनी शताब्दियों से प्राप्त नहीं थे, वे अधिकार उनको दे दिये गये हैं। इतना वड़ा सामाजिक परिवर्तन भी देश ने स्वीकार कर लिया है।

२५

जव मनुष्य किसी अभिलषित वस्तु को प्राप्त कर लेता है, तो विलासिता आती है। भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता का जो संग्राम अंग्रेजों के साथ किया था, उसकी सफलता के वाद लोगों में यह प्रवृत्ति हो गयी है कि वे जीवन को अव आराम के साथ व्यतीत करना चाहते हैं। परिस्थितियों से युद्ध करने की इच्छा और शक्ति का ह्रास हो रहा है।

२६

भारतवर्ष में चरित्र का स्थान वहुत ऊंचा रहा है। आज वही धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। लोगों के लिए अव चरित्र की पवित्रता का कोई खास महत्व नहीं रहा। यही कारण है कि आज चारों ओर चोरवाजारी, घूसखोरी, अनैतिकता आदि हर स्तर के लोगों में घर कर गई है। हर व्यक्ति कम से कम काम करना और अधिक से अधिक वेतन प्राप्त करना चाहता है।

१९६०

२७

आज शिक्षा प्रणाली सफल नहीं होती, उसका कारण चरित्र गठन की उपेक्षा एवं अध्यापक व छात्रों का केवल व्यावसायिक सम्वन्ध है, शिष्य का गुरु के प्रति प्रेम व श्रद्धा का अभाव है।

२८

जीवन की शान्ति के लिये व संसार में सफलता प्राप्ति के लिये चरित्रवल की वड़ी आवश्यकता है। इस्माइल्स नामक विद्वान की यह पंक्ति "The crown of glory of life is charactor" न मालूम कितनी वार मैंने दोहराई है। चरित्र-निर्माण के लिये धार्मिक भावना की भी आवश्यकता होती है। महात्मा गाँधी जैसे आधुनिक जगत के व्यक्ति भी ईश्वर उपासना को जीवन का अभिन्न अङ्ग समझते थे।

२६

हृदय की संकीर्णता जीवन संग्राम में बहुत बड़ी बाधक होती है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, इससे ही उत्पन्न होते हैं और जीवनपथ को संकीर्ण बना देते हैं।

१९६२

३०

किसी भी संस्था को सफल बनाने के लिये चार बातों की आवश्यकता होती है—संस्था का उत्तम विधान, सुनिश्चित योजना, आर्थिक व्यवस्था और उत्साही पदाधिकारी व कार्यकर्ता।

३१

इस युग को "श्रद्धा के संकट" (Crisis of faith) का युग कहा गया है। भारत में यह अवस्था मुख्य रूपेण है। वेदों का पुराना प्रश्न—"कस्मै देवाय हविषा विधेम" इसके सामने आज नाना रूप धारण कर आज फिर से आ खड़ा हुआ है। "नैको: ऋषिर्यस्य वच: प्रमाणम्"की समस्या इसके जीवन के प्रत्येक पथ को रोक कर, आज इसके आगे अड़ी हुई है। इसका समाधान उलझन भरा होते हुए भी वह दिशा है—एकता की, समाजवाद की, सहयोगिता की, देश के गणतंत्र के सत्य को राजनीति के स्तर तक पहुँचा देने की।

१९६३

३२

प्रकृति का नियम है कि जब हम दूसरों के लिये कुछ सोचेंगे, कुछ करेंगे, तो दूसरे भी हमारे लिये सोचेंगे, करेंगे।

३३

सात्विक दान उसे ही कहा जाता है, जहाँ दान दिये जाने के बदले में कोई चीज प्राप्त करने की इच्छा न रखी जाय। किन्तु अधिकांश लोग वहीं दान देना चाहते हैं, जहाँ उनके स्वार्थ की सिद्धि हो।

मेरे पिता जन्मपत्रिका को शोकपत्रिका कहा करते थे। सच ही है कि जन्मपत्री देखकर आनेवाली कोई शुभ बात बताई गई और वह न हुई तो निराशा एवं दु:ख होगा और यदि भविष्य में आनेवाली किसी विपत्ति की पूर्व आशंका प्रगट कर दी, तो मन में उसी दिन से विपत्ति का ग्रहण लग जाएगा।

३४

भारतीय समाज के व्यवस्थापकों ने वैश्यों को उद्योग-व्यवसाय के अवसर और प्रशिक्षण दिये, उन पर उन्हें समाज के तपस्वियों और विचारकों की सेवा का, उसके वीरों और

पुरुषार्थियों की सहायता का, और उसके श्रमिकों और कर्मियों के पालन-पोषण का भार भी रखा था। इस व्यवस्था के अनुसार धनिक होने का अर्थ था समाज का कोषाध्यक्ष बनना। यदि हम अपने प्रारम्भिक इतिहास को देखते हैं तो लगता है, सचमुच बहुत अंशों में हमारा यही लक्ष्य व अभिप्राय माना जाता था। श्रम और सच्चाई से अर्जित सम्पत्ति वट वृक्ष के समान थी, जिसकी छाया दूर-दूर तक पहुँचा करती थी।

३५

लोकतंत्रीय समाजवाद ऐसी समाज रचना है, जिसमें राष्ट्र के कल्याण और व्यक्ति के अधिकारों में चोली-दामन का नाता है। यह वह तंत्र है, जिसमें व्यक्ति राष्ट्र को ठगने न पावे और जिसमें राष्ट्र व्यक्ति को कुचल न सके। इसकी छाया में व्यक्ति के पुरुषार्थ को सम्मानित स्थान मिलता है तो राष्ट्र के प्रतिवन्धों का साग्रह निमंत्रण भी।

३६

स्वतंत्र भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया है। इस व्यवस्था में दो क्षेत्र हैं—सार्वजनिक पूंजी का और निजी पूंजी का। यदि ये दोनों क्षेत्र दो राहों से एक ही लक्ष्य की ओर सच्चाई व लगन से आगे वढ़ते तो राष्ट्र को जितना बल मिलता, व्यक्ति को उतना ही गौरव भी। लेकिन खेद है छोटे-छोटे स्वार्थों के अनेकानेक षड़यंत्रों के कारण न तो ऐसा हो सका है और न आसानी से ऐसा होता दीखता है।

३७

एक ओर उत्सवों, त्यौहारों, शादी-विवाहों पर रुपये पानी की तरह वहाये जा रहे हैं और दूसरी ओर मध्यम श्रेणी के पास अन्न नहीं, कपड़ा नहीं, घर-वार नहीं, काम-धन्धा नहीं, और कहीं कोई पूछनेवाला नहीं। ऐसी स्थिति जव जहाँ भी उत्पन्न हुई है, इतिहास पुकार कर कहता है, तव वहाँ क्रान्ति होती है।

३८

हमारे देश के सामाजिक जीवन को अलग-अलग युगों में वाँटा जा सकता है। पहला ज्ञान-युग, व्राह्मण शिक्षा-दीक्षा, सम्मान, राज्यकार्य में मंत्रीपद, राजकन्या से विवाह आदि सभी उच्च स्थानों का अधिकारी था। दूसरा शक्ति-युग, जिसमें क्षत्रियों की महिमा अपार थी—यहाँ तक कि राम और कृष्ण को भी क्षत्रिय रूप में प्रकट होना पड़ा। तीसरा व्यापार-वाणिज्य युग, जिसमें संसार के हर कोने में आदमी पहुँचा और धन-शक्ति के अद्भुत करिश्मों से राज्यों की स्थापना की एवं वैश्य-युग या धन-युग की प्रधानता स्थापित हुई। लेकिन अव श्रम-युग याने साम्यवाद का युग जोर पकड़ रहा है और वुद्धि से ऊँचा स्थान श्रम को मिल रहा है। आनेवाले समय में श्रम का वोलवाला होने लगा है।

३९

मारवाड़ी समाज आज भारत के जिस अंचल में है, उसका अपना वनकर उसे अपना वनाले, यही उसका परम पुरुषार्थ है।

व्यक्ति के साधन सीमित होते हैं। जब उसकी इच्छाएँ अपरिमित हो जाती हैं, तो उनकी पूर्त्ति के लिए फिर वह इधर-उधर के तरीके निकालता है और उसी से भ्रष्टाचार की ओर अग्रसर होता है।

१९७३

४१

विवाह-शादियों में हमारे यहाँ जो अपव्यय और प्रदर्शन होते हैं, वे इस समाज (मारवाड़ी समाज) को दूसरों की दृष्टि में गिराते हैं। जहाँ करोड़ों मनुष्य दरिद्रता के दुखों को भोग रहे हों, जहाँ सरकार गरीबी को दूर करने का भगीरथ प्रयत्न कर रही हो, वहाँ पर इस प्रकार के प्रदर्शन और अपव्यय शोभा नहीं देते।

४२

देश की आर्थिक नीति में सरकार और व्यापारी दोनों के आपसी सहयोग की आवश्यकता है।

४३

खानपान, मिथ्या आहार-विहार करने से ही मनुष्य अस्वस्थ होता है। स्वास्थ्य के सिद्धान्त सीधे-सादे हैं।

४४

देश में योग्य मनुष्यों की कमी नहीं है। उनके परामर्श को सुनें, अगर उपयुक्त हो ग्रहण करें और साहस के साथ स्वीकार कर उसे कार्यरूप में परिणत करें।

४५

राजनीतिज्ञों में यही कमी है कि अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं करना चाहते।

४६

जब हम गलती अनुभव करें, तो साहस के साथ उसका सुधार करना चाहिए, देश की समस्या तभी हल होगी।

४७

मैं यह नहीं कहता कि व्यापारियों की भूलें नहीं हैं, इसके लिए उन्हें दंड मिले। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि केवल इन्हीं की भूलें नहीं, सभी की भूलें हैं। सभी की भूलें जबतक नहीं हटेंगी, समस्या का समाधान नहीं होगा।

४८

चीजों में मिलावट इतनी बढ़ गयी है कि शुद्ध चीज मिलनी असम्भव हो गयी है। यह दोष निश्चय ही व्यापारी समाज का है। इसे दूर करना आवश्यक है।

४६

दैनन्दिन जीवन में जैसी विलासिता और अनैतिकता आ गयी है, वह समाज के लिए घातक होगी। मद्यपान, आमिष भोजन, अनैतिकता, विलासिता जितनी बढ़ गयी है, उन्हें हटाये या नियन्त्रित किये विना समाज बच नहीं सकता।

१९७४

५०

चिता एक बार जलाती है, परन्तु चिन्ता हजारों बार जलाती ही रहती है। प्रत्येक मनुष्य किसी-न-किसी चिन्ता से ग्रस्त रहता है। उससे छुटकारा पाना चाहता है; परन्तु छुटकारा मिलता नहीं है। मानव समाज ने इस रोग से मुक्ति पाने के लिए सदैव प्रयत्न किया है।

५१

आज जब पाश्चात्य देशों में मानसिक अशान्ति बहुत बढ़ गयी है, तो वे भारतवर्ष के अध्यात्मवाद की ओर देखने लगे हैं। उसमें उन्हें शान्ति मिलती है।

५२

मनुष्य के शरीर का निर्माण ही ऐसा हुआ है, जो उसके मन में हर्ष और विषाद उत्पन्न करता है। सुख-दुख का अनुभव भी कराता रहता है। हर आदमी की चेष्टा भी रहती है कि दुख से उसे मुक्ति मिले, वह सुखी बना रहे।

५३

मनुष्य चाहता है कि वह शरीर से स्वस्थ रहे ; परन्तु अफसोस की बात यह है कि वह स्वस्थ तो रहना चाहता है परन्तु करता वही है जिससे कि सदा अस्वस्थ बना रहे, क्योंकि मनुष्य इन्द्रियों का दास है। इन्द्रियां उसकी दास नहीं हैं। खान-पान, मिथ्या आहार-विहार करने से ही मनुष्य अस्वस्थ होता है।

५४

प्राचीन समय में भी वैश्य समाज का कार्य था धनोपार्जन करना और उस धन को ब्राह्मणों को देकर उनसे अपने कर्त्तव्य को कराना ; जिससे कि उसको आर्थिक चिन्ता न रहे। वे पठन-पाटन, ज्ञान का प्रसार एवं शिक्षा को अपने हाथों में लेकर देश को तैयार कर सकें। साथ ही क्षत्रियों को धन देकर राज्य को चलाने योग्य बनावें ; ताकि वे अपने धर्म का पालन करें एवं प्रजा और देश की स्वतन्त्रता की रक्षा कर शासन को दृढ़ता से चला सकें। उसी के साथ उनका यह भी कर्तव्य हो गया कि जो निम्न श्रेणी के व्यक्ति हैं, उनकी भी रक्षा करें ; जिससे वे अपने धर्म का पालन कर सकें।

५५

धन और सम्पत्ति को गरीवों के उत्थान में लगा सकें, और देश की आर्थिक समस्याओं के सुलझाने में सहायक बन सकें, तो यह समाज न केवल जनता का आदर और सम्मान ही प्राप्त कर सकता है, बल्कि देश का नेतृत्व ग्रहण कर सकता है और देश के इतिहास में अपनी कीर्ति को चिरस्थायी बना सकता है। भामाशाह ने यदि राणाप्रताप को उनकी विपत्तियों में सहायता नहीं पहुंचाई होती, तो भामाशाह का नाम आज कौन याद करता। हजारों ही अमीर आये और चले गये, किन्तु भामाशाह को हम आज भी याद करते हैं।

५६

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने दोषों को अपने सिर पर न लेकर दूसरों के ऊपर डालना चाहता है।

५७

दुख का विषय है कि जिस नयी पीढ़ी का हम निर्माण करते हैं, वह नयी पीढ़ी अपने गम्भीर उत्तरदायित्व को निभाने के लिए तैयार नहीं हो रही है।

५८

हमें अनुचित लाभ से मुँह मोड़ना होगा, अपने को उचित रास्ते पर चला कर सरकार को भी उचित नीति का आश्रय लेने के लिए बाध्य करना होगा।

५९

राजनैतिक स्वतन्त्रता इसलिए प्राप्त की जाती है कि जनता को राजनैतिक शासन का अधिकार प्राप्त होने से देश का कल्याण हो और देशहित के लिए जिस मार्ग का अवलम्वन करना आवश्यक होगा, उसमें किसी प्रकार की वाधा उत्पन्न न हो, जो कि विदेशी शासन में होती है।

६०

प्रजातन्त्र और समाजवाद सिद्धान्त रूप से वहुत ही उत्तम हैं; परन्तु केवल इन्हीं की ओट में यदि ऐसी नीतिं अवलम्वन की जाये जो देश के लिए प्रतिकूल होती हो तो देश को इसका दुष्परिणाम भोगना पड़ेगा।

६१

सार्वजनिक जीवन चाहे वह राजनैतिक हो, सामाजिक हो, सांस्कृतिक हो या अन्य किसी भी क्षेत्र में हो, स्वार्थपरता से परिपूर्ण हो गया है। पुराने आदर्शों का कहीं पता भी नहीं है। स्वार्स्थपरता का वोलवाला है।

६२

ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, क्रोध, लोभ, काम, मोह, भय इत्यादि जव मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होते हैं तो शरीर में वेचैनी आती है। दया, अहिंसा, निर्भयता इत्यादि सद्गुण जव शरीर में होते हैं, तो मनुष्य शान्ति का वोध करता है और उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है। जितने धर्म, दर्शन, अध्यात्मवाद के सिद्धान्त हैं, वे इसी लक्ष्य को लेकर वने कि मनुष्य मानसिक शान्ति का अनुभव करे।

६३

भोजन जीनें के लिए खाना चाहिए, परन्तु आज जीना खाने के लिए वन गया है।

६४

विधि की विडंवना कैसी है कि महात्मा गाँधी ने जो पथ हमें दिखाया था, उसे हम विल्कुल भूल गये, और अपनी निजी सभ्यता और संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य दुर्गुणों की ओर खिचते ही चले जा रहे हैं।

६५

विवाह एक सामाजिक प्रथा है, जो क्या गरीव, क्या अमीर सभी के लिए अनिवार्य है। जो अमीर करते हैं, उसका प्रभाव सारे समाज पर पड़ता है। आज जो हो रहा है,

वह दहेज नहीं है, विवाह के बाजार में लेवा-वेची का सौदा है। वर-विक्रय है। जो बाजार दर अमीरों के द्वारा निश्चित किया जाता है, उस दर का असर सारे समाज पर पड़ता है। और आज तो नीचे से ऊपर तक इस बाजार में भी काफी महँगाई दिखाई देने लगी है।

६६

जब हम लोग वच्चें थे, उस समय छुआछूत का रोग तो अवश्य वड़े पैमाने पर था, परन्तु पारस्परिक विरोध और वैरभाव इतना अधिक नहीं था। अव छुआछूत तो वहुत कम वच गया है, परन्तु पारस्परिक विरोध वहुत अधिक वढ़ गया है।

६७

धन के दो रूप होते हैं—एक सौम्य, दूसरा विकृत। इसलिए जहाँ हमारे शास्त्रों में धन की प्रशंसा की गयी है, वहीं उसकी घोर निन्दा भी की गई है। जब धन का रूप विकृत हो जाता है, तो प्रमाद वढ़ जाता है—अभिमान आ जाता है। आज हमारे समाज में यही हुआ है।

६८

इन्दिरा शासन ने आर्थिक क्षेत्र में जो गलतियाँ की हैं, उसके कारण बहुत से प्रान्तों में इन्हीं के दलों में इतनी फूट फिर से उत्पन्न हो गयी कि चुने हुए राजनीतिज्ञों को हटा कर राष्ट्रपति शासन कायम करना पड़ा। जिस राष्ट्रीयकरण की नीति ने श्रीमती गाँधी को जनता के हृदय में वर्णनातीत स्थान दे दिया था, उसी राष्ट्रीयकरण की गलत नीति ने देश में इतनी महंगाई उत्पन्न कर दी कि जनता त्राहि-त्राहि करने लग गई है। इस वर्तमान अवस्था को सुधारे विना यदि चुनाव किया ही जाय तो श्रीमती गाँधी को जितने भी वोट प्राप्त हुए थे, उससे कहीं कम प्राप्त होंगे और सम्भव है कि देश में फिर से उनका शासन न ठहर सके।

६९

सरकार ने अनेक व्यापारों का राष्ट्रीयकरण करके अपने सिर पर इतनी वड़ी जिम्मेदारी ले ली है कि अगर शासन जरा भी ढीला हो तो घूसखोरी, कालाबाजारी इतनी वढ़ जायेगी कि चीजों के दाम जनता देने में असमर्थ होकर वगावत कर सकती है।

७०

हम अपने महत्व को भूल गये हैं। हमें 'मारवाड़ी' शब्द से स्वयं ग्लानि मालूम होती है, क्योंकि लोगों ने इस शब्द को बदनाम कर रखा है, परन्तु हमें यह समझना

चाहिये कि नाम से कुछ नहीं होता। हम अपने को राजस्थानी कहें या मारवाड़ी कहें, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। करनी ही महत्वपूर्ण है, जिस पर हमारा यश और अपयश निर्भर करता है। ऐसी अवस्था में अपने को मारवाड़ी समझने में किसी प्रकार की हीन-भावना मन में नहीं लानी चाहिये।

अतएव समाज से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे अपने इस नाम से घृणा या ग्लानि का बोध न करें और अपने को मारवाड़ी कहने में कोई हीन-भावना मन में नहीं आने दें। अगर हम अच्छा कर्म करेंगे तो यही शब्द श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाने लगेगा और यदि हम खराब काम करेंगे तो कोई भी शब्द क्यों न हो, खराब दृष्टि से देखा जायेगा।

७१

इस समय देश को अपनी आर्थिक अवस्था सुलझाना है। उसे सुलझाने में व्यापारी समाज बहुत कुछ सहायक सिद्ध हो सकता है, परन्तु इसमें भी त्याग की आवश्यकता होगी। अनुचित लाभ से मुंह मोड़ना होगा, अपने उचित रास्ते पर चल कर सरकार को भी उचित नीति का आश्रय लेने के लिये बाध्य करना होगा। परन्तु जबतक व्यापारी समाज अपने को ठीक रास्ते पर नहीं लाता है, तबतक सरकार के ऊपर भी उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अपने कल्याण के लिये एवं देश के कल्याण के लिये ऐसा करना नितान्त आवश्यक हो गया है। यदि मारवाड़ी समाज, जो प्रधानतया व्यापारी समाज है, इस पथ का अवलम्बन करे तो वह देश में लोकप्रियता और सम्मान प्राप्त कर सकता है और अपने भविष्य का भी सुदृढ़ भित्ति के ऊपर निर्माण कर सकता है।

तृतीय खण्ड

साहित्य

ईश्वरदासजी ने कभी अपने को साहित्य-सर्जक के रूप में नहीं देखा, नहीं माना।

गद्य हो या पद्य, साहित्यकार की भूमिका सर्वथा अलग होती है। उसकी प्रेरणा का संबल अतीत हो, समकालीन हो, प्राकृतिक दृश्य व अनुभूतियाँ हों, या आर्द्र-करुणा, वीर या प्रेम रस का आधार हो, अलग-अलग कोटि की रचनाएँ उसकी कलम से प्रवाहित होती हैं। इनमें से कुछ युगों तक लोगों को स्पन्दित करती हैं, कुछ लंबी अवधि तक सर्जनात्मक रहती हैं; तो कुछ क्षणिक आनन्दप्रदायिनी।

इन सबसे परे एक प्रकार का वह साहित्य है, जो जीवन की दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। और ईश्वर-दासजी की रचनाएँ व निबन्ध जिनमें सुचिन्तित विचारधारा से व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की दैनन्दिन समस्याओं का लोकहित में समाधान खोजने का प्रयास है, इसी कोटि में आती हैं।

देखा जाय तो इस प्रकार का विवेचन हमारे जीवन, समाज व राष्ट्र पर दूरगामी प्रभाव डालता है और उसके पूरे प्रवाह की धारा को ही बदल देता है। ऐसे अनेकानेक रचनाधर्मी साहित्यकार, जिनमें ईश्वरदासजी भी हैं, भले ही 'काल-जयी' रचनाओं के सर्जक न बन पाये हों, सामयिक दूर-दृष्टि व मार्ग-दर्शन में उनका स्थान महत्वपूर्ण है।

ईश्वरदासजी के साहित्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है, उनकी सामयिक उपयोगिता। "व्यापारिक समाज और सरकार दोनों में सीधी टक्कर" में एक ओर उन्होंने अपनी आर्थिक नीतियों में असफल होने पर सरकार द्वारा व्यापारी वर्ग पर उसका दोष थोपने की प्रक्रिया की आलोचना की है, तो दूसरी ओर व्यापारी वर्ग को भी सतर्क किया है कि वे केवल आर्थिक लाभ को ही न देखें, अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह कर समाज के आर्थिक ढाँचे के मेरुदण्ड का असल दायित्व निबाहें। सामाजिक जीवन की नींव को खोखला कर रही अनेक बुराइयों में से एक की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है, "दहेज" में। राजनीति की गतिविधियों व देश के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में "भारतीय राजनीति नये चौराहे पर" का पठन व मनन उपयोगी है। देश की आजादी की लड़ाई में, महात्मा गाँधी व अहिंसा के अनुयायी होते हुए भी, अन्य तरीकों, माध्यमों व चिन्तन धाराओं के माध्यम से देश की परतंत्रता की बेड़ियाँ काटनेवालों के प्रति भी वे प्रणम्य हैं और नेताजी सुभाषचन्द्र बसु व खुदीराम बसु को अपने संस्मरणों में श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

ईश्वरदासजी का एक और रूप भी इन लेखों में प्रकट हुआ है—आध्यात्मिक। राग-द्वेष, घृणा-प्रेम, त्याग-अपरिग्रह आदि ही जीवन नहीं है; जीवन का परम लक्ष्य आध्यात्मिक चेतना का जागरण और तदनुकूल जीवन यापन है।

राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति में ईश्वरदासजी के लेख मार्ग को सुगम करनेवाले व पथ-प्रदर्शक हैं और इसी सन्दर्भ में हम इन लेखों को यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

१

जीवन का परम लक्ष्य

प्रत्येक विचारशील मनुष्य यह सोचता है कि जीवन का परम लक्ष्य क्या है ? मनुष्य इस संसार में जब आता है तो स्वतः आ जाता है, किसी से पूछकर नहीं आता और जब वह मरता है तो भी स्वतः मर जाता है, किसी से पूछ कर नहीं मरता। जन्म और मरण ये दोनों ध्रुव सत्य हैं, इसे कोई टाल नहीं सकता। जितने दिन मनुष्य इस संसार में रहता है, उतने दिन का ही सम्बन्ध है, जिसके विषय में हमें निरन्तर सोचना पड़ता है कि क्या करें और क्या नहीं। सुख और दुख जीवन में आते ही रहते हैं, न कोई मनुष्य सदैव दुखी रहता है और न सदैव सुखी। ईश्वर ने शरीर का गठन ऐसा ही बनाया है कि दुख हम नहीं चाहते, सुख ही चाहते हैं। जब दुख होता है तो सारे शरीर में बेचैनी उत्पन्न होती है और इससे त्राण पाने के लिए मनुष्य नाना उपायों का अवलम्बन करता है। जब सुख होता है तो शरीर में शान्ति मालूम होती है और मनुष्य चाहता है कि यह शान्ति सदैव बनी रहे, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं होता। मनुष्य चाहे किसी भी धर्म का क्यों न हो, कोई भी विचारधारा उसकी क्यों न हो ; यह ध्रुव सत्य है कि उसके सारे प्रयत्न सुख और शान्ति की खोज में रहते हैं।

दुखों को तीन भागों में विभाजित किया गया है—अधि भौतिक, आध्यात्मिक और अधि दैविक।

अधि भौतिक दुख—उन दुखों को कहते हैं जो इस भौतिक जगत में हमें प्राप्त होते हैं। जैसे—शारीरिक दुख, आर्थिक दुख, पारिवारिक दुख और अन्य प्रकार के दुख जो बाहरी जगत से सम्बन्ध के कारण उत्पन्न होते हैं। मानव समाज के ये दुख कैसे दूर हों, इसके लिए पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, फैसिज्म आदि सिद्धान्तों की रचना हुई, जिससे कि मनुष्य आर्थिक दुखों से मुक्त हो सके। हर विचारधारा के अनुयायी दावा करते हैं कि जबतक समाज को उनकी विचारधारा में नहीं बदल दें, तबतक आर्थिक कष्ट दूर नहीं हो सकता। एलोपैथी, होमियोपैथी, आयुर्वेदिक, हकीमी, प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति एवं अन्य पद्धतियां यह दावा करती हैं कि वे मनुष्य के शारीरिक दुखों को दूर कर सकती हैं। सामाजिक संगठन के लिए जो कानून बनते हैं, वे भी इसी लक्ष्य से बनाये जाते हैं।

आध्यात्मिक दुख—वे हैं जो मनुष्यों को उनकी मानसिक अवस्था के कारण उत्पन्न होते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, क्रोध, लोभ, काम, मोह, भय इत्यादि जब मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होते हैं, तो शरीर में बेचैनी आती है। इसी से यह सिद्ध होता है कि शारीरिक गठन जो ईश्वर ने हमें दिया है, वह ऐसा है कि इन चीजों को हटाना चाहता है। इसके

उल्टे जो दया, अहिंसा, निर्भयता इत्यादि सद्‌गुण जब शरीर में होते हैं तो मनुष्य शान्ति का बोध करता है और उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है। जितने धर्म, दर्शन और अध्यात्म-वाद के सिद्धान्त बने, वे इसी लक्ष्य को लेकर बने कि मनुष्य मानसिक शान्ति का अनुभव करे। सारा अध्यात्मवाद, सारे धर्म इसी को प्राप्त करने के लिए पैदा हुए हैं।

अधि दैविक दुख—वे हैं, जो अपने वश की चीज नहीं हैं। दैवी दुर्घटनाओं से उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे—मृत्यु, भूकम्प इत्यादि, इसे कोई रोक नहीं सकता। इनके कारण मन में जो उद्विग्नता होती है, वह न हो; इसके लिए हमारे धर्म और दर्शन अनवरत उपदेश देते रहते हैं। थोड़े में हम यह कह सकते हैं कि प्राणिमात्र की चेष्टा यही रही है कि वह दुखों से मुक्ति पावे और सुख और शान्ति का अनुभव करे। इसीलिए हमारे वेदान्त ने यही उपदेश दिया है कि हम अपने को सच्चिदानन्द रूप या अपने को ब्रह्म समझें। अतएव, मैं तो यह समझता हूँ कि जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य यही है कि हम जितने दिन इस संसार में हैं, उतने दिन अधिक-से-अधिक शान्ति और सुख के साथ अपने जीवन को व्यतीत करें। इसी को स्थित-प्रज्ञता कहते हैं।

हर मनुष्य जीवन में यह प्रश्न करता है कि हम क्या करें और क्या न करें? जब लक्ष्य स्थिर हो जाता है, तब उसका निर्णय करना आसान हो जाता है। जिन बातों से लक्ष्य की पूर्ति होती हो, वही करना कर्त्तव्य है और जिनसे नहीं होती हो उसे त्यागना ही कर्त्तव्य है। सबसे पहली बात यह है कि मनुष्य शरीर से स्वस्थ रहे और बीमारियों से मुक्त। जो गृहस्थाश्रम छोड़कर संन्यास ले लेता है, उसको भी शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक रखना आवश्यक है और यौगिक व्यायाम एवं अन्य क्रियायें इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती हैं। अतएव हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम अपने स्वास्थ्य को अच्छा रखें। इसे अच्छा रहने के लिए निद्रा ठीक होनी चाहिए। शारीरिक व्यायाम भी अनिवार्य है। पेट की सफाई होनी चाहिए। भोजन और जल जितना शारीरिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, उतना ग्रहण करना चाहिए, कुछ आराम और मनबहलाव के कार्य भी नित्य-प्रति करना जरूरी है। जो मनुष्य स्वास्थ्य के कुछ सरल और सीधे नियमों का पालन करते हैं, वे स्वस्थ रह सकते हैं, अगर बीमार भी हो जायें तो शीघ्र उससे मुक्ति पा सकते हैं; भोजन में नियंत्रण की आवश्यकता है, जिन्होंने ऐसा किया है वे दीर्घ-जीवी और स्वस्थ रहे हैं। अफसोस यही है कि आज चारों ओर मद्यपान, आमिष भोजन, मिथ्या आहार-विहार को इतना प्रश्रय मिल रहा है कि मनुष्य अपने स्वास्थ्य को कायम नहीं रख सकता। भोजन जीने के लिए खाना चाहिए, परन्तु जीना खाने के लिए बन गया है। इसके बाद जो सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है, वह आर्थिक है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु है कि वह कौन-सा व्यवसाय करना चाहता है। इस चुनाव में यदि गलती हो जाय तो जीवन भर आर्थिक कष्ट भोगना पड़ता है। आज तो स्थिति यह है कि लड़के पढ़ते हैं, परन्तु उन्हें यह नहीं मालूम कि वे अपनी जीवनयात्रा को सफलतापूर्वक चलाने के लिए कौन-सा व्यवसाय करना चाहते हैं। जैसे एक नौका बिना पतवार के हवा के झोंके से इधर-उधर डोलती हुई नष्ट हो जाती है, उसी तरह मनुष्य निरुद्देश्य होकर इधर-उधर डोलता हुआ नाश को प्राप्त हो जाता है।

फिर जो भी परिस्थिति आज देश में उत्पन्न हो गयी है, वह उत्साहवर्द्धक नहीं है। हम जानते हुए भी अनजान बने हुए हैं। क्या विधि की विडम्बना है कि महात्मा गाँधी ने जो पथ हमें दिखलाया था, उसे हम बिल्कुल भूल गये और अपनी निजी सभ्यता और संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य दुर्गुणों की ओर बुरी तरह खिंचे जाते ही हैं। महात्मा गाँधी के समय के साथ आज के समय की तुलना करते हैं तो मन में विषाद उत्पन्न होता है। चाहे जो भी परिस्थिति हो, उसी में हमें सन्तुष्ट रहना होगा। यदि हम सुख-शान्ति चाहते हैं तो हमें छात्रजीवन का सही रूप से उपयोग करके एक ऐसे व्यवसाय में जाना पड़ेगा जो हमारे अनुरूप हो और हमारे अन्न, वस्त्र, गृह आदि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। आज लाखों युवक पढ़-लिखकर बेकार बैठे हैं। यह भी एक हृदय-विदारक दृश्य है।

आज जीवन निर्वाह करना एक विषम समस्या बन गयी है। परन्तु यदि प्रत्येक मनुष्य अपने लक्ष्य को स्थिर करके योग्यता हासिल करे और परिश्रम से न भागे तो जीवन की समस्या सुलझाने में बहुत कुछ सहूलियत हो जाय, परन्तु यदि मनुष्य व्यसनों में फँस-कर अपनी जिन्दगी बर्बाद करे तो उसे कौन रोक सकता हैं।

प्राचीन भारत में भी चार्वाक नाम का एक मत था, जिसमें किसी भी चीज का निषेध नहीं था। उसका मत था कि ऋणम् कृत्वा घृतम पीवेत, भष्मे भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः किन्तु यह मत हमारी भारतीय-संस्कृति में पनप नहीं पाई। लोगों ने संयम बरता।

जहाँ तक आध्यात्मिक दुखों का संबंध है, वहाँ तक मनुष्य को उन मानसिक सद्गुणों को ग्रहण करना होगा, जिससे कि शान्ति और सुख प्राप्त हो सके और उन दुर्गुणों का त्याग करना होगा, जिनसे अशान्ति उत्पन्न हो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, चोरी जुआ आदि सभी दुर्व्यसनों से जब तक हम अपने को मुक्त नहीं करते, तब तक हम कदापि शान्ति नहीं पा सकते।

अधिदैविक दुखों के ऊपर अपना कोई अधिकार नहीं है। मन को उद्विग्न न होने दें, यही चेष्टा करनी चाहिए। हमें सांसारिक दुखों से मुक्ति पाने के लिए सब से अधिक मन पर अधिकार होना नितान्त आवश्यक है और मन पर अधिकार करना वैराग्य और अभ्यास से हो सकता है। हमारे धर्मशास्त्रों ने इसे प्राप्त करने का जो उपाय बताया है, उसका निचोड़ यही है कि यह कर्मयोग, ज्ञानयोग या भक्तियोग के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। कर्मयोग तो यही बतलाता है कि अपना कर्त्तव्य समझ कर जो कुछ करना हो किये जाओ, क्योंकि कर्म पर ही तुम्हारा अधिकार है, कल क्या होगा, इसकी चिन्ता मत करो, क्योंकि यह हमारे अधिकार में नहीं है। ऐसी मन की वृत्ति यदि मनुष्य बना ले तो वह सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य ईश्वर में अनुरक्त है, उसका भक्त है, वह सांसारिक चीजों में आसक्ति-रहित हो जाता है,। तुलसी, सूर, मीरा आदि इतिहास में ऐसे भक्त हुए हैं, जो उस भावना में इतना डूब गये हैं कि दूसरी कोई चीज उन्हें मोह और माया में आकर्षित नहीं कर पायी। तीसरा मार्ग ज्ञानमार्ग है—अर्थात् तुम अपने को ब्रह्म समझो और संसार के प्रत्येक प्राणी को ब्रह्म समझो। यदि ऐसी मन की स्थिति वास्तव में हो जाये तो निश्चय ही मन में शान्ति हो जाएगी, परन्तु यह भी अत्यन्त कठिन बात है। मेरी दृष्टि में तो कर्मयोग का ही मार्ग अपनाया जा

सकता है। उसमें सफलता भी प्राप्त हो सकती है। इसी मार्ग को गीता में प्रधानता दी गयी है और लोकमान्य तिलक के अनुसार गीता का यही परम उपदेश थोड़े शब्दों में यहाँ इतना ही बतलाता है कि जीवन और मृत्यु से भय मत करो, यह तो अवश्यम्भावी है और जो कुछ तुम इस संसार में करो, उसे यही समझकर करो कि तुम केवल निमित्तमात्र हो। जो कुछ होता है, वह ईश्वर की इच्छा से होता है। जो कुछ करो उसी को समर्पण कर दो और अपने को कर्त्ता समझने का अभिमान मत करो। गीता ने हमारा मार्ग-प्रदर्शन किया है--

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज,
अहंत्वाम् सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

अर्थात् सब धर्मो को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ; मैं तुम्हारे सब दुखों को हर लूंगा। तुम चिन्ता मत करो।

ऊपर जो कुछ लिखा है, वह एक व्यावहारिक दृष्टि से ही लिखा है। उपर्युक्त बातों को समझकर कार्य रूप में परिणत करने की चेष्टा करना चाहिए, इससे प्राणी की जीवन-यात्रा सुखद बन सकेगी।

२

चिन्ता या चिता

चिता एक बार जलाती है, परन्तु चिन्ता हजारों बार जलाती ही रहती है। प्रत्येक मनुष्य किसी-न-किसी चिन्ता से ग्रस्त रहता ही है। उससे छुटकारा पाना चाहता है, परन्तु छुटकारा मिलता नहीं है, मानव समाज ने इस रोग से मुक्ति पाने के लिए सदैव प्रयत्न किया है।

सारे धर्मों की और अध्यात्मवाद की उत्पत्ति इससे छुटकारा पाने के लिए हुई। आज जब पाश्चात्य देशों में मानसिक अशान्ति बहुत अधिक बढ़ गयी है, तो वे भारतवर्ष के अध्यात्मवाद की ओर देखने लगे हैं और उसमें उन्हें शान्ति मिलती है। मुझे भी स्वभाव से कुछ आवश्यकता से अधिक अशान्ति हो जाती है, अतएव मैंने भी इससे त्राण पाने के लिए बहुत कुछ सोचा-विचारा, पढ़ा और मनन किया। चिन्ता का असर स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा पड़ता है, बहुत-सी बीमारियां इसके कारण उत्पन्न होती हैं। मनुष्य का जन्म उससे पूछकर नहीं होता। उसका मरण भी उससे सलाह करके नहीं होता। ये दोनों अवश्यम्भावी हैं और इन दोनों पर कोई अधिकार नहीं है, जो अधिकार है, वह है जबतक मनुष्य जिन्दा रहता है, कर्म करे। मनुष्य के शरीर का निर्माण ही ऐसा हुआ है, जो उसके मन में हर्ष और विषाद उत्पन्न करता है। सुख-दुख का अनुभव भी कराता रहता है। हर आदमी की चेष्टा भी यह रहती है कि दुख से उसे मुक्ति मिले, वह सुखी बना रहे, इसी के लिए संसार के सारे प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं, चाहे वे भौतिक क्षेत्र में हों या आध्यात्मिक क्षेत्र में, पर हमारे शास्त्रों ने तीन तरह के दुख बताये हैं :—

(१) अधि भौतिक, (२) आध्यात्मिक, (३) अधि दैविक। अधिभौतिक दुख वह होता है, जो बाहरी जगत से उत्पन्न होता है। जैसे—शारीरिक दुख, आर्थिक दुख, पारिवारिक दुख आदि। आध्यात्मिक—वह होता है जिसका सम्बन्ध मन से होता है और अधि दैविक वह होता है, जो किसी के वश की चीज नहीं, जैसे मृत्यु का होना, आग लग जाना, भूकम्प इत्यादि हो जाना। अधि भौतिक दुख कैसे दूर हों, इसके लिए पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद जैसे सिद्धान्तों का आविर्भाव हुआ। आध्यात्मिक और अधि दैविक दुख कैसे दूर हों, इसके लिए धर्म, दर्शन, अध्यात्म इत्यादि की उत्पत्ति हुई। परन्तु सबका लक्ष्य एकमात्र यही रहता है कि मनुष्य जबतक इस संसार में है, सुख और शान्ति से कैसे रहे। मरने के पहले और मरने के बाद क्या होता है, यह कल्पना का विषय है, किसी ने देखा नहीं, परन्तु क्या हो रहा है, यह आँखों के सामने होता है, कल्पना का विषय नहीं। सबसे पहले मनुष्य चाहता है कि वह शरीर से स्वस्थ रहे, परन्तु अफसोस की बात यह है कि वह स्वस्थ तो रहना चाहता है, परन्तु करता वही है जिससे कि सदा अस्वस्थ ही बना रहे, क्योंकि मनुष्य इन्द्रियों का दास है। इन्द्रियाँ उसकी दास नहीं हैं।

खान-पान, मिथ्या हार-विहार करने से ही मनुष्य अस्वस्थ होता है। यह बात वह जानता भी है, परन्तु मन को रोक नहीं पाता। स्वास्थ्य के सिद्धान्त सीधे-सादे हैं। रात्रि में ठीक तरह निन्द्रा हो, दिन में खाना-पीना स्वास्थ्य के सिद्धान्तों के अनुकूल हो, शारीरिक परिश्रम किसी-न-किसी रूप में होता रहे और समय-समय पर आवश्यक विश्राम और विनोद का अवसर भी मिलता रहे, तो मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। आज का जीवन लोगों ने ऐसा वना लिया है, जिसमें चटोरापन इतना वढ़ गया है कि मनुष्य स्वस्थ रह ही नहीं सकता। सात्विक भोजन की जगह तामसिक भोजन वहुत अधिक मात्रा में वढ़ गया है। कामवासना मनुष्य के जीवन का एक स्वाभाविक धर्म है और यह वासना इतनी प्रवल है, जो वड़े-वड़े ऋषि-मुनियों को भी हिला देती है। इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने इसे वश में रखने के लिए नाना प्रकार के साधन वताये, परन्तु आज जो चारों ओर देखने में आ रहा है, उससे यही मालूम होता है कि इस वासना को अधिक-से-अधिक प्रोत्साहन मिले। इसी का प्रयत्न किया जा रहा है। इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना हिन्दू धर्म का प्रधान लक्ष्य रहा है, परन्तु इन्द्रियों को अधिकाधिक विचरण करने का अवसर देना पाश्चात्य देशों का सिद्धान्त रहा है। हमने पाश्चात्य देशों से गुण नहीं ग्रहण किया, पर अवगुण सारे के सारे ले लिये। यही कारण है कि आज हम शरीर और मन से भी दुखी हो गये हैं।

मानसिक दुख भी वढ़ गये हैं। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा इत्यादि इतने वढ़ गये हैं कि ये मनुष्य के हृदय में सदैव उद्विग्नता उत्पन्न करते ही रहते हैं और शरीर में जव इन दोषों का आविर्भाव होता है, शरीर घोर कष्ट अनुभव करने लगता है। दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा आदि सद्‌गुणों से मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। यही इसका प्रमाण है कि ईश्वर ने मनुष्य के शरीर की जो रचना की है, वह ऐसी है कि क्या करना है और क्या नहीं करना, वह स्वयं वता देती है। इस सम्वन्ध में हमने श्रीमद्‌भगवत्‌गीता को वड़ा सहायक पाया और व्यावहारिक दृष्टि से डेलकारनेगी द्वारा 'हाऊ टू स्टोप वोरिंग एण्ड स्टार्ट लीविंग' नामक पुस्तक को वहुत ही उपयोगी पाया। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। ये दोनों ग्रन्थ पढ़ने, मनन करने और उनके वताये हुए सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत करने से मनुष्य वहुत कुछ शान्ति प्राप्त कर सकता है।

३

भारतीय राजनीति चौराहे पर

भारतवर्ष की राजनीति ने गत दो-तीन वर्षों में एक नया मोड़ लिया है। इसके कारण देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं और भविष्य में भी अधिकाधिक होनेवाले हैं। क्या कोई स्वप्न में भी समझता था कि मुरारजी देसाई, कामराज, एस. के. पाटिल, संजीव-रेड्डी, अतुल्य वावू एवं निजलिंगप्पा इत्यादि कितने ही वरिष्ठ नेता, जो कांग्रेस के प्राण थे, इस तरह मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिये जायेंगे और कांग्रेस एक नवीन रूप धारण करके जनता के समक्ष प्रकट होगी। कौन जानता था कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी का प्रभाव देश में इतना व्यापक होगा कि वे सर्वोत्कृष्ट नेता के रूप में देश के समक्ष उपस्थित होंगी। जव हम लोग यह चर्चा सुनते थे कि जवाहरलालजी श्रीमती इन्दिरागाँधी को प्रधान मंत्री के पद पर देखना चाहते हैं, तो आश्चर्य होता था कि इतने वड़े-वड़े और पुराने कांग्रेसी नेताओं के रहते हुए यह कैसे संभव होगा और श्रीमती इन्दिरा गाँधी देश के इतने वड़े वोझ को कैसे संभाल सकेंगी।

१९६७ के चुनाव के वाद कांग्रेस की जो दुर्दशा हुई थी, और राजनीतिज्ञों ने जो तांडव नृत्य किया था, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि देश का सर्वनाश उपस्थित है। विहार में एक मुख्यमंत्री हुए। उनके दल में ३९ आदमी थे। वे सभी मंत्री वना दिये गये। उनमें ऐसे भी थे, जिनके लिए काला अक्षर भैंस वरावर था। उनमें कुछ ऐसे भी थे, जो नामी गुंडे समझे जाते थे।

राजनीतिज्ञों ने जिस वेशर्मी का परिचय दिया, वह वर्णनातीत है। इससे यह सिद्ध हो गया कि विना एक मजवूत नेतृत्व के ये राजनीतिज्ञ विना लगाम के घोड़े हैं। ये जो कुछ भी करें, थोड़ा है। लेकिन ईश्वर की कृपा हुई और देश का सौभाग्य हुआ कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी एक सुयोग्य और मजवूत नेता के रूप में प्रकट हुईं। सारे देश के शासन में दृढ़ता आई। देश ने एक नई सांस ली। यह ठीक है कि जो लोग राष्ट्रपति के चुनाव में उनके साथ नहीं थे, वे एक-एक करके उखाड़ कर फेंक दिये गये। परन्तु यह समझना चाहिए कि राजनीति का यह एक सिद्धान्त है कि अपने विरोधियों को वलहीन करके अधिकार-च्युत कर दे। यद्यपि प्रजातंत्र के पोषक इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते, तथापि भारत जैसे विशाल देश के लिए शासन की दृढ़ता अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा किये विना वह दृढ़ता आ नहीं सकती। प्रेम और भय दोनों की ही आवश्यकता शासक को रहती है। पर एक वात अखरने वाली है कि देश में भ्रष्टाचार इतना वढ़ गया है कि जनता इस पर नाराज होना भी भूल गयी है। आप चाहे जो कर लें, कोई

कुछ कहने वाला नहीं है। किसी के हृदय में कोई स्पन्दन नहीं है। सबों ने मान लिया है कि जब कूएं में ही भांग पड़ जाये तो पागल किसे कहें। आज तो यह अवस्था है कि रेल के एक-एक थर्ड क्लास की टिकट के लिए बीस-बीस रुपये घूस देने पड़े हैं। यदि देश को कोई चीज खा जायेगी, तो यही।

महँगाई इतनी बढ़ रही है कि आज ऊंची से ऊंची तनख्वाह पानेवाले सरकारी कर्मचारी भी अपने को गृहस्थ आश्रम के चलाने में अक्षम पाते हैं। जो बड़ी तनख्वाह पानेवाले आफिसर है, उनको इनकम टैक्स वगैरह काट कर जो मिलता है, उसमें अपना संसार नहीं चला सकते। समाजवाद के नारे के कारण उनकी तनख्वाहें बढ़ नहीं सकतीं। लेकिन ज्यों-ज्यों सरकार अपना क्षेत्र बढ़ाती जा रही है, त्यों-त्यों उनके अधिकार भी बढ़ते जा रहे हैं। और अनुचित तरीकों से आमदनी करने के उन अफसरों के साधन भी बढ़ते जा रहे हैं। जिनकी आँखों के आगे सोने की नदी बहती हो, वे अपनी आवश्यकता को भी पूरा न कर सकते हों तो वे अपने को कैसे संयम रख सकते हैं। यह प्रश्न कैसे हल किया जाये, यही समस्या देश के सामने प्रश्न-सूचक बनकर खड़ी है।

५

व्यापारिक समाज और सरकार : दोनों में सीधी मुठभेड़

देश की बड़ी समस्यायें खड़ी हो गयी है। महँगाई जैसी अभी है, वैसी कभी नहीं हुई। इसके सच्चे कारणों को पूरी तरह ढूंढ़ने की आवश्यकता है, कहीं-न-कहीं बहुत बड़ी गलती हुई है। केवल व्यापारियों पर रोष प्रकट करने से ये समस्यायें नहीं सुलझेंगी, बल्कि और उलझेंगी। सरकार को अपनी नीति पर पुनर्विचार करना चाहिए और स्वयं अनुभव करके उसे ठीक करना चाहिये। देश में योग्य मनुष्यों की कमी नहीं है। उनके परामर्श को सुनें, अगर उपयुक्त हो ग्रहण करें और साहस के साथ स्वीकार कर उसे कार्य-रूप में परिणत करें। सरकार जो गलती कर चुकी है, उसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनावे और उसे सुधारे। गलतियां सभी करते हैं। चर्चिल ने कहा था कि १०० में से यदि ५५ निर्णय सही निकलें तो हम ठीक रास्ते पर हैं और अपने को सफल शासक समझेंगे। राजनीतिज्ञों में यही कमी है कि अपनी गलतियों को स्वीकार करना नहीं चाहते। महात्मा जी ने जब अपनी गलती अनुभव की तो स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि उन्होंने जो भूल की है वह इतनी बड़ी है, जितना बड़ा हिमालय। फिर अपनी भूल का वे सुधार करने में लग गये। महापुरुषों का यही लक्षण है और वे ही युग-प्रवर्तक होते हैं। कांग्रेस ने देशवासियों को कुछ आश्वासन दिया था, सरकार ने कुछ वादा किया था। अत: उन वादों को पूरा करना ही होगा, चाहे परिणाम खराब ही नजर आता हो, यह सोचना ठीक नहीं है। जब हम गलती अनुभव करें तो साहस के साथ उसका सुधार करना चाहिए, देश की समस्या तभी हल होगी। अमेरिका के लब्ध-प्रतिष्ठ राष्ट्रपति इब्राहम लिंकन, जिन्हें संसार आज भी श्रद्धा से देखता है, ने कहा था कि जो काम मैं करता हूँ, यदि वह सही हुआ तो लोग चाहे उसकी जितनी भी निन्दा करें मैं उसकी परवाह नहीं करता। अगर उसका फल सही नहीं निकला, तो लोग यदि मेरी प्रशंसा के गीत गावें तो उससे भी कोई लाभ नहीं होनेवाला है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पिछले वर्षों में बड़े साहस का परिचय दिया था। अब भी उसी साहस का परिचय देने का समय आ गया है। आज स्थिति यह है कि सरकारी अफसरों, राजनीतिज्ञों, किसानों, मजदूरों, छात्रों को कोई दोष नहीं देता, चाहे वे कुछ भी करें, कुछ भी बोलें। युवक और युवतियां जो कुछ करें, देश का जितना अनिष्ट वे करें, उसके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कहता। 'गरीबी हटाओ, अमीरी घटाओ,' इसकी जगह गरीबी और अमीरी बढ़ाओ हो रहा है।

शिक्षालयों, विश्वविद्यालयों में छात्र आग लगा दें, पुस्तकालयों को नष्ट कर दें, बेशकीमती अप्राप्य पुस्तकों को जला दें, प्राचीन स्मृतियों को मिटा दें, परन्तु उनके

विरुद्ध हम कुछ भी नहीं बोलते, क्योंकि सरकार ने विद्यार्थियों के कार्यों में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दे रखा है।

मजदूर चाहे अनुचित हड़ताल करके उत्पादन को नष्ट करके देश में कितनी ही महंगाई क्यों न उत्पन्न करें, मिलों की अप्राप्य मशीनों एवं उत्पन्न सामानों को ध्वंस करें, बड़े-बड़े किसान अपने उपजाये हुए गल्लों का चाहे कितना ही मूल्य ले लें, तो भी इन्हें कोई कुछ नहीं कहता। परन्तु समस्त व्यापारी समाज, जिनमें ईमानदार भी हैं, अच्छे भी हैं, बुरे भी हैं, देश की दुर्दशा के लिए एकमात्र उन्हीं को दोषी ठहराया जाता है और उन्हें आजीवन कैद तक का दण्ड देने का कानून वनाने की धमकी दी जाती है। केवल उन्हीं को दोषी ठहरा कर जनता को उनके विरुद्ध भड़का दें, यह कहाँ तक उचित है? क्या इससे देश की दुर्दशा का अन्त हो सकता है। यह सोचने और समझने की वात है। ३० वर्षों से व्यापारियों के विरुद्ध मैं आवाजें सुनता आ रहा हूँ, परन्तु इसका कोई फल अब तक प्राप्त नहीं हुआ, उल्टे दिन-पर-दिन भाव बढ़ते ही गये और विगत छः महीनों में तो भाव इतने वढ़ गये कि इतने थोड़े समय में इतने अधिक भाव पहले कभी नहीं वढ़े थे।

मैं यह नहीं कहता कि व्यापारियों की भूलें नहीं हैं, इसके लिए इन्हें दण्ड न मिले। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि केवल इन्हीं की भूलें नहीं, सभी की भूलें हैं। सभी की भूलें जव तक नहीं हटेंगी, तव तक समस्या का समाधान नहीं होगा।

मैं स्वयं व्यापारी नहीं हूँ और न मेरे पुत्र-पौत्रादि ही व्यापार में हैं। मैं व्यापारियों को भी वहुत बड़ा अपराधी समझता हूँ। परन्तु युद्ध जैसे किसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का समाधान नहीं करता; उसी तरह केवल दण्ड-विधान हमारी आन्तरिक समस्याओं को सुलझा नहीं सकता। महात्मा गांधी ने किस प्रकार सत्य और अहिंसा के आधार पर राजनैतिक लड़ाई लड़ी थी, उसी सत्य और अहिंसा के आधार पर ही हमें गरीवी से भी लड़ाई लड़नी होगी; तभी हम सफल होंगे। देश की आर्थिक नीति में सरकार और व्यापारी दोनों के आपसी सहयोग की आवश्यकता है। और दोनों को ही अपने-अपने क्षेत्रों में सुधार करना होगा, तभी हम अपनी कठिनाइयों को दूर कर सकेंगे। पाश्चात्य देशों में जिस आधार पर समाजवाद या साम्यवाद आया है, वह आधार हमारे देश के लिए उपयुक्त नहीं है। हम प्रजातन्त्र के आधार पर समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं। हम जनता को स्वतन्त्र रूप से बोलने-रहने एवं कार्य करने की स्वतन्त्रता देते हैं और मजदूरों को हड़ताल करने की भी छूट देते हैं। इन आधारों पर विदेशों में साम्यवाद की स्थापना नहीं हुई है। हम पाश्चात्य देश के आधारों को पसन्द नहीं करते, हम अपने ही आधारों के ऊपर उसका निर्माण करना चाहते हैं। सवसे पहले इस वात की आवश्यकता है कि जिन सरकारी कर्मचारियों के द्वारा हम व्यापार क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं, उनमें योग्यता, ईमानदारी और देश व सरकार के प्रति आन्तरिक ममता है या नहीं, उसी पर हमारी आर्थिक सफलता या विफलता निर्भर करती है, ऐसा मुझे लगता है। महात्मा गांधी के मूलभूत सिद्धान्तों को हमें भूलना नहीं चाहिए।

दहेज

जब मैं दहेज के वर्तमान स्वरूप को देखता हूँ और इसके कारण बहुत से घरों में बाईस-चौबीस वर्षों की कुंआरी कन्याओं के मुरझाये हुए चेहरों पर नजर डालता हूँ और उनके पिता-माताओं के हृदय की मार्मिक वेदना का अनुभव करता हूँ तो चित्त में दारुण व्यथा होती है। जो समाज इसके लिए उत्तरदायी है, उसके विरुद्ध मन में विद्रोह की ज्वाला धधक उठती है। सोचने लगता हूँ कि वे युवक और युवतियां कहाँ गये जो देश की स्वतंत्रता के लिए फांसी के तख्ते पर हँसते-हँसते लटक गये, जिन्होंने लाठी और डंडों के भीषण प्रहार सहे। वर्षों जेलों की काल कोठरियों में पड़े-पड़े जीवन बिताया। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों से जकड़े हुए समाज को मुक्त करने के लिए क्या कष्ट नहीं सहे। एक जमाना था जबकि समाज रूढ़ियों से इस तरह आबद्ध था, जिसकी कल्पना भी आज की युवा-पीढ़ी नहीं कर सकती। आज युवाक्रांति की चर्चा रात्रि-दिवा सुनता हूँ, परन्तु जिन क्षेत्रों में युवाक्रांति की आवश्यकता है, वहाँ यह कहीं भी दिखाई नहीं देती। अतः आज जो हो रहा है वह युवा-क्रांति नहीं, युव-भ्रान्ति है। केवल लूट, हत्या, मद्य, विलासिता और अनैतिकता ही नजर आती है। आज से ५०-६० वर्ष पहले राजनैतिक संघर्ष के साथ-साथ सामाजिक संघर्ष भी उसी द्रुतगति से प्रवाहित हो रहा था। किसी वृद्ध मनुष्य के मरने पर जहाँ एक ओर उसकी स्त्री और बच्चे क्रन्दन करते थे, वहाँ दूसरी ओर समाज के बन्धु मृतक मनुष्य के आवास स्थान को बिकवा कर भी लड्डू खाने से बाज नहीं आते थे। इस घृणित प्रथा के विरुद्ध तत्कालीन युवक सम्प्रदाय ने धरना देना शुरू किया। यदि किसी ने विधवा-विवाह कर लिया तो समाज के दर्जनों युवकों को जाति बहिष्कार का कष्ट झेलना पड़ता और जिसने विधवा विवाह किया उसकी मरणासन्न माता को अस्पताल से निकाल दिया गया। जब समाज के किसी विशिष्ट व्यक्ति ने अपने समाज के दायरे से किंचित भी हटकर विवाह किया तो सारा समाज बुरी तरह टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त हो गया। एक दल की लड़की यदि दूसरे दल में विवाहित होती तो वह अपने माता-पिता के घर का दर्शन भी नहीं कर सकती थी।

स्त्रियों को पढ़ाना पाप समझा जाता था और यदि किसी ने पर्दा तोड़ दिया तो उसे वेश्या की संज्ञा दी जाती थी। उस समय के युवक-समाज ने इन सब परिस्थितियों का सामना किया और अपने लक्ष्य से किंचित भी नहीं हटे।

आज कहाँ वह युवा वर्ग है, जिसने अनेक-अनेक कष्ट सहकर समाज को इन सब बेड़ियों से मुक्त किया। हमारा नारी समाज खुली हवा में सांस लेने के योग्य बना। ऊंची

से ऊंची शिक्षा की अधिकारिणी बनी। समाज सामाजिक और राजनैतिक बेड़ियों से मुक्त होकर स्वतन्त्रता से फिरने लगा। भारत देश गुलामी के वन्धन से मुक्त हुआ। अफ़सोस यह है कि आज हम दहेज-प्रथा जैसी सामान्य कुरीति को दूर करने की हिम्मत भी खो बैठे और उसे दूर करना असम्भव समझने लगे। जो पहले के वचे-खुचे युवक हैं, वे अब वृद्ध हो गये और उनमें से बहुतेरे कोट्याधीश की श्रेणी में दाखिल हो गये, उनमें वह चिनगारी कैसे मिल सकती है? अव तो नये जमानेवालों को ही आगे आना चाहिए और अपना जौहर दिखाना चाहिए।

जब धनी और सम्पन्न व्यक्तियों से इस सम्बन्ध में बातें होती हैं, तो उनका एक ही जवाब होता है कि जिसके पास पैसा है, वे तो खर्च करेंगे ही, गरीव और मध्यम सम्प्रदाय के लोग उनका अनुकरण क्यों करते हैं। इससे बढ़कर हृदयहीनता का क्या परिचय मिल सकता है। वे समझते हैं कि उनका वर्ग भिन्न है और गरीवों और मध्यम श्रेणी के लोगों का भिन्न। इनके सुख और दुख से उन्हें कोई वास्ता नहीं है। परन्तु वे भूल जाते हैं कि इस भावना का समय पाकर कितना वड़ा घातक परिणाम उनके लिए भी हो सकता है। वास्तव में देश में यह धारणा दृढ़ होती जा ही है कि धनी और सम्पन्न वर्ग दूसरों से भिन्न हैं, और वे जनसाधारण का शोषण कर रहे हैं। यही कारण है कि आज इन दोनों वर्गों में जो गहरी दरार पड़ती जा रही है, उसका परिणाम एक भयंकर विस्फोट के रूप में हो सकता है और वह विस्फोट इतना भयंकर रूप धारण कर सकता है, जिसकी कल्पना भी हम आज नहीं कर सकते।

विवाह एक सामाजिक प्रथा है, जो क्या गरीब, क्या अमीर सभी के लिए अनिवार्य है। जो अमीर करते हैं, उसका प्रभाव सारे समाज पर पड़ता है। आज जो हो रहा है, वह दहेज नहीं है, विवाह के बाजार में लेवा-बेची का सौदा है, वर-विक्रय है। जो बाजार दर अमीरों के द्वारा निश्चित की जाती है, उस दर का असर सारे समाज पर पड़ता है और नीचे से ऊपर तक इस बाजार में महँगाई दिखाई देने लगती है। हमें वह समय याद है, जब समाज के धनी सम्प्रदाय भी गरीबों की विवाह-शादियों की कठिनाई को भी देखते थे, उन्हें अपना भाई समझते थे। उनके विवाह-शादियों में जाना अपना कर्त्तव्य समझते थे। बहुत-सी कुरीतियों को मिटाने में उन्होंने प्रमुख भाग लिया था और जो नियम उन्होंने चलाये थे, सारे देश में चल पड़े। एक जमाना था, जब विवाह में सौ-सौ दुशाले तक दिये जाते थे। वहां केवल एक दुशाला देने का नियम बना दिया, जो आज भी प्रचलित है। पुराने समय में भण्डार होती थी, जिसमें वर पक्ष इतनी मिठाई उठाता था कि लड़की वाले की इज्जत जाने की नौबत आती थी, इसे वन्द कर दिया गया, वह आज भी बन्द है। बारातों में एक मील लम्बी बागवाड़ी निकला करती थी जो वन्द कर दी गयी और आज भी बन्द है। इसी प्रकार बहुत से नेगचारों को भी उठा दिया गया। यह आवश्यक है कि इस भीषण रोग से बचने के लिए समस्त समाज के वर्गों को मिलकर ही काम करना होगा, अन्यथा वह समय भी आ सकता है जब कि इस समाज में विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष जाग उठे।

आज जिस द्रुतगति से व्यापारों का राष्ट्रीयकरण हो रहा है, उसका असर व्यापारी समाज के ऊपर पड़े बिना नहीं रह सकता। आज का खर्च, आज की विलासिता, आज

का प्रमाद रह नहीं सकता। शासन में भी भ्रष्टाचार, मिथ्यावादिता और देश में जो भी भीषण महंगाई दिखाई देती है, उसे देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि हम बालू की दीवाल खड़ी कर रहे हैं। वह किस दिन ढह जाये, कोई कह नहीं सकता। फिर ढहने के बाद देश में विप्लव हुए बिना नहीं रह सकता। उस समय न गरीब रहेंगे और न अमीर और न ये दहेज न विलासिता और न खुराफात।

६

मारवाड़ी समाज अपनी चिन्तनधारा बदले

जिस समाज में मनुष्य का जन्म होता है, उसके साथ ममत्व होना स्वाभाविक है। समाज के भविष्य के साथ उस समाज में रहनेवाले, प्रत्येक व्यक्ति का भविष्य भी जड़ित रहता है। यदि उस समाज की स्थिति किसी कारण से चिन्तनीय दीखने लगे तो उस समाज के व्यक्ति के भी मन में अशान्ति का होना स्वाभाविक है। मैं ८० वर्ष की उम्र में पहुँच गया हूँ और लगभग ६५ वर्ष से इस समाज के सार्वजनिक जीवन में भाग लेता रहा हूँ। जब मैं राजनैतिक क्षेत्र में था उस समय भी इस समाज के सार्वजनिक जीवन से उतना ही घनिष्ट संबंध बना रहा, जितना कि देश के सार्वजनिक जीवन से। लगभग ३० वर्षों तक तो बंगाल की विधान सभा में सदस्य रहा, जिसमें ५ वर्ष विधान सभा के स्पीकर के पद पर और १५ वर्ष मंत्रिमण्डल के सदस्य के रूप में बिताया। जितनी दिलचस्पी मुझे राजनीति में रही, उतनी ही दिलचस्पी समाजोत्थान के कार्यों में भी रही। अतएव यदि मैं इस समाज के संबंध में कुछ लिखूँ तो संभवत: अनधिकार चर्चा नहीं समझी जायेगी। कभी-कभी स्पष्ट बोलने की आवश्यकता हो जाती है, चाहे वह प्रिय मनोहारी न भी हो। इसीलिए यदि कोई बात मुझ से अप्रिय भी लिखी जाये तो हमारे बन्धु हमें क्षमा करेंगे।

हमारे पूर्वजों की उपलब्धियाँ

पिछले दो-तीन सौ वर्षों के अन्दर मारवाड़ी समाज अपनी जन्मभूमि राजस्थान के कठोर जीवन को छोड़कर अनेक दुखों को साहसपूर्वक झेलता हुआ अदम्य उत्साह और आत्मविश्वास का आश्रय लेकर समस्त भारतवर्ष में फैल गया। कोई भी मनुष्य कुछ वर्षों पूर्व तक यदि राजस्थान जाता तो बड़ी-बड़ी हवेलियां और अट्टालिकाएं तालों से बन्द देखने में आती थीं। इधर १०-१५ वर्षों में अवश्य राजस्थान में भी बड़ी उन्नति हो गयी है और स्वतंत्रता के पहले जिसने राजस्थान को देखा होगा, अब उसे वहां के वैभव को देखकर अवश्य आश्चर्य होगा। परन्तु स्वतंत्रता के पूर्व राजस्थान वास्तविक मरु-भूमि था।

जिन प्रदेशों में जिन्दगी आराम से बसर होती थी, वे लोग घरों से बाहर नहीं निकले और उनकी प्रगति भी नहीं हो सकी। कष्टमय जीवन मनुष्य को परिस्थितियों से युद्ध करने की क्षमता प्रदान करता है। उसी क्षमता को लेकर मारवाड़ी समाज ने भारत के विभिन्न प्रदेशों में ही नहीं बल्कि बर्मा तक भी प्रवेश किया। घोर परिश्रम करने से नहीं चूके। जीवन में वैभव हो जाने पर भी सादगी रही। दान-पुण्य-धर्म में भी आस्था

बनी रही, जिसका प्रमाण आज सारा भारतवर्ष है। उनमें शिक्षा नहीं थी, अतएव व्यवसाय, वाणिज्य में उन्हें आना पड़ा और उसी के द्वारा उन्हें अपनी जीविका उपार्जन करनी पड़ी। जिनमें अंग्रेजी शिक्षा आ गयी, वे सरकारी आफीसर, वकील, डाक्टर, इंजीनियर इत्यादि पेशों में चले गये। व्यवसाय, वाणिज्य में जो धन की प्राप्ति हो सकती है, वह और किसी भी व्यवसाय में नहीं प्राप्त होती। धीरे-धीरे मारवाड़ी समाज अत्यन्त वैभवशाली समाज के रूप में प्रकट हुआ। अन्य जातियां जो शिक्षा के कारण सम्माननीय पेशों में या राजकीय पदों पर गयीं, वे इतना वैभव नहीं प्राप्त कर सकीं और आज मारवाड़ी समाज उनकी ईर्ष्या और द्वेष का शिकार हो रहा है—परन्तु यह भावना बिल्कुल निराधार है। नीति का वचन है कि

> **को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्त्विमृतः**
> **यं देशम् वसते तमेव कुरुते बाहु प्रतापादितम्**

अर्थात् : वीरों एवं मनस्वियों के लिए कौन अपना देश है और कौन पराया, वे जहां गये, वहीं अपने वाहुवल से अधिकार कर लेते हैं। भारतवर्ष के भविष्य के निर्माण में इनका वहुत वड़ा हाथ हो सकता है। आज तो इस समाज में शिक्षा का भी इतना विस्तार हो गया है कि किसी भी दूसरे समाज से यह पीछे नहीं है। सामाजिक सुधारों के लिए भी जितने आन्दोलन इस समाज में हुए हैं, शायद ही किसी दूसरे समाज में हुए होंगे। स्त्री समाज की अवस्था जो हमलोगों ने अपने वाल्यकाल में देखी है, उससे वह इतनी अधिक बदल गयी है जिसे विश्वास करना मुश्किल है। जो समाज अपनी जन्मभूमि छोड़कर वाहर निकल जाता है, उसमें द्रुतगति से परिवर्तन होने की शक्ति आ जाती है। इतना होते हुए भी जिन-जिन प्रान्तों में यह समाज गया है और सदियों से बस रहा है, तो भी उसकी पृथक इकाई वर्त्तमान है। वेश, भूषा, रहन-सहन, विचारधारा अन्य प्रान्त-वासियों से भिन्न रह गये हैं, और वे उन स्थानों में विलीन नहीं हो सके। यही कारण हैं, जो हमें इस समाज का भविष्य क्या हो, सोचने के लिए वाध्य करते हैं।

जातिवादिता, प्रान्तीयता एवं साम्प्रदायिकता

इस देश में जातिवाद, प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता दिनानुदिन वढ़ती जा रही है। इसके विरुद्ध एक जमाने से विरोधी आवाज सुनाई दे रही है, परन्तु 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। जब हमलोग बच्चे थे, उस समय छुआछूत का रोग तो अवश्य बड़े पैमाने पर था, परन्तु पारस्परिक विरोध और वैरभाव इतना नहीं था। अब छुआछूत तो वहुत कम बच गया है, परन्तु पारस्परिक विरोध बहुत अधिक बढ़ गया है और उसके घटने का कोई लक्षण नहीं नजर आ रहा है।

पहले एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्तों में जाकर रहते थे, अपनी जीविका चलाते थे, अपनी भाषा बोलते थे। रहन-सहन भिन्न था। लेकिन पारस्परिक विरोध किसी प्रकार का नजर नहीं आता था। जातियाँ भी सभी मौजूद थीं, जिनमें आपस में खानपान, विवाह-शादी नहीं होती थी, तो भी कोई शत्रुता हो, ऐसी बात नहीं थीं। जैसे-जैसे शिक्षा बढ़ी, स्वार्थ बढ़ा, आर्थिक दृष्टिकोण आया, वैसे-वैसे सब प्रकार के विरोध उत्पन्न हो गये।

हमारे विदेशी शासक अंग्रेज थे। इन्होंने अपनी सत्ता भारत में कायम रखने के लिए पारस्परिक भेद-भाव को उत्पन्न करने में कोई कसर उठा नहीं रखी। इन सबका परिणाम आज यह हुआ है कि प्रत्येक प्रान्त में दूसरे प्रान्त से आये हुए मनुष्यों के विरुद्ध में भावना गहरी होती जा रही है। कभी आसामी-बंगाली, कभी आसामी-मारवाड़ी, कभी बंगाली-मारवाड़ी तो कभी हिन्दू-मुसलमानों में उपद्रवों के समाचार मिलते ही रहते हैं। आज मारवाड़ी समाज की समृद्धि वहाँ के निवासियों के लिए असह्य हो रही है। यहाँ तक कि जो परिवार बंगाल में दो-तीन सौ वर्षों से बसे हुए हैं, वे भी समय-समय पर इस ईर्ष्या-द्वेष के शिकार हो जाते हैं।

द्वितीय महायुद्ध के वाद समाज का स्वरूप :

द्वितीय महायुद्ध के वाद और विशेष कर स्वतंत्रता-प्राप्ति के वाद देश में व्यापार, वाणिज्य और उद्योग-धन्धों में इतनी वृद्धि हुई है और उसमें लोगों ने इतना अधिक उपार्जन किया है कि समाज की चिंतनधारा बिल्कुल बदल गयी है और जीवन का एकमात्र लक्ष्य येनकेन प्रकारेण धनोपार्जन करना ही रह गया है। जब ऐसी स्थिति हो जाती है, तो मनुष्य की चिंतनधारा ही बदल जाती है और वह सोते-जागते, उठते-बैठते केवल धन की आकांक्षा करता रहता है और वही जीवन का सर्वस्व वन जाता है।

धन के दो रूप होते हैं—एक सौम्य और दूसरा विकृत। इसलिए जहाँ हमारे शास्त्रों में धन की प्रशंसा की गयी है, वहीं उसकी घोर निन्दा भी की गयी है। जब धन का विकृत रूप हो जाता है, तो प्रमाद बढ़ जाता है—अभिमान आ जाता है। मारवाड़ी समाज में यही हुआ है और आज यह स्थिति हो गयी है कि मारवाड़ी समाज के व्यक्ति अपने को मारवाड़ी कहने में संकोच अनुभव करते हैं और यह शुद्ध घृणा के रूप में परिणत हो गया है, सारी चिंतनधारा में जबतक परिवर्तन नहीं आयेगा, तबतक हम अपने गौरव और सम्मान को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। जिस प्रकार हम धनोपार्जन करते हैं और जिस तरीके से हम उसको प्रमाद और अनैतिक कार्यों में अपव्यय करते हैं, उससे हम कभी भी दूसरे समाजों का सम्मान प्राप्त नहीं कर सकते। दान देते हैं—यह अच्छी बात है और कुछ अंश तक वह हमें सम्मान भी देता है, परन्तु जबतक हम धनोपार्जन की विधि में परिवर्त्तन नहीं लाते और उसके अपव्यय को नहीं रोकते, तबतक केवल दान हमारी रक्षा में समर्थ नहीं हो सकता।

वैयक्तिक अनीतियाँ :

हमने सुना है कि समाज के धनी वर्गों में ९० प्रतिशत नौजवान कम या अधिक शराब पीने लगे हैं, जहाँ पुराने जमाने में कोई विरला ही आदमी ऐसा करता था। मुर्ग-मुसल्लम और अन्य मांसादि खानेवाले युवकों की संख्या भी बहुत बढ़ गयी है। अमेरिका के हिप्पियों की नकल करके गांजा, चरस आदि भी अपना घर बना रहा है। स्त्री-पुरुष के जो पवित्र संबन्ध थे, वे आज रसातल की ओर जा रहे हैं।

व्यापारिक दुर्नीतियाँ

व्यापारिक क्षेत्र में जो दुर्नीतियाँ प्रवेश कर गयी हैं, उनकी चर्चा करना ही व्यर्थ है।

आज कोई वस्तु नहीं, जो शुद्ध मिलती हो—हर चीज में मिलावट हो गयी है। दवाइयों में भी इतनी मिलावट बढ़ गयी है कि इसके कारण मनुष्य अपने जीवन से हाथ धो बैठता है। आये दिन हम अखबारों में पढ़ते हैं कि मिलावटी शराब के कारण एक-एक साथ २०,३०,५० मनुष्यों की मृत्यु तक हो जाती है—नफा करने की कोई सीमा नहीं रही। सरकार के सारे प्रयत्न विफल हुए हैं। रोज हर चीज के दाम इतने बढ़ते जा रहे हैं कि मध्यवित्त गृहस्थ के लिए जीवन-यापन करना असंभव हो गया है।

सामाजिक व्यवस्था

यह इतनी बिगड़ती जा रही है कि कन्या का विवाह करना एक मध्यवित्त मनुष्य के लिए असंभव हो गया है। मनुष्य मनुष्य नहीं रह गया है। वह जड़ हो गया है। यह अवस्था कबतक चलेगी, कहाँ तक इस नैतिक अधःपतन का वर्णन किया जाय। मनुष्य एक यंत्र बन गया है, जिसे अपने सिवाय दूसरे किसी के सुख-दुख से कोई मतलब नहीं। इसीलिए हम कहने को बाध्य हैं कि जो कुछ हो रहा है, वह कटु सत्य है। जबतक समाज अपनी चिंतनधारा को न बदले, जबतक वह अपने स्वरूप का परिवर्तन न करे, तबतक उसके भविष्य को कैसे आशाप्रद कहा जाय।

देश का नेतृत्व

देश के जीवन में मारवाड़ी समाज का इतना महत्वपूर्ण स्थान है कि अगर वह अपनी बुराइयों को सर्वथा दूर न भी कर सके, परन्तु यदि उसे नियंत्रण में ला सके, चाहे वह वैयक्तिक बुराई हो या व्यापार संबंधी या सामाजिक कार्य संबंधी हो और अगर वह जरूरत से अधिक अपने धन और सम्पत्ति को देश के गरीबों के उत्थान में लगा सके और देश की आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में सहायक बन सके, तो यह समाज न केवल जनता का आदर और सम्मान ही प्राप्त कर सकता है, बल्कि देश का नेतृत्व ग्रहण कर सकता है और देश के इतिहास में अपनी कीर्ति को चिरस्थायी बना सकता है। भामाशाह ने यदि राणा प्रताप को उनकी विपत्तियों में सहायता नहीं पहुँचाई होती, तो भामाशाह का नाम आज कौन याद करता ? हजारों ही अमीर आये और चले गये, किन्तु भामाशाह को आज भी हम याद करते हैं। मारवाड़ी समाज अपनी शक्ति और स्वरूप को पहचाने और उसके अनुसार कार्य करे तभी इस समाज का जीवन धन्य हो सकता है।

७

शहीद खुदीराम बोस

खुदीराम बोस को शहीद हुए आज ६४ वर्ष हो गये। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के भी २५ वर्ष पूरे हो गये। गत २६ जनवरी, १९७२ को गणतन्त्र-दिवस के अवसर पर शहीद खुदीराम बोस की मूर्त्ति का उद्घाटन हुआ। इस अवसर पर मुझे वह दिन स्मरण हो आया जब सन् १९०८ ई० में मुजफ्फरपुर में, सम्भवतः भारत में पहली बार किसी अंग्रेज पर बम फेंकने की घटना घटी थी। उस युग में किसी अंग्रेज के सामने सिर उठाकर देखने में भी भय मालूम होता था। बम के द्वारा राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी की हत्या करने का यह पहला ही अवसर था।

मुझे वह घटना पूरी तरह स्मरण है। संध्या का समय था। गर्मियों के दिन थे। मैं भोजन करने बैठा ही था कि यकायक बड़े जोरों की धमाके की आवाज सुनाई दी। ऐसी भयानक आवाज मैंने कभी सुनी नहीं थी, इसलिए मन में आया कि यह किस चीज की भयानक आवाज है, कारण कि मुजफ्फरपुर में तोप तो है नहीं; फिर यह आवाज कैसी है?

मैं इसी सोच-विचार में था कि इतने में सड़क पर जनता की विशेष चहल-पहल दृष्टिगोचर होने लगी। लोग जगह-जगह इकट्ठा होकर आपस में तरह-तरह की चर्चा करने लगे। तब मालूम हुआ कि किसी ने बम फेंका है। और उस बम से केनेडी साहब की मेम और उनकी कन्या दोनों की ही मृत्यु हो गयी है। उनकी फिटन का कोचवान भी बुरी तरह घायल होकर अस्पताल में पड़ा है।

जिस स्थान पर यह बम फेंका गया था, वह हमारे घर के निकट ही था। केनेडी साहब मुजफ्फरपुर में वकील थे। उन्होंने हिन्दुस्तान में वकालत की परीक्षा पास की थी। उनके परिवार को हम लोग अच्छी तरह जानते थे; क्योंकि हमारी कपड़े की दूकान पर वे कपड़ा खरीदने के लिए प्रायः आया करते थे। इसलिए सारी सहानुभूति हम लोगों की उनके प्रति ही उत्पन्न हुई और जिसने उन लोगों की हत्या की थी, उसे कोसने लगे।

घायल कोचवान ने मरते वक्त खुदीराम बोस और उनके साथी प्रफुल्ल चाकी की हुलिया बता दिया था। इसके बाद पुलिस की चहल-पहल जोरों से प्रारम्भ हो गई। मुजफ्फरपुर के आसपास, भीतर और बाहर चारों ओर अपराधी का पता लगाने के लिए पुलिस छा गयी। रातभर डुग्गी पीटकर एलान किया गया कि हत्यारों का पता देनेवाले को पांच हजार रुपये इनाम दिया जायेगा। बाद में यह रकम पाँच हजार से बढ़ाकर

दस हजार कर दी गई। रातभर खुदीराम बोस की खोज होती रही। वे रात्रि में ही मुजफ्फरपुर से पाँच मील दूर सिलाख नामक गाँव में पहुँचकर एक दूकान से कुछ लेकर खा रहे थे। इसी मौके पर एक पुलिस ने उन्हें देख लिया। विहार के एक गाँव में बंगाली युवक को देखते ही उसे सन्देह उत्पन्न हुआ। ज्योंही पुलिस ने पूछताछ आरम्भ की, त्योंही खुदीराम बोस ने उसे मारने के लिए पिस्तौल निकाल ली। लेकिन तब तक पुलिस ने तेजी से बढ़कर उनके दोनों हाथों को पकड़ लिया और वे गिरफ्तार कर लिये गये। वहाँ से वे मुजफ्फरपुर लाये गये। उधर प्रफुल्ल चाकी ट्रेन द्वारा कलकत्ते के लिए रवाना हो गये थे। मुकामाघाट पर जब वे स्टीमर में गंगा पार कर रहे थे, तब मुजफ्फरपुर से गये हुए एक पुलिस दारोगा ने उन्हें देख लिया। सन्देह हो जाने पर ज्योंही उसने पूछताछ आरम्भ की, त्योंही चाकी ने अपनी पिस्तौल से गोली मारकर आत्महत्या करली। इसके बाद उनकी लाश को मुजफ्फरपुर लाया गया।

खुदीराम बोस के बयान से मालूम हुआ कि कलकत्ता से बदल कर जानेवाले डिस्ट्रिक्ट जज किंग्सफोर्ड नामक अंग्रेज की हत्या करने के लिये वे दोनों युवक मुजफ्फरपुर आये थे। किंग्स फोर्ड साहब कलकत्ता में अलीपुर डिस्ट्रिक्ट कोर्ट के जज थे और वहाँ किसी विप्लवी को उन्होंने सजा दी थी। यही वजह थी कि विप्लवी दल ने किंग्सफोर्ड की हत्या करने का निश्चय किया और इसी कार्य के लिए इन दोनों विप्लवियों को भेजा गया था। पर संयोगवश किंग्स फोर्ड साहब की फिटन और कैनेडी साहब की फिटन और उनके घोड़े एक समान थे। अंग्रेज लोग सन्ध्या समय यूरोपियन क्लब में जाया करते थे। खुदीराम ने समझा कि किंग्स फोर्ड ही अपनी गाड़ी में जा रहा है; किन्तु वास्तव में उस गाड़ी में कैनेडी साहब की मेम और उनकी लड़की उसमें जा रही थी। खुदीराम बोस को जब मालूम हुआ कि किंग्सफोर्ड के बजाय दो औरतें मारी गई हैं, तो इसके लिए उन्होंने दुख प्रकट किया था।

खुदीराम बोस के मुकदमें की सुनवाई करने के लिए पटने से जज आये थे। कचहरी उन दिनों सवेरे की हुआ करती थी। जेल से उन्हें कचहरी एक खुली फिटन में ले जाया जाता था। हाथों में हथकड़ी, पैरों में बेड़ी, बगल में और सामने पुलिस के अफसर और आगे-पीछे, दाहिने-बायें शस्त्रधारी पुलिस के जत्थे चला करते थे। इसके पीछे सैकड़ों आदमियों की भीड़ रहती थी।

जबतक यह मुकदमा चला, तबतक प्रातःकाल इसी भांति खुदीराम बोस को कचहरी ले जाया-आया जाता था। यह एक अजीब दृश्य था।

खुदीराम बोस कम उम्र का लड़का होने पर काफी दिलेर और साहसी थे। यह जानते हुए भी कि बम-काण्ड के लिए उन्हें मृत्यु-दंड मिलेगा, उनके चेहरे पर भय का जरा भी आभास नहीं होता था। उनके निर्भीक और देदीप्यमान और निर्भीक चेहरे से साहस और देशभक्ति का सच्चा प्रेम टपकता था। वह दुबला-पतला युवक निश्चय भाव से फिटन पर बैठा हुआ जाया करता था। जनता उन्हें देखकर सहज ही आकर्षित हो जाती थी।

खुदीराम ने अदालत के सामने अपना दोष स्वीकार किया। जब लोगों को मालूम हुआ कि देशभक्ति की भावना संजोये हुए अंग्रेजों के अत्याचारों का उन्मूलन करने के लिए

यह युवक काम कर रहा था, तो पूरी सहानुभूति खुदीराम बोस की तरफ हो गई। और जनता की उनके प्रति, जो पहले विपरीत धारणा थी, वह बदल गयी और पूरी सहानुभूति खुदीराम बोस के प्रति हो गयी। अंग्रेज जज ने उन्हें फांसी की सजा का निर्णय सुनाया, तो जनता को हार्दिक कष्ट हुआ। खुदीराम बोस फांसी पर चढ़ा दिये गये। जनता ने उनकी अन्त्येष्टि बड़ी श्रद्धा से की। उनके बलिदान पर अनेक गीत बनाये गये।

आज भी दुबले-पतले पर निश्चल भाव से पुलिस के पहरे में फिटन पर बैठे युवक खुदीराम बोस का चेहरा वैसे ही मेरी आँखों के सामने नाचने लगता है।

८

सुभाष बाबू से मेरी अन्तिम भेंट

सन् १९३९ ई० में महात्मा गांधी चाहते थे कि डा० पट्टाभि सीतारामैया को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना जाये। उस समय सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष थे और वे पुनः कांग्रेस के अध्यक्ष बनना चाहते थे। अतएव दोनों में अध्यक्ष-पद के लिए प्रतिद्वन्द्विता हुई और सुभाष बाबू बहुमत से कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिये गये।

डा० पट्टाभि सीतारामैया की हार को महात्मा गांधी ने अपनी हार कहा। कांग्रेस के वरिष्ठ नेता सुभाष बाबू को सहयोग देने के लिए तैयार नहीं हुए। फलतः सुभाष बाबू को अपने पद का त्याग करना पड़ा। अपने समर्थकों के साथ कांग्रेस से पृथक उन्होंने फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की। बंगाल असेम्बली में भी कांग्रेसी विधायक दल में दो पार्टियां हो गयीं। सुभाष बाबू इस प्रयत्न में थे कि असेम्बली के अधिकाधिक सदस्य उनके दल में शामिल हो जायें। उस समय सुभाष बाबू ने मुझे भी अपने एलगिन रोड स्थित घर पर बुलाया और जिज्ञासा की कि मैं उनके दल के साथ रहूँगा या कांग्रेस दल के साथ।

मैंने उन्हें उत्तर दिया कि सुभाष बाबू तो कभी फाँसी पर लटकेंगे और कभी ताज पहनेंगे। किन्तु हमें न तो फांसी पर लटकना है और न तो ताज पहनना है। हम तो एक आमंचेयर पालिटिशियन (आरामतलब राजनीतिज्ञ) हैं। जो दिन भर वकालत करता है और शाम को किसी क्लब में न जाकर असेम्बली हाल में पहुँच जाता है। हमारे लिए आप जैसे कंटकाकीर्ण पथ पर चलनेवाले नेता का अनुकरण करना कैसे संभव है?

सुभाष बाबू ने मुझे स्मरण दिलाया कि जब १९३८ ई० में पहली बार मैं असेम्बली का सदस्य चुना गया था, तो उन्होंने मुझे सहयोग दिया था और अब मैं उनके दल में सम्मिलित होकर उन्हें अपना सहयोग दूँ।

मैंने उत्तर में कहा कि आपने जो सहयोग दिया था, उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। आप यदि कांग्रेस संगठन में रहते हुए किसी नेता से चुनाव में प्रतिद्वन्द्विता करते, तो मैं अवश्य आपका साथ देता, लेकिन आप तो कांग्रेस संगठन से ही अलग हो रहे हैं, न तो मैं ही और न मेरा निर्वाचन-क्षेत्र ही इसे पसन्द करेगा कि मैं कांग्रेस से बगावत करूँ। किन्तु आपको आश्वासन देता हूँ कि आपके विरुद्ध मैं एक शब्द भी नहीं बोलूंगा, परन्तु यदि असेम्बली के सदस्यों में दो दल हो जाते हैं तो मैं कांग्रेसदल के ही साथ रहूँगा। यह मेरा निश्चित मत है। मेरी स्पष्ट बातों से सुभाष बाबू प्रसन्न हुए। क्योंकि मैंने उन्हें किसी भ्रम में नहीं रखा।

फिर मैंने सुभाष बाबू से पूछा कि आप महात्मा गांधी से क्यों लड़ते हैं। आप नेता लोग तो लड़ते हैं और आफत होती है हम अनुयायियों की कि किसके साथ जायें।

उन्होंने उत्तर दिया कि महात्माजी से मेरा जो मतभेद है, वह पांच मिनट में मिट सकता है, किन्तु मैं ऐसी कोई बात नहीं करना चाहता जिससे मेरी हेठी हो और महात्माजी जो चाहते हैं, उसे यदि मैं मान लूं तो मेरी हेठी होती है।

अन्त में मैंने उनसे इतना ही कहा कि आप लोग हमारे नेता हैं। हम लोग तो यही चाहते हैं कि नेताओं में आपस में मतभेद न हो।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, जब मैं उनसे मिलने उनके कमरे में गया था, तो वे एक खाट पर लेटे हुए थे। मूँछें और दाढ़ी कुछ बढ़ी हुई थीं। जिस बिछौने पर वे लेटे थे, वह मृग-छाला जैसा लगता था। मैंने उनसे पूछा भी कि आप इस तरह मूँछ-दाढ़ी क्यों बढ़ाये हुए हैं; परन्तु इसका उन्होंने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।

उस समय वे अपने घर में नज़रबन्द थे। उनके घर के आगे पुलिस का पहरा था। मुस्लिमलीग की मिनिस्ट्री थी। कुछ दिनों के बाद ही सुभाष बाबू देश से पलायन कर विदेश में पहुँच गये। उनके पलायन के बाद नाना प्रकार की कल्पना-जल्पना होने लगी। उसमें एक कल्पना यह भी थी कि वे संन्यासी हो गये हैं। किन्तु उनसे मेरी जो बातें हुई थीं, उससे मुझे विश्वास नहीं हुआ कि वे संन्यासी हो गये हैं, इस संबन्ध में जब मैंने कांग्रेस के तत्कालीन वरिष्ठ नेता किरणशंकर राय से पूछा, तो उन्होंने कहा कि सुभाष बाबू संन्यासी नहीं हुए हैं, क्योंकि भागने से एक-दो दिन पहले ही उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि आपसी मतभेद भूल जाऊँ और कुछ आर्थिक व्यवस्था भी शीघ्र कर दूँ। इसलिए निश्चय है कि वे भारत के बाहर जर्मनी आदि शत्रु देश में चले गये हैं।

नज़रबन्दी के पहले सुभाष बाबू प्रायः नित्य ही विक्टोरिया मेमोरियल घूमने आया करते थे और उनसे वहाँ बहुत-सी बातें हुआ करती थीं। वे वीर, साहसी और देशभक्त युवक थे। उनसे बातें करके बड़ी प्रेरणा मिलती थी। सुभाष बाबू के परिवार से भी हम लोगों का बड़ा घनिष्ठ मैत्री-संबंध था। उनके बड़े भाई शरत बाबू स्वर्गीय काली-प्रसाद खेतान के साथ विलायत में बैरिस्टरी पढ़ते थे और १९१४ ई० में दोनों एक साथ ही हिन्दुस्तान वापस आये। शरत बाबू का चैम्बर 'खेतान एंड कंपनी' में ही था, जिसका एक पार्टनर मैं भी था। उनके ही कारण उनके समस्त परिवार के साथ मैत्री हो गयी थी।

मेरे राजनैतिक जीवन में शरत बाबू और सुभाष बाबू दोनों का ही सहारा रहा। सन् १९३८ ई० में प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका ने उदारतापूर्वक असेम्बली की सीट छोड़ दी और मुझे उस सीट पर कांग्रेस की ओर से उसके पहले ही सुभाष बाबू, शरत बाबू और विधान बाबू राजी हुए थे कि मुझे उस सीट पर कांग्रेस की ओर से खड़ा होने की इजाजत मिल जायेगी और ऐसी चर्चा उठी कि इस सीट पर अन्य कोई खड़ा किया जाये, तब सुभाष बाबू ने ही सबसे पहले इसकी सूचना मुझे दी थी।

बिजली

[आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित, हिन्दी संसार की सर्वाधिक मान्य पत्रिका 'सरस्वती' के जनवरी १९१३ में प्रकाशित श्री ईश्वरदास जालान के लेख का कुछ अंश]

प्राचीन काल में विजली को केवल देवलोक का पदार्थ समझते थे और उससे वहुत भय करते थे। पुराणों में, बिजली इन्द्र महाराज का आयुध और मेघराशि उनकी सेना मानी गई है। जब मेघ दल बांधकर आकाश में उतरते हैं तब बिजली चमक उठती है। दो शस्त्रों के आपस में टक्कर खाने से जैसे आवाज होती है वैसे ही बिजलियां एक दूसरी पर लगने से कड़क उठती हैं। जबतक यूरोप के वैज्ञानिकों ने बिजली के तत्वों का आविष्कार करके जगत को यह बोध न करा दिया कि बिजली सृष्टि के पदार्थमात्र में गुप्त भाव से रहती है और वह प्रकट भी देखी जा सकती है, तबतक सर्वसाधारण की धारणा, उसके विषय में, उक्त प्रकार की ही थी। परन्तु, आजकल तो विजली सभ्य संसार में मनुष्य जाति की वहुत आवश्यक और सहायक वस्तु हो रही है। उसके द्वारा ऐसे-ऐसे कार्य हो रहे हैं जो दूसरे उपायों से कदापि न हो सकते।

बिजली का प्रधान गुण आकर्षण और प्रक्षेपण में व्यक्त होता है। यदि हम किन्हीं भी दो वस्तुओं का आपस में आकर्षण अथवा प्रक्षेपण होता देखें तो समझना चाहिए कि उन वस्तुओं में विजली विद्यमान है। पहले पहल टेल्स नामक एक यूनानी महात्मा ने अपना यह अनुभव जगत में प्रकाशित किया। पर कुछ काल तक कोई नया आविष्कार नहीं हुआ। सोलहवीं शताब्दी में, महात्मा जिल्वर्ट ने इस विषय में वड़ा परिश्रम और अनुसंधान किया। अन्त में उनको इस वात का पता लग गया कि बिजली का आकर्षण तथा प्रक्षेपण केवल अम्बर में ही नहीं, किन्तु गंधक, लाख, शीशा आदि अन्य पदार्थों में भी, यदि वे ऊन अथवा रेशम से रगड़े जायें, तो पाया जायेगा।

पिछली शताब्दी में न्यूटन, वैन्जमिन, फ्रैंकलिन आदि धुरन्धर वैज्ञानिकों ने बिजली के कितने ही चामत्कारिक गुण लोगों पर प्रकट किये। फ्रैंकलिन ने एक बार मेघों में विजली के अस्तित्व का अनुभव पतंग से किया था। एक दिन जब घटायें छा रही थीं, उसने वैज्ञानिक रीति से एक पतंग बनाया। सीडर नाम की देवदारु के सदृश एक लकड़ी की हलकी कमचियों का एक चतुष्कोण बनाया और उसे रेशमी कपड़े से मढ़ दिया। रेशमी वस्त्र लगाने का यह प्रयोजन था कि आकाश में जाकर वायु के झोंकों अथवा मेघ की चोटों से वह पतंग फट न जाय। पतंग के बीच में उसने लगभग एक फुट ऊँचा खूब नुकीला सीधा तार लगा दिया। फिर सूत की डोरी में उसे उड़ाना आरम्भ किया। सूत के धागे के दूसरे सिरे पर रेशम का धागा उसने बांध दिया और हाथ में उसी रेशमी डोर को पकड़े रहा, जिससे शरीर पर बिजली का आघात न लगे, क्योंकि रेशम द्वारा विद्युत् का संचालन एक ओर से दूसरी ओर तक नहीं हो सकता। उसने रेशम और सूत

के जोड़ पर एक चाभी लटका दी। पतंग उड़ते-उड़ते बादलों में जा लगी। पहले तो बिजली के कुछ भी चिह्न न दीखं पड़े, किन्तु ज्योंही पानी बरसने लगा, त्योंही उस चाभीसे बिजली की चिनगारियां निकलने लगीं। कई वार की परीक्षा के पश्चात् उसने निश्चय किया कि आकाशी विद्युत् कोई दूसरी वस्तु नहीं। रगड़ से जो बिजली उत्पन्न होती है, वह भी ठीक वैसी ही है। तत्पश्चात् उसने ऊंचे मकानों को विद्युत्पात से नष्ट होते देख उनकी रक्षा का एक उपाय निकाला। वह यह था कि मकान के सर्वोच्च स्थान से भूमि तक लोहे अथवा अन्य किसी धातु का एक नुकीला छड़ लगा दिया जाय। विद्युत् दो प्रकार की होती है—धनात्मक और ऋणात्मक। यदि हम कांच के छड़ को रेशम से रगड़ें तो दोनों में भिन्न-भिन्न प्रकार की बिजली उत्पन्न हो जायेगी। क्रमशः धनात्मक और ऋणात्मक। दोनों में आकर्षण तथा प्रक्षेपण की शक्ति होती है। यदि वह वस्तु जिसमें धनात्मक विद्युत् वर्त्तमान है, एक ऐसी वस्तु के समीप लाई जाये, जिसमें उसी 'जाति' की विद्युत् वर्त्तमान हो, तो दोनों में प्रक्षेपण होगा, आकर्षण नहीं। किन्तु, यदि दूसरी वस्तु में दूसरे तरह की अर्थात् ऋणात्मक विद्युत् होगी तो दोनों में आकर्षण होगा। इससे यह सिद्ध होता है कि—

समान विद्युत्शक्तियों का आपसी प्रक्षेपण असमान में आकर्षण।

यदि शीशे में घर्षण द्वारा विद्युत् उत्पन्न की जाय तो उसमें आकर्षण तथा प्रक्षेपण की वैद्युतिक शक्ति उतनी ही दूर तक रहती है जितनी दूर तक घर्षण हुआ होता है। किन्तु यदि किसी धातु के किसी भाग में बिजली उत्पन्न की जाय तो वह एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँच जाती है। इस बात से यह सिद्धान्त निकलता है कि कुछ चीजें ऐसी हैं जिनमें बिजली एक ओर से दूसरी ओर तक शीघ्र ही संचारित हो जाती है। वर्त्तमान काल में रासायनिक क्रिया से उत्पन्न विद्युत् का ही प्राधान्य है।

ग्रोव सेल में जस्ता और प्लाटिनम काम में आता है। चीनी मिट्टी के एक वर्त्तन में जल-मिश्रित गन्धक का तेजाव (१० भाग जल और १ भाग तेजाव) रखा जाता है। उसी में तांवा रहता है। उसके बीच में जिसमें मिट्टी का वर्त्तन रखा जाता है, शोरे का तेजाव और प्लाटिनम का टुकड़ा रहता है। अब यदि तांबे और प्लाटिनम का मिलान तांबे के तार द्वारा किया जाय तो विद्युत् उत्पन्न हो जायगी। सभी तेजाव दाहक होते हैं, परन्तु शोरे का तेजाव बड़ा ही भयानक होता है। इसीलिए, इसमें प्लाटिनम का टुकड़ा रखा जाता है, क्योंकि सोने और प्लाटिनम के सिवा उसमें अन्य धातु जरा देर भी नहीं ठहर सकती।

सन् १८७९ में एडिसन और स्वान नाम के दो वैज्ञानिकों ने एक नये ढंग के तार का आविष्कार किया। यह कार्बन का बनता है। इसे वांस के पतले-पतले तन्तुओं तथा कागज के टुकड़ों अथवा सूत की डोरियों से बनाते हैं। प्रथम तो यह जलमिश्रित गन्धकाम्ल में तैयार किया जाता है। फिर यह 'कार्बनिक' किया जाता है। तत्पश्चात् इसे प्लाटिनम के दो छोटे-छोटे तारों से जोड़ देते हैं, जो कांच के वर्तुल से जुटे रहते हैं। इन कांच के वर्तुलों की वायु वायुनिष्कासन यन्त्र द्वारा निकाल ली जाती है। यदि वायु यहाँ रहेगी तो तार जल जायगा, कार्बन वायु के ऑक्सीजन से मिल जायगा, जो शेष रहेगा वह जलकर खाक हो जायगा। आजकल इसी तरह के गोलों द्वारा बड़े-बड़े नगरों में बिजली की रोशनी की जाती है।

प्रथम अध्याय

बाल्यकाल व शिक्षा

दो शब्द

जीवन का प्रवाह अवाधगति से निरन्तर चलता रहता है। एक क्षण के लिए भी वह नहीं रुकता, हर क्षण परिवर्तित होता रहता है। जो क्षण बीत जाता है, वह फिर कभी वापस नहीं आता। मनुष्य अव्यक्त से आता है, कुछ दिन व्यक्त रहता है और फिर अव्यक्त में लीन हो जाता है। यह प्राणी कहाँ से आता है—कहाँ चला जाता है, इस रहस्य को जानने के लिए युग-युगान्तरों से हमारे ऋषि-मुनियों ने घोर चिन्तन, साधना और तपस्याएँ की, किन्तु आज भी निश्चित रूप से यह पहेली सुलझ नहीं सकी। यह अवश्य निश्चित है कि मनुष्य कुछ समय के लिए इस संसार में व्यक्त होता है। जब तक वह व्यक्त रहता है, तब तक जो लक्ष्य उसे उचित प्रतीत होता है, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। कोई अध्यात्म में सिद्धि प्राप्त करने के लिए धूनी रमाता है और कोई कामिनीकांचन आदि भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने में ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। सभी सुख और शान्ति की खोज में व्यस्त हैं, किन्तु बिरले ही इसे प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

मैं जब अपने दीर्घ ८३ वर्ष से अधिक के पिछले जीवन पर दृष्टिपात करता हूँ, तो अनुभव करता हूँ—न मालूम कितना लम्बा अरसा इस संसार में बीत गया। इस अवधि में कितनी ही बातें देखीं, सुनीं और समझीं। जिस तरह नाटक का पर्दा उठता और गिरता है, उसी तरह जीवन के पर्दे उठते और गिरते गये। संसार क्या था और क्या हो गया। अब तो मेरा जीवन संध्या की मोड़ पर है, न मालूम कब रात्रि हो जाय। अतएव इच्छा होती है कि जो कुछ देखा, सुना और समझा, उसे अंकित कर जाऊँ। यही स्मृति बनकर रह जायेगी। संभव है कि कोई उससे लाभान्वित भी हो जाये एवं किसी को कोई प्रेरणा भी प्राप्त हो जाये।

राजस्थान :

हमारे पूर्वजों का निवासस्थान राजस्थान के चुरू जिले में अवस्थित राजगढ़ नामक स्थान में था, जो पुराने बीकानेर राज्य के अन्तर्गत था। वहीं से हमारे पितामह शिवजी-रामजी १९ वीं शताब्दिं के मध्य में कलकत्ता आये। इस समय राजस्थानियों का अपने जन्मस्थान से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में आगमन तेजी के साथ शुरू हो गया था और भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश में वे लोग जाने लगे थे। उन प्रदेशों में जाकर उन्होंने अपनी आजीविका के साधनों को साधारण स्थिति से प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे व्यापार-वाणिज्य द्वारा अपनी आर्थिक उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गये।

राजस्थान भारतवर्ष के वर्त्तमान प्रदेशों में एक बड़ा प्रदेश है। यह समूचा प्रदेश स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले भिन्न-भिन्न राज्यों में विभक्त था और राजपूताना के नाम से पुकारा जाता था। इन राज्यों के नरेश अपने-अपने राज्यों में स्वतंत्र समझे जाते थे, परन्तु वास्तव में बहुत अंशों में वे ब्रिटिश सरकार के अधीन थे। वे ब्रिटिश शासकों की इच्छा के विरुद्ध कुछ कर भी नहीं सकते थे और किसी भी विदेशी शक्ति के साथ संधि या विग्रह करने का अधिकार नहीं रखते थे—यद्यपि अपने राज्य में पुलिस, अदालतें एवं अन्य आन्तरिक विषयों में इन्हें स्वतंत्रता थी। परन्तु हर राज्य में ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि के रूप में रेजिडेण्ट रहते थे और अनेक विषयों में इन नरेशों को उनके सुझावों के अनुसार काम करना पड़ता था। इस राजपूताना में प्रधान राज्य जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, जैसलमेर, कोटा, बूंदी वगैरह थे, जिनका अपना-अपना इतिहास था। परन्तु दिल्ली निकट होने के कारण मुसलमान वादशाहों का संघर्ष सदैव इन रजवाड़ों के साथ चलता रहा। कभी-कभी किसी रजवाड़े ने इन मुसलमान सम्राटों का आधिपत्य नाममात्र के लिए स्वीकार भी कर लिया। लेकिन उदयपुर हमेशा अलग रहा। वहाँके महाराणा प्रताप को कौन नहीं जानता—पद्मिनी का नाम किसने नहीं सुना होगा। राजस्थान के लाखों वीरों ने युद्ध में प्राण दिये। हजारों रमणियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति दी। सैकड़ों रमणियों ने युद्ध में भी भाग लिया। राजस्थान का सारा इतिहास वीरों की गौरवपूर्ण गाथाओं से भरा हुआ है। यहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हो जाती हैं :—

धन धन भारत की क्षत्राणी
वीर कन्यका वीर प्रसविनी
वीर वधू जग जानी।

आज भी हमारी सेना में राजस्थान के सहस्रों क्षत्रिय और जाट मातृभूमि की रक्षा के लिए सम्मिलित हैं। न केवल क्षत्रियों ने ही राजस्थान का गौरव बढ़ाया, बल्कि राजस्थान के वैश्यों ने आज उद्योग, व्यापार, वाणिज्य के क्षेत्र में सारे भारतवर्ष में प्रायः सर्वोच्च आसन प्राप्त किया है। राजस्थान की भूमि और वहाँ की जलवायु में कुछ ऐसी विशेषता ईश्वर ने प्रदान की है कि वहाँ के निवासी अपनी वीरता, शौर्य, साहस और उद्यम के लिए सम्पूर्ण भारत में विख्यात हैं।

राजस्थानियों का बंगाल में आगमन :

अंग्रेज जब भारत में आये, उस समय मुसलमानों के शासन की जड़ हिल चुकी थी। अतएव न केवल उन्होंने अपने व्यापार का ही विस्तार किया, बल्कि भारतवर्ष का शासन भी अपने हाथों में ले लिया। औरंगजेब के वाद मुगलों की सत्ता जब घटने लगी तो देश में छोटे-छोटे शासक स्वतंत्र होने लगे। वह समय अंग्रेजों के लिये बहुत ही अनुकूल था और वे अपना आधिपत्य इस देश में कायम करने में समर्थ हुए। १८५७ के गदर के पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नाम से अंग्रेजों ने इस देश का शासन किया। उसके बाद इस कम्पनी का विघटन कर दिया गया और इंगलैण्ड के वादशाह ने इस देश का शासन अपने हाथों में लिया और वे भारतवर्ष के सम्राट कहलाये। सन् १८५७ के गदर के समय

इंगलैण्ड में महारानी विक्टोरिया राज्य कर रही थीं और उन्होंने १९ वीं सदी के अन्त तक राज्य किया। इस अवधि में ब्रिटिश राज्य इतना विस्तृत हो गया कि यह कहा जाने लगा कि ब्रिटिश राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता—अर्थात् उनके राज्य में कहीं न कहीं सूर्य रहेगा ही। भारत में भी शान्ति और सुव्यवस्था कायम हो गयी और इसी समय विभिन्न प्रदेशों में लोगों का आना-जाना व्यापक रूप से आरम्भ हो गया।

राजस्थानियों ने भी ब्रिटिश सत्ता के प्रारम्भ से राजस्थान से भारत के विभिन्न स्थानों में जाना आरम्भ कर दिया था। बंगाल में भी राजस्थानियों ने आना आरम्भ कर दिया था। वैसे तो सम्राट अकबर के जमाने से ही १६ वीं सदी के मध्य भाग से बंगाल में राजपूत सेना रहने लगी थी। राजा टोडरमल, मानसिंह अपनी राजपूत सेना के साथ यहाँ आये थे और उसी समय से राजस्थानियों के आने-जाने का प्रमाण मिलता है। परन्तु १८ वीं सदी में जगतसेठ के कारण राजस्थानियों का प्रभाव और विस्तार बंगाल में निश्चित रूप से बढ़ गया। राजस्थानी विभिन्न प्रदेशों में कब आये, इसके विस्तृत अध्ययन और खोज की आवश्यकता है। खेद का विषय है कि अभी तक मारवाड़ी समाज ने, इतना समृद्ध होते हुए भी इस दिशा में समुचित कदम नहीं उठाया। जगतसेठ ने बंगाल में न केवल व्यापार, वाणिज्य ही किया, बल्कि उन्होंने यहाँ के शासन में भी एक अत्यन्त प्रमुख स्थान प्राप्त किया।

ऐसा कहा जाता है कि हीरानन्द साह नाम के एक ओसवाल सज्जन जोधपुर के नागौर नामक ग्राम से १६ वीं सदी के मध्य में पटना आये और व्यापार एवं वाणिज्य का विस्तार कर बड़े धनी हो गये। अब भी पटना में हीरानन्द के नाम से एक गली विद्यमान है। उनके ७ पुत्र थे, जो भारत के विभिन्न प्रान्तों में सराफा (बैंकिंग) का काम कर रहे थे। उनमें से एक पुत्र दिल्ली में थे, जिनका दिल्ली के बादशाह के ऊपर बहुत प्रभाव था और एक पुत्र माणिकचन्द १७०४ में ढाका आये। उस समय बंगाल के नवाब मकसूद अली खां थे और बंगाल की राजधानी ढाका थी। मकसूद अली खां वहाँ से मकसूदाबाद में आ गये, जो अब मुर्शिदाबाद के नाम से जाना जाता है। उन्हीं के साथ माणिकचन्दजी मुर्शिदाबाद में भी आये, और नवाब के साथ उनका गहरा मैत्री संबंध हो गया। फलस्वरूप उनका व्यवसाय चमक उठा। सन् १७१४ में उनके मरने के बाद उनके पुत्र फतेहचन्द जगतसेठ हुए, जिन्होंने अपने पिता के व्यवसाय को और भी ऊँचा उठाया। दिल्ली के बादशाह ने उन्हें जगतसेठ की उपाधि दी थी। सन् १७४४ में इनकी मृत्यु के बाद इनके पौत्र मेहताब चन्द जगतसेठ हुए और उनके भाई स्वरूपचन्द को महाराजा की खिताब मिली। इस समय अंग्रेजों के साथ भी उनका संबंध रहा। सन् १८५७ में पलासी की लड़ाई के पश्चात् अंग्रेजों का आधिपत्य बंगाल में कायम हो गया और उसके साथ ही जगतसेठ की सत्ता घटी और १८ वीं सदी का अन्त होते-होते उनका धन, वैभव, शौर्य और शक्ति प्राय: विलुप्त हो गई।

जगतसेठ जब अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे, उस समय वे भारत में सबसे धनी समझे जाते थे। इनके धन को निश्चित रूप से आँकना तो संभव नहीं था, परन्तु यह कहा जाता था कि इनका धन एक करोड़ पौण्ड (लगभग १५ करोड़ रुपये) था। जब मराठों ने मुर्शिदाबाद में इनकी कोठी लूटी तो २ करोड़ रुपये वे उठा ले गये। जगतसेठों ने इसे साधारण बात समझी। उनकी आर्थिक स्थिति और सम्मान पर इसका कोई

असर नहीं पड़ा। एक यह भी किंवदन्ती थी कि जगतसेठों के पास इतने रुपये थे कि वे रुपये यदि भागीरथी नदी में फेंक दिये जायें तो भागीरथी का प्रवाह भी रुक जाय। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बर्क ने इनकी तुलना बैंक आफ इगलैंड से दी थी। बंगाल की हुकूमत उस समय इनके इशारे पर नाचती थी। दो हजार घुड़सवार उनके अंगरक्षक के रूप में रहते थे। दिल्ली के बादशाह जब बंगाल के नवाब के लिए शाही खिलअत भेजा करते थे, तो जगतसेठ के लिए भी अलग खिलअत आती थी। जब इन्हें जगतसेठ की उपाधि दी गयी थी तो एक एमरल (पन्ना) की मुहर, जिसमें जगतसेठ अंकित था, वह भी इन्हें दी गयी।

मुर्शिदाबाद और अजीमगंज में जो ओसवाल बन्धु आज हैं, वे सभी प्रायः जोधपुर और उसके आसपास से आये हुए हैं, उनकी संख्या भी कम नहीं है। ये सभी जगतसेठ के समय में और उसके बाद यहाँ पर आये और इन्होंने अपना व्यवसाय किया, जमींदारी हासिल की और यहीं बस गये। इन बातों से स्पष्ट है कि १८ वीं सदी के प्रारम्भ से ही राजस्थानियों का बंगाल में आना प्रारम्भ हो गया और १९ वीं सदी के मध्य से यह प्रवाह तीव्रगति से अग्रसर हुआ।

उपरोक्त बातों से साबित होता है कि राजस्थानियों ने न केवल व्यापार-वाणिज्य में ही प्रवीणता हासिल की थी, बल्कि राजनीति में भी उन्होंने अपने लिये एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। यहाँ पर एक कवि की यह उक्ति याद आती है :—

"को वीरस्य मनस्विनः स्व विषयः को वा विदेशस्मृतः।
यम देशम् श्रयते तमेव कुरुत्वे बाहुप्रतापार्जिनम्।"

अर्थात् वीर मनुष्यों के लिए कौन अपना देश है और कौन विदेश। जिस देश में वे जाते हैं, उस पर अपने बाहुबल से विजय प्राप्त कर लेते हैं।

हमारे पूर्वज और बंगाल में उनका आगमन

हमारे वृद्ध प्रपितामह श्री मानूरामजी राजगढ़ में आये। जहाँ तक पता लगता है ये बेरी नामक ग्राम से आकर राजगढ़ में बस गये। राजगढ़ पुराने बीकानेर राज्य के अन्तर्गत एक ग्राम था, जो चारों ओर से एक बहुत चौड़ी दीवार से घिरा हुआ था और इसमें एक किला भी था, जो गढ़ के नाम से अब भी पुकारा जाता है। कहा जाता है कि मुसलमानों के आक्रमणों से बचने के लिए ही यह किला बनाया गया था। उसके कुछ अंश अब भी मौजूद हैं। महाराज गंगासिंहजी जब बीकानेर पर राज्य करते थे, उस समय उन्होंने इस ग्राम के समीप ही अपने पुत्र महाराज सादुलसिंहजी के नाम पर सादुलपुर बसाया। अब ये दोनों ग्राम इतने बढ़-चढ़ गये हैं कि दोनों मिलकर एक ग्राम हो गया है और अब इसका नाम सादुलपुर पड़ गया है—राजगढ़ का नाम उठ गया है। अब तो यहाँ पीच रोड, बिजली, पानी इत्यादि सभी आधुनिक जगत की सुविधाएँ प्राप्त हो गयी हैं।

परन्तु पहले के कुओं में प्रायः इतना खारा पानी निकलता था, जो पीने के सर्वथा अयोग्य था। ग्राम में एक-दो कुएँ ही ऐसे थे, जिनका पानी पीने के लायक था। अब तो शहर में पानी की सप्लाई दूर से लाकर पाइपों द्वारा होती है। पहले तो लोगों ने बड़े-बड़े पक्के कुण्ड बनवा रखे थे, जिनमें वर्षा का पानी इकट्ठा हो जाता था और वही पानी साल भर लोग पिया करते थे।

पुराने बीकानेर राज्य में यह एक जिला था, परन्तु अब राजस्थान के प्रदेश में यह चुरू जिले के अन्तर्गत हो गया है। यहाँ के निवासियों में से बहुत से परिवार बंगाल एवं अन्य प्रान्तों में जाकर समृद्ध और धनवान हो गये हैं। राजस्थान में अब इस ग्राम का विशिष्ट स्थान है।

हमारे परिवार में पहले-पहल मानूरामजी इस ग्राम में आकर बसे, इसलिए हमारे परिवार का लोग वहाँ मानूवालों के नाम से परिचय देने लगे। इनके दो पुत्र थे—जीवराजजी और खेतसीदासजी। खेतसीदासजी जन्मान्ध थे। अतएव वे अविवाहित रहे। जीवराजजी का विवाह थैलासर के पोखराजजी की बहन के साथ हुआ था। जीवराजजी के दो पुत्र हुए—शिवजीरामजी और नेतरामजी। नेतरामजी को सन् १८९९ ई० में खेतसीदासजी ने दत्तक ले लिया। शिवजीरामजी को पांच पुत्र हुए—हरदेवदासजी, सूरजमलजी, गौरीदत्तजी (हमारे पिता), कालूरामजी और घनश्यामदासजी और दो कन्याएँ हुईं—बींजा बाई और चन्दा बाई। हवेली और नोहरा जो उन लोगों ने अपने रहने के लिए बनाया था, वह अब भी विद्यमान है एवं गांव के ठीक उत्तर दरवाजे के सामने पड़ता है। हमारे मकान के सामने जो प्रधान सड़क है, वह बहुत छोटी हो गयी है। इसके एक-दो मकान के पश्चात् से ही बहुत चौड़ी सड़क है, जिसके दोनों तरफ दूकानें और मकानात बन गये हैं। इस उत्तर दरवाजे के बाहर भी बहुत से मकान बन गये हैं। उस तरफ भी हमारे पूर्वजों ने कुछ जमीन ले रखी है।

हमारे पितामह शिवजीरामजी की यह इच्छा हुई कि वे कलकत्ते आकर कुछ वाणिज्य-व्यवसाय करें। उन्होंने अपनी यह इच्छा अपने मामा थैलासर निवासी श्री चोखराजजी से प्रकट की, परन्तु वे उन्हें कलकत्ते ले जाने के लिए तैयार नहीं हुए। चोखराजजी इसके पहले ही कलकत्ते आ चुके थे और उन्होंने किराने का काम शुरू कर दिया था। चोखराजजी तो इन्हें अपने साथ नहीं ले गये, परन्तु जब वे दिल्ली पहुँचे तो देखा कि हमारे पितामह वहाँ पहुँच गये हैं। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। हमारे पितामह की हिम्मत और दृढ़ निश्चय को देखकर उन्होंने अपने साथ ही उन्हें भी ले लिया। हमारी दादी, श्रीमती मामकोरी देवी जिनको हमने अच्छी तरह देखा है, बहुत बुद्धिमान और साहसी प्रकृति की थीं। राजस्थान के परिवार को वही अच्छी तरह से संभालती थीं और गांव में इसके लिए उनकी काफी प्रतिष्ठा थी।

रेलगाड़ी का निर्माण तबतक नहीं हुआ था। लोग पैदल, सवारियों या नौकाओं द्वारा कलकत्ता आते थे। उस समय मिर्जापुर एक बहुत बड़ी व्यापार की मंडी थी और यहीं से नौकाओं द्वारा कलकत्ते एवं गंगाजी के किनारे पर बसे हुए अन्य नगरों में माल भेजा जाता था। उसकी रक्षा के लिए कुछ आदमियों की आवश्यकता होती थी, जिनकी पूर्ति कलकत्ता आनेवाले लोग कर दिया करते थे। उन व्यक्तियों को भोजन के

अतिरिक्त कुछ पारिश्रमिक भी मिल जाता था। इसे चढ़नदारी कहते थे। इस यात्रा को पूरा करने में महीनों समय लग जाता था। उस जमाने में जो लोग राजस्थान से कलकत्ते की यात्रा करते थे, वे पुन: लौटकर अपने ग्राम वापस आयेंगे या नहीं—इस आशा को लोग त्याग देते थे। ऐसे लोगों के लिये कहावत प्रसिद्ध थी—"काली कोसो गयो"। हमें यह नहीं मालूम कि हमारे पितामह किस तरह कलकत्ते पहुँचे और जव वे आये, उस समय रेल का निर्माण हुआ था या नहीं और यदि हुआ था तो कहाँ तक हुआ था ? लेकिन मैंने सुना है कि वे कहा करते थे कि दो रुपये का भूंगड़ा (भूजा) फांक कर वे कलकत्ते आये थे। जो भी हो, वे कलकत्ते पहुँच ही गये।

उस समय राजस्थान से जो लोग कलकत्ते आते थे, वे प्राय: मारवाड़ी वासों में ठहरते थे। वहीं पर भोजन भी मिल जाता था। रहने और खाने-पीने में माहवार केवल तीन-चार रुपये ही खर्च होते थे। हमारे पितामह भी इन्हीं मारवाड़ी वासों में से एक में रह गये। उस समय अफीम चौरास्ता व्यापार का प्रधान केन्द्र समझा जाता था। अफीम का फाटका होता था। अफीम उस समय चीन में काफी मात्रा में जाने लगी थी और उसका नीलाम सरकार करती थी। किस दर में आखिरी नीलाम होगा—इस पर लोग फाटका किया करते थे और इसको लेकर लाखों का सौदा हुआ करता था।

मारवाड़ी समाज में उस समय अंग्रेजी शिक्षा का कुछ भी प्रचार नहीं था। हमारे पिता कहते थे कि सिर्फ सेठ हरदत्तरायजी चमड़िया ही एक व्यक्ति थे, जो अंग्रेजी में तार लिख दिया करते थे। हरदत्तरायजी चमड़िया को भी तार लिखते-लिखते इस फाटके का बहुत-कुछ ज्ञान हो गया था। इसके कारण एवं अपनी समझबूझ व साहस से चमड़िया जीने व्यापार में बहुत कुछ आर्थिक उन्नति की। यह वह समय था जब मारवाड़ी समाज का आगमन बंगाल में जोरों से आरम्भ हो गया था और उस समय कितने ही परिवार धनी और सम्पन्न हो गये थे। अंग्रेजों की बहुत-सी कम्पनियां व्यापार करने के लिए कलकत्ते आ गयी थीं। जितने भी मुख्य-मुख्य व्यवसाय थे, वे सब उनके हाथों में थे। मारवाड़ी समाज के जो व्यक्ति उस समय आये, उन्होंने या तो दूकानदारी की या दलाली की अथवा कपड़ा इत्यादि लेकर स्थान-स्थान में जाकर बेचने लगे। जो व्यक्ति कुछ प्रगति कर चुके थे, उनका सम्पर्क इन अंग्रेजी फर्मों से हो गया था। ये फर्में बाजार में अपने माल को बेचने के लिए बेनियन मुकर्रर करती थीं, जो बाजार के दूकानदारों को उनका माल बेचते थे। डिलेवरी और माल के दाम की अदायगी की जिम्मेवारी भी उनके ऊपर रहती थी। इसके लिए अंग्रेज कम्पनी की ओर से उन्हें कमीशन मिलता था। समय पाकर ये बेनियन बहुत धनी हो गये। बाजार पर इनका बहुत बड़ा प्रभाव था। वे अपने नीचे दलालों को रखते थे और वे व्यापारियों को माल बेचा करते थे। मारवाड़ियों के बेनियन होने के पहले कई फर्मों में खत्री और बंगाली बेनियन थे, परन्तु वे मारवाड़ियों के समान परिश्रमी और व्यापार में दक्ष नहीं थे और न वे अपने जीवन को सादगी के साथ विताते थे। अतएव मारवाड़ियों ने अंग्रेजों का विश्वास प्राप्त कर लिया और वे ही बेनियन बन गये। उस समय मिल, कारखाने, चाय बगान इत्यादि प्रायः सभी अंग्रेजों के हाथों में थे।

हमारे पितामह ने कलकत्ते में किराने की दलाली का काम शुरू किया और इसमें वे सफल भी हुए। परन्तु न तो उन्होंने कोई दूकान खोली और न अपने परिवार को राजस्थान से यहाँ बुलाकर स्थायी रूप से रखा। वे दो-तीन वर्ष यहाँ रहते और जो कुछ उपार्जन करते, उसे लेकर राजस्थान ही चले जाते थे और वर्ष-दो वर्ष वहाँ रहकर वापस कलकत्ते आते थे। कलकत्ते आने के पश्चात् वे आर्थिक दृष्टि से सुखी हो गये थे। वे जब रुग्ण हो गये, तब मृत्यु के पहले मुजफ्फरपुर चले गये और सन् १९०३ में उनकी वहीं मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु हमें अच्छी तरह याद आती है, परन्तु मैंने उनसे बातें की हों—यह स्मरण नहीं आता। उस समय उनकी अवस्था लगभग ६५ वर्ष की थी। उनके स्वर्गवास के बाद सन् १९१२ में हमारी दादी का देहावसान मुजफ्फरपुर में हुआ। वे बहुत दयालु महिला थीं। जाड़े के दिनों में किसी को सर्दी से ठिठुरते देखकर अपनी रजाई भी उसे दे दिया करती थीं और दूसरे दिन पिताजी को उनके लिए दूसरी रजाई बनवाकर देनी पड़ती थी। जबतक वे राजस्थान में रहीं, तबतक उन्होंने अपने घर को सुचारु रूप से चलाया। लोग उन्हें एक कुशल गृहिणी समझते थे। अपने पड़ोसियों की मदद करने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहती थीं।

मरने के पहले उनका भोजन नहीं के बराबर हो गया था। उनको दमा की बीमारी थी। जिस रात्रि में उनका देहान्त हुआ, उस समय ऐसी कोई आशंका नहीं थी कि उनका शरीरान्त उसी रात्रि में होगा। यकायक रात्रि में १० बजे उन्होंने कहा कि आज रात्रि में मरूँगी—सब परिवार को बुला दो। परिवार के जितने मनुष्य थे, वे सब बुला लिये गये। मैं भी वहाँ मौजूद था। हमलोगों को आश्चर्य हो रहा था कि मरने के कोई लक्षण तो हैं नहीं—फिर ऐसा वे क्यों कह रही हैं? उन्होंने सब तीर्थों का जल, चन्दन एवं माला इत्यादि मंगवा कर रख लिया था और उन सभी तीर्थों के जल के साथ पानी मिलाकर स्नान किया, मालाएँ पहनीं, चन्दन लगाया और जमीन के ऊपर बिछौना बिछवा कर लेट गयीं। हमलोगों को कुछ भी आशंका नहीं थी कि वे मरनेवाली हैं, तो भी जिस दृढ़ता के साथ वह कह रही थीं, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। वैद्यजी को भी बुलाया गया—गीता का पाठ भी आरम्भ हो गया। रात्रि के ३ बजे उन्हें बुखार हो गया। यह देखकर वैद्य ने कहा कि वह रात्रि में मर सकती हैं, क्योंकि ज्वर का रूप यह संकेत दे रहा है। थोड़ी देर के पश्चात् उन्हें कफ हो गया और भोर होते-होते उनका शरीरान्त हो गया।

मेरे पिताजी और उनके संन्यासी गुरु

मेरे पिताजी का जन्म राजगढ़ (राजस्थान) में हुआ। अपने भाइयों में उनसे बड़े दो भाई और छोटे दो भाई थे एवं दो बहनें भी थीं, जिनका उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। भाइयों में सबसे अधिक कार्य कुशल, साहसी और बुद्धिमान हमारे पिताजी थे। इनका व्यक्तित्व भी प्रभावोत्पादक था। उस समय मारवाड़ी समाज में गुरु-पाठशालाओं में जो पढ़ाई हुआ करती थी, उतनी ही पढ़ाई उनकी भी हुई—अर्थात् उनका ज्ञान व्याव-

हारिक हिसाब-किताब, वहीखाता, पट्टीपहाड़ा मोड़िया अक्षर तक ही सीमित था। हिन्दी की पुस्तकें पढ़ सकते थे। १३ वर्ष की उम्र में ही याने सन् १८८४ में वे राजगढ़ से कलकत्ते आये। जब वे अपनी जन्मभूमि राजगढ़ से प्रस्थान करने लगे, तो उन्होंने अपने हाथों को पीछे कर लिया, जो उस समय अपशकुन माना जाता था। इसका अर्थ यह समझा जाता था कि जानेवाला व्यक्ति फिर लौटकर राजस्थान नहीं आयेगा। इस तरह हाथ पीछे करके देश से रवाना होने वाले व्यक्ति के साथ यदि कोई दुर्घटना हो जाती तो लोग उसे अपशकुन का ही परिणाम समझते थे। यद्यपि ईश्वर की कृपा से कोई दुर्घटना नहीं हुई, परन्तु आने के पश्चात् वे फिर लौटकर एक दिन के लिए भी राजगढ़ अपने जीवन में नहीं गये। कलकत्ते में अपने पिता के साथ कुछ समय तक वे रहे। वे कहा करते थे कि अफीम चौरास्ते पर वहुत बड़ा अफीम का फाटका हुआ करता था और मारवाड़ियों के लिए व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र समझा जाता था। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में लिखा है, हरदत्तरायजी चमड़िया ही मारवाड़ियों में अंग्रेजी के ज्ञाता समझे जाते थे। जिन्हें तार भेजना होता था, वे उनसे लिखाकर तार भेजा करते थे। धीरे-धीरे इन कार्यों के माध्यम से उन्हें अफीम के व्यापार का अच्छा ज्ञान हो गया और उसका लाभ उठाकर वे भी वहुत धनी हो गये।

हमारे पिताजी कुछ समय कलकत्ते में रहकर मुजफ्फरपुर, जो कि उत्तर बिहार का एक प्रमुख नगर है, आ गये। उनकी बूआजी (पिता की बहन) वहाँ पहले से ही रहती थीं, उनको कोई सन्तान नहीं थी और ऐसी संभावना थी कि वे हमारे पिताजी को दत्तक ले लेंगी। इसी दृष्टि से वे वहाँ गये थे, परन्तु उनकी बूआजी को पुत्ररत्न की प्राप्ति हो गयी, अतएव यह प्रश्न उठने की कोई आवश्यता नहीं रही।

उन्होंने सन् १८९३ में मुजफ्फरपुर में एक कपड़े की दूकान खोली। उक्त दूकान में उन्होंने यह नियम बना दिया कि वे मोलभाव नहीं करेंगे। एक भाव ही बोलेंगे—उसमें कम या अधिक नहीं करेंगे। जिन्हें लेना होगा वे तो लेंगे और जिन्हें मोल-मुलाई करना हो, वे दूसरी दूकानों में चले जायेंगे। उस समय वहाँ कोई भी व्यापारी एक दाम पर कपड़े नहीं वेचता था। इसलिए पिताजी की दूकान जल्दी ही प्रख्यात हो गयी और वे "एकबोलिया सेठ" कहलाने लगे। व्यापार, बोलचाल एवं दुकानदारी में तो ये पूर्ण पटु थे ही—थोड़े दिनों में ही इनकी दूकान जोरों से चलने लगी।

मेरा जन्म ३० मार्च, १८९५ को वहीं मुजफ्फरपुर में हुआ। हमारे पिता के चारों भाई परिवार समेत पांच-सात वर्ष के अन्दर ही मुजफ्फरपुर आ गये और हरेक भाई को अलग-अलग दूकानें खुलवा दी गयीं। सबसे बड़े भाई हरदेवदासजी ने किराने की दूकान की, उनसे छोटे सूरजमलजी ने सुगौरी नामक समीपवर्ती ग्राम में गल्ले की दूकान की, पिताजी से छोटे कालूरामजी ने दूसरी कपड़े की दूकान मुजफ्फरपुर में ही की और सबसे छोटे भाई घनश्यामदासजी ने परचून की दूकान की। हमारे पिताजीने अपनी कपड़े की दूकान ही चालू रखी। थोड़े ही वर्षों में दूकान की बहुत उन्नति हुई और मुजफ्फरपुर और उसके आसपास का ऐसा कोई प्रमुख व्यक्ति नहीं था, जो उनकी दूकान का स्थायी ग्राहक नहीं बन गया। वे प्रातः ६ बजे से रात्रि ११ बजे तक वड़े परिश्रम और लगन से काम करते थे।

श्री ईश्वरदास जालान के

पिता
श्री गौरीदत्तजी जालान

माँ
श्रीमती चम्पादेवी
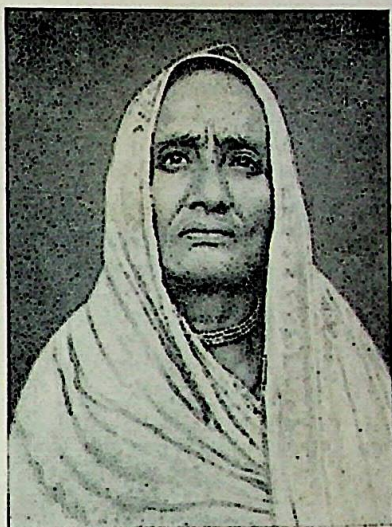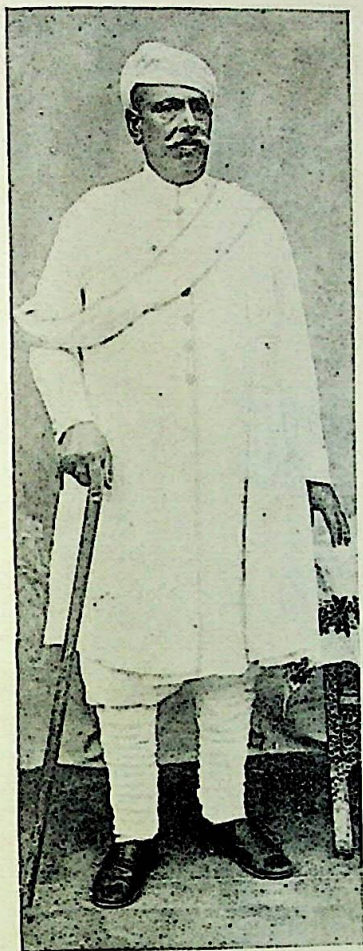
अनुज—मोहनलाल

अनुज—सच्चिदानन्द

श्री ईश्वरदासजी जालान का परिवार

खड़े (वायें से दायें) विभा (पौत्री), डा० विमल (पौत्र), दिव्या (पौत्र-वधू), इंदिरा (पौत्र-वधू), डा० कमल (पौत्र), गायत्री खेतान (पुत्री), आभा (पौत्री), बैठे (वायें से दायें) कृष्णानन्द (पुत्र), जानकी देवी (पुत्र-वधू), बनारसीदेवी (पत्नी), ईश्वरदासजी, श्यामानन्द (पुत्र), किरन देवी (पुत्र-वधू), विधि (प्रपौत्री), नीचे बैठे (वायें से दायें) मल्लिका (पौत्री), राजीव (प्रपौत्र), मधु (प्रपौत्री), अमिताभ (पौत्र), प्रतीक (प्रपौत्र) शालिनी खेतान (धेवती)

व्यापार के अतिरिक्त शहर के सार्वजनिक जीवन में भी वे भाग लेते। इससे वे मारवाड़ी समाज में ही नहीं, बल्कि समूचे मुजफ्फरपुर और आसपास में एक नामी व्यक्ति समझे जाने लगे। उस समय मैं भाइयों में अकेला ही था और इनकी इच्छा थी कि मैं अंग्रेजी शिक्षा पाऊँ, लेकिन अपने विषय में मैं आगे चलकर लिखूँगा। पिताजी स्वभाव से बड़े स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। तीन लोक से उनकी मथुरा न्यारी ही रहती थी। जब से मुजफ्फरपुर गये, उसी समय से उन्हें एक संन्यासी गुरु मिल गये और उन्होंने इन्हें वेदान्त का पाठ पढ़ाया। दादूपंथ के स्वामी निश्चलदासजी के बनाये हुए ग्रन्थ "विचार सागर" और "वृत्ति प्रभाकर" वे अक्सर पढ़ा करते थे और वेदान्त का सिद्धान्त "अहम् ब्रह्म तत्वमसि:" पर पूर्णतया आस्था रखते थे।

पिताजी की निर्भीकता

वे बराबर कहा करते थे कि वे स्वयं सच्चिदानन्द ब्रह्म रूप हैं और सारा जगत भी वही हैं। लोग उनकी बातों पर हँसा करते थे। खासकर जब वे कहते थे कि मैं हिन्दुओं का ईश्वर, मुसलमानों का खुदा, और इसाइयों का गॉड हूँ, शरीर नाशवान है; मैं शरीर नहीं हूँ अतएव मृत्यु से भी नहीं डरता। इस शिक्षा ने उनको बड़ा ही निर्भय बना दिया था और उनकी निर्भीकता एवं साहस का लोहा सभी मानते थे।

पिताजी देवी-देवताओं, पंडे-पुरोहितों, ज्योतिषियों की भविष्यवाणी, ग्रहों के प्रकोप, भूत-प्रेतों आदि में भी विश्वास नहीं करते थे। इन विचारों को वे रूढ़िवादी और अंध-विश्वास समझते थे। परिवार के मनुष्यों को संतुष्ट रखने के लिए पिताजी पूजा आदि में भी शामिल हो जाते थे, परन्तु भीतर से उन्हें इसमें कोई श्रद्धा नहीं थी। वे तो यहाँ तक कहा करते थे कि प्लेग, हैजा आदि छूत की बीमारी भी डर से होती है। उस जमाने में प्लेग हर साल हो जाया करता था। घरवाले भी ऐसे रोगी के पास जाने में हिचकते थे। परन्तु वे बिना किसी भय के ऐसे रोगियों के पास चले जाते थे। हमारे घर में ही प्लेग के कारण कई मृत्युएँ हुई और उनकी सेवा का भार इन्हीं के ऊपर रहता था। इतना सम्पर्क रहते हुए भी ये प्लेग से आक्रान्त नहीं हुए। सबसे भयंकर प्लेग हमारे घर में १९०६ में हुआ, जब कि हमारी बहन मुजफ्फरपुर शहर में सबसे पहले इस रोग से आक्रान्त हुई। जब यह खबर सरकारी अधिकारियों को मिली, उन्होंने आदेश दिया कि हमलोग सपरि-वार शहर से बाहर चले जायें, ताकि यह बीमारी शहर में न फैले। जिलाधीश ने आश्वासन दिया कि हम लोगों की अनुपस्थिति में हमारे घर और दूकान की देखभाल पुलिस करेगी, ताकि चोरी वगैरह न हो जाये। और वहाँ के सिविल सर्जन नित्यप्रति हमारे यहाँ आकर चिकित्सा की व्यवस्था करेंगे। इसके अतिरिक्त जो भी आवश्यकता होगी, उसमें वे सहायता करेंगे।

हमारे कुछ झोंपड़े वहाँ की गंडक नदी के किनारे शहर से उस पार में बने हुए थे, जहाँ हमारे पिताजी के संन्यासी गुरू रहते थे। जिन्हें वे स्वामीजी और हमलोग बाबाजी कहते थे। सारा परिवार उन झोपड़ों में चला गया—केवल हमें और हमारी चाची को वहाँ से थोड़ी दूर हटाकर एक बगीचे में रख दिया गया। वहाँ पर दो संन्यासी और रहा

करते थे। उस पार जाने के बाद हमारे पिताजी के बड़े भाई सूरजमलजी की स्त्री, विवाहित लड़के-लड़की सब प्लेग से आक्रान्त हो गये। उन सबकी देखभाल हमारे पिताजी एवं माँ के जिम्मे थी। एक-एक करके हमारी बहन और हमारे ताऊजी सूरजमलजी की स्त्री, पुत्र-पुत्री सबका देहान्त हो गया। वहीं नदी के किनारे उनलोगों की अन्त्येष्ठि-क्रिया सम्पन्न हो जाती थी। नित्य शाम को हमारे पिताजी हमलोगों के पास आते और दिन भर की खबर सुना देते। कुछ संन्यासी जो वहाँ रहते थे, उनसे वेदान्त की बात कर जाते थे। उनकी आँखों में आँसू नहीं रहता था। स्वामीजी भी प्लेग से आक्रान्त हो गये। उन्होंने पिताजी को कहा कि एक हाँडी में उनके पास पानी रख दें और उसमें एक पाइप लगाकर उनके मुँह के समीप रख दें, ताकि प्यास लगने पर वे स्वयं पानी पी सकें और इसके अतिरिक्त उन्हें और कोई सेवा की आवश्यकता नहीं है। स्वामीजी प्राय: कहा करते थे कि बच गया तो अच्छा है—और मर गया तो बगल में बहती हुई गंगा में बहा देना। ईश्वर की लीला है कि स्वामीजी बच गये। इसी तरह और भी घर में कई मृत्युएँ हुईं, परन्तु किसी ने भी पिताजीकी आँसू गिराते नहीं पाया। वे कहा करते थे कि जब मृत्यु का दिन आयेगा, तो कोई बचा नहीं सकता और जबतक वह दिन नहीं आयेगा, तबतक कोई मार भी नहीं सकता।

प्लेग और आगे नहीं बढ़ा। जैसे महाभारत के अन्त में कौरवों में केवल अश्वत्थामा और धृतराष्ट्र बचे, और पांडवों में पांच पांडव बचे, उसी तरह घर के मनुष्यों को खाकर हम लोग शहर के घरों को लौटे। चारों ओर विषाद ही विषाद नजर आता था। दूकानें खोलीं गईं। काम आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे बीती बातें भूलती गई।

उनकी सुधारक व दृढ़ प्रवृत्तियाँ

२० वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में भारत में प्राय: प्लेग की महामारी फैल जाती थी। उस समय इस रोग का कोई इलाज नहीं था। जब से पेन्सिलिन निकली है, तब से तो इसका इलाज भी हो जाता है। अब तो देश में पहले की तरह प्लेग भी नहीं होता—जिस तरह उस जमाने में हुआ करता था। यह छूत की बीमारी होने के कारण लोगों में बहुत आतंक पैदा कर देती थी। गांव के गांव खाली हो जाते थे। उस समय कलकत्ते से राजस्थान की ओर जाने वाले और उधर से कलकत्ते आने वाले लोगों को बक्सर में एक-दो रोज के लिए ठहरना पड़ता था और इस बात की जांच की जाती थी कि जाने वाला व्यक्ति प्लेग के कीड़ों से आक्रान्त तो नहीं है। बक्सर में उतरने वाले मनुष्यों को कैम्पों में ठहरना पड़ता था और इसके कारण उन्हें बहुत कष्ट होता था—इसे क्वेरेन्टाइन कहा जाता था। संयोगवश बक्सर में जेल के जेलर रायबहादुर सेठ नौरंगरायजी खेतान (देवीप्रसाद जी खेतान के पिता) थे और वे ही वहाँ उतरने वाले मारवाड़ी समाज के व्यक्तियों की देखभाल, भोजनादि की व्यवस्था अच्छी तरह कर दिया करते थे, जिससे उनका बड़ा सुनाम था। हमलोग जब बच्चे थे, तब भी उनका नाम सुना करते थे कि मारवाड़ियों में वही एक ऐसे व्यक्ति है जो सरकारी पद पर हैं, क्योंकि मारवाड़ी समाज का कोई व्यक्ति सरकारी नौकरी में नहीं पाया जाता था। सेठ नौरंगरायजी खेतान १८७४ में मारवाड़ी समाज में संभवत: प्रथम मैट्रिक पास व्यक्ति थे।

मैंने पहले उल्लेख किया है कि हमारे पिताजी अपनी निर्भिकता के लिए प्रसिद्ध थे और प्लेग जैसी बीमारी से भी उन्हें भय नहीं होता था। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। निर्भयता मनुष्य की बहुत से आश्चर्यजनक भयों से रक्षा करती है, जिनकी कल्पना भी मनुष्य नहीं कर सकता। इस संबंध में अवतक मैंने बहुत सी पुस्तकें पढ़ी है और अब हमारे लिए यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। हमारे परिवार में जिन मृत्युओं का जिक्र किया गया है, उसके अतिरिक्त भी कई मृत्युएँ प्लेग के कारण अथवा अन्य कारणों से हुई, परन्तु हमलोगों ने पिताजी को कभी भी इसके कारण अभिभूत और विचलित होते नहीं देखा। कई बार मैंने उनसे पूछा कि क्या वे कभी रोते नहीं ? उन्होंने उत्तर दिया कि प्राय: नहीं; परन्तु यदि कभी रोने की इच्छा हो जाती है तो एकान्त में रो लेता हूँ—किसी के सामने अपनी कमजोरी का परिचय नहीं देना चाहता। हमारे पिता के सबसे बड़े भाई का विवाहित लड़का, जिसकी उम्र १५-१६ वर्ष की थी, वह प्लेग से मर गया। छोटी उम्र में ही १९१३ में हमारे फूफाजी का भी प्लेग से देहान्त हुआ। हमारे पिताजी के छोटे भाई ने तीस वर्ष की अल्पायु में ही प्राण त्याग दिये और हमारे छोटे भाई की भी तीस वर्ष की अवस्था में ही मृत्यु हुई, लेकिन वे कभी रोते नहीं देखे गये—बल्कि उस समय भी उनका व्यवहार ऐसा रहा, जो लौकिक व्यवहार के सर्वथा प्रतिकूल था। जब हमारे छोटे चाचा की मृत्यु हुई तो अर्द्ध रात्रि थी, दिन भर उनके इलाज में व्यस्त रहने के कारण पिताजी भोजन नहीं कर सके थे। उनके मरने के बाद वे बोले कि हमें भूख लगी है—खाने को दो। हमलोग सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्हें भोजन नहीं दिया गया, क्योंकि यह बात लौकिकता के बहुत ही विपरीत थी। इसी तरह जब हमारे गुरु १९२२ में मरने लगे तो पिताजीने जाकर उनसे कहा कि बड़ी खुशी की बात है कि आप इस संसार से विदा हो रहे हैं—हम भी आपके पीछे-पीछे आ रहे हैं—हमारे लिए भी जगह रखियेगा। यह बात सुनकर उनके परिवार वाले क्रोध में आ गये, परन्तु पिताजी का तरीका ही ऐसा था कि मृत्यु को महत्व न दिया जाये। अन्य विषयों में भी उन्हें बड़ी निर्भीकता थी और यह उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण गुण था। वेदान्त के सिद्धान्तों का जीवन पर क्या असर हो सकता है—इसका यह ज्वलन्त उदाहरण था। मैं पहले लिख चुका हूँ कि वे रूढ़ियों में विश्वास नहीं करते थे और लोग क्या कहेंगे, इसका भी उन्हें कोई भय नहीं रहता था। इसलिए उनकी बहुत सी बातें ऐसी होती थी जो हमलोगों को अटपटी मालूम होती थीं, परन्तु वे इसमें विश्वास रखते थे।

हमारे परिवार में लड़के का प्रथम चूड़ाकरण संस्कार श्री राणीसतीजी के मन्दिर, झुझनू में जाकर हुआ करता था। परन्तु मेरा बाल उन्होंने इस प्रथा के विपरीत मुजफ्फरपुर में ही कटवा दिया। इसका मेरी माँ को बड़ा दुःख रहता था और जब मैं १९२२ में अपने बड़े पुत्र के चूड़ाकरण संस्कार के लिए झुंझनू गया तो मेरा संस्कार भी मेरी माँ ने अपने संतोष के लए करवाया। 'पिताजी ज्योतिष को नहीं मानते थे और जन्मपत्रिका को 'शोकपत्रिका' कहते थे। बच्चों के जन्म के समय स्त्रियां अवश्य ही जन्मपत्रिका बनवाती थी, परन्तु मैंने उन्हें कभी किसी ज्योतिषी से परामर्श करते हुए नहीं देखा। वे कहा करते थे कि जो होना है, वह तो होगा ही। यह जानकर क्या फायदा है कि कल क्या होने वाला है। ग्रह आदि किसी को नहीं लगते—यह सब अंध-विश्वास है। रूढ़ि

के विरुद्ध आचरण करने में उन्हें कभी दुविधा नहीं होती थी। सामाजिक विषयों में वे उस जमाने में भी न पंचों से डरते थे और न समाज से। हमारे यहाँ एक कर्मचारी काम करते थे, उनकी शादी नहीं हुई थी; क्योंकि वे गरीब थे। अग्रवालों में बीसा अग्रवाल की शादी दस्सा अग्रवाल में नहीं होती थी। उसे एक दस्सी लड़की मिली, जिसके घरवाले उनसे विवाह करने के लिए राजी थे। उसे समाज का भय था कि लोग उसे जाति से निकाल देंगे। परन्तु हमारे पिता ने उसे उत्साहित किया। जब समाज के लोगों ने इस विवाह का विरोध किया तो उनका यही तर्क रहता कि जो विरोध कर रहे हैं, वे एक बीसी लड़की से उसका विवाह करवाने की व्यवस्था कर सकेंगे? अगर नहीं, तो उन्हें इस विवाह को रोकने का क्या अधिकार है। वह शादी हो गयी और उसकी देखा-देखी और भी हुई। ऐसी परिस्थिति में एक आदमी ने एक विधवा से विवाह कर लिया। पिताजी ने उसका भी समर्थन किया। वे इस तरह के विवाहों में प्रमुख भाग लेते थे। यह स्मरण रखना चाहिए कि आज से सत्तर-पछत्तर वर्ष पहले ये बातें बड़ी क्रान्तिकारी थीं। विरले ही व्यक्ति इस व्यवस्था को इनकार करने का साहस करते थे।

१९०९ या १९१० की बात है। मुजफ्फरपुर में एक चौराहे पर होली जला करती थी। वहाँ पर सड़क पूरी चौड़ी नहीं थी। अधिकारियों ने वहाँ होली न जलाने का आदेश दिया। लोगों में बड़ी बेचैनी फैली, परन्तु किसी को नहीं सूझता था कि क्या किया जाय। हमारे पिताजी आगे आये और उन्होंने कहा कि होली यहीं जलेगी और सरकार को इसकी आज्ञा देनी होगी। रात्रि में समूचे शहर में डुग्गी पिटवा दी गयी कि दूसरे दिन शहर में हड़ताल रहेगी। वह जमाना और हड़ताल का साहस मामूली बात नहीं थी। हड़ताल ऐसी हुई कि लोगों को तरकारी तक नहीं मिल सकी। हमलोग आतंकित थे कि पिताजी गिरफ्तार कर लिये जायेंगे, परन्तु वे इसकी परवाह नहीं करते थे। अन्त में सरकार को वहां होली जालने की आज्ञा देनी पड़ी।

१९३० में महात्मा गांधी का सत्याग्रह आरम्भ हुआ था और उस समय मुजफ्फरपुर में पुलिस की गोली से एक युवक की मृत्यु हो गयी। मीटिंग सत्याग्रह के समर्थन में थी और वह युवक तिरंगे झण्डे के नीचे खड़ा था। पुलिस ने बहुत से लोगों को गिरफ्तार किया। मारवाड़ी समाज में आतंक फैलाने के लिए पुलिस हमारे पिताजी को भी पकड़ कर थाने में ले गयी और उन्हें हथकड़ी पहनाने लगी। परन्तु उनके हाथ इतने मोटे थे कि कोई हथकड़ी उनके योग्य नहीं थी। इस पर पिताजी ने कहा कि सरकार के पास तो ऐसी हथकड़ी भी नहीं हैं, जो उनके हाथों में लगाई जाये। इससे पुलिस वाले बड़े नाराज हुए और उनकी कमर में रस्सा बाँधकर पैदल थाने से अदालत ले जाने लगे। पिताजी शरीर के बहुत भारी थे और जब हाथी की तरह झूमते हुए पैदल चलने के लिए विवश हुए तो हजारों आदमियों ने उनका अभिनन्दन किया, मालाएँ पहनायीं, टीका लगाया। हजारों आदमी उनके पीछे-पीछे अदालत तक गये। पुलिस ने देखा कि ऐसे आदमी को पकड़ने से कोई लाभ नहीं है, तो उन्हें छोड़ दिया।

पिताजी की निर्भीकता और रूढ़िवादिता का विरोध एवं समाज सुधार का समर्थन देखकर ही स्व० जमनालालजी बजाज मुझसे प्रायः कहा करते थे कि पिता सनातनी और बेटा सुधारक तो बहुत जगह देखा, लेकिन पिता सुधारक और बेटा सनातनी तुम्हारे घर में

ही देख रहा हूँ। मेरी विचारधारा पिताजी से कुछ भिन्न थी और मैं सनातनी विचारधारा का पोषक था। पिताजी की भांति उग्र सुधारक नहीं था। इसका कारण स्पष्ट था कि उनके जीवन पर एक संन्यासी का प्रभाव पड़ा था, और मेरे जीवन पर एक ब्राह्मण गुरु का जिसका जिक्र अगले पृष्ठों में विस्तारपूर्वक आयेगा।

जनसेवा की भावना :

न केवल निर्भीकता ही उनका सबसे प्रमुख गुण था—बल्कि जन सेवा की भावना भी पिता जी में थी। जब कोई भी पीड़ित मनुष्य उनके पास आता तो यथासंभव वे उसे सहायता करने के लिए प्रस्तुत रहते थे। यदि कोई शक्तिशाली व्यक्ति किसी कमजोर आदमी को सताने लगता तो वे उस कमजोर आदमी का ही पक्ष लेते थे। किसी को नौकरी न मिले, वह उनके पास पहुँच जाता तो बिना काम के भी उसे रख लेते थे और उसे रोजाना भोजन का खर्च दे दिया करते थे। जब वह आदमी काम पूछता था तो पिताजी कह देते थे कि हमारे पीछे-पीछे चलो। काम खोजने वाले व्यक्तियों को पिता जी का नाम बता देने में शहर के आदमियों को मजा आता था। कभी-कभी पांच-सात आदमी उनके पीछे-पीछे चलने वाले हो जाते थे। दस-पांच दिन में उन आदमियों को कहीं न कहीं नौकरी मिल जाती थी और वे चले जाते थे। इस संबंध में पिता जी कहा करते थे कि इसमें उनका दस-पांच रुपये महीना ही तो खर्च होता है, क्योंकि दो-तीन आने रोजाना के खर्च में ही नित्य का भोजन प्राप्त हो जाता था।

१५ जनवरी १९३४ को जब बिहार में भूकम्प हुआ तो मुजफ्फरपुर में इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। हजारों मकान धराशायी हो गये। हजारों आदमी मर गये। हजारों जगह भूमि फट गयी। जमीन के अन्दर से बहुत जोरों से पानी की धारा ने निकल कर आसपास के स्थानों को जलप्लावित कर दिया। हमारे रहने का मकान, दूकान एवं हमारे अन्य कई मकानात सबके सब गिर गये। ऐसा प्रतीत होता था कि महाप्रलय ही आ गया हो। संयोगवश हमारा सारा परिवार उसी दिन सुबह ही एक मित्र के नये बने हुए मकान में चला गया था। वह मकान सौभाग्यवश नया था, अतएव गिरा नहीं; यद्यपि उसका भी आंगन फटकर बड़े जोरों से उसमें से जल की धारा निकली। हमारी कन्या का विवाह इस नये मकान में एक सप्ताह बाद होने वाला था, अतएव इस मकान में उसी दिन जाना था—प्रश्न केवल इतना ही था कि दिन का भोजन वहां जाकर बनावें या खाकर जावें। ईश्वर की कृपा थी—यही फैसला हुआ कि वहीं जाकर बनाया जाये; अतः सारा परिवार वहीं चला गया। भूकम्प दिन में दो बजे हुआ था, अतएव सब बच गये।

'राखनहारा साईयां मार न सकिहैं कोइ' वाली कहावत चरितार्थ हुई। चारों तरफ हाहाकार मच गया। जिसको जहां खुली जगह मिली, वहीं जाकर ठहर गया। जनवरी का महीना, जाड़े की रात, खुला मैदान, जगह-जगह से पानी की बाढ़ बहनी शुरू हुई। फिर भूकम्प की आशंका। जिन्होंने अपनी आंखों से ये सब दृश्य देखे हैं, वे ही अनुभव कर सकते हैं। हमारे पिताजी ने जब यह दशा देखी तो अपने छः-सात मकानों के गिरने का और दूकान के स्टाक के नष्ट होने का दुख तो भूल गये और जो भी आदमी

कम्बल मांगने आते थे, उसे कह देते थे कि उस गिरी हुई दूकान के मलवे से जो भी निकाल सको—निकाल लो, और ले जाओ। हमारे यहां कंबलों का वहुत बड़ा स्टाक दूकान में रहता था। सैकड़ों कम्बलें इस तरह बँट गयी। हमारी कन्या के विवाह के लिए गद्दे बनाने के लिए, पुआल इकट्ठा किया गया था, जिसे जाड़े के दिनों में लोग बिछाकर सोते हैं, जिससे जाड़ा नहीं लगता। वह भी जिस-जिस ने माँगा उसे दे दिया गया। भोजन की सामग्री भी विवाह के लिए बहुत बड़ी मात्रा में इकट्ठी की गयी थी, उसे भी जिस-जिस ने माँगी, दे दी गयी। एक समीपवर्ती मैदान में चद्दर, धोती एवं साड़ी टांगकर, तम्बू बनाया गया था, उसी में हमारा सारा परिवार था। उसी तरह हजारों लोग उसी मैदान में पड़े थे। हमारे पिताजी के मन में इन सारी घटनाओं को देखकर एक क्षण के लिए भी कमजोरी नहीं आयी। वे रात में अकेले शहर में अपनी दूकान के सामने खाट बिछाकर रजाई ओढ़कर और मच्छरदानी लगाकर रोज सोते थे, और कहीं जाड़े से ठिठुर न जायें—इसलिए आग भी जलाकर वहाँ रखते थे। एक टिमटिमाती लालटेन बगल में पड़ी रहती। यह शहर की मुख्य सड़क थी; परन्तु सारा शहर श्मशान हो रहा था और उन्हीं की एक लालटेन टिमटिमाती हुई दिखाई देती थी। उन्हें न भूत-प्रेत का डर था, और न अन्य कोई भय।

भूकम्प के दिन मैं कलकत्ते में था। उसी दिन रात्रि में मैं, मेरा छोटा भाई और उसकी पत्नी जो कलकत्ते में थे, मुजफ्फरपुर के लिए रवाना हो गये। जब हम लोग मोकामाघाट पर गाड़ी से उतर कर मुजफ्फरपुर की तरफ जाने लगे, तो एक मित्र भी उसी गाड़ी में चढ़ रहे थे, मुझ से पूछा कि मैं कहां जा रहा हूँ। जब मैंने मुजफ्फरपुर का नाम लिया, तो उन्होंने कहा कि समूचा शहर जल में डूब गया है। मुजफ्फरपुर अब नहीं है। यह दुखद समाचार सुनते ही मेरा दिल ही बैठ गया और मैंने समझा कि शायद मैं अब अकेला ही इस संसार में रह गया हूँ। मैंने फिर से सामान गाड़ी पर रखा और पटना पहुँच गया। वहां भी कुछ पता नहीं लगा कि मुजफ्फरपुर का क्या समाचार है। सब बुरा ही बुरा सुन रहा था। दूसरे दिन हिम्मत करके मैं अपने छोटे भाई के साथ मुजफ्फरपुर के लिए रवाना हुआ। जहाज के द्वारा गंगाजी को पार करके सोनपुर के पास हाजीपुर नामक स्थान में पहुँचा। वहाँ हमारे एक मित्र का घर था; जिनकी दूकान मुजफ्फरपुर में भी थी। वहाँ जाकर मुजफ्फरपुर का सारा समाचार मालूम हुआ। पता चला कि घर के आदमी बच गये हैं। मकान सब गिर गये हैं। मन में शान्ति आयी और उनकी मोटर-कार लेकर हमलोग मुजफ्फरपुर पहुँचे। लेकिन शहर पहचान में नहीं आता था। किसी तरह अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंचे और सारे परिवार को मैदान में पड़े हुए पाया। इतना होते हुए भी पिताजी को हमने दुखी नहीं देखा।

उस रात मैं भी उसी मैदान में सोया; जहाँ सारे परिवार के लोग थे। उसी दिन श्री वेणीशंकर शर्मा के नेतृत्व में मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी का सेवा दल भी मुजफ्फरपुर पहुंच गया था। उन लोगों को एक स्थानीय मन्दिर में ठहराया गया था, उसी रात्रि में फिर दुबारा भूकम्प हुआ। चारों ओर राम-राम और अल्लाहो अकबर की ध्वनि सुनाई देने लगी। धरती फट न जाये, इसकी आशंका के कारण लोग बड़े भयभीत थे, परन्तु बिना कोई हानि के भूकम्प बन्द हो गया। मैं उठकर उस मन्दिर में गया; जहां मारवाड़ी

रिलीफ सोसाइटी के सेवा दल को ठहराया गया था। उन लोगों की भी कोई क्षति नहीं हुई थी। यद्यपि भूकम्प का अनुभव उन्हें भी हुआ था। दूसरे दिन जिस स्थान पर हमलोग ठहरे थे, वहाँ मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी का कैम्प भी लगा दिया गया। हमारे पिताजी भी उनकी सहायता में अपने दलवल के साथ जुट गये। निश्चय हुआ कि जितनी झोपड़ियाँ बन सकें, उतनी झोपड़ियाँ बनवाई जायें, ताकि वर्षा होने पर रक्षा हो सके। यह काम वड़ी तेजी के साथ आरम्भ किया गया।

हमारे पिताजी वड़ा रोवदाव रखते थे और सभी आदमी उनसे डरते थे। जितने भी मजदूर मिल सके और जितने भी खर और वाँस प्राप्त हो सके, उसे इकट्ठा करना शुरू हुआ और साथ ही साथ झोपड़ियाँ वननी शुरू हुई। देखते-देखते तीन-चार दिन के अन्दर ही एक छोटा-मोटा नगर वन गया, जिसे देखकर मुजफ्फरपुर की जनता और सभी आफिसर आश्चर्यचकित हो गये। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी का वड़ा सुनाम हो गया। उसके पश्चात तो सारे हिन्दुस्तान से सेवा दल आने लगे और सारे नेता वहाँ पहुँच गये।

हमारे पिताजी प्रथम दिन से ही अपनी दूकान के कपड़ों को निकलवाने में लग गये, परन्तु मजदूर नहीं मिलते थे। उस रास्ते से जो टांगा वाले, साइकिल वाले अथवा मजदूर वर्ग के लोग जाते-आते थे, उनसे कुछ इंटे वगैरह हटवाने की सहायता वे ले लिया करते थे। हमारे मित्र डा० किशोरीलाल शर्मा जो सोसाइटी की टीम में गये थे, उन्होंने जव टमटम वाले को उस सड़क से जाने के लिए कहा, जिसमें हमारी दूकान थी, वह उस रास्ते से जाना नहीं चाहता था। उसने कहा कि इस रास्ते में एक जवर्दस्त सेठ है, जो विना ईंट ढुलवाये किसी को इस रास्ते जाने नहीं देता। किशोरीलाल शर्मा को विश्वास नहीं हुआ और वे जोर देकर उस टमटम वाले को उसी रास्ते से ले गये। जब वह हमारी दूकान के सामने पहुँचा तो जो आशंका थी, वही हुआ। हमारे पिताजी ने उसे रोक कर आगे नहीं जाने दिया, जवतक कि उसने दस-पांच ईंटें हटा नहीं दी। शर्माजी ने मुझ से इस वारदात का जिक्र किया और कहा कि ऐसा जवर्दस्त सेठ यहां पर कौन है, जो जवर्दस्ती ईंटा ढोवाकर रास्ते से जाने देता है। जव मैंने कहा कि वे तो मेरे पिता ही हैं, तव वड़े जोर का ठहाका लगा। मैं दो-तीन दिन के अन्दर ही सारे परिवार को लेकर कलकत्ते वापस आ गया और दो महीने वाद मेरी कन्या का विवाह कलकत्ते में ही सम्पन्न हुआ।

संन्यासियों के प्रति श्रद्धा :

उस जमाने में बैसाख-जेठ में, जो मुजफ्फरपुर में आम और लिची का मौसम होता है, बहुत अधिक संख्या में संन्यासियों का आवागमन होता था और वे सभी पिताजी से मिलकर ही जाते थे। हमारे यहाँ भोजन की भिक्षा लेने के लिए वे अवश्य ही पहुंचते थे। कभी-कभी संन्यासियों को पिता जी कुछ अपशब्द भी कह दिया करते थे। पिताजी के इस व्यवहार से अगर वे नाराज हो जाते तो वे कहा करते थे कि यह पूरा संन्यासी नहीं है। जिसकी खातिरदारी कम होती थी, और जो नाराज नहीं होते थे, उनको सच्चा वेदान्ती संन्यासी समझते थे और फिर उसकी खातीरदारी भी अधिक होती थी।

विनोदी स्वभाव

यों तो वे बहुत कड़े आदमी समझे जाते थे। हम वच्चे उनके नजदीक जाना भी

नहीं चाहते थे। नौकर-चाकर भी बहुत डरते थे। किन्तु वे प्रसन्नचित्त व्यक्ति थे। हर रोज शाम को दूकान के बाहर चबूतरे पर बैठते थे और आते-जाते लोगों से गप्पें किया करते थे। कभी-कभी बच्चों से भजन आदि भी गवा लिया करते थे। एक संन्यासी बहुधा वहाँ आया करते थे। वे चंग बजाकर बहुत ही सुन्दर लावनी गाया करते थे, जो ज्ञान और भक्तिपूर्ण हुआ करती थी। लीची के दिनों में तो वहाँ बगीचे से लीचियाँ आ जाया करती थीं। जिस तरह राजस्थान में बाजरे और मतीरे को लोग रात में मोहल्ले में किसी विशिष्ट पुरुष के यहाँ जाकर खाया करते थे, उसी तरह से इष्ट-मित्र सभी इन लीचियों के भोज में रोज शामिल होते थे। उस जमाने में यद्यपि हमारे यहाँ अपने बगीचे से ही लीचियाँ प्राप्त हो जाया करती थीं, तो भी बाजार में दाम एक-दो रुपये हजार ही था। मुजफ्फरपुर की लीचियाँ नामी होती हैं और बहुत ही सुस्वाद। हमारे यहाँ भी बगीचे में लीचियों के कई सौ पेड़ थे और इसकी कोई कभी नहीं रहती थी। जिस तरह आज के जमाने में लोगों को कभी भी अपनी व्यापारिक और पारिवारिक चिन्ताओं से शान्ति नहीं मिलती, वैसी अवस्था उस समय नहीं थी। सामाजिक जीवन भी था और लोग रात में परस्पर मिल-जुलकर आनन्द मनोरंजन कर लिया करते थे। रात के ग्यारह बजे के लगभग जब यह गोष्ठी समाप्त होती थी, तब वे एक बैलगाड़ी, जिसे सम्पनी कहा जाता था, पर सो जाते और गाड़ी वाला धीरे-धीरे नदी के उस पार उन्हें पहुंचा देता जहाँ हमारा बगीचा था। वे एक खुली हुई झोपड़ी के नीचे सोया करते थे, जिसे वे पंचवटी कहते थे। जैसे पंचवटी में पाँच पेड़ थे, उसी तरह वहाँ भी उन्होंने पाँच तरह के वृक्ष लगा रखे थे। उसी के नीचे फूस की एक झोपड़ी थी, जिसमें सोया करते थे। उस बगीचे का नाम वे बैकुण्ठपुरी रखे हुए थे। यह दस एकड़ का बड़ा बगीचा था, जिसमें आम, लीची, अमरूद इत्यादि फलों के सैकड़ों ही वृक्ष लगे हुए थे। सब प्रकार की तरकारियाँ, अन्न वगैरह उपजाये जाते थे। दूध-दही का भी बन्दोबस्त रखते थे। हमें भी जब स्वास्थ्य लाभ करने की आवश्यकता होती, तो महीनों वहाँ जाकर रहा करते थे। बिल्कुल एकान्त था। आस-पास में कोई घर नहीं था। गंडक नदी एक ओर बहती थी। जाड़े में यह एक रमणीय निवास स्थान हो जाता था। जब बरसात होती और नदी में बाढ़ आ जाती तो यह बगीचा भी बाढ़ के पानी से भर जाता। बाढ़ का पानी शहर के पास तक पहुँच जाता था। उस समय वे एक नौका रखते थे और उसमें बैठकर अपनी पंचवटी में पहुँच जाते थे। नीचे बाढ़ का पानी बहता रहता था। खाट पर वे सो जाया करते थे। एक नौकर उनका पैर दबाया करता था। बगल में नौका रहती थी कि कहीं बाढ़ का पानी बढ़ जाये तो नौका से आत्म-रक्षा हो सके।

पिता जी का शरीर बहुत भारी था। अतएव इन्हें गर्मी बहुत अधिक लगती थी। दूकान से खाने के लिए घर जाने में कुछ दूर धूप में चलना पड़ता था। कभी-कभी तो वे मालढोने की ठेला गाड़ी पर बैठ जाते। दोनों तरफ दो आदमी बड़े-बड़े ताड़ के पंखों से हवा करते और पीछे-पीछे पाँच-सात बेकार आदमियों का दल चलता था जो लोगों के लिए एक कुतूहल और विनोद का अवसर प्राप्त करा देता था। परन्तु इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं रहती।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य

जब मैं स्कूल में पढ़ता था, उस समय पिताजी ने मुजफ्फरपुरमें मुस्लिम मुल्ला—मौलानाओं का एक जलसा किया। जिस तरह से हिन्दुओं में वेदान्त मत है, उसी से मिलता-जुलता मत मुसलमानों में सूफी मत है। हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों से इस सूफी मत के माननेवालों को पिता जी ने आमंत्रित किया और कई दिनों तक उनके व्याख्यान हुए। हजारों मुसलमान सुनने के लिए इकट्ठ होते थे। शहर में चर्चा हुई कि सेठजी मुसलमान हो रहे हैं। मुझ से भी स्कूल में छात्रों और अध्यापकों ने पूछा और जब मैंने पिताजी से पूछा तो उन्होंने कहा—"मैं क्यों मुसलमान बनूं। मैं तो अपने को हिन्दुओं का भगवान और मुसलमानों का खुदा मानता हूं। मैंने तो, मुसलमानों में वेदान्त-मत का क्या रूप है, उसे जनता में बताने के लिए इन मुसलमानों को इकट्ठा किया है।" उस जमाने में हिन्दुओं और मुसलमानों में इतना बैर-भाव भी नहीं था। हमारे पिताजी का निजी नौकर एक मुसलमान ही था। केवल लोगों की भावना की रक्षा के लिए वे उसके हाथ का खाते नहीं थे, परन्तु और सब काम वह कर देता था। हमारे घर के सामने एक मौलाना थे, जिनकी मेवे की दूकान में हम लड़के मेवे खाया करते थे। हमारे घर में भी कोई बीमार हो जाये तो मौलाना साहब रात-दिन सेवा करते थे। स्कूल में हमारा जो सबसे प्रिय मित्र था, वह भी एक मुसलमान लड़का था और धोती पहनता था। वह जब हमारे घर में आता, हमारी माँ उसे भी खिलाती थी। आज का जमाना और वह जमाना बिल्कुल भिन्न था।

हमारे माता-पिता का स्वर्गवास

हमारी माँ और पिताजी दोनों ही १९३९ में तीन महीने के अन्तर में इस संसार से चल बसे। माता पहले गयी और पिता पीछे। समूचे शहर में लोगों ने शोक मनाया और कहा कि शहर का एक शेर उठ गया। हमारी माँ तो सीधी-सादी एक गृहिणी थीं—जो बिल्कुल पढ़ी-लिखी नहीं थीं। एक-आध हिन्दी की साधारण सी पुस्तक पढ़ सकती थीं, परन्तु घर के काम में पूर्ण दक्ष थीं। राजस्थान में पैदा हुई और वहीं पली हुई थीं, इसलिए परिश्रम बहुत अधिक कर सकती थीं।

मृत्यु के समय भी हमारे पिता जी ने धैर्य से काम लिया। उन्होंने कहा कि हमारा उपदेश यही है कि 'यह जीवन संग्राम है, इसमें लड़ना ही होगा और लड़ते-लड़ते मर जाना होगा।'

उनके संन्यासी गुरु

जब हमारे पिताजी मुजफ्फरपुर में आये, तभी उनका सम्पर्क एक संन्यासी महाराज से हो गया, जो मुजफ्फरपुर में बहती हुई गंडक के किनारे झोपड़ी में रहा करते थे। उस समय नदी को पार करने के लिए पुल नहीं बना था, नौका की शरण लेनी पड़ती थी। पिताजी की भक्ति उनमें दिनानुदिन बढ़ती गयी और उन्होंने वेदान्त का अध्ययन उनसे किया। स्वामीजी स्वयं बड़े निर्भीक और मजबूत शरीर के व्यक्ति थे। धीरे-धीरे और भी लोग उनके पास जाने-आने लगे। सबकी सुविधा के लिए उनको नदी के

उस पार की अपेक्षा इसी पार में रहने की व्यवस्था पिताजी ने कर दी और दोनों का संबंध धीरे-धीरे बड़ा घनिष्ठ होता गया। वेदान्त के अध्ययन से हमारे पिताजी ने भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया। हम लोग जब बच्चे थे, तभी से स्वामीजी के पास जाया करते थे। वे हम लोगों से व्यायाम कराते और दूध पिलाया करते थे। स्वामीजी हृदय के इतने मजबूत थे कि जब इनको हाइड्रोसील की बीमारी हो गयी, जो मुजफ्फरपुर में बहुत अधिक हुआ करती थी, तो उन्होंने पिताजी को एक तेज चाकू लाने और एक मन राख इकट्ठी करने के लिए आदेश दिया और कहा कि वे संन्यासी हैं, अपने हाथों से ही समूचे अंडकोष को काटकर फेंक देंगे। अंडकोष काटने के बाद उनके सारे शरीर को गले तक राख में ढककर छोड़ दिया जाये। मुँह में थोड़ा-थोड़ा पानी डाला जाये। अगर वे अच्छे हो गये तो ठीक है, नहीं तो बगल में बहती हुई नदी में फेंक दिया जाये। आश्चर्य की बात है कि जैसा उन्होंने विचार किया—वैसा ही कर डाला और बच भी गये। १९१३ में स्वामीजी का देहान्त हुआ। उनकी उम्र भी सत्तर वर्ष से अधिक हो गयी थी, परन्तु सारे दाँत मजबूत थे। मृत्यु भी हुई तो किसी बीमारी से नहीं ; बल्कि रात में सोये और भोर में नहीं उठे। मरने के कुछ दिन पहले उन्होंने मुझ से भी कहा था कि मैं उनसे वेदान्त की शिक्षा लूं। मैं उस समय बी० ए० में पढ़ रहा था और वे जल्दी ही चल बसे। मैं उनसे शिक्षा नहीं ग्रहण कर सका।

वे भोजन करने के लिए हमारे घर आया करते थे और उसके बाद तीन-चार घण्टे वहाँ रहते थे। मैंने उन्हें समस्त महाभारत पढ़कर सुनाया, जो तीन-चार महीने में पूरा हो गया।

स्वामीजी चिकित्सा भी जानते थे। डाक्टरों से घृणा करते थे। हमारे घर में कोई बीमार हो जाये तो वे इलाज भी कर देते थे। पिताजी को उनका बड़ा बल रहता था और वे उनका आजीवन बड़ा सम्मान करते रहे।

मुजफ्फरपुर

मेरा जन्म मुजफ्फरपुर में चैत्र शुक्ल ४ संवत् १९५२ तद्नुसार ३० मार्च १८९५ ई० को हुआ। मुजफ्फरपुर उत्तर बिहार में एक प्रमुख नगर था। अब तो वह बहुत बड़ा हो गया है। बिहार में उस जमाने में नील की खेती हुआ करती थी। अंग्रेज इसे किया करते थे। इसके कारण मुजफ्फरपुर में अंग्रेजों का बहुत बड़ा अड्डा था, जो नीलहे साहब के नाम से पुकारे जाते थे। वे वहाँ के किसानों से जबर्दस्ती नील की खेती करवाते थे। इसी को लेकर सन् १९१७ में महात्मा गांधी ने इसके विरुद्ध आन्दोलन किया था, जो सभी जानते हैं। उसके बाद नील की खेती कम होने लगी और अन्त में बन्द ही हो गयी।

मुजफ्फरपुर की लीची उस समय भी मशहूर थी और अब भी सारे हिन्दुस्तान में मशहूर है। अब तो लीची बहुत जगह होने लगी है, परन्तु उनमें वह स्वाद नहीं पाया जाता जो मुजफ्फरपुर की लीची में अब भी पाया जाता है। वहाँ से अधिकांश लीची

वाहर चली जाती है, वहाँ के लोगों को दस-पाँच दिन से अधिक नहीं मिलती। आम भी वहाँ बहुत होता था, लेकिन १९३४ के भूकम्प के वाद से बहुत कम होने लगा, न मालूम जमीन में क्या तबदीली आ गयी। अब तो आम के अधिकांश पेड़ काटकर लकड़ी के दामों में बेच दिए गये। हमने भी अपने पाँच-सात सौ आम के पेड़ों को कटवा डाला और लकड़ी के दाम में वेच दिया। लीची के अलावा प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद मुजफ्फरपुर में थोक कपड़े का व्यापार बहुत बढ़ गया और अव तो वह इतना वढ़ा-चढ़ा हुआ है कि कलकत्ता, वम्वई, अहमदाबाद, दिल्ली, कानपुर के बाद हिन्दुस्तान में मुजफ्फरपुर का ही स्थान गिना जाता है।

उस समय और उसके बाद भी जब तक बिहार, बंगाल से अलग सूबा १९१२ में नहीं वन गया, तब तक वंगाल के सरकारी आफिसर मुजफ्फरपुर में अपनी तबदीली कराने में वड़े प्रसन्न होते थे, क्योंकि वंगाल में जलवायु कमजोर थी। इसलिए वहाँ पर बंगाली भी जाकर रहने लगे थे। उनमें बहुत से वकील, डाक्टर, इंजीनियर और जमींदार थे। अब भी बहुत वड़ी संख्या में वंगाली वहाँ रहते हैं। जब विधान बाबू ने बिहार को वंगाल में पुनः शामिल करने का प्रस्ताव किया था तो मुझसे उन्होंने कहा था कि तुम्हारी लीची अब मेरी भी हो जाएगी। हमने उनसे यही कहा कि जब हम जन्मे थे, तो वह वंगाल में था और मरेंगे तो वह वंगाल में आ जायेगा। किन्तु वंगाल-विहार के विलीनी-करण का प्रस्ताव मंजूर नहीं हुआ था।

कवि गुरु रवि बाबू एवं शरत्चन्द्र

कहा जाता है कि वंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार शरत्चन्द्र चटर्जी मुजफ्फरपुर में बहुत दिनों तक वहाँ के रईस जमींदार महादेव प्रसाद साहू के बगीचे में रहे और बूढ़ी गंडक के किनारे सिकन्दरपुर नामक बहुत वड़ा मैदान है, उसी में वैठकर उन्होंने अपने बहुत से उपन्यासों को लिखा था। यह भी सुना जाता है कि वे अपने उपन्यासों के लिए प्रेरणा पाने के लिए ताड़ी पीने वालों की दूकानों पर और टोड़ियों में बहुत बार पाये जाते। वहाँ पर एक मोहल्ला ऐसा भी है, जहाँ वेश्याएं रहा करती हैं। वहाँ पर भी बहुत बार वे चक्कर काटते हुए दिखाई देते। कहाँ तक ये बातें सही है, मुझे व्यक्तिगत रूप से इनकी कोई जानकारी नहीं है।

वंगाल की प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका अनुपमा देवी भी वहाँ बहुत दिनों तक रही थीं। रवीन्द्रनाथ टैगोर भी वहाँ जाते आते थे, क्योंकि उनकी कन्या का विवाह वहाँ के प्रसिद्ध वकील श्री ऋषिकेश चक्रवर्ती के भाई के साथ हुआ था। इनका नाम भी शरत चक्रवर्ती था। ये पीछे कलकत्ते आकर बैरिस्टरी करने लगे और मुझे भी इनसे पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ था। जब मैं कलकत्ते में कानून पढ़ता था, तब ये लॉ कॉलेज के प्रोफेसर थे। रवि बाबू ने मुजफ्फरपुर के एक आयोजन में स्वयं अपना रचा हुआ गीत भी गाया था। किन्तु मुझे व्यक्तिगत रूप से ये सब बातें मालूम नहीं। जो व्यक्ति इन बातों का उल्लेख करते हैं वे उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति श्री अयोध्या प्रसाद खत्री, जो खड़ी बोली के प्रवर्तकों में गिने जाते थे, वे भी यहीं रहते थे, ऐसा कहते हैं।

मुजफ्फरपुर का ऐतिहासिक महत्व

मुजफ्फरपुर जिला बहुत प्रसिद्ध रहा है। उसी जिले के अन्दर वैशाली है, जो भगवान बुद्ध के समय भी बड़ा प्रसिद्ध स्थान था। जहाँ वे बहुत दिनों तक रहे। वहीं से वे कुशीनगर गये, जो अब उत्तर प्रदेश में है। वहीं उनका शरीरान्त हुआ। इसी वैशाली में एक अत्यन्त प्रसिद्ध नर्तकी आम्रपल्ली थी, जो अत्यन्त सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता को ध्यान में रख कर यह कहा जाता था कि वह एक पुरुष के साथ विवाह करके उसी की कैसे हो सकती है, वह तो नगरवधू ही हो सकती है। तत्कालीन समाज पर उसका बहुत प्रभाव था। भगवान बुद्ध के सम्पर्क में आने से वह बौद्ध भिक्षुणी बन गई और बौद्ध धर्म को मानकर अपना शेष जीवन एक भिक्षुणी की तरह व्यतीत किया। इसी वैशाली में जैनियों के प्रसिद्ध तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म लिच्छवी वंश में हुआ। उस पुराने जमाने में भी वहाँ प्रजातंत्र था। बाद में लोग इस स्थान के महत्व को भूल गये, लेकिन अब कुछ वर्षों से इसका महत्व बहुत बढ़ गया है। वहाँ बहुत बड़ा शोधकार्य सरकार की ओर से हो रहा है। जिसके प्रधान एक मारवाड़ी विद्वान् श्री टाँटिया जी हैं, उनको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मने उनसे पूछा कि हमारे एक मित्र टांटियाजी बड़े व्यापारी और कोट्याधीश हैं और आप इस ब्राह्मणवृत्ति में कैसे आ गये। उन्होंने उत्तर दिया कि मनुष्यों की अपनी-अपनी रुचि होती है। मेरी रुचि इसी ओर हो गई।

अब वैशाली एक नया जिला बन गया है और मुजफ्फरपुर से अलग हो गया है। इसी मुजफ्फरपुर जिले में जनकपुर है, जहाँ महाराज जनक राज्य करते थे। वहीं जगतजननी सीता का जन्म हुआ था और भगवान रामचन्द्र का विवाह उनके साथ हुआ। अब भी वह तीर्थ स्थान माना जाता है। वह क्षेत्र भी अब एक नये जिले के रूप में कर दिया गया है और सीतामढ़ी के नाम से माना जाने लगा है।

दरभंगा, चम्पारण, मुजफ्फरपुर, वैशाली, तथा सीतामढ़ी जिलों को लेकर जो कमिश्नरी है, उसका हेड क्वार्टर भी मुजफ्फरपुर ही रहा है, जो तिरहुत डिवीजन के नाम से जाना जाता है। मुजफ्फरपुर में ही खुदीराम बोस ने पहले-पहल बम छोड़ा। केनेडी साहब की मेम और कन्या मारी गयी और खुदीराम बोसको फाँसी भी यहीं दी गई। इसी जिले में विश्व का सबसे बड़ा मेला सोनपुर में कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को लगता है।

मेरा जन्म और बाल्यकाल

जैसा कि पहले कह चुका हूँ मेरा जन्म ३० मार्च १८९५ ई० मिति चैत्र शुक्ल ४ संवत् १९५२ को मुजफ्फरपुर में हुआ।

मेरे जन्म के समय की हमारे पिता जी के दूकान की बही अभी भी उपलब्ध है। कौतूहलवश मैंने उसे देखा। उसमें मेरे जन्म के समय का खर्च भी लिखा हुआ मिला। उस जमाने में और उसके बाद भी बहुत समय तक प्रसव कराने का काम अंत्यज जाति की स्त्री किया करती थी, जो चमार जाति की होती थी और बिहार में उसे चमइनि कहते थे। बच्चा प्रसव होने के बाद उसे एक रुपया से लेकर दस-पाँच रुपये के भीतर ही दिया जाता था। अगर पुत्र हुआ तो कुछ अधिक ; और कन्या हुई तो कम। प्रथम पुत्र में अधिक, पीछे कम। यह क्रम बहुत साल तक चलता रहा।

मुजफ्फरपुर में मेरे पुत्र आदि संतानों का जन्म हुआ था, उसे इसी ने प्रसव कराया था। कलकत्ते में जो जन्मे, उनके लिए पहले शिक्षित दाई आने लगी, उसके बाद लेडी डाक्टर और अब तो प्रसव हास्पीटल और नर्सिंग होम में होने लगे हैं। बहुत से प्रसवों में तो पेट का ऑपरेशन करके बच्चे निकाले जाते हैं। लेकिन ये ऑपरेशन तीन तक ही हो सकता है, आगे नहीं। पहले ऑपरेशन इने-गिने होते थे। अब तो वह मामूली-सी बात हो गयी है। प्रसव के खर्च आजकल कहीं तो हजारों में पहुँच जाते हैं। मेरे जन्म के समय तो केवल एक रुपया चमइनि को दिया हुआ लिखा था, जो कि प्रथम पुत्र के लिए दिया गया था। जन्म के समय ज्योतिषी को बुलाकर पूछने का रिवाज उस समय भी था, और अब भी है। एक रुपया ज्योतिषीजी महाराज को मेरे जन्म के समय दिया गया था, यह भी उस वही में लिखा हुआ है। ज्योतिषीजी ने बताया था कि मेरे लग्न बहुत अच्छे हैं और मैं बड़ा विद्वान एवं भाग्यवान होऊँगा, क्योंकि जन्म-लग्न में बृहस्पति है और उच्च शनि मिलकर राज्ययोग बना देते हैं। उस पर भी खुश होकर केवल एक रुपया ही यथेष्ट समझा गया। इसके अतिरिक्त दो-चार रुपये फुटकर खर्च हुए। पीछे के जीवन को देखकर तो लग्न में अच्छे ग्रहों की बात सच मालूम होती है, नहीं तो पढ़ना छोड़कर दूकान पर बैठकर फिर पढ़ाई कैसे आरम्भ हो गयी। बिहार से बंगाल में आकर कैसे मिनिस्टर बन गया। जहाँ दूसरे प्रान्त वालों के लिए यह प्राय: असंभव-सा ही माना जाता है। जब मैं स्पीकर था, और सरदार पटेल से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो पहला प्रश्न उन्होंने यही किया कि मैं बंगाल में स्पीकर कैसे चुना गया ?

जन्म-पत्रिका में मेरे पिता को आस्था नहीं थी वैसे वे इसे शोकपत्रिका कहा करते थे, इसे दिखाना व्यर्थ समझते थे। मेरी अपनी धारणा उनसे भिन्न है। मैं इसमें कुछ तत्व पाता हूँ। बहुत सी बातें आश्चर्यजनक रूप से मिल जाती हैं, बशर्ते जन्म का समय ठीक हो। जन्म-पत्रिका बनाने वाला विद्वान हो और फल कहने वाला उससे भी अधिक विद्वान हो। इतने पर भी सभी बातें मिलेंगी ही, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस शास्त्र में शोध का कार्य सदियों से बन्द हो गया, और आज यह शास्त्र अपूर्ण है। शास्त्रों में निरन्तर शोध की आपश्यकता है, तभी वह ज्ञान पूर्णता की ओर अग्रसर होगा। अतएव इसके आधार पर विवाह-शादियाँ करना, जीवन के अन्य कार्यों को चलाना और इस पर निर्भर करना युक्तिसंगत नहीं है। कुछ लोग आज भी इस पर पूर्ण आस्था रखते हैं और कुछ लोग बिल्कुल नहीं। आधुनिक युग में अनेक ऐसे कार्य संभव हो गये, जिसके बारे में पहले मात्र कल्पना ही की जा सकती थी। कौन जानता है कि भविष्य के गर्भ में क्या है और यह शास्त्र कहाँ तक उन्नति कर सकेगा। कई पाश्चात्य देशों में भी ज्योतिष शास्त्र के विषय में बड़ी दिलचस्पी है और बहुत से ठग इससे अपनी जीविका चला रहे हैं। भारत में भी ऐसी ही हालत है। हर आदमी अपना भविष्य जानना चाहता है। आज समाचार-पत्रों में राशिफल प्रकाशित होता है, यद्यपि प्रत्येक राशि में करोड़ों व्यक्ति होंगे, उनका एक सा फल कैसे हो सकता है। परन्तु बड़े-बड़े पढ़े-लिखे और आधुनिक विचार के लोगों में भी जब अन्धविश्वास देखता हूँ, तो आश्चर्य होता है। मुझे इन राशि फलों में न तो कोई विश्वास है और न कोई श्रद्धा।

पाँच वर्ष तक की उम्र की बातें मुझे बहुत कम याद हैं। चेचक न निकलने के लिए

पाछ दिया जाता था, और वह घटना मुझे अब भी याद है। उस आयु की एक और भी घटना याद है। मैं एक कमरे की देहरी पर बैठकर खाने के लिए नौकर से सत्तू मांग रहा था। ऊपर से ईंटे का एक टुकड़ा आकर गिरा, जिससे मेरे माथे में घाव हो गया। इसकी निशानी अब तक माथे पर बनी हुई है, इसलिए यदि कुछ वारदात हो जाये या मैं कहीं भाग जाऊँ तो पहचान में आ सकता हूँ। जब १९०१ ई० में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई थी और उसका शोक शहर में मनाया गया था, तो महारानी विक्टोरिया का चित्र शहर की सबसे बड़ी सड़क पर टांगा गया था। वह घटना व वह चित्र भी मुझे याद आता है। इसके अलावा और कोई बात याद नहीं है।

मेरी शिक्षा

मेरे पिता की इच्छा थी कि मुझे अंग्रेजी पढ़ाई जाये। उस समय कोई भी मारवाड़ी किसी हाई स्कूल में नहीं पढ़ता था। बच्चे गुरु-पाठशालाओं में पढ़ने के लिए भेजे जाते। वहाँ वे पहाड़ा, व्यापारिक हिसाब, थोड़ी हिन्दी, मुड़िया अक्षर : जिसमें अब भी वही-खाते लिखे जाते हैं ; इतनी ही शिक्षा पर्याप्त थी। मुड़िया अक्षर व्यापारी समाज के लिए शार्ट हैण्ड का काम करता था और अब भी वही बात है। इसमें कोई मात्रा का व्यवहार नहीं किया जाता। हिन्दी के अक्षर भी बहुत घटा दिये गये हैं। कवर्ग में, क, ख और ग ही है। घ का काम ग से ही ले लिया जाता है। चवर्ग में च, छ और ज तक ही है। झ का काम ज से ही हो जाता है। टवर्ग में ट, ठ और ड ही रहता है। ढ का काम ड से ही ले-लेते हैं, ण नहीं रहता। तवर्ग में त, थ, द और न रहता है। ध का काम द से ही लेते हैं। पवर्ग में प, फ, व, भ और म सब अक्षर रहते है। यवर्ग में केवल र, ल और व रहता है। शवर्ग में केवल स और ह रहता है। व्यंजनों में उपर्युक्त अक्षर होते हैं और स्वरों में अ, इ और उ ही होते हैं। इस तरह स्वर और व्यंजन मिलाकर कुल २० अक्षर ही होते हैं, जबकि हिन्दी भाषा में स्वर और व्यंजन मिलाकर ४६ अक्षर होते हैं। अब तो हिन्दी में पत्र व वहियाँ लिखी जाने लगी हैं। किन्तु पहले जमाने में सारी व्यापारिक चिट्ठियां व वही-खाते इन्हीं अक्षरों में लिखे जाते थे और लाखों-करोड़ों का कारबार इन्हीं अक्षरों में हो जाया करता था। उस समय एक मुनीम जितना काम कर सकता था, उसकी जगह अब चार मुनीमों की जरूरत हो जाती है। उस लिपि में असुविधा यही थी कि अंदाज से थोड़ी सामान्य बुद्धि लगाकर पढ़ना होता था, जो कई बार बड़ी हास्यास्पद स्थिति पैदा कर देती थी। उस लिपि में एक सुविधा यह जरूर थी कि इन्कम-टैक्स वाले बेचारे इन अक्षरों को पढ़ नहीं सकते थे, व्यापारी ने जो पढ़ दिया, मान लेते थे। परन्तु अब तो वे भी इन अक्षरों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, अतएव यह सुविधा अब नहीं मिलती। अदालत में भी हाकिम, मुहर्रिर या और कोई इन अक्षरों को नहीं जानते थे, इसलिए व्यापारी जो कह दे, वह सत्य मानना पड़ता था। व्यापारी की वही पर उस समय अदालतें पूरा विश्वास रखती थीं। इन्कमटैक्स वालों के यहाँ तो चाहे उल्टा-सीधा भी लोग पढ़ दिया करते थे, लेकिन अदालत में ऐसा नहीं करते थे। अब तो व्यापारियों पर पहले जमाने में जो विश्वास था कि व्यापारी वही में झूठ लिखना पाप समझता है और ऐसा करने से नरक में जाना मानता है, वह विश्वास उठ गया। अब जब कोई स्वर्ग या

नरक में विश्वास ही नहीं करता, धर्म और मर्यादा को कूड़ाघर में फेंक दिया गया, तो इन बही-खातों पर से भी विश्वास उठ गया। तीन-चार वर्ष में बच्चे गुरु-पाठशालाओं में शिक्षा पाकर दस-ग्यारह वर्ष की उम्र में अपने पिता की दूकानों में काम करने लग जाते और पढ़ाई खतम हो जाती।

मेरे पिता ने मेरा नाम सन् १९०१ ई० में हाई स्कूल में लिखवा दिया। गुरु-पाठशाला में मैं एक-दो दिन ही गया। उस समय बच्चों को जो गुरु सबसे अधिक सजा दे, वह गुरु बहुत अच्छा समझा जाता था। हाई स्कूल वगैरह में भी सजा होती थी; लेकिन इन पाठशालाओं से कम। साधारण कहावत थी कि "गुरु की चोट विद्या की पोट।" बच्चों को दोनों हाथों को दोनों टांगों के बीच से लाना पड़ता था, फिर सामने झुककर टांग के पास ले जाकर दोनों कानों को हाथ से पकड़ना पड़ता था। आध घंटा, एक घंटा, दो घन्टे; जितनी देर गुरुजी चाहते थे, इस तरह रहना पड़ता था। इसे "मुर्गा बनना" भी कहा जाता था। कहीं हाथों से कान छूट गया तो ऊपर से पीठ पर बेंत पड़ती थी, लात पड़ जाती थी, या चपत लग जाती थी। जेलों में इसके सामने क्या सजा होगी। क्यों ऐसा किया जाता था, न उस वक्त मुझे समझ में आया और न आज। मुझे उस समय भी मन में चोट पहुंचती थी और आज भी उस स्थिति को सोचकर मन विचलित हो जाता है। इससे न तो उस समय कोई लाभ था और न आज है। व्यर्थ में बच्चों का जीवन दुखमय हो जाता था। ऐसे गुरुओं से मुझे अब भी सख्त घृणा है। कलकत्ते में भी मैं ऐसे गुरुओं को जानता हूँ जो ऐसी ही अमानुषिक सजा दिया करते थे और उनकी पाठशालाओं में लोग अपने बच्चों को भेजना उत्तम मानते थे। मैंने भी अपने परिवार के एक-दो बच्चों को, जो शरारती थे, कुछ दिन गुरु-पाठशाला में भेजा था। पाठशाला में गुरुजी की मार खाकर आते थे। लेकिन मुझे तो ऐसा ही लगा कि उन्होंने कुछ सीखा नहीं—उल्टे उन्हें पाठशाला से नफरत हो गयी। किसी तरह भी स्कूल जाने को तैयार नहीं हुए और उनकी पढ़ाई बन्द हो गयी। मैं भी एक-दो दिन ही गुरु-पाठशाला में गया था और जब वहां का हाल देखा तो फिर जाने से इनकार किया और हाई स्कूल में भर्ती हो गया। अपने बड़े लड़के कृष्णानन्द को मुजफ्फरपुर की एक गुरु-पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा तो गुरुजी ने उसके पैर में एक दिन सांकल बांध दी जो कैदियों को बांधी जाती है, दूसरे दिन से कृष्णानन्द ने पाठशाला में जाना बन्द कर दिया और मुझे हाई स्कूल में उसका नाम लिखाना पड़ा। अंग्रेजी में भी यह कहावत है कि लड़कों को पीटना छोड़ दो और बच्चों को बिगाड़ दो। अपने यहाँ संस्कृत में एक श्लोक है जिसका आशय है, लड़कों का दुलार करने में बहुत दोष है और पीटने में बहुत गुण। इसलिए शिष्य और पुत्र को पीटना चाहिए, दुलार नहीं करना चाहिए। मुझे यह पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बाइबिल में लिखा हुआ है कि बच्चों के साथ न तो हंसो और न खेलो। वह जमाना ही कुछ ऐसा बर्बर और पिछड़ा हुआ था।

मैं जिस स्कूल में १९०१ ई० में भर्ती किया गया, उसका नाम था "भूमिहार ब्राह्मण कालेजियट स्कूल" और अब भी इसी नाम से मुजफ्फरपुर में चल रहा है। इसकी स्थापना एक भूमिहार ब्राह्मण जमींदार ने की थी, जो पहले रेलवे में प्वाइण्ट्समैन थे और दस-पाँच रुपये माहवार पाते थे। संयोगवश काम करते हुए उनका पैर कट गया।

ये लंगड़े हो गये और रेल की नौकरी छोड़नी पड़ी। इनके साहव ने इन पर मेहरबानी करके रेल में छोटे-मोटे कन्ट्राक्ट देना आरम्भ किया। समय पाकर ये बहुत बड़े कन्ट्राक्टर हो गये और लाखों रुपये कमाये और बहुत बड़े जमींदार बन गये। उनका नाम था बाबू लंगट सिंह। इन्होंने इस स्कूल की स्थापना की थी और इसके बाद कालेज भी कर दिया था, जो अब लंगटसिंह कालेज के नाम से मुजफ्फरपुर में विख्यात है, यह अब सरकारी कालेज है। लाखों रुपये इस पर सरकार के खर्च हुए हैं। इसी कालेज में बी० ए० तक पढ़ा। जब मैं पढ़ता था, तब इसका नाम "ग्रीयर भूमिहार ब्राह्मण कालेज" था। ग्रीयर साहब मुजफ्फरपुर में कमिश्नर के पद पर थे। उस कालेज की हालत काफी खराब हो गयी थी और ऐसी आशंका हो गयी थी कि कालेज को बन्द करना पड़ेगा। उस समय एन्ट्रेन्स की परीक्षा का कोर्स आठ वर्ष का था। एन्ट्रेन्स परीक्षा का नाम १९१० ई० में बदल कर मैट्रिकुलेशन हो गया। मैंने १९१० ई० में ही मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की, जबकि पहली बार इस नाम से परीक्षा हुई। उस समय ग्रीयर साहब ने सरकारी मदद दी। कृतज्ञता-स्वरूप उनका नाम भी इस कालेज में जोड़ दिया गया। परन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद बदलकर पुनः लंगटसिंह कालेज हो गया।

सबसे नीचे की क्लास आठवीं होती थी और सबसे ऊंची फर्स्ट क्लास। ११ से ४ बजे तक पढ़ाई होती थी। बीच में कोई छुट्टी नहीं होती थी। एक-एक घंटे का एक-एक पीरियड होता था। १९०१ ई० से १९०६ ई० तक मैं आठवीं क्लास से तीसरी क्लास तक पहुंच गया। इस साल हमारे घर प्लेग हो जाने से कई मृत्युएँ हो गयीं। मेरा पढ़ना भी एक बार यहीं बन्द हो गया और मैं दूकान का काम देखने लगा। इन छः वर्षों में कोई विशेष बातें शिक्षा के संबंध में नहीं हुईं। वही साधारण तरीका चलता रहा। हर साल अगली क्लास में चला जाता। घर पर भी एक शिक्षक पढ़ाने आ जाते थे, क्योंकि उस जमाने में उर्दू जानना जरूरी था। इसलिए मुझे भी पढ़ाने के लिए एक मौलवी साहब रक्खे गये थे, जिन्होंने एक साल तक मुझे पढ़ाया। मुझे अब भी उर्दू भाषा के शब्द और लिपि का साधारण ज्ञान है, उर्दू का यह ज्ञान इलेक्शन के वक्त मुसलमानों में व्याख्यान देने में बड़े काम का साबित होता था।

हमारे पिता ने इस समय तक व्यापार में अच्छी उन्नति कर ली थी। उनके चार भाइयों ने भी अलग-अलग चीजों की दूकानें खोल ली थीं और अपना-अपना घर-परिवार चलाने लगे थे। परिवार में खुशहाली हो गयी थी। १९०७ ई० में मैंने दूकान का काम देखना आरम्भ किया था और एक साल बाद सन् १९०८ ई० में मेरी पढ़ाई फिर से शुरू हुई। १९०७ ई० का इतिहास आगे दिया गया है। १९०८ ई० में मेरी शिक्षा का दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ, जो बड़ा ही महत्वपूर्ण था।

प्रारंभिक व्यवसाय में प्रवेश और पुनः विद्यारंभ

जिस समय मुजफ्फरपुर में प्लेग का भीषण प्रकोप फैला था, उस समय मैं तीसरे दर्जे में पढ़ता था। प्लेग का प्रकोप शान्त हो गया था, पर परिवार में अनेक मृत्युओं के हो जाने से लोग दुखी थे। केवल मेरे पिताजी ने अपनी वेदान्त की शिक्षा के कारण और मानसिक दृढ़ता के कारण इन सब मृत्युओं को धैर्यपूर्वक झेला था।

परिवर्तित अवस्था में परिवार ने अपने भावी जीवन का श्रीगणेश किया। मेरा भी जीवन प्रारम्भ हुआ। उस समय के तीसरे दर्जे में पढ़ता था; उसकी परीक्षा मैं नहीं दे सका। पिताजी ने एक दूसरी दूकान खोल दी थी, जिसमें गंजियों की थोक बिक्री की जाती थी। वे गंजियां भी विलायत से ही आनी शुरू हुई थीं। धीरे-धीरे इनका व्यवहार वढ़ गया था। जहाँ तक मुझे स्मरण है, मुर्गाछाप की गंजी सबसे सस्ती और अच्छी थी, यह बहुत ज्यादा बिकती थी। मुझे इस दूसरी दूकान पर बैठा दिया गया। १२ वर्ष की आयु समाप्त कर १३ वें प्रवेश करते ही मुझे इसका इंचार्ज बना दिया गया। हमारी कपड़े की दूकान बगल में ही थी, जो पिताजी चलाते थे। आते-जाते इस गंजी की दूकान को भी देख लेते; परन्तु सारा काम मेरे जिम्मे था और मैं इसे अच्छी तरह चला रहा था।

गणगौर पूजते हुए ही हमारी बहन का स्वर्गवास हो गया था। उसके बाद हमारे परिवार में कन्याओं का गणगौर पूजना बन्द हो गया, जो अब तक भी बन्द ही चला आ रहा है। लड़कियाँ गणगौर की पूजा चैत्र मास के १५ दिनों तक करके चैत्र शुक्ल के आरम्भ होते ही उसकी पूजा समाप्त करती हैं। हमारे परिवार में केवल अन्तिम दिन ही गणगौर की पूजा होती है। समस्त राजस्थान में इस पूजा का बहुत महत्व है। कन्याएँ अच्छे वर की कामना करती हुई भगवान से प्रार्थना करती हैं कि उनके भावी जीवन का साथी ठीक मिले।

कुछ दिनों के बाद मेरे पिता ने मुझे अंग्रेजी का साधारण ज्ञान करा देने का निश्चय किया। जिससे मैं अंग्रेजों के साथ में साधारण बातचीत कर सकूँ और उनकी बातें समझ सकूँ। व्यापार की चिट्ठी-पत्री अंग्रेजी में लिख-पढ़ सकूँ। तार वगैरह दे सकूँ। एक अध्यापक इस कार्य के लिए नियुक्त किये गये, जिन्हें दो घंटे पढ़ाने के लिए दस रुपये माहवारी तय किया गया; जो अन्त तक यही रहा। जब कि बाद में वे आठ-आठ घण्टे हमें पढ़ाते थे। ये रुपये भी नकद के रूप में वे बहुत कम ही लेते थे। दूकान से कुछ कपड़े ले जाते, साल में हिसाब करके जो रुपये निकलते, उन्हें नकद दे दिये जाते।

पढ़ाई आरम्भ करते ही उन्हें ऐसा लगा कि मेरी शिक्षा का असमय ही अन्त कर दिया गया है। मेरी बुद्धि वगैरह देखकर उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि यदि मेरी शिक्षा जारी रखी जाये, तो बहुत कुछ उन्नति कर सकूंगा। मेरे साथ परिवार के एक-दो और लड़कों ने भी पढ़ना आरम्भ कर दिया था। वे आगे नहीं पढ़ पाये; वहीं रह गये। पंडितजी कुछ देर अंग्रेजी तो पढ़ाते ही; परन्तु साथ ही मुझे प्रेरणा देने लगे कि मेरा भविष्य शिक्षा द्वारा ही उज्ज्वल हो सकता है। संसार के महापुरुषों का उदाहरण देकर भी वे मुझे प्रोत्साहन देने लगे। कुछ दिनों के बाद संयोगवश उनकी नियुक्ति काशी के भारत धर्म महामण्डल के सुपरिण्टेण्डेण्ट के पद पर हुई; जहाँ वेतन यहाँ से कहीं अच्छा था। मुजफ्फरपुर में बी. बी. स्कूल, जिसमें मैं पढ़ता था, वे हिन्दी के अध्यापक थे। कुल तीस रुपये मासिक पाते थे। उससे उनके परिवारकी गाड़ी मुश्किल से चलती थी। अतएव उन्होंने कुछ दिनों की छुट्टी लेकर काशी जाकर स्थिति को देखना चाहा। मुझे भी कहा कि यदि मेरी इच्छा हो तो मैं भी उनके साथ चलूँ। मैं उनके साथ बनारस जाने के लिए प्रस्तुत हो गया और उनके साथ ही बनारस चला गया। जेठ का महीना था। भयंकर

गर्मी थी। मकान पत्थरों का था। गर्मी से तप जाता था। रात में मुश्किल से नींद आती थी। मेरी आँखें दुखनी आ गयीं और मैं मुजफ्फरपुर वापस आ गया। थोड़े दिनों के बाद ही पंडितजी को भी वहाँ का रहना अनुकूल नहीं हुआ और वे अपने पुराने पद पर बी. बी. स्कूल में वापस लौट आये। भारत धर्म महामण्डल के स्थापनकर्ता स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज थे। सनातन धर्म का प्रचार इनका लक्ष्य था। कुछ दिनों के बाद इस संस्था का अस्तित्व लुप्त हो गया।

मेरी पढ़ाई का क्रम आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे मेरी आगे पढ़ने की इच्छा प्रबल होती गयी। पंडित जी के घर में उनकी धर्मपत्नी अस्वस्थ होकर मुजफ्फरपुर आयीं और वे मेरे घर के समीप ही रहने लगे। तब मेरा आना-जाना अधिक हो गया। वर्ष के शेष होते-होते पढ़ने के लिए मेरे मन में तीव्र उत्कंठा उत्पन्न हो गयी और यह निश्चय हुआ कि आगामी वर्ष के प्रारम्भ में मेरा नाम बी. बी. कालेजियट स्कूल में लिखा दिया जाये, जिसमें तीसरे दर्जे तक पढ़कर मैंने छोड़ दिया था। उसके दूसरे दर्जे में मेरा नाम लिखा दिया जाये। समस्या थी पिताजी को राजी करने की और पंडितजी ने हर तरह से समझा बुझाकर उन्हें राजी कर दिया।

तीर्थयात्रा एवं कलकत्ता

यह वर्ष बहुत ही विषादपूर्ण होने के कारण १९०८ ई० के जनवरी महीने में हमारे पिता, माँ और मैं तीनों व्यक्ति तीर्थयात्रा पर निकले। पहले हम लोग वैद्यनाथ धाम पहुँचे। वहाँ बाबा वैद्यनाथ का दर्शन किया। धर्मशाला में वापस पहुँचे। भोजन बना। जो खिचड़ी उस दिन बनी और जैसी स्वादिष्ट लगी, वह आज तक भी स्मरण आती है। वहाँ से चलकर हम लोग कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ता को देखकर मेरी आँखें चकाचौंध हो गयीं। जिन्दगी में पहले-पहल इतना बड़ा शहर, इतने ऊँचे-ऊँचे मकान, ट्राम गाड़ी आदि देखकर मालूम हुआ जैसे इन्द्रलोक में पहुँच गये हों। हमारे आढ़तिया सागरमल शिवनारायण की गद्दी नारायण प्रसाद बाबूलेन में थी, वहीं हम लोग पहुँचे। वहीं सबसे ऊँचे तल्ले में उनकी एक निजी कोठरी थी। उसी में टिक गये। गंगासागर जाने के लिए जहाज की टिकट खरीदी गयी। पीने का पानी साथ में ले जाने का इन्तजाम किया गया ; क्योंकि रास्ते में या गंगासागर में मीठे पानी का कोई इन्तजाम नहीं था। राजस्थान की मरुभूमि में एक-एक बूंद पानी का जितना महत्व था ; उससे भी अधिक महत्व यहाँ था। हम लोग करलू नामक जहाज से रवाना हुए। गंगासागर पहुँचे। उस समय यात्रियों की सुविधा के लिए सरकार का इन्तजाम बहुत ही कम होता था। वहाँ पर चार बाँस खरीद कर लाये गये। धोती, साड़ी, चद्दर ऊपर-नीचे, बगल में लगाकर तम्बू तैयार किया गया, जिसमें रात काटनी थी। सारी रात सामने आग जलती रही—बाघ आया, बाघ आया आदि रात भर हल्ला होता रहा, परन्तु कोई बाघ अपने पास तक नहीं आया। हाँ, इस शोरगुल में हम लोग रात भर सो नहीं सके। भोर में भगवान कपिलदेव के दर्शन किये। इसके पहले संगम में स्नान किया। दोपहर में फिर वापस आकर जहाज पर हम लोग बैठ गये और जगन्नाथपुरी की यात्रा प्रारम्भ हुई। उस समय गंगासागर से जहाज द्वारा जगन्नाथपुरी भी लोग चले जाते थे। रास्ते में हमारी

मां को बारम्बार उल्टियां हुईं। हमें या हमारे पिताजी को यह बीमारी नहीं हुई। जगन्नाथजी पहुँचे। बड़ी-बड़ी नौकाओं पर उतर कर किनारे आये। वहाँ हम लोग एक धर्मशाला में ठहरे। भगवान जगन्नाथजी के दर्शन किये। उस वक्त भी वैसी ही अवस्था थी, जैसी अब है। एक-दो दिन रहकर रेल द्वारा हम लोग कलकत्ता पहुँच गये। तीर्थयात्रा समाप्त हुई। कलकत्ता में फिर उसी जगह ठहर गये। इसी गद्दी से कपड़े हमारे यहाँ मुजफ्फरपुर जाया करते थे। श्री जयदयालजी कसेरा और श्री ज्वालाप्रसाद जी भरतिया इन दोनों का सम्बन्ध इसी फर्म से था। ये लोग व्यापारियों के साथ जाकर कपड़े खरीदवा देते थे; वे कपड़े सागरमल शिवनारायण की गद्दी में आ जाते थे। यहाँ से मुजफ्फरपुर जाते थे। इन्हें अपनी आढ़त मिल जाती और कसेराजी और भरतियाजी को अपनी दलाली। रातमें रोज सब इकट्ठे होते। काम की वातें होतीं, गप्पें भी होतीं, चिलमें भी चलतीं। मैं छोटा था; पर अखबार पढ़ता था और बड़े अच्छे तरीके से। कसेराजी और भरतियाजी तथा वहाँ के अन्य लोगों ने मेरा नाम गप्पूदास निकाल दिया। जब मैं आता तो वे कहते—"गप्पू दास अखबार पढ़ो" मैं बड़ी शान से पढ़कर सुनाता और वे लोग खुश होकर मेरी प्रशंसा कर देते। मैं फूलकर कुप्पा हो जाता। बाबूजी ने दूकान के लिए माल खरीदा, दो-चार दिन कलकत्ता में रहकर हमलोग वापस मुजफ्फरपुर चले गये। इस प्रकार तीर्थयात्रा समाप्त हुई।

तीर्थयात्रा में बाबूजी को तो कोई आस्था थी नहीं; परन्तु हमलोगों के लिए वे स्वयं गये। उसके बाद फिर किसी तीर्थयात्रा में वे नहीं गये; न कभी रामेश्वरजी गये, न द्वारिकाजी और न बद्रीनाथजी। तीर्थयात्राओं को वे व्यर्थ ही समझते थे।

मेरा विवाह

तीर्थयात्रा के दो-तीन महीनों बाद मेरा विवाह मार्च १९०८ ई० में होना तय हुआ। उसकी तैयारियां आरम्भ हुईं। एक मकान जल्दी में बनाया गया, क्योंकि जिस मकान में हम लोग रहते थे; उसका आंगन बहुत छोटा था। विवाह बड़ी धूमधाम से होने वाला था। बड़े ठाट-बाट से महफिल होनेवाली थी। शहर के सेठ जी के इकलौते बड़े बेटे की शादी थी। सारे शहर में बड़ी शोहरत थी।

स्कूल में मेरा नाम लिखाने का निश्चय किया गया, पर मैं जो कुछ जानता था, वह सब भूल गया था। पंडितजीने स्कूल के हेडमास्टर साहब से बातें कीं। वे एक बड़े सुयोग्य, प्रतिभावान, एम. ए. पास बंगाली सज्जन थे। पंडितजी ने उन्हें स्पष्ट कहा कि इसने उसी स्कूल से थर्डक्लास में पढ़कर छोड़ा है। अब तक पढ़ता रहता, तो पहले दर्जे में पहुँच गया होता। अब एक साल छोड़कर बैठे रह जाने से सब कुछ भूल गया है। यह इम्तहान में उत्तीर्ण होकर भर्ती नहीं हो सकेगा, परंतु वर्ष के शेष होते-होते वार्षिक परीक्षा में स्वयं उत्तीर्ण हो जायेगा, क्योंकि मुझे पढ़ाने का भार वे स्वयं ग्रहण कर चुके हैं।

हेडमास्टर साहब राजी हो गये और कहा कि आप ही स्वयं दो-चार प्रश्न पूछकर इसे भर्ती करा दें। मैं पुनः स्कूल में भर्ती हो गया। जानता कुछ भी नहीं था। कान में सोने का बाला पहनकर मैं स्कूल पहुँचा था। जब लड़के हंसने लगे तब उसे निकाल दिया।

करता तो निन्दा होती। कंजूस है, क्या रखा है, दरिद्र है ; मुजरा नहीं हुआ, गाना नहीं हुआ, तो क्या हुआ ?

वेश्या नृत्य

विवाह के समय वेश्या नृत्य होना अनिवार्य था। उस जमाने में महफिल सजाने के लिए सारे शहर से झाड़-फानूस, गलीचा आदि मंगनी मांग कर लाया गया था। उस समय आज की तरह डेकोरेटर हर जगह नहीं मिलते थे। घर और गाँव के सभी नौजवानों ने हफ्तों मेहनत करके महफिल सजाई थी। उन लोगों की इच्छा थी कि वेश्या का नृत्य कराया जाये। किन्तु इसी समय हमारे गुरु जी, जिनका ऊपर जिक्र आया है और जिनका हाथ मेरे जीवन-निर्माण में बहुत वड़ा था, इसके विरोध में खड़े हो गये और तय हुआ कि वेश्या नृत्य न कराकर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र का व्याख्यान कराया जाये। उस जमाने में पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र और पंडित दीनदयालजी शर्मा व्याख्यान-वाचस्पति, सनातनी जगत में श्रेष्ठ व्याख्यानदाताओं में समझे जाते थे, सारे भारतवर्ष में ये दोनों प्रख्यात थे। मिश्रजी ने वहुत से धार्मिक ग्रंथ लिखे थे। जव उनका व्याख्यान होने लगा, सारा शहर उसे सुनने के लिए उमड़ पड़ा। मिश्रजी ने अत्यन्त रोचक और सुन्दर व्याख्यान दिया। जनता सुनकर मंत्रमुग्ध हो गई। दूसरे दिन प्रात:काल वे विदा होकर चले गये। हमारे गुरुजी महाराज भी अपने निवासस्थान मंदिर में चले गये। नौजवानों ने षड्यन्त्र रचा। विना वेश्या-नृत्य के विवाह कैसा ? इतनी बड़ी महफिल क्या एक पंडित के लिए सजाई गई थी ? वाईजी का मुजरा तो होना ही चाहिए। शाम को बाईजी का मुजरा हो गया। हम भी वहाँ वैठा लिये गये। वाह-वाह की ध्वनि और रुपयों की वर्षा रातभर होती रही। वाईजी नाचते-नाचते किसी के सामने बैठ जायें तो उन्हें रुपये देने ही पड़ते थे। बाईजी का नाचंना और गाना भी देख लिया। मुजरा देखने का हमारा यही प्रथम और अन्तिम अवसर था।

दूसरे दिन जव हमारे गुरुजी महराज आये और यह बात उन्होंने सुनी तो वोले कि यहाँ तो सारी लुटिया ही डूव गई। वड़े नाराज हुए और वापस मंदिर चले गये। कहा कि ये लोग तो राक्षस हैं। जिस घर में वेश्या का नृत्य हुआ हो, वह उनके रहने लायक नहीं रहा। नौजवान भीतर ही भीतर हँस रहे थे। काम जो उन्हें करना था, वह हो ही गया था।

पहले के जमाने में व्याह पर थोड़ी मौज थी, वह सव समाज ने धीरे-धीरे छीन ली। अव तो सिनेमा को ही धन्यवाद दिया जा सकता है जिसमें फिर से इस मौज को और भी अच्छे तरीके से वड़े गर्व के साथ विना किसी शर्म के देखा जा सकता है। वेटा, वेटी, भाई-वहन सव वहाँ वर-वधू का प्रेमालाप देख सकते हैं। गाना सुन सकते हैं, नाचना देख सकते हैं। किसी को कोई एतराज नहीं।

विवाह का काम समाप्त हुआ, कन्या पक्ष वाले घर लौट गये। सुना कि इस सारे तमाशे में हमारी ससुरालवालों के दो-ढाई हजार ही खर्च हुए और हमारे यहाँ आठ-दस हजार रुपये खर्च हुए। अव तो दो हजार में कुत्ते और बिल्ली का भी व्याह नहीं हो सकता। क्या जमाना था वह और अव क्या जमाना आ गया है।

स्कूली शिक्षा का द्वितीय चरण

मैं पिछले अध्यायों में लिख चुका हूँ कि अपनी पढ़ाई छोड़कर मैं दूकान का काम देखने लगा था। मुझे अंग्रेजी का कुछ ज्ञान कराने के लिए एक अध्यापक रख दिये गये थे, जिनकी प्रेरणा से मैंने पुनः पढ़ाई आरम्भ की। जिस स्कूल में मैं पहले पढ़ता था, मेरा नाम उसी स्कूल के आज के अनुसार आठवें क्लास में लिखवा दिया गया। अब मेरी पढ़ाई का द्वितीय चरण प्रारम्भ हुआ, जिसे मैं अपने जीवन के लिए बड़े महत्व का मानता हूँ। अतएव मैं इस सम्बन्ध में कुछ विस्तृत विवरण दे देना उचित समझता हूँ। मेरे जीवन का यह स्वर्णिम अंश है और इसका श्रेय मेरे नये अध्यापक को है, जिन्हें मैं गुरु मानता हूँ। वे केवल मेरी शिक्षा-दीक्षा के गुरु ही नहीं थे, परन्तु मेरी जीवनधारा के नियामक भी थे। ऐसे गुरु बड़े सौभाग्य से ही प्राप्त होते हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर ने उन्हें मेरे लिए ही इस संसार में भेजा था। उनकी भी ऐसी ही धारणा थी, यह बात उन्होंने अपनी डायरी में स्थान-स्थान पर लिखी है। १९२२ ई० में जब वे अपने भौतिक शरीर को छोड़ रहे थे, तब भी उन्होंने मुझे यही कहा कि तुम्हें शिक्षा देने के लिए ही मैं आया था, वह पूरी हो गयी और अब मैं जाता हूँ।

मेरे गुरु का नाम था पंडित योगानन्द कुमर। वे एक बड़े ही संभ्रान्त मैथिल ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। मिथिला के प्रसिद्ध महाराजा शिवसिंह, जिनके दरबार में महाकवि विद्यापति रहते थे, उन्हीं के ये वंशज थे। इसीलिए इनके नाम के आगे कुमर शब्द लिखा जाता है, जिसे ये कुमर के नाम से पुकारने लगे। इनके पिता पं० गोपीनाथ कुमर बड़े सात्विक, सच्चरित्र और विद्वान ब्राह्मण थे, वे मुजफ्फरपुर में धर्म समाज संस्कृत पाठशाला में प्रधानाध्यापक थे। यह पाठशाला अब धर्म समाज संस्कृत कालेज हो गयी है और सरकार द्वारा संचालित होती है। इनके पितामह पं० चन्द्रमणि कुमर मुजफ्फरपुर के समीप स्थित बेतियाराज के दीवान थे। इनसे छोटे दो भाई और थे, उनमें से एक रायबहादुर पं० जयानन्द कुमर थे, जो पोस्ट आफिस में १५ रुपये मासिक क्लर्क से तरक्की करके बिहार और उड़ीसा प्रान्त के डिप्टी पोस्ट मास्टर जेनरल हो गए थे। इनके तीसरे भाई पं० शारदानन्द कुमर थे, जो एक स्कूल के साधारण अध्यापक के पद से तरक्की करके एक राज्य के मैनेजर हो गये थे, साथ ही दरभंगा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के वाइस चेयरमैन और बिहार लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य भी हो गये थे।

उपर्युक्त बातों से यह ज्ञात होता है कि मेरे गुरु पण्डित योगानंद कुमर मिथिला के एक प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए थे और उस वंश की गरिमा से भी ओतप्रोत थे।

यद्यपि ये तीनों भाई केवल एन्ट्रेन्स परीक्षा ही उत्तीर्ण थे, जो आजकल मैट्रिकुलेशन परीक्षा के नाम से जानी जाती है; तथापि इनकी अंग्रेजी, हिन्दी एवं संस्कृत इत्यादि की योग्यता एवं लेखन की शक्ति बहुत अच्छी थी। पठन-पाठन और अध्ययन भी इन लोगों का पर्याप्त था। अपने इन्हीं गुणों के कारण ये लोग इतने अच्छे स्थानों में पहुँचे थे।

पंडितजी जब हमें पढ़ाने आये तो उस समय उनकी उम्र केवल ३० वर्ष की ही थी और उस जमाने में कोई शिक्षणकला की डिग्रियां भी नहीं होती थीं। तो भी पंडितजी के पढ़ाने का तरीका और उनका मनोविज्ञान ऊंचे दर्जे का था। उनकी योग्यता असाधारण थी। जैसा उनका व्यक्तित्व था, उतना ही आत्म-सम्मान। यद्यपि पंडितजी

स्कूल में हिन्दी के ही अध्यापक थे और केवल तीस रुपये मासिक ही मिलता था, तथापि अपने आत्म सम्मान का इन्हें बड़ा खयाल रहता था। वे व्यावहारिकता से पूर्णतया भिज्ञ थे और उसको महत्व भी देते थे। जिस मनोविज्ञान का उन्होंने हमारे पढ़ाने में प्रदर्शन किया, उसे स्मरण कर आज भी हमें आश्चर्य हो रहा है। वे केवल अध्यापक ही नहीं थे, वास्तविक अर्थ में हमारे गुरु थे। उन्होंने हमारे जीवन को अच्छे सांचे में ढालने की पूरी चेष्टा की और बहुत अंशों में वे सफल भी हुए। वे धार्मिक, ईश्वरभक्त, सच्चरित्र और उदार हृदय के आदर्श ब्राह्मण थे। हिन्दी भाषा के प्रति उनका अगाध प्रेम था। जब तक वे मुजफ्फरपुर में रहे, तब तक 'तिरहुत समाचार' नामक हिन्दी साप्ताहिक-पत्र के सम्पादक रहे और १९११ई० में जब ये दरभंगा चले गये तब 'मिथिला मिहिर' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक बने और उस पद पर आजीवन आसीन रहे। इस पत्र को महाराज दरभंगा ने प्रकाशित करवाया था। यह पत्र पहले आधा हिन्दी और आधा मैथिली भाषा में प्रकाशित होता था। इसका प्रथम अंक १ अप्रैल, १९११ ई० को निकला था। अब भी यह पत्र पटना से इण्डियन नेशन के कार्यालय से प्रकाशित होता है, परन्तु अब यह सम्पूर्ण मैथिली भाषा में प्रकाशित हो रहा है।

पंडितजी अपनी डायरी लिखा करते थे। १९१० तक उन्होंने अपनी डायरी अंग्रेजी में लिखी, किन्तु १९११ ई० में उन्होंने इसे हिन्दी में लिखना शुरू किया और १ जनवरी, १९११ ई० की डायरी में उन्होंने लिखा है :—"मैंने हिन्दी भाषा तथा नागरी अक्षरों को महत्व देने के लिए अंग्रेजी छोड़ हिन्दी में डायरी लिखना आरम्भ किया।"

गुरुजी के पिता पं० गोपीनाथ कुमर भी हिन्दी के प्रेमी थे और उन्होंने भी भगवान श्री रामचन्द्र के चरित्र पर 'रामचरित मानस' नामक ग्रन्थ व्रजभाषा में लिखकर प्रकाशित किया था। लल्लूलालजी ने कृष्ण चरित्र प्रेमसागर नामक ग्रन्थ में जैसी व्रजभाषा लिखी थी, उसी शैली पर यह ग्रन्थ लिखा गया था। पंडितजी शुद्ध हिन्दी बोलते थे और मुझे भी हिन्दी भाषा बोलने का अभ्यास उन्होंने बातों में ही करवाया था। जहां कहीं गलती होती, वे सुधार देते थे। बिहार में उस जमाने में हिन्दी के जो विद्वान थे, वे भी जब हिन्दी बोलते तो उसका रूप कुछ विकृत हो जाता था और वहां की स्थानीय बोली का उसमें समावेश हो जाता था। सबसे अधिक जोर पंडितजी का ईश्वर-भक्ति, धार्मिकता और सच्चरित्रता पर रहता था। सबसे उच्च स्थान वे इसी को देते थे। विद्या को भी इसके नीचे ही मान देते थे और धन को इन सबसे नीचे। तुलसीकृत रामायण और श्रीमद्भगवद्गीता को वे अपने जीवन का आधार समझते थे। वे सदैव इस बात पर जोर देते थे कि ये दोनों ग्रन्थ जीवनयात्रा को सुचारु रूप से चलाने के लिए नितान्त आवश्यक हैं। अतएव मुझे भी इन दोनों ग्रन्थों को बारम्बार पढ़ने के लिए कहा करते थे। प्राचीन हिन्दू धर्म की मर्यादा एवं समाज के संगठन को समझने के लिए मनुस्मृति को भी बड़ा महत्व देते थे। सनातनी विचारधारा के होने पर भी समाज-सुधार के वे पक्षपाती थे, परन्तु अत्यन्त उग्र सुधारों के नहीं। दरभंगा चले जाने पर भी उनके साथ हमारा संबंध बड़ा घनिष्ठ था और उनके साथ हमारा आना-जाना, पत्र-व्यवहार, पथ-प्रदर्शन उपदेश आजीवन चलता रहा। उन्हें प्रमेह का रोग हो गया था और अन्त में यक्ष्मा के रोग ने सन् १९२२ में उनकी इहलीला समाप्त कर दी।

वड़े-वड़े महापुरुषों की जीवनगाथा को सुना-सुना कर पंडितजी ने आगे शिक्षा प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा मुझ में पैदा कर दी थी और मेरे हृदय में उन्होंने उच्च अभिलाषा भी उत्पन्न कर दी थी। वे कहा करते थे कि मैं अपने को अपने अन्य साथियों के समकक्ष न समझूं। मेरा भविष्य उनलोगों से कहीं अधिक उज्ज्वल है और समय पाकर मैं मिनिस्टर इत्यादि भी हो सकता हूँ। जब किसी बात के लिए उत्कट अभिलाषा हो जाती है तो मनुष्य उसे प्राप्त करने के लिए स्वत: चेष्टा करता है—यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है।

जब मैं स्कूल में दुबारा दाखिल हुआ तो मैंने वड़े मनोयोग से पढ़ना आरम्भ किया। दूकान का काम देखना तो छूट ही गया था। सारा समय पढ़ने में ही व्यतीत होने लगा। मैं नित्य चार वजे सुबह उठता। नित्यकर्म एवं स्नानादि से निवृत्त होकर एवं जलपान करके ५-३० वजे तक मैं पंडितजी के निवास-स्थान पर पहुंच जाता। यह स्थान दो मील की दूरी पर था। वहाँ एक वहुत वड़ा मन्दिर था और उसके चारों तरफ रहने के लिए कोठरियाँ वनी हुई थीं। एक मन्दिर राधाकृष्ण का और दूसरा शिव का था। वहुत वड़ा आंगन था जो पत्थरों से जड़ा हुआ था। मुझे बैठने के लिए कम्वल, चटाई, मृगछाला वगैरह प्राप्त हो जाती थी। कुर्सी-टेवुल साधारणतया पढ़ने के लिए नहीं मिलती थी। श्रीराधाकृष्णजी के मन्दिर के समक्ष चवूतरे पर मैं अपनी किताव रखता था और वहीं मेरी पढ़ाई भगवान की छत्रछाया में होती थी। वातावरण वड़ा शुद्ध, पवित्र और धर्ममय था, जिसका हृदय पर वहुत प्रभाव पड़ता था। मैं १० वजे तक वहाँ पढ़ता था, उसके पश्चात् घर आकर भोजन करके स्कूल चला जाता था। ११ बजे से स्कूल प्रारम्भ होता था। स्कूल हमारे घर के बहुत समीप ही था। स्कूल ४ बजे तक होता था। वहाँ से आकर घर पर जलपान करता और ५ वजे तक पुन: पंडितजी के निवास-स्थान पर पहुंच जाता। उस समय चाय, काफी आदि पीने का रिवाज नहीं था। चाय वाले प्रचार करने के लिए मुफ्त में चाय पिलाया करते थे। वहाँ से रात्रि के ८ वजे मैं घर वापस पहुंच जाता। बीच में मुझे एक घण्टा व्यायाम आदि करने और खेलने-कूदने के लिए मिल जाता था। घर आकर भोजन करके ९ बजे तक सो जाता था। जीवन का यही क्रम था। अधिकांश समय पंडितजी हमारे साथ रहते और पढ़ाया करते थे। साथ ही सच्चरित्रता, धार्मिकता आदि से संबंधित उपदेश भी प्राय: नित्य ही दिया करते थे। रात्रि के ८ वजे जब मैं पढ़ाई समाप्त करके घर वापस आने के लिए तैयार होता तो पंडितजी का नियम था कि एक या दो गीता के श्लोकों को मुझे पढ़ाते और उनका अर्थ समझा देते। साथ ही एक कविता हिन्दी या संस्कृत की दे देते, जिसे मुझे सोने के समय तक याद कर लेनी पड़ती थी और दूसरे दिन प्रात:काल उसे पंडितजी को सुना देनी पड़ती थी। ये कविताएँ प्राय: ईश्वर-भक्ति या नीति से संबंधित हुआ करती थीं। शृंगार पक्ष की कविता वे कभी नहीं देते थे और न कभी इस प्रकार की पुस्तक ही पढ़ने देते थे। उस समय चरित्रगठन संबंधी अंग्रेजी या हिन्दी भाषा में जो भी कितावें उपलब्ध थीं, उन्हें वे हमें पढ़ने के लिए दिया करते थे। इस तरह मुझे दो वर्ष के अन्दर हिन्दी और संस्कृत की अनेक कविताएं याद हो गयी थीं। शायद ही कोई हिन्दी कवि हो, जिसकी कविता मुझे उन्होंने मुखस्थ नहीं कराई हो। परन्तु सबसे अधिक कविताएं गोस्वामी

तुलसीदासजी की थीं। सोने के पश्चात् भी मन में पवित्रता बनी रहे और बुरे स्वप्न नहीं आवें, इसके लिए उनका आदेश था कि मैं हरिद्वार में कलकल बहती हुई गंगा का ध्यान और स्मरण करते हुए और गंगाजी जिस हिमालय पर्वत से निकली थीं, उस हिमालय पर्वत का ध्यान करते हुए सोऊँ। बुरे लड़कों की संगति न हो, इसकी भी वे पूरी चेष्टा रखते थे।

वे स्वयं अपने विषय में कहा करते थे कि उनके पिता भी सच्चरित्रता के इतने पक्षपाती थे कि रात्रि में सोते समय उनकी कमर में रस्सी बांधकर अपनी कमर से बांध दिया करते थे, ताकि कहीं रात्रि में चला न जाऊँ। यद्यपि यह बात सुनने में विचित्र लगती है, परन्तु वह जमाना ऐसा ही था। आज की तरह फिल्मी अखबार, कामोत्तेजक गाने, सिनेमा, थियेटर इत्यादि नहीं थे, और अगर कोई रहा भी हो तो उससे मेरा सम्पर्क होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था।

पंडितजी नित्य अपनी डायरी लिखा करते थे। १९१० से उनकी डायरी उपलब्ध है। प्रत्येक डायरी में वे कुछ प्रेरणात्मक आप्तवाक्य लिखा करते थे—जिसे वे समय-समय पर देखा करते थे। उससे प्रकट होगा कि वे अपने जीवन को अधिक उपयोगी और सदाचारी बनाने की चेष्टा करते थे और हमें भी उन्हीं बातों का उपदेश निरन्तर दिया करते थे।

उनकी धारणा थी कि बिना ईश्वरभक्ति के और धार्मिक भावना के मनुष्य न तो शान्ति प्राप्त कर सकता है और न सांसारिक जीवन में ही ऊँचा उठ सकता है। दुर्भाग्य-वश अब जो शिक्षा दी जाती है, उसमें इन बातों का कोई स्थान नहीं रहा।

जब मैंने दुबारा स्कूल में पढ़ना आरम्भ कर दिया तब वे पढ़ाने के अलावा बराबर उपदेश देते रहते थे। मुझ में अगर कोई भी कमी उनको दिखाई देती, तो उसे दूर करने की चेष्टा करते और समझा-बुझाकर हमारे जीवन को सफल बनाने की कोशिश करते। एक दिन वे हमें शिव मन्दिर में ले गये और मुझ से तीन प्रतिज्ञाएँ करवायीं :—

(१) मैं मद्यपान नहीं करूंगा।
(२) मैं मत्स्य-मांस इत्यादि नहीं खाऊंगा।
(३) मैं परस्त्रीगामी नहीं होऊंगा।

प्रतिज्ञा लेने के समय उन्होंने मेरा एक हाथ शिवजी के मस्तक पर रखा और दूसरा अपने पैरों पर। अर्थात् उनका उद्देश्य था गुरु और ईश्वर के समक्ष मैं इन प्रतिज्ञाओं को करता हूँ। मैथिल ब्राह्मण निरामिष नहीं होते और मैं निरामिष था। और कोई दुर्गुण भी नहीं था। मांस आदि तो मारवाड़ी समाज में उस समय कोई खाता नहीं था। अतएव जब मैंने उनसे पूछा कि मत्स्य-मांस आदि न खाने की क्यों प्रतिज्ञा करवाते हैं, जबकि आप लोग (मैथिल ब्राह्मण) स्वयं इससे परहेज नहीं करते, तो उन्होंने उत्तर दिया कि उनलोगों के समाज में यह प्रथा पहले से चली आ रही है। और वह निर्दिष्ट सीमा के अन्दर ही रहती है। परन्तु जो मांस आदि नहीं खाते हैं, वे शुरू करेंगे तो कहाँ पहुंचेंगे इसकी कोई मर्यादा नहीं रहेगी। जैसा समय आ रहा है उसमें मारवाड़ी समाज इससे अछूता नहीं रहेगा। आज मारवाड़ी समाज की जो वर्त्तमान स्थिति हम देख रहे हैं, उसमें इन प्रतिज्ञाओं का महत्व हमें आज मालूम हो रहा है। उन प्रतिज्ञाओं का सुफल भी

मैं अनुभव कर रहा हूँ। आज तो समाज का सारा वातावरण ही कलुषित हो गया है जिसकी कोई कल्पना भी उस समय हमलोग नहीं करते थे।

इस उपदेश के वाद उनका प्रयत्न हुआ कि मैं वेशभूषा, रहन-सहन को भी साधारण बना लूँ। जिस तरह से हमलोग वाल कटवाते आये हैं, उस तरह वाल कटवाना ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड सप्तम ने शुरू किया था और वही रिवाज सर्वत्र फैल गया। इसे एडवर्ड फैशन उस समय कहा करते थे परन्तु वह उस समय शौकीनी में शामिल था। साधारण-तया लोग कैंची से सारा वाल वरावर-वरावर कटवाते थे। मारवाड़ियों में तो रिवाज था कि चोटी से माथे तक उस्तरे से बाल कटवाते थे। सिर पर दोनों तरफ एवं पीछे बाल रहते थे। इसे गली कढ़ाना कहते थे। पंडितजी ने मुझे सब वाल बराबर कटाने का आदेश दिया और मैं वैसा ही करने लगा। कुर्त्ता, टोपी एवं धोती सभी विलायती और वढ़िया पहनता था। कुर्त्ते और टोपी पर लखनऊ का कसीदा रहता था। धोबी कुर्त्ते पर चुन्नट देकर लाया करते थे। उन्होंने इन सबमें सादगी ला दी। उस समय पम्पशू जूता डाशन कम्पनी का सबसे अच्छा और चमकदार होता था, जिसे मैं पहना करता था। रोज प्रातः मक्खन देकर उस पर पालिश कर दिया करता था, उसे भी उन्होंने छुड़वा दिया। लड़कों में आदत थी कि छैल-छवीला वनकर घर के वाहर निकलते थे और मैं भी वैसे ही सजकर निकला करता था। वह भी बन्द हो गया। उनका यही उद्देश्य था कि जीवन में सादगी आये। बात छोटी थी, परन्तु मनुष्य के जीवन पर इसका बहुत प्रभाव पड़ता है। आज तो शौकीनी का कोई ठिकाना ही नहीं रहा, लड़के और लड़कियों की पोशाक तो देखते ही वनती है। जमाने में कितना ऐशो-इशरत आ गया है, इसको बताने की जरूरत नहीं।

जब मैं छोटा था, तो साधारण बात में भी क्रोधित हो जाता था। उसके लिए पंडितजी ने कहा कि मैं क्रोध के समय कुछ न बोलूँ। मैंने उनके आदेश का पालन किया और इससे बड़ा लाभ हुआ। वे हृदय को उदार रखने के लिए सदैव प्रेरणा देते थे और कहा करते थे कि हृदय की संकीर्णता से ईर्ष्या, द्वेष, घृणा इत्यादि बहुत से दुर्गुण आ जाते हैं। हृदय की उदारता से दया, क्षमा, मधुर भाषण, सद्व्यवहार एवं परोपकार की भावना इत्यादि सद्गुण उत्पन्न होते हैं। कोई भी दुर्गुण इनकी नजर में अगर आ जाता तो उसी समय हमें सचेत कर दिया करते थे। अपने माता-पिता, गुरु, भाई, बन्धु इत्यादि के साथ सद्वर्ताव करने की शिक्षा देते रहते थे। लौकिकता एवं व्यवहार-कुशलता पर भी बड़ा जोर देते थे। वे जब हमारे घर पर आते तो कुछ-न-कुछ बच्चों को देने के लिए लाते और मैं जब कभी उनके यहाँ दरभंगा जाता, तो कुछ-न-कुछ फल इत्यादि लेकर जाने के लिए कहा करते थे। आतिथ्य सत्कार पर बहुत जोर देते थे। उनके सामने हमलोग अदब के साथ बैठते-उठते, बातें करते। एक कविता वे बराबर कहा करते थे,

लौकिकता पंकज बनी दिनकर शीलागार,
दसो दिशा करि चन्द्रिका धवली-कृत संसार।

अर्थात्—लौकिकता यानी पारस्परिक व्यवहार तो एक कमल का वन है और शील सूर्य के समान है। जिस तरह से सूर्य के उदय होने से कमल खिल जाते हैं, और चारों तरफ

उसकी किरणें फैलकर संसार को आलोकित कर देती हैं, उसी तरह शील और लौकिकता मनुष्य के प्रभाव का विस्तार कर देती हैं और जीवन को उज्ज्वल बना देती हैं।

पंडितजी का प्रभाव मेरे ऊपर इतना अधिक हो गया कि मैं उनके सामने कभी झूठ नहीं बोलता था और वे जो आदेश देते उसे अक्षरशः पालन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता था। जब तक वे जीवित थे, तब तक जहाँ कहीं भी रहे, हमारे साथ उनका सम्पर्क बना रहा और जब भी भेंट होती अथवा पत्र-व्यवहार होता, वे सदा ईश्वर-भक्ति और सदाचार के ऊपर जोर दिया करते थे। उन्होंने अपनी ५ जनवरी, १९११ ई० की डायरी में लिखा है, "ईश्वर को शिक्षा देने में अधिक समय व्यतीत होता है। मैंने अपने जीवन का प्रमुख उद्देश्य ही इसको समझ रखा है।"

जब मैं स्कूल में पढ़ता था और पंडितजी से संबंध भी उतना गहरा नहीं था, तो एक लड़के की संगति से सिगरेट पीने की आदत पड़ गयी। इस आदत को प्रोत्साहन इससे भी मिला कि हमारे पिताजी की एक परचून की दूकान थी, जिसमें सभी प्रकार की सिगरेटें बिकती थीं और मुझे इन्हें प्राप्त करने में कोई असुविधा नहीं होती थी। जब भी सिगरेट पीने की इच्छा होती, दूकान से ले लिया करता था। यह आदत इतनी बढ़ी कि दिन भर में १०-१२ सिगरेट पीने लग गया था। एक दिन पिताजी ने हमारी कोट की पाकेट में एक सिगरेट देखी। उन्होंने मुझ से पूछा कि क्या मैं सिगरेट पीता हूँ? अगर मैं पीता हूँ तो उन्हें बता दूँ; ताकि अच्छी सिगरेट वे मुझे दे दिया करें, जिससे मेरा फेफड़ा खराब न हो। परन्तु मैंने सिगरेट पीना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने यह बात पंडितजी से कह दी। जब उन्होंने मुझ से पूछा तो मैंने स्वीकार कर लिया; क्योंकि मैं उनसे झूठ कभी नहीं बोलता था। उन्होंने मुझे कहा कि यह आदत बहुत हानिकर है। मुझे सिगरेट पीना छोड़ देना चाहिए। मैंने उसी दिन से सिगरेट पीना छोड़ दिया। उसके पश्चात् जब मुझ से सिगरेट के बिना नहीं रहा गया, तो मैंने एक दिन चुपके से पी ली; परन्तु मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई और उसके बाद मैंने फिर जीवन भर कभी सिगरेट नहीं पी। आदत ऐसी चीज है कि अब भी मुझे सिगरेट का धुआँ बुरा नहीं लगता। कभी-कभी सिगरेट पीने की अब भी इच्छा हो जाती है, परन्तु उस इच्छा को दबा देता हूँ।

इसी प्रकार एक लड़के ने मुझे पान के साथ जर्दा खाने के लिए भी प्रेरित किया। पहली बार जब मैंने जर्दा खाया तो मेरा सिर घूमने लगा। फिर मैंने उस लड़के के कहने पर भी इसे नहीं खाया।

इन्हीं सब कारणों से बुरे लड़कों की संगति से पंडितजी मुझे बचाना चाहते थे। मेरे प्रति उनका वात्सल्य प्रेम इतना अधिक बढ़ गया था कि उनके कंठ की आवाज से मेरे कंठ की आवाज मिल जाती थी। इससे कभी-कभी लोगों को भ्रम भी हो जाता था। उनकी लिखावट से मेरी लिखावट इतनी मिलती-जुलती थी कि मेरी और उनकी लिखावट में कोई फर्क ही नहीं मालूम होता था।

उन्होंने मुझे यज्ञोपवीत देने का निश्चय किया, परन्तु मेरा विवाह हो चुका था। अतएव पंडितों को इसमें आपत्ति थी। फिर भी अपने प्रभाव से उन्होंने पंडितों को राजी कर लिया। उसके लिए जो प्रायश्चित करना होता है, वह मुझ से सम्पन्न करवा कर मेरा यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने मुझे संध्या करना सिखाया

और उसका अर्थ और महत्व भी समझाया। श्रीसूक्त, पुरुष सूक्त और लक्ष्मी सूक्त कंठस्थ करवाये। दोनों समय मुझ से संध्या करवाना प्रारम्भ किया और उपर्युक्त सूक्तों का भी पाठ कराना आरम्भ कराया। यद्यपि थोड़े दिनों के पश्चात् दोनों वक्त ऐसा करना संभव नहीं हुआ, तथापि प्रातःकाल सारे जीवन सूक्तों सहित सन्ध्या करता रहा और अब भी करता हूँ और अन्त में गुरु के नाते पंडितजी को भी प्रणाम कर लेता हूँ।

मैंने ऊपर इतने विशद रूप से इन बातों का जिक्र किया है क्योंकि इस समय शिक्षा के क्षेत्र में ये बातें उपेक्षित हैं। परन्तु मेरी दृष्टि में यह शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, जिसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

पंडितजी की पढ़ाने की नवीन प्रणाली

पंडितजी ने जब मुझे पढ़ाना आरम्भ किया तो उनकी प्रणाली भी अद्भुत थी। सबसे पहले उन्होंने मुझसे कहा कि अब तक जो कुछ मैंने पढ़ा था, उसे भूल जाऊँ। इसके पश्चात् उन्होंने प्रत्येक विषय को प्रारम्भ से पढ़ाना आरम्भ किया। इसके पूर्व मैं ६ वर्ष जो स्कूल में पढ़ा था, वह प्राय: नगण्य था और जो कुछ मैंने सीखा था, उनकी दृष्टि में वह गलतियों से भरा हुआ था। अतएव प्रत्येक विषय को उन्होंने नये सिरे से पढ़ाना शुरू किया। भाषा में मुझे अंग्रेजी, हिन्दी एवं संस्कृत पढ़ना आवश्यक था। उन्होंने जब मुझे पढ़ाना शुरू किया तो स्कूल की पढ़ाई के साथ-साथ उनकी पद्धति से पढ़ना संभव नहीं था। अतएव उन्होंने अपने सहयोगी स्कूल के शिक्षकों से अनुरोध किया कि वे मुझ से क्लास में कोई प्रश्न न पूछें, क्योंकि मैं क्लास का कोर्स नहीं पढ़ सकूंगा। पंडितजी ने उन्हें आश्वासन दिया कि वार्षिक परीक्षा तक वे शुरू से पढ़ाकर भी मुझे वहाँ तक पहुंचा देंगे, जहाँ पर स्कूल में उस कक्षा की पढ़ाई समाप्त होगी। उनके सहयोगियों ने इसे स्वीकार कर लिया। क्लास में मुझ से वे कोई प्रश्न नहीं पूछते थे। इससे हमारे सहयोगी छात्रों में कुछ असंतोष भी रहता था।, परन्तु शिक्षकगण उस पर ध्यान नहीं देते थे। स्कूल के अतिरिक्त प्रातः और संध्या दोनों समय में मैं प्राय: ६-७ घण्टे घर पर पढ़ा करता था। इसमें अधिकांश समय हमारा पंडितजी के साथ व्यतीत होता था। सभी विषयों को उन्हें दो वर्ष के अन्दर इतना पढ़ा देना आवश्यक था कि मैं मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास कर सकूँ। साथ ही यह भी आवश्यक था कि मैं जिस क्लास में पढ़ता था, उस क्लास की वार्षिक परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो जाऊँ। शिक्षा के क्षेत्र में १९१०ई० से मैट्रिकुलेशन पद्धति चालू होने के संबंध में बड़ा आतंक था। उसके पहले की परीक्षा का सारा क्रम ही परिवर्तित हो गया था। अतएव पंडितजी का यह प्रयत्न असंभव-सा प्रतीत होता था। सभी अध्यापक जिज्ञासा से मेरी प्रगति की ओर देखा करते थे। पंडितजी ने विभिन्न विषयों को मुझे कैसे पढ़ाया, यहाँ मैं उसके संबंध में कुछ बता देना आवश्यक समझता हूँ।

(१) अंग्रेजी :—सबसे पहले उन्होंने मुझे ट्रान्सलेशन की एक पुस्तक दी, जिसका नाम था—प्रैक्टिकल इंगलिश, जो क्वीन्स कालेज, वाराणसी, के हेडमास्टर द्वारा लिखी हुई थी। यद्यपि यह पुस्तक उर्दू या फारसी के शब्दों से भरी हुई थी, तो भी पंडितजी उसे पसन्द करते थे और उर्दू के शब्दों को हिन्दी में बदल दिया करते थे। इस किताब में अंग्रेजी से हिन्दी और हिन्दी से अंग्रेजी अनुवाद करने के लिए एक्सरसाइजेज रहती थीं और

उसके पहले इस पुस्तक में आवश्यक व्याकरण एवं अंग्रेजी शब्दों के अर्थ दिये हुए रहते थे। मैं जो पाठ करता था उसे पंडितजी शुद्ध कर दिया करते थे। कहीं समझने में कोई कठिनाई होती थी तो उसे बता दिया करते थे। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी की कोई अन्य पुस्तक वे मुझे नहीं पढ़ाते थे। उनका सारा ध्यान इसी एक पुस्तक पर केन्द्रित था। जितना भी समय मुझे उपलब्ध था, इसी में लगाना पड़ता था। अंग्रेजी के प्रत्येक शब्द का शुद्ध उच्चारण हो, इसे वे अत्यन्त आवश्यक मानते थे। लिखावट सुन्दर हो—इसके लिए भी उन्होंने कोई प्रयत्न न छोड़ा। मैंने दो-तीन महीने में इस किताब के प्रथम भाग को समाप्त कर दिया। इससे मुझे अंग्रेजी व्याकरण और अंग्रेजी शब्दों से अच्छा परिचय प्राप्त हो गया। जबतक मैं पाठ अच्छी तरह से समझ नहीं लेता, तब तक वे आगे नहीं बढ़ते। उनका सिद्धान्त था कि जितना पढ़ा जाय, वह अच्छी तरह से समझ में आ जाय, तभी आगे का पाठ पढ़ना चाहिए। इसके पश्चात् उन्होंने अंग्रेजी की एक पुस्तक शुरू करवा दी। जब एक पुस्तक खतम हो जाती, तभी वे दूसरी शुरू करते। अन्त में अंग्रेजी व्याकरण उन्होंने पढ़ाना आरम्भ किया। इसका बहुत कुछ ज्ञान पहले प्राप्त हो चुका था, अतएव इसमें प्रगति बड़ी तीव्र गति से होने लगी। जितना मुझे पढ़ना चाहिए था, उतना मैंने थोड़े समय में ही पूरा कर दिया। मुझे नहीं मालूम कि यह क्रम आज के शिक्षाविद पसन्द करेंगे या नहीं? परन्तु मेरे लिए तो यह क्रम सफल सिद्ध हुआ।

(२) संस्कृत भाषा में उन्होंने भंडारकर की "फर्स्ट बुक आफ संस्कृत" शुरू की। जब मैंने उसका पहला भाग समाप्त कर दिया तभी उन्होंने हमारे क्लास की संस्कृत की टेस्ट बुक पढ़ायी। इससे संस्कृत के व्याकरण का ज्ञान भी मुझे यथेष्ट हो गया, जिससे परीक्षा में मुझे अच्छे नम्बर मिल गये। संस्कृत की नींव इतनी मजबूत हो गयी थी कि मैंने बी० ए० तक संस्कृत पढ़ी और सदैव इस विषय में अच्छे नम्बर पाता रहा।

(३) हिन्दी में उन्होंने मुझे कोई व्याकरण नहीं पढ़ाया। उसका ज्ञान केवल बोल-चाल के द्वारा ही कराया। जब कभी मैं अशुद्ध बोलता तो वे शुद्ध कर देते। वे स्वयं शुद्ध ही बोलते थे। इसके कारण मुझे हिन्दी का अच्छा ज्ञान हो गया था और जो पुस्तकें निर्धारित थीं, उन्हें मैं स्वयं पढ़ लिया करता था।

(४) अन्य विषयों में मैंने गणित शास्त्र में 'एडिशनल मैथेमेटिक्स' ले लिया था। उस समय यह नियम था कि एक पेपर गणित शास्त्र का तो लेना ही पड़ता था। साथ ही एक अतिरिक्त पेपर कोई भी छात्र ले सकता था। मैं गणित शास्त्र में कोई ऐसा ज्ञान नहीं रखता था, परन्तु पंडितजी ने गणित का अतिरिक्त पेपर लेने का निर्णय लिया। सबसे पहले उन्होंने मुझे बीजगणित शुरू करवाया और प्रथम पाठ से पढ़ाना शुरू किया। मेरे क्लास में जितना पाठ था, उतना जब मैं कर चुका तो उन्होंने ज्यामिति आरम्भ करवाई, उसी तरह प्रथम पाठ से लेकर वार्षिक परीक्षा तक जितना उस क्लास में होने वाला था, वहाँ तक पहुंचा दिया और इसके बाद ही उन्होंने अंकगणित प्रारम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उस क्लास की वार्षिक परीक्षा तक मैं गणित में अच्छे छात्रों में गिना जाने लगा। आई० ए० तक मैंने गणित विषय लिया।

(५) इतिहास भी एक विषय था, जिसका उन्होंने मुझे कथा के रूप में सुनाकर ही ज्ञान कराया। तत्पश्चात् हमें इतिहास की पुस्तक स्वयं पढ़ने के लिए कह दिया करते

और विभिन्न घटनाओं की तिथियाँ याद करने के लिए कह देते। मैट्रिकुलेशन टेस्ट परीक्षा में मैंने अंग्रेजी में इतिहास का कोर्स तैयार किया था, किन्तु इस विषय की विश्वविद्यालय की परीक्षा मैंने हिन्दी माध्यम से ही दी।

जिस क्लास में मैं पढ़ता था, उस क्लास की जब छमाही परीक्षा हुई तब तक क्लास में जो पढ़ाई हुई थी, वहाँ तक मैं नहीं पहुंच पाया था। अतएव मेरा परीक्षा-फल बड़ा ही असंतोषजनक रहा। सारे स्कूल में मैं उपहास का पात्र बन गया। गणित में मुझे जीरो आया, एक नम्बर भी नहीं मिला। संस्कृत में आधा नम्बर, इतिहास में दो नम्बर, अंग्रेजी द्वितीय में ८ नम्बर एवं अंग्रेजी प्रथम जिसमें ट्रान्सलेशन होता था, उसमें अच्छे नम्बर मिले, जो स्मरण नहीं हैं—केवल हिन्दी में ३६ नम्बर मिले। हमारे स्कूल के हेडमास्टर ने जब इस विषय में पंडितजी से बातें की तो उन्होंने उन्हें आश्वासन दिया कि वार्षिक परीक्षाफल तक ठहरें उस समय तक मेरा कोर्स तैयार हो जायेगा।

पंडितजी दुर्गापूजा की छुट्टियों में अपने घर जानेवाले थे। उन्होंने कहा कि इस एक महीने में मेरी पढ़ाई नष्ट हो जायेगी। अतएव उन्होंने अपने साथ चलने के लिए कहा। मैंने उनके साथ उनके घर जाना स्वीकार कर लिया। परन्तु प्रश्न था कि हमारे पिताजी की अनुमति का। हमारा नाम लिखाने के बाद जब हमारी दूकान के काम में बाधा पड़ने लगी तो वे और उनके संन्यासी गुरु मुझे आगे पढ़ने देने के विरोधी हो गये। वे लोग पंडितजी से बारम्बार कहते कि मेरा आगे पढ़ना बन्द कर दिया जाय। परन्तु मैं इसके लिए तैयार नहीं था। अतएव मुझे यह संदेह था कि पिताजी पंडितजी के ग्राम जाने की अनुमति देंगे या नहीं? मैंने अपनी मां से यह चर्चा की और कहा कि मैं पंडितजी के साथ जाना चाहता हूँ, नहीं तो मेरी पढ़ाई नष्ट हो जायेगी। मेरी माँ ने पिताजी को बुलाया। आरम्भ में तो उन्होंने अनिच्छा प्रकट की; परन्तु मेरे दृढ़ संकल्प को देखकर वे राजी हो गये। अपनी किताबें और कुछ कपड़े लेकर मैं स्टेशन दौड़ पड़ा। मुझे देखकर पंडितजी अत्यन्त संतुष्ट हुए। उन्हें आश्चर्य भी हुआ कि मुझे कैसे अनुमति मिल गई?

पंडितजी का घर दरभंगा जिला अन्तर्गत पुतई नामक ग्राम में था। यह ग्राम मनीगाछी स्टेशन से ७ मील की दूरी पर है। इस सात मील की दूरी को तय करने के लिए मुझे एक छोटा-सा टट्टू मिला। उसी पर बैठकर मैंने यह दूरी तय की। रास्ते में चारों ओर धान के पौधे लगे हुए थे। मैंने एक आदमी से पूछा कि ये पौधे किस चीज के हैं तो वह मेरी ओर भौंचक्कं होकर देखने लगा। फिर उसने बताया कि ये धान के पौधे हैं, जिससे चावल निकलता है। मैंने उत्तर दिया 'चावल तो मैंने खाया था, लेकिन पौधे देखे नहीं थे। शहर में तो पौधे होते नहीं, देहात मैं कभी गया नहीं।'

जब पंडितजी के घर पहुंचा तो चारों ओर प्राकृतिक वातावरण दिखाई पड़ा। पंडितजी के परिवार के अतिरिक्त और किसी से परिचय नहीं था। वहाँ की मैथिली भाषा मुझे आती नहीं थी और वहाँ का भोजन मुझ से सर्वथा भिन्न। ग्राम के लिए मैं अजनबी और मेरे लिए ग्राम अजनबी। नयी दुनिया-सी मालूम हुई। जब मैं भोजन करने के लिए बैठता तो मुझे उलटी आने लगती, क्योंकि वे दोनों शाम भात खाने वाले थे और मैं दोनों शाम रोटी, जो उन्हें बनानी नहीं आती थी। रोटियों को बनाकर ढेर कर

लेते और उसके बाद उसमें ठंढा घी लगाते, जिसका स्वाद वड़ा ही खराव लगता। उस साल वहाँ दुर्भिक्ष पड़ा था। आलू के अतिरिक्त मैं और कोई तरकारी नहीं खाता था, परन्तु आलू वहाँ मिलता नहीं था। मेरे लिए पांच कोस दूर एक बाजार से आलू मंगवाया जाता था। सुबह मुझे दही, चिउड़ा और चीनी जलपान में दी जाती, वह मुझे पसन्द थी और शाम को मकई, चना, चावल इत्यादि का भूजा मिलता। उससे भी मैं अपना पेट भर लिया करता था। इतनी असुविधा होते हुए भी मैं इसे इसीलिए वर्दाश्त करता रहा कि पढ़ने की मुझ में तीव्र लालसा उत्पन्न हो चुकी थी। पंडितजी मेरे साथ प्रायः दस घण्टे बैठते और पढ़ाते। जो प्रगति इस एक महीने में हुई, वह छः महीने में भी मुजफ्फरपुर में संभव नहीं थी। जब मैं छुट्टियों के वाद स्कूल वापस आया तो मेरी प्रगति को देखकर सारे अध्यापक अचम्भे में रह गये और पंडितजी से उन लोगों ने कहा कि उन्होंने कौन-सा जादू फेरा, जो यह लड़का एक महीना पहले क्या था और अब क्या हो गया ? वार्षिक परीक्षा होते-होते मैं सब विषयों में स्कूल की पढ़ाई के समीप पहुंच गया और सभी विषयों में मैंने पास ही नहीं किया, बल्कि क्लास में मैंने चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। और मेरा प्रमोशन पहले दर्जे (दसवीं कक्षा) में हो गया।

उस समय यह पहला दर्जा ही मैट्रिकुलेशन कहलाता था। हमारी पढ़ाई का क्रम उसी प्रकार चलता रहा। मेरी पढ़ाई की प्रगति काफी तेजी के साथ अग्रसर हो रही थी। छमाही परीक्षा में मेरा स्थान अपने क्लास में द्वितीय था और अपने स्कूल की वार्षिक परीक्षा, जिसे टेस्ट परीक्षा कहते हैं में मैं अपने क्लास में सर्वप्रथम हुआ। छात्रों एवं अध्यापकों को वड़ा ही आश्चर्य हुआ कि जो लड़का डेढ़ साल पहले इतना कमजोर था, उसने डेढ़ साल के अन्दर कैसे इतनी प्रगति कर ली। उस साल मैट्रिक की परीक्षा पहले पहल मैट्रिकुलेशन पद्धति में होने के कारण हम लोगों की उत्तर पुस्तिकायें कालेज के प्रोफे-सरों द्वारा देखी गईं। अतएव किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं थी। तो भी मेरी प्रगति न केवल हमारे स्कूल में ही बल्कि अन्य स्कूलों में भी चर्चा का विषय बन गई थी। उस जमाने में स्कूलों में छात्र कम होते थे, अतएव उनमें छोटी-मोटी बातों पर भी चर्चाएं हुआ करती थीं।

जब विश्वविद्यालय की मैट्रिकुलेशन परीक्षा आरम्भ हुई तो मुजफ्फरपुर को भी पहले-पहल परीक्षा का एक केन्द्र बनाया गया। इसके पूर्व लोगों को पटना जाकर परीक्षा देनी पढ़ती थी। अतएव तीन जिलों के विभिन्न स्कूलों से लड़के परीक्षा देने के लिए आये थे। उनकी कुल संख्या लगभग ५० ही थी, क्योंकि प्रत्येक स्कूल की ओर से बहुत ही कम छात्रों को इस परीक्षा में शामिल होने की इजाजत दी गयी थी। यह आतंक था कि ये छात्र भी पास करेंगे या नहीं। उस समय हमारी क्लास में २८ लड़के पढ़ते थे उनमें से केवल ७ लड़कों को ही इसमें शामिल होने की अनुमति स्कूल से मिली थी। इसके अतिरिक्त मुजफ्फरपुर के दो और स्कूलों से ७-७ लड़के ही भेजे गये थे।

जब मैट्रिकुलेशन की परीक्षा आरम्भ हुई तो परीक्षा के प्रश्न इतने आसान थे कि हमलोग आश्चर्यचकित हो गये। जब विश्वविद्यालय का परीक्षा-फल प्रकाशित हुआ तो मुजफ्फरपुर के तीनों स्कूलों से जितने छात्र इस परीक्षा में शामिल हुए थे, उनमें से सिर्फ एक छात्र उत्तीर्ण नहीं हुआ और बाकी सभी उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने

वालों में सबसे अधिक संख्या प्रथम श्रेणी वालों की थी और सबसे कम तृतीय श्रेणी की। हमारे स्कूल के चार छात्र प्रथम श्रेणी में, दो छात्र द्वितीय श्रेणी में एवं एक छात्र तृतीय श्रेणी में—इस तरह सातों छात्र उत्तीर्ण हुए थे। मैं जब परीक्षाफल में उत्तीर्ण हुआ तो सारे शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति हमारे पिताजी को बधाई देने के लिए आये। अंग्रेजी का 'बंगाली' नामक दैनिक समाचार-पत्र जिसे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी निकालते थे, उसमें भी यह समाचार प्रकाशित हुआ। आज तो इस परीक्षा का कोई महत्व ही नहीं है। परन्तु वह समय दूसरा ही था, जब शिक्षा का प्रसार बहुत कम था। बिहार में बंगाल की तरह शिक्षा का प्रचार नहीं था। जहाँ तक मुझे स्मरण है कि उस समय जब एक बिहारी छात्र ने एम० बी० की डाक्टरी परीक्षा पास की थी, तो उसकी सारे शहर में चर्चा थी। मुझे बधाई के पत्र कलकत्ते से भी सर्वश्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, कालीप्रसादजी खेतान, बैजनाथ प्रसादजी देवड़ा, रामकुमारजी गोयनका इत्यादि के मिले।

मुझे पहले पहल मालूम हुआ कि मारवाड़ी समाज में भी अन्य पढ़े-लिखे लोग हैं।

पढ़ाई का तीव्र विरोध :

मैंने जब फिर से पढ़ाई आरम्भ की और स्कूल में मेरा नाम लिख लिया गया तो मेरा दूकान का देखना बन्द हो गया और इसके कारण दूकान की क्षति होने लगी। अतएव हमारे पिताजी, हमारे छोटे चाचा एवं पिताजी के संन्यासी गुरु इस पक्ष के हो गये कि मेरी पढ़ाई से कोई लाभ होनेवाला नहीं है—मैं व्यर्थ समय नष्ट कर रहा हूँ। साथ ही दूकान की भी क्षति हो रही है। न तो मैं पास कर सकूँगा और यदि पास भी करूँ तो भी कहीं किरानी होकर रहूँगा। अतएव कुछ दिनों के बाद से ही वे लोग पंडितजी से कहने लगे कि मेरी पढ़ाई बन्द कर दी जाय। परन्तु मैं अपनी पढ़ाई बन्द नहीं करना चाहता था। इसलिए घर में कुछ तनाव का वातावरण रहने लगा। जब मैं पंडितजी के घर पढ़ने के लिए गया तो हमारे पिताजी के संन्यासी गुरु ने एक आदमी को पत्र देकर भेजा, जिसमें उन्होंने लिखवाया था कि पंडितजी हमें मुजफ्फरपुर भेज दें, अन्यथा उनके विरुद्ध लड़का फुसलाकर ले जाने का मुकदमा दायर कर दिया जायेगा। यह पत्र लेकर हमारा एक कर्मचारी जब पंडितजी के गाँव पहुँचा तो मुझे आश्चर्य हुआ। पंडितजी ने जब मेरी राय पूछी तो मैंने स्पष्ट शब्दों में घर जाने से इनकार कर दिया। पंडितजी के घर वाले कुछ चिंतित हुए, परन्तु पंडितजी दृढ़ बने रहे। पत्रवाहक को मैंने कहा कि बगल में कमला नदी बहती है, उसमें स्नान करो—दाल-भात खालो और वापस लौट जाओ। स्वामीजी को जाकर कह दो कि मैं एक महीने के पश्चात् आऊँगा—इसके पहले नहीं। पत्रवाहक वापस लौट गया। मैं जब वहाँ से वापस लौटा तो स्वामीजी से मेरी मुठभेड़ हो गयी। मैंने उनसे कह दिया कि मैं कोई पाप करने तो गया नहीं था। इस तरह का पत्र क्यों दिया गया। मेरी पढ़ाई का क्यों विरोध हो रहा है। परन्तु इसके बाद भी विरोध शान्त नहीं हुआ। हमारे घर वालों को यह संदेह होने लगा कि कहीं मैं घर छोड़-कर संन्यासी न हो जाऊँ। हमारे नये मकान का गृहप्रवेश था। इस अवसर पर मेरी पत्नी को भी अपने पिता के घर से बुलाया गया था। वह कुछ दिनों तक घर में रह भी गयी, परन्तु मुझे इसका संकेत मिल गया था कि मुझे पढ़ाई से विरक्त करने के लिए ही यह

षड़यंत्र किया गया है। जब मैंने अपनी पत्नी से बातें नहीं की तो हमारे परिवार के सदस्य और भी हमारे विषय में चिंतित हो गये। जिस दिन हमारी पत्नी लौटकर अपने पिता के घर जाने वाली थी, उस दिन मेरे पिताजी ने मुझ से कहा कि मैं कम-से-कम उसे यह तो बता दूं कि मैं संन्यासी नहीं होने वाला हूँ, पढ़ाई के कारण उससे बातें नहीं कर रहा हूँ। नहीं तो उसकी और उसके परिवार वालों की चिन्ता बढ़ जाएगी। मैंने इतना कह देना स्वीकार किया।

कुछ दिनों के पश्चात पुन: एक बवंडर उठ खड़ा हो गया। जब मैं मैट्रिक क्लास में पढ़ रहा था, उस समय पिताजी ने पंडितजी को कहा कि अगर मैं उनके यहाँ पढ़ने जाऊँ तो वे मुझे नहीं पढ़ायें। जब पंडितजी ने मुझे इसकी सूचना दी तो मैं फूट-फूटकर रोने लगा। मैंने पंडितजी से कहा कि मैं तो अवश्य पढ़ने आऊँगा, किन्तु आप पढ़ायेंगे या नहीं। उन्होंने कहा कि वे तो ब्राह्मण हैं, मैं जबतक उनके पास विद्याध्ययन के उद्देश्य से जाऊँगा, वे अवश्य पढ़ायेंगे। अगर तुम्हारे पिताजी घर से तुम्हें निकाल दें तो तुम्हें अपने मन्दिर में ही स्थान दे दूंगा एवं भोजन भी दूंगा। लोगों को हमारे घर वालों पर बड़ा रोष था कि पंडितजी उनके बच्चोंको पढ़ाना चाहते थे और उनके बच्चे ही नहीं पढ़ते थे, और मैं पढ़ना चाहता हूँ परन्तु मेरे घर वाले इसका विरोध कर रहे हैं। अतएव पंडितजी और उनके भाइयों की सहानुभूति मुझ से इतनी अधिक हो गयी थी कि वे हमारे घर वालों को राक्षस कहने लगे थे। जब मैं घर पहुंचा तो मैंने भोजन नहीं किया और मां को मैंने सारा हाल कह सुनाया। उसने पिताजी को बुलाया और कहा कि वे लड़के के पीछे व्यर्थ में क्यों पड़े हुए हैं, वह कोई बुरा काम तो कर नहीं रहा है। पिताजी ने जब देखा कि स्थिति संगीन होती जा रही है, तो उन्होंने मुझे पढ़ने की छूट दे दी। फिर कोई विरोध नहीं रहा। जब मैं मैट्रिक परीक्षा में सफल हो गया तब तो सारे घर के लोग और हमारे स्वामीजी महाराज बड़े प्रसन्न हुए और मेरी सफलता की सराहना करने लगे। उस समय मारवाड़ी समाज की शिक्षा के प्रति क्या भावना थी, इसका ज्ञान उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट हो जाएगा।

पंडितजी के मित्र भी जो मेरे पढ़ाने के विरोधी थे, वे कहा करते थे कि अगर इतना समय पंडितजी किसी अन्य को पढ़ाने में दें, तो बहुत-कुछ उपार्जन कर सकते हैं। वे इतना अधिक समय मुझे क्यों देते हैं, जबकि दस रुपये से अधिक तनख्वाह किसी भी हालत में मिलने वाली नहीं है। मंदिर में रहने वालों में एक और सज्जन थे, जो अपने को पंडितजी का गुरु भाई कहा करते थे। वे मुँह बनाकर मेरे सामने पंडितजी से कहा करते थे

"बानिया रीझे तो छटंकी भर नून, राजा रीझे तो दूनो कान सून"

अर्थात्—मैं बनिया हूँ। बहुत प्रसन्न होऊंगा तो एक छटांक नमक दे दूँगा और अगर किसी राजा को वे पढ़ाते तो वह दोनों कानों में सोना मढ़वा देता। बनिये को पढ़ाकर क्या होगा ?

तुलसीदास जी की एक चौपाई भी वे कहा करते थे :—

बायस पालिम अति अनुरागा, होहिं निरामिष कबहुं कि कागा।

अर्थात्—कितने ही अनुराग से कौवे को पाला जाय तो क्या वह कभी निरामिष होगा।

इसके अलावा मूड में आकर कभी-कभी वे यह भी कहा करते थे "सट्टा लिख देता हूँ, यह लड़का कभी भी मैट्रिक की परीक्षा में पास नहीं हो सकेगा।"

पंडितजी और हम दोनों ही इन वातों पर हंस दिया करते थे।

मेरे पढ़ने वाले साथियों में भी वड़ी जलन उत्पन्न हो गई थी। रात्रि के समय जब मैं पंडितजी के निवास-स्थान से घर पर वापस आता था तो साइकिल पर आया-जाया करता था। एक छात्र का घर रास्ते में ही पड़ता था। जब मैं उसके घर के सामने से निकलता था तो वह अपने कुत्ते को मेरे पीछे दौड़ा देता था। मुझे भय होता कि कहीं यह कुत्ता काट न ले। मैंने कई वार उससे कहा। परन्तु वह नहीं माना। अन्त में वाध्य होकर मुझे साइकिल पर आना-जाना कुछ समय के लिए बन्द कर देना पड़ा। हमारे यहाँ घर में पहले से घोड़े की टमटम थी, जिसे पिताजी व्यवहार में लाते थे, उस पर आने-जाने लगा। यह स्थिति देखकर पंडितजी ने उक्त लड़के के अभिभावकों को कहकर उसकी शरारत को वन्द करवा दिया। पुनः मेरा साइकिल से आना-जाना प्रारम्भ हो गया।

हमारें पिताजी के जो संन्यासी गुरु थे, उन्होंने जब देखा कि मेरे परीक्षोत्तीर्ण होने पर शहर के सभी प्रतिष्ठित जमींदार एवं अन्य लोग वड़ी संख्या में बधाई देने के लिए आये हैं और इससे पिताजी की इज्जत भी समाज में बढ़ी है तो उनका सारा विरोध समाप्त हो गया। उसके पश्चात् वे मुझसे वहुत प्रसन्न रहने लगे। मैट्रिक परीक्षा के वाद जबतक परीक्षाफल प्रकाशित नहीं होता, उसके बीच में जो डेढ़-दो महीने का समय मिलता है— उक्त अवधि में मैं स्वामीजी को महाभारत की कथा सुनाया करता था। सारी महाभारत उस अवधि में पढ़ गया था। इससे मेरा तो ज्ञान वढ़ा और स्वामीजी का समय व्यतीत हुआ। उनकी भी मुझ पर कृपा हो गई।

शिक्षा-सुधार के विफल प्रयत्न

उपर्युक्त वातों से यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि बच्चे को शिक्षा देने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता उत्तम गुरु की होती है। वहीं मैं था, जो छः वर्षों से स्कूल में पढ़ता आ रहा था और वही शिक्षा-पद्धति थी। परन्तु एक अच्छे गुरु के प्राप्त होने से दो वर्ष में मैंने उतनी शिक्षा प्राप्त कर ली थी, जो आजकल दस वर्षों में दी जाती है। चरित्र उत्तम हो, इसके लिए भी इसी अवधि में इतना प्रयत्न गुरुजी ने किया कि मेरा जीवन क्रम वदल गया। उसके पश्चात् मैंने आई० ए०, बी० ए० एवं एम० ए० की परीक्षाएं सम्मानपूर्वक पास कीं। उस जमाने में आज की तरह चोरी करके पास करना असंभव था और यह कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। पंडितजी ने मेरे हृदय में शिक्षा प्राप्ति के प्रति तीव्र आकांक्षा उत्पन्न कर दी थी और जीवन को महत्वकांक्षी बना दिया था। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण जिस तरह अर्जुन के पथप्रदर्शक थे, उसी तरह पंडितजी भी हमारे जीवन के पथप्रदर्शक थे।

१९१० ई० में शिक्षा-पद्धति में सुधार हुआ। उसके पश्चात् बराबर सुधार ही होता आ रहा है। 'परन्तु मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की'—वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। आज की शिक्षा न तो छात्रों को ज्ञान ही प्रदान करती है और न उनको चरित्र-वान ही वनाती है। जो भी परिवर्त्तन किये गये, वे सफल नहीं हुए। इसका प्रधान कारण अच्छे गुरुओं का अभाव ही है। पद्धति जैसी भी उत्तम क्यों न हो, अगर गुरु त्यागी

एवं योग्य न मिले, तो सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। आज भी मिशनरी स्कूलों की पढ़ाई अच्छी समझी जाती है। महात्मा गांधी ने जब असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया, तब छात्रों को स्कूल छोड़ने का आदेश दिया। परन्तु वे एक वर्ष के अन्दर ही स्वराज्य प्राप्त करने वाले थे, अतएव ऐसा करने का एक औचित्य भी माना जा सकता है। इसके बाद उन्होंने इस विषय पर फिर कभी जोर नहीं दिया। परन्तु स्वतंत्रता के बाद छात्रों को राजनैतिक आन्दोलन में ढकेल दिया गया और उसका परिणाम यह हुआ कि छात्र पढ़ाई को गौण मान बैठे एवं राजनैतिक आन्दोलनों को प्रधान। शिक्षा-प्रणाली में भी समय-समय पर जो सुधार किये जाते हैं, वे थोड़े दिनों के बाद ही गलत साबित हो जाते हैं। पहले मैट्रिक, आई० ए० और बी० ए० था, फिर बदल कर हायर सेकेण्डरी और बी० ए० हुआ। अब पुनः मैट्रिक, आई० ए० और बी० ए० हुआ है। और अब एक और याने १०+२+२ साल का कोर्स प्रारम्भ हो रहा है। इन परिवर्तनों में कितना अपव्यय होता है, इसकी कोई सीमा नहीं। स्वतंत्रता के पूर्व महात्माजी ने शिक्षा में जो सुधार किये, वह भी बहुत दिनों तक चल नहीं पाया। न मालूम शिक्षा-प्रणाली में सुधार करने के लिए कितनी ही योजनाएं बनीं, कितने कमीशन और कमेटियां गठित हुईं, कितने ही शिक्षाविदों ने व्याख्यान और उपदेश दिये। पर इन सबका परिणाम जो कुछ हुआ, यह आज हमारे सामने नजर आता है। आज की शिक्षा को शिक्षा कहना ही अनुचित है। मैं इस विषय पर और अधिक लिखना इस आत्म संस्मरण में उचित नहीं समझता। यह तो एक बड़े गम्भीर चिंतन का विषय है।

तत्कालीन राजनैतिक स्थिति

उपर्युक्त अवधि में भारतवर्ष में राजनैतिक चेतना जागृत हो चुकी थी। १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हुई थी। यह स्थापना एक अंग्रेज सज्जन के हाथों हुई थी, परन्तु थोड़े दिनों के बाद उसके रुख को देखकर अंग्रेजों को अपने हाथ इससे खींच लेने पड़े थे। इसके सदस्य तत्कालीन अंग्रेजी सरकार के सामने अपनी मांग पेश करते थे और सरकार से आशा करते थे कि वह उन्हें पूरा करेगी। इसके स्थापना के कुछ वर्षों के पश्चात् श्री लोकमान्य तिलक के नायकत्व में एक दल १९०० ई० के पहले ही ऐसा बन गया था जो केवल प्रार्थनाओं में विश्वास नहीं करता था। वह दल एक प्रकार से हिंसावादी दल था और संभव हो तो हिंसा के भी द्वारा हिन्दुस्तान में स्वराज्य की स्थापना में विश्वास करता था। १८९८ ई० के लगभग दो अंग्रेज अफसर मारे गये थे। उसे लेकर काफी खलबली मची थी। अग्रेजों में आतंक की सृष्टि हुई और धीरे-धीरे अग्रेजों के हाथ कांग्रेस से बिल्कुल अलग हो गये।

१९०५ ई० में दादा भाई नौरोजी कांग्रेस के सभापति हुए। उस कांग्रेस ने भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग की। यह कांग्रेस कलकत्ते में हुई थी। इसी साल लार्ड कर्जन ने, जो भारत के गवर्नर जेनरल और वाइसराय थे, बंगाल के दो टुकड़े कर दिये। एक टुकड़ा आसाम से मिला दिया गया और दूसरा टुकड़ा अन्य प्रदेशों से। इसे लेकर बंगाली समाज में बड़ा भारी आन्दोलन हुआ, जो 'बंग-भंग' आन्दोलन के नाम से सुविख्यात है। बंग-भंग आन्दोलन का प्रधान लक्ष्य यह हुआ कि विदेशी कपड़ों का बायकाट किया

जाय। उस जमाने में स्वदेशी मिलें बहुत कम थीं और फलतः विदेशी कपड़ों का बायकाट एक कठिन कार्य था। दादा भाई नौरोजी उस समय के एक विख्यात राजनैतिक नेता थे, जो विलायत में रहते थे और ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के मेम्बर भी चुन लिये गये थे। जो कि महत्वपूर्ण घटना थी। जब बंग-भंग का आन्दोलन शुरू हुआ तो यह विशेषकर बंगाली समाज में ही व्याप्त हुआ और बंगाली समाज ने विदेशी कपड़ों का बायकाट आरम्भ किया। हमारे पिता की दूकान मुजफ्फरपुर में थी, उसमें भी स्वदेशी कपड़ों की भरमार रहने लगी। बंगाली ग्राहक बड़े जोश-खरोश के साथ स्वदेशीमाल खरीदा करते थे। दूसरे समाज के लोगों में यह उतना नहीं फैला था, तथापि सहानुभूति सबों की इस आन्दोलन से थी।

श्री लोकमान्य तिलक का 'केशरी' पत्र उग्र विचारों का था, वह हिंसा का प्रचार करता था। अतएव सरकार का कोप उस पत्र के ऊपर था। और सरकार नहीं चाहती थी कि लोग उस पत्र के ग्राहक बनें। परन्तु लोग लुक-छिपकर मंगवाते थे और पढ़ते भी थे। हमें भी स्मरण है कि जब हमलोग बच्चे ही थे तो भी उसे पढ़ा करते थे। श्री लोकमान्य तिलक ने ही सर्वप्रथम यह घोषित किया था कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे प्राप्त करके रहेंगे।

१९०७ में सूरत में जब कांग्रेस हुई तब श्री लोकमान्य तिलक के उग्र अनुयायियों और कांग्रेस के नर्मदली नेताओं में मुठभेड़ हो गयी। कुर्सियाँ भी चल गयीं और लोकमान्य तिलक का दल कांग्रेस से अलग हो गया।

खुदीराम बोस तथा अन्य घटनाएँ

३० अप्रैल, १९०८ ई० को मुजफ्फरपुर में खुदीराम बोस ने एक बम फेंका, जिसमें प्रिंगल केनेडी की मेम और उनकी लड़की मारी गयी। गाड़ी का दरवान भी मारा गया। भारत में यह पहला बम केस था। इस बम के धड़ाके की आवाज हमारे कानों तक भी पहुँची थी। शाम का वक्त था। बड़े जोर से धड़ाके की आवाज हुई। सारा शहर यूरोपियन क्लब की ओर दौड़ पड़ा। इस घटना की चर्चा सारी रात होती रही। दूसरे दिन खुदीराम बोस मुजफ्फरपुर से दूसरे स्टेशन पर पकड़े गये और प्रफुल्ल चाकी, जो उनके साथ गये थे, उन्होंने सेमरिया घाट पर जहाज में आत्महत्या कर ली।

जब यह केस मुजफ्फरपुर में चला तो खुदीराम को रोज जेल से अदालत ले जाया जाता था। न मालूम क्यों खुली फिटन गाड़ी पर वे लाये जाते थे। आगे-पीछे, दायें-बायें सशस्त्र पुलिस रहती थी और पीछे आदमियों का समूह। नित्य भोर में कचहरी होती थी। पटना से एक जज़ इस केस को सुनने के लिए आये थे, क्योंकि जिसे मारने के लिए यह किया गया था, वह मुजफ्फरपुर के ही जज थे और उनका नाम किंग्स फोर्ड था। खुदीराम ने किंग्सफोर्ड के धोखे में ही बम फेका था, जिसमें दो औरतें भूल से मारी गयीं। दोनों की फिटन गाड़ी एक सी थी और खुदीराम जल्दी में पहचान नहीं सकते थे। जब खुदीराम को फांसी हुई तो वहाँ के बंगाली समाज ने उनकी लाश का दाह-संस्कार किया और अनेक लोगों ने उनकी राख को अपने मस्तक पर लगाया। इस घटना से बंग-भंग आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ लिया। उसके बाद तो कलकत्ते में काफी धर-पकड़ हुई और बहुत से आदमियों को विभिन्न सजायें मिलीं। बंगाल में स्वतंत्रता प्राप्ति के

लिए हिंसात्मक आन्दोलन उमड़ पड़ा। मुकदमें के वाद मुकदमें चलने लगे। किसी को फाँसी, किसी को आजीवन कारावास की सजा—यही रोज अखबारों में पढ़ने को मिलता था। लोकमान्य तिलक को ६ वर्ष की सजा हुई और वे वर्मा-मांडले जेल भेज दिये गये। आरम्भ में उनसे चक्की में आटा पिसवाया जाने लगा। इसको लेकर जब देश में बड़ा आन्दोलन मचा, तो उन्हें इससे मुक्ति मिली। लाला लाजपत राय को भी सजा हुई। देश में आतंकवादी साहित्य का प्रचार हुआ। हमलोग लुक-छिप कर उस साहित्य को पढ़ते थे। अंग्रेजों का प्रभुत्व पूर्ण रूप से विद्यमान था। सारे सरकारी आफिसर अंग्रेज थे—केवल छोटे आफिसर हिन्दुस्तानी थे। अतएव किसी की हिम्मत कुछ भी बोलने-करने की नहीं होती थी।

इस घटना के वाद मुजफ्फरपुर की सड़कों की पूरी तरह से मरम्मत कर दी गयी। सड़कों की रोशनियां वदल दी गयीं। जहाँ पहले किरासन तेल के दिये जलते थे, वहाँ पर गैस की बत्तियाँ जलने लगीं। यूरोपिन क्लव के सामने कुछ वृक्ष वगैरह काटकर साफ कर दिये गये। आतंकवादियों के विरुद्ध भयंकर दमनचक्र आरम्भ हुआ। मुजफ्फरपुर के जिलाधीश ने यह हुक्म जारी किया कि कोई आदमी सड़क के वीच में न चलकर दायें-वायें चले। अगर कोई व्यक्ति सड़क पर चलता हुआ मिल जाता था, तो वे अपने कोड़े से उसे एक-दो कोड़े लगा ही देते थे। किसी की बोलने की हिम्मत नहीं थी। अरविंद घोष के मुकदमें की भी रिपोर्ट अखवारों में निकलती थी। जब अरविंद वावू ने अदालत में यह बयान किया कि मैं तो चारों ओर कृष्ण ही कृष्ण देख रहा हूँ तो एक अजीब-सी वात लगी। स्व० चित्तरंजनदास ने उनके मुकदमें की पैरवी करके जब उन्हें छुड़ा लिया तो दास साहब का वड़ा नाम हुआ और उनकी वकालत भी बहुत चमक उठी। अरविंद बाबू जव अदालत से छूटे तो सीधे पाण्डिचेरी चले गये और वहीं आजीवन रहे। राजनीति से उन्होंने संन्यास ले लिया और अध्यात्म-चिन्तन में जीवन विताने लगे। अरविंद आश्रम उनकी अव चिरस्थायी कीर्ति वन गयी है। योगी अरविन्द का नाम भी इतिहास में अजर-अमर हो गया है। सन् १९१० ई० तक यही क्रम जारी रहा और उसके वाद भी यह क्रम वहुत दिनों तक चलता रहा।

राजनैतिक आन्दोलन के साथ-साथ सामाजिक आन्दोलन भी प्रारम्भ हो गया था। इस समय आर्यसमाज और सनातन धर्मियों में परस्पर विवाद रहा करता था। सनातन धर्मियों के प्रधान प्रचारक व्याख्यान वाचस्पति श्री दीनदयाल शर्मा और पं० ज्वाला-प्रसाद मिश्र थे, जो हमारे विवाह में १९०८ ई० में मुजफ्फरपुर आये थे। थोड़े दिनों के वाद आर्य समाज का आन्दोलन ठंढा पड़ गया, लेकिन अपनी छाप हिन्दू समाज के ऊपर छोड़ गया। मारवाड़ी समाज में कोई विशेष आन्दोलन नहीं था। छोटे-मोटे वैवाहिक सुधार हुए थे, परन्तु वे नगण्य थे। इस अवधि में अंग्रेजों ने हिन्दू और मुसलमानों में विभेद की सृष्टि की और मुस्लिम लीग की स्थापना १९०६ ई० में हो गयी। १९०९ ई० में मिण्टो-मोरले सुधार के नाम से कुछ राजनैतिक सुधार किये गये। मिण्टो हिन्दुस्तान के वाइसराय थे और मोरले विलायत में भारत के सेक्रेटरी-आफ-स्टेट थे। १९१० ई० में यही राजनैतिक-सामाजिक स्थिति थी, जबकि मैंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की और कालेज में दाखिल हो गया।

मुजफ्फरपुर कालेज में मेरा छात्र-जीवन

मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास करके मैं मुजफ्फरपुर के स्थानीय ग्रेयर भूमिहार ब्राह्मण कालेज में दाखिल हुआ। इसकी स्थापना मुजफ्फरपुर के एक बड़े जमींदार बाबू लंगट सिंह ने की थी। इनका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूँ। जब मैं पढ़ता था तो यह साधारण स्थिति में था। खपरपोस मकान था और इसी में लड़के पढ़ते थे। लड़कों की संख्या भी बहुत नहीं थी। बिहारी प्रोफेसर भी बहुत कम थे। अधिकतर बंगाली प्रोफेसर थे या सिंधी या महाराष्ट्री। बिहारियों में शिक्षा-प्रचार तब तक नहीं हुआ था, केवल संस्कृत और हिन्दी के प्रोफेसर ही बिहारी थे। बाद में इसी कालेज में श्री जे० बी० कृपलानी प्रोफेसर नियुक्त हुए थे, जो इस समय राजनैतिक क्षेत्र में एक प्रसिद्ध नेता हैं। श्री सलकानी जो बहुत दिनों तक पार्लियामेण्ट के सदस्य रह चुके हैं, वे भी प्रोफेसर के पद पर यहाँ काम कर चुके हैं, श्री मनसुखानी भी एक सिंधी प्रोफेसर थे और ये अंग्रेजों के बड़े विरोधी थे। हमलोगों को बी० ए० में जब राजनीति और अर्थशास्त्र पढ़ाते थे, तो कमरे का दरवाजा बन्द कर लेते थे और पढ़ाते समय केवल राजद्रोह का प्रचार करते थे। इस कालेज के प्रिंसिपल मि० कूपर एक अंग्रेज सज्जन थे। जब उन्हें यह बात मालूम हुई तो मनसुखानी साहब को इस्तीफा देना पड़ा। ये आगे चलकर संन्यासी हो गये और इनका नाम स्वामी गोविन्दानन्द पड़ा। 'कोमागाता मारू' नामक जहाज जो सिक्खों और पंजाबियों के जत्थे को लेकर अमेरिका गया था और जिस जहाज के यात्रियों को अमेरिका ने अपने देश में उतरने नहीं दिया था, उसमें ये भी शामिल थे। जब यह जहाज हिन्दुस्तान वापस आया तो इसके यात्रियों ने हिन्दुस्तान में गदर मचाया और ये लोग गदर पार्टी के नाम से परिचित हुए। श्री जे० बी० कृपलानी १९१७ ई० के चम्पारण आन्दोलन के साथ ही महात्मा गांधी के अनुयायियों में हो गये और कुछ दिनों के बाद जब असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी। . वे कांग्रेस के अध्यक्ष भी रह चुके हैं।

कालेज में आनर्स की पढ़ाई नहीं थी। छात्र जो भी विषय चाहते थे वे ले लेते थे। उस समय आई० ए० और बी० ए० की पढ़ाई ही इस कालेज में होती थी। कोर्ष दो-दो वर्ष का था इसलिए ग्रेजुएट होने में चार वर्ष लगते थे। आई० ए० में मैंने संस्कृत, फिजिक्स और मैथेमेटिक्स लिया जो आज छात्र नहीं ले सकते हैं। अगर मैं केमिस्ट्री ले लेता तो आई० एस-सी० का छात्र हो जाता, लेकिन हमारे कालेज में केमिस्ट्री की पढ़ाई थी ही नहीं। अतएव मैंने संस्कृत ही ली। बी० ए० में जाकर मैंने संस्कृत और अर्थ-शास्त्र लिया। आई० ए० में अपने कालेज से मैं विश्वविद्यालय की परीक्षा में तृतीय स्थान रहा और बी० ए० में अपने कालेज में मैंने केवल पास कोर्स लिया था, इसलिए विशिष्टता के साथ (विथ डिस्टिंक्शन) मैंने पास किया। मैं ही अकेला छात्र था जो इस विशेषता के साथ कई वर्षों में उस कालेज के उत्तीर्ण छात्रों में पास हुआ था। अतएव शहर में मेरी प्रतिष्ठा होने लगी थी और मुझे तेज छात्रों में गिना जाने लगा।

कालेज के जीवन में कोई विशेष घटना नहीं हुई थी। केवल एक छात्र ने कालेज की डिबेटिंग सोसाइटी में अंग्रेजों के विरुद्ध में कुछ कहा था। यह बात जब जिला मजिस्ट्रेट के यहाँ पहुँची तो वे कालेज में आये और सब लड़कों को इकट्ठा करके जिस छात्र ने ऐसा कहा था उसे दो वर्ष के लिए कालेज से निकाल दिया। उस जमाने में ये सब बातें संभव

थीं। आज तो इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। हमारे कालेज में हमारी प्रतिद्वन्द्विता श्री रामशरण उपाध्याय से थी। वे मुजफ्फरपुर के जिला स्कूल से सर्वप्रथम होकर कालेज में आये थे। आई० ए० की परीक्षा में तो वे उत्तीर्ण छात्रों में सर्वप्रथम रहे, परन्तु बी० ए० में मैं प्रथम हो गया। उपाध्यायजी का व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली था। वे आगे चलकर बिहार सरकार के शिक्षा-विभाग में चले गये थे और उसमें उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी। जब गांधीजी ने 'बेसिक शिक्षा' की पढ़ाई आरंभ की तो इन्हीं को उसका इन्चार्ज बनाया गया था। सरकार ने इन्हें आगे चलकर रायबहादुर की उपाधि प्रदान की। अब वे इस संसार में नहीं हैं।

बी० ए० पास करने के बाद १९१४ ई० में मैं आगे की पढ़ाई करने के लिए कलकत्ता चला आया।

जब मैं कालेज में दाखिल हो गया तो हमारे गुरु पंडित योगानन्दजी 'मिथिला मिहिर' नामक पत्र के सम्पादक होकर दरभंगा चले गये। जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया है। यह पत्र महाराजा दरभंगा द्वारा प्रकाशित होता था—आधा हिन्दी में और आधा मैथिली भाषा में। इसके सह-सम्पादक पं० जगदीश्वर प्रसाद ओझा थे। ये भी दक्ष व्यक्ति थे। साथ ही मधुर भाषी और योग्य सह-सम्पादक थे। मैं पंडितजी से मिलने के लिए दरभंगा जाया करता था और पंडितजी भी प्रायः मुजफ्फरपुर आया करते थे। पत्र-व्यवहार तो सदैव ही चलता रहता था। अतएव उनका प्रभाव हमारे ऊपर बराबर पड़ता ही रहा। उसने हमारे जीवन को बहुत कुछ उत्कृष्ट बनाने में सहायता प्रदान की। जब मैं आई० ए० में पढ़ता था तो मैंने फिजिक्स (पदार्थ विज्ञान) लिया था। वायरलेस उस समय आरम्भ ही हुआ था। जब हम कालेज में पढ़ते थे तो हमारे प्रोफेसर ने वायरलेस का सैद्धान्तिक रूप समझाया और एक कमरे से दूसरे कमरे में बिना किसी तार के संबंध के जब आवाज़ पहुँचा दी, तो हमलोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

१९११ ई० में इलाहाबाद में एक्जीबिशन हुआ था। उस एक्जीबिशन में एक हवाई जहाज आया था, जिस पर एक यात्री बैठ सकता था और एक चालक। उसे देखने के लिए समस्त हिन्दुस्तान के लोग वहाँ आये थे। हमलोग भी वहाँ पहुँचे थे। और जब हवाई जहाज उड़ा तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह कैसे हो गया। रामायण के समय के विमान की याद हो आयी और उस बात की भी याद हो आयी जबकि आर्यसमाजी कहा करते थे कि रामायण में विमान का होना एक कल्पना-मात्र है और ऐसी ही वाहियात बातें पुराणों में लिखी हुई हैं। आर्यसमाजी पुराणों के कट्टर विरोधी थे और हमलोग सनातनी समुदाय के होने के कारण पुराणों के समर्थक थे। जब हवाई जहाज अस्तित्व में आ गया तो आर्यसमाजियों के सामने कोई विकल्प नहीं रहा और उन्हें मानना पड़ा कि रामायण काल में हवाई जहाज रहा होगा।

मारवाड़ी युवक सभा की स्थापना

जब मैंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की थी तो मेरा स्वभाव बड़ा लजीला था। अगर कोई बाहर का आदमी घर में आ जाता तो उससे मिलने-जुलने में बड़ा संकोच होता था और कोशिश रहती थी कि वहाँ से सरक कर चला जाऊँ। पंडितजी ने जब यह देखा

तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यह लजीलापन हमारी उन्नति में बाधक होगा। अतएव उन्होंने सलाह दी कि मैं कोई छोटी-मोटी संस्था बना लूं, जिसमें लोगों से मिलने-जुलने का मौका मिलता रहे और धीरे-धीरे लजीलापन दूर हो जाये। इस उद्देश्य से मैंने एक संस्था की स्थापना की जिसका नाम 'मारवाड़ी युवक सभा' रखा। इसमें वे ही सदस्य होते थे जो ३० वर्ष से नीचे के युवक थे। चार आने महीना हमलोगों ने इसकी मेम्बर फीस रखी थी। संयोग ऐसा हुआ कि शहर के प्रायः जितने युवक थे, वे सभी इसके सदस्य बन गये। लगभग २०० सदस्यों से ५० रुपये माहवार की आमदनी आने लगी। एक नौकर केवल चिट्ठी बांटने के लिए दस-बारह रुपये महीने में रख लिया गया और अन्य कार्य लड़के स्वयं अपने हाथों से किया करते थे। इसके मंत्री थे श्री प्यारेलाल नारसंरिया। यह एक बड़े उत्साही युवक थे। इनकी दूकान ही हमलोगों के लिए शाम को अड्डे के रूप में परिणत हो गयी थीं। हमलोग शाम को थोड़े-बहुत लड़के रोज इकट्ठे हो जाया करते थे। यहीं हमारे सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश हुआ था। इसके द्वारा हमलोगों ने समाज-सुधार का काम आरम्भ किया। हर सप्ताह में एक मीटिंग होती थी; जिसमें बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के ऊपर व्याख्यान हुआ करते थे। मैं भी इसमें व्याख्यान देता था और अन्य लड़के भी। इस तरह कुछ बोलने का अभ्यास हो गया और मिलने-जुलने से धीरे-धीरे लजीलापन घटता चला गया।

इस संस्था के तत्वावधान में हमलोगों ने अंग्रेजी पढ़ाने की एवं अन्य कई कार्य किए जिनका उल्लेख यहाँ कर देना अनुचित नहीं होगा :—

(१) एक मास्टर हमलोगों ने रख लिया, जो युवक अंग्रेजी पढ़ना चाहता था उसे एक रुपया मासिक देना पड़ता था और वह प्रातःकाल घन्टे-दो-घन्टे अंग्रेजी आकर पढ़ जाता था। इस तरह १५ लड़के हो गये थे। मास्टर साहब को १५ रुपये मिल जाते थे। वही उनके लिए यथेष्ट था। संध्या के समय हमलोगों ने एक छोटी-मोटी लाइब्रेरी कायम कर दी थी; जिसमें कुछ पुस्तकें भी थीं और कुछ पत्र भी। कुछ बाहर के लड़के भी आ जाया करते थे।

शीतलाजी के मन्दिर की स्थापना

(२) पास में शीतलाजी का छोटा मन्दिर था और उसका दरवाजा भी संकीर्ण था। चैत्र मास में जब शीतलाष्टमी होती थी, तो सारे शहर की स्त्रियां पूजा करने के लिए वहाँ आया करती थीं। दुष्ट प्रकृति के कुछ लड़के वहाँ पहुँचकर स्त्रियों से छेड़खानी कर बैठते थे। एक दिन की बात है कि हमारे मित्र की स्त्री शीतलाजी की पूजा करने के लिए उस मन्दिर में गयी। जब वह जा रही थी, तो उसका ओढ़ना जमीन में लटकता हुआ जा रहा था। एक दुष्ट लड़के ने पीछे से उस ओढ़नी पर अपना लात रख दिया और उस स्त्री का ओढ़ना सिर से उतर गया। इसे लेकर हमलोगों के मित्रों में सनसनी फैल गयी और यह सोचा गया कि एक दूसरा शीतलाजी का मन्दिर स्थापित किया जाये। बातों ही बातों में हम लोगोंने कुछ रुपये इकट्ठे कर लिये और हमारे मोहल्ले में एक शीतलाजी का मन्दिर बन गया। उसके दरवाजे चौड़े रखे गये। यह प्रश्न सदा के लिए हल हो गया। अब भी ये दोनों शीतलाजी के मन्दिर मुजफ्फरपुर में मौजूद हैं।

(३) श्रावण के महीने में जब झूलन होता था तो स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड झूलन देखने रात्रि में शहरों के मन्दिर में जाया करते थे। वहाँ भी दुष्ट प्रकृति के लड़के इकट्ठे होकर उन स्त्रियों से कुछ छेड़खानी किया करते थे। समाज के बड़े-बूढ़ों से जब इसकी चर्चा की जाती थी तो वे कहा करते थे कि यह कैसे बन्द हो—"झूलन तो धार्मिक त्यौहार है, स्त्रियां देखने जाएँगी ही, उन्हें कैसे रोका जा सकता है।" हमलोग कहने को तो लड़के थे, लेकिन शादी सबकी हो चुकी थी। उस जमाने में १३-१४ वर्ष की उम्र में शादी हो ही जाती थी। हमलोगों ने यह निश्चय किया कि हमलोग अपनी-अपनी स्त्री को एक वर्ष के लिए झूलन में जाना बन्द कर दें और इसकी प्रतिज्ञा भी कर लें। स्त्रियां चाहें तो दिन में जाकर भगवान का दर्शन कर लें, मगर रात्रि में नहीं। सारे शहर के लड़कों का हस्ताक्षर हो गया। अब जिन्होंने सही नहीं भी की उनकी भी हिम्मत नहीं हुई कि वे अपनी स्त्री को रात्रि के समय झूलन देखने भेजें। सारा शहर चकित हो गया और यह रोग भी सदा के लिए मिट गया। हमलोगों की संस्था की इज्जत बूढ़ों ने भी स्वीकार कर ली।

विद्यालय की स्थापना

(४) हमलोगों ने एक छोटा-मोटा विद्यालय स्थापित करने का विचार किया और एक-एक रुपया वाला जो क्लास था; उसे बन्द कर दिया गया और चार क्लास का स्कूल खोल दिया गया। दो-तीन अध्यापक रख दिये गये। हम लोग भी स्वयं कुछ पढ़ा देते थे। लगभग २० रु० मासिक चन्दा इकट्ठा किया गया और खुली जमीन ले ली गई। धीरे-धीरे लड़कों की भर्ती होनी शुरू हुई और स्कूल देखते-देखते भर गया।

हमारी सभा का वार्षिकोत्सव बड़े धूमधाम से हुआ करता था। शहर के सारे लोग वहाँ इकट्ठे होते। अच्छे-अच्छे आदमियों को बुलाकर उनके व्याख्यान कराया जाता। एक साल हम लोगों ने स्वामी हंसस्वरूपजी का व्याख्यान कराया। ये अलवर महाराज के गुरु थे और मुजफ्फरपुर में ही रहते थे। बारह व्याख्यान इन्होंने तैयार करके रट लिया था। जब वे व्याख्यान देते तो ऐसे सुललित भाषा में देते कि लोग मंत्र-मुग्ध हो जाते। कोई नहीं जानता था कि ये व्याख्यान रटकर दे रहे हैं। ऐसे ही व्याख्यानों पर मोहित होकर महाराज अलवर उनके शिष्य बन गये थे और उनके रहने के लिए मुजफ्फरपुर में उन्होंने एक महल बनवा दिया, जिसे त्रिकुटी-महल कहते हैं। जब वे बहुत बूढ़े हो गये, तब उन्होंने अपने बारह व्याख्यानों को छपवा कर "हंसनाद" के नाम से प्रकाशित किया, तो हम लोगों को यह पता लगा कि उनके व्याख्यान रटे हुए होते थे।

इसी तरह १९१७ ई० में वार्षिकोत्सव पर मारवाड़ी इंगलिश हाई स्कूल की स्थापना की बात सोची गई। हमलोग स्कूल को चलाने के लिए कपड़े की बिक्री पर दो पैसे सैकड़े की बित्ती शहर वालों से लगवाने में समर्थ हो गये। उस समय गौशाला के लिए दो आने सैकड़े की बित्ती लगाई जाती थी। उसके अलावा दो पैसे की बित्ती विद्यालय के नाम से लगने लगी। उससे हम लोगों ने १२०० रुपये साल की आमदनी होने की आशा की थी, जो विद्यालय के लिए यथेष्ट थी। कुछ दिनों के बाद एक अंग्रेज दर्जी ने अपने फर्म को

वन्द कर दिया और पांच मारवाड़ियों ने मिलकर उस फ़र्म को खरीद लिया ; उसमें मकान और जमीन भी शामिल थी। कपड़े जब विक गये तो पांचों साझीदारों के आपस में कुछ मतभेद उत्पन्न हुआ। उन्होंने इस जमीन को वेचने का विचार स्थिर किया। जमीन काफ़ी थी, मकान भी वहुत वड़ा था। इसके कुल ग्यारह हजार रुपये लग रहे थे। हमारे शहर में वावू भगवानदास केजड़ीवाल एक धर्मपरायण सम्पन्न व्यक्ति थे। उनकी इच्छा थी कि मुजफ्फरपुर में एक धर्मशाला कायम की जाय। हमने उन्हें समझाया कि वे इस झगड़े की जमीन और मकान को खरीद लें और उस में हम लोगों की पाठशाला को ले जाकर एक हाई स्कूल के रूप में स्थापित कर दें ; तो रोज यहाँ सैकड़ों लड़के आयेंगे और पढ़ेंगे ; धर्मशाला से अधिक पुण्य होगा। वे राजी हो गये। अव जमीन और मकान वेचने वालों का मन वढ़ गया। अन्त में चौदह हजार रुपये में वह जमीन खरीद ली गयी। वीस हजार रुपये शहर से चंदा के रूपमें इकट्ठे किये गये। १९१९ ई० में वह छोटी-सी पाठशाला एक हाई स्कूल के रूप में परिणत हो गयी और इस नये मकान में जा पहुँची। नाम हुआ मारवाड़ी इंगलिश हाई स्कूल, जो अब भी कायम है। जिस वित्ती से हम लोगों ने १२०० रुपये की वार्षिक आमदनी कूती थी, उससे आज पचास हजार रुपये की आमदनी होती है। मुजफ्फरपुर कपड़े की बिक्री के लिए एक वहुत वड़ी मंडी हो गया है और कपड़े के वारे में भारतवर्ष में मुजफ्फरपुर का पांचवां-छठा स्थान हो गया है। लाखों रुपये इस वित्ती फण्ड में हो गये हैं। मारवाड़ी हाई स्कूल के अलावा दो और स्कूल खोल दिये गये हैं। बच्चों की पढ़ाई के लिए मोन्टेसरी स्कूल भी खोला गया है। ऐसे एक स्कूल के लिए लाख रुपये से अधिक की लागत का एक मकान भी वन गया है। पुराने हाई स्कूल के लिए जमीन और ले ली गयी है। इस तरह से एक दिन जो एक छोटे से पौधे के रूप में उत्पन्न हुआ था ; वह आज एक वट वृक्ष के रूप में परिणत हो गया है और बड़ी शान के साथ अपनी छाँह विखेर रहा है।

दिल्ली दरबार

१९११ ई० में दिल्ली दरवार हुआ। सम्राट एडवर्ड की मृत्यु के बाद सम्राट पंचम जार्ज का राज्याभिषेक दिल्ली में हुआ। दिसम्बर का महीना था। इस प्रकार की यह पहली घटना थी। इसलिए देश में सर्वत्र उसी की चर्चा थी। लार्ड हार्डिंग उस समय वाइसराय थे। उनकी गाड़ी को उड़ाने के लिए हिंसावादियों ने बम चलाया ; परन्तु वे बच गये। दिल्ली दरवार का एक भव्य आयोजन था, जिसे देखने के लिए लाखों आदमी हिन्दुस्तान के कोने-कोने से दिल्ली पहुँचे थे।

१९१२ ई० की जनवरी में सम्राट पंचम जार्ज कलकत्ता आये। मैं भी देखने के लिए कलकत्ता पहुँच गया। हवड़ा पुल के पास खड़े रहकर मैंने सम्राट पंचम जार्ज की गाड़ी देखी, चेहरा भी देखा। शहर में बड़ी जोरदार आतिशबाजी हुई, पटाके भी छूटे। दोनों बंगाल फिर से मिला दिया गया और एक बंगाल वन गया। लेकिन विहार कट गया और उड़ीसा के साथ मिलकर एक अलग राज्य वन गया। बंग-भंग आन्दोलन के कारण बंगाल में जो अशान्ति उत्पन्न हुई थी, वह तो मिट गयी ; परन्तु हिन्दुस्तान की राजधानी कलकत्ता से उठकर दिल्ली चली गयी। तव से अब तक दिल्ली ही भारत की राजधानी

है। परन्तु बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र होने के कारण कलकत्ता का महत्व फिर भी नहीं घटा।

जब मैं कलकत्ता आया तो ४०२, अपर चितपुर रोड (फूल कटरा) में हमारी गद्दी थी। उसके ऊपर ही मारवाड़ी छात्र निवास था। वहीं पर श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, श्री बैजनाथप्रसाद देवड़ा, श्री महादेवलाल पोद्दार इत्यादि मारवाड़ी छात्रों से भेंट हुई, जो बी० ए० पास करके आगे की पढ़ाई करना चाहते थे। उन्होंने छात्र निवास में मुझे भोजन करने का निमंत्रण भी दिया। इने-गिने पढ़े-लिखे लड़के थे। छोटा-सा छात्र निवास था। पहले-पहल हमलोगों की आपस में भेंट हुई, आपस में भाई-चारा उत्पन्न हुआ। प्राय: सभी विहार के रहनेवाले थे। बंगाल का मारवाड़ी समाज तो फिर भी शिक्षा में विहार से पीछे ही था। अंग्रेजी शिक्षा का इस समाज में श्रीगणेश ही हुआ था। जो भी लड़के पढ़ते थे, सभी सार्वजनिक जीवन में भाग लेते थे। काम करने की उमंग थी और आगे बढ़ने का उत्साह था।

'सरस्वती' में मेरी प्रथम रचना

१९१२ में ही मैंने एक लेख 'सरस्वती' को भेज दिया। सरस्वती के सम्पादक प्रख्यात विद्वान श्री महावीरप्रसादजी द्विवेदी थे, जिनकी पैनी आँखों से अगर कोई लेख निकल जाये तो वह अपने को कृत्य-कृत्य मानता था। संयोगवश मेरे लेख को उन्होंने प्रकाशित कर दिया और मुझे लिखा कि मैं नियमित रूप से लिखा करूँ। मुझे सुझाव दिया कि श्रीमती सरोजनी नायडू की जीवनी उस समय की अंग्रेजी मासिक पत्रिकाओं में सर्वश्रेष्ठ समझी जानेवाली इण्डिया रिभ्यू या मार्डन रिभ्यू में प्रकाशित हुई है, उसी के आधार पर लेख तैयार कर डालूँ। उस लेख को भी प्रकाशित कर दिया। इसी तरह तारकनाथ पालित की जीवनी लिखने के लिए उन्होंने मुझे प्रेरित किया। यह भी उच्च अंग्रेजी-पत्रों में से किसी में प्रकाशित हुआ था। पालित साहव ने बीस (२०) लाख रुपये का दान कलकत्ता विश्वविद्यालय को दिया था। मेरे तीन लेख जब सरस्वती में प्रकाशित हो गये तो लोग मुझे भी हिन्दी का एक लेखक समझने लगे। परन्तु यह लेखन-जीवन बहुत अधिक दिनों तक चल नहीं सका। जब तक मेरा विद्यार्थी जीवन रहा, तभी तक मैं कुछ लिखता रहा। लिमिटेड कम्पनी पर कुछ लेख भी उस समय के दैनिक-पत्र "कलकत्ता समाचार" में मैंने लिखे जो हमारे परम स्नेही मित्र पं० झावरमलजी शर्मा ने पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिया। उसके वाद तो मैं सोलिसिटर हो गया और भोर से रात तक वकालत की चक्की में पीसा जाने लगा। लेख लिखना भूल गया और वकील के मनसौदे बनाने लगा। लेखकीय जीवन का पुन: योग नहीं बना।

सरस्वती में प्रकाशित मेरे लेखों को देखकर गोरखपुर से श्री महावीर प्रसादजी पोद्दार से भी मेरा पत्र व्यवहार आरम्भ हुआ। श्री महावीर प्रसादजी पोद्दार जसीडीह में प्राकृतिक चिकित्सा का आरोग्य भवन चला रहे हैं। उस समय उन्होंने एक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसका नाम था "टाम काका की कुटिया" और जो 'अंकिल टाम्स केबिन' नामक प्रसिद्ध अमेरिकन पुस्तक का अनुवाद है।

१९१४ के बाद कलकत्ता में मेरा छात्र-जीवन

१९१४ में बी० ए० पास करके आगे की पढ़ाई करने के लिए मैं कलकत्ता आ गया और फूल कटरा अपनी गद्दी में रहने लगा। मारवाड़ी छात्र निवास फूलकटरा से उठकर मार्किस स्क्वायर के पास एक मकान में चला गया था। यहाँ पर कुछ हिंसावादी राजनैतिक युवकों का सम्पर्क इस छात्र निवास के साथ हो गया था। मैं भी जब कभी वहाँ जाता तो ऐसे लोगों से भेंट हो जाया करती थी। आगे चलकर १९१६ में श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका और कुछ अन्य बन्धु इस जाल में फँस गये थे। मैं अपनी गद्दी में ही रहता था और पढ़ता था इसलिए इस जंजाल से मुक्त रहा। पंडितजी, जो सदा हमारे मार्गदर्शक रहे थे, उन्होंने भी ऐसी ही सलाह दी थी कि मैं आतंकवादियों के चक्कर में न पड़ूँ।

१९१४ई० में प्रथम विश्व महायुद्ध छिड़ गया था और वह भयंकर रूप से चल रहा था। उस समय जर्मनी का राजा कैसर था। उसका बड़ा प्रभावशाली व्यक्तित्व था। बड़ी-बड़ी मूँछें, शानदार चेहरा देखकर लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। भारतवासियों की सहानुभूति भी जर्मन वालों के साथ थी और वे जर्मनी के विजय के गीत गाया करते थे। मारवाड़ियों में तो जगह-जगह कलकत्ता की नई सड़क पर 'जरमन आयो रे' का गीत बड़ा जनप्रिय हो रहा था। उस समय श्री कन्हैयालालजी चितलांगिया बी० ए० के छात्र थे और सड़कों पर जब हमलोग साथ चलते थे तो जर्मनी का ही गीत गाया करते थे। अब भी वे जीवित हैं। उस समय बर्मन मार्केट के ऊपर के तल्ले के कमरे में रहते थे और उसी के बगल में श्री वाराणसी प्रसादजी झुनझुनवाला भी पढ़ते थे।

१९१६ ई० में पुलिस ने यकायक मारवाड़ी युवकों पर धावा बोल दिया और एक साथ ही सर्वश्री कन्हैयालालजी चितलांगिया, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, फूलचन्दजी चौधरी, ज्वालाप्रसादजी कानोड़िया एवं अन्य युवकों को गिरफ्तार कर लिया। वे लोग भारत-रक्षा कानून में बहुत दिनों तक या तो जेलों में बन्द रहे या बंगाल से निकाल दिये गये। जब पुलिस ने चितलांगियाजी के कमरे पर धावा मारा तो झुनझुनवालाजी हमारे पास आये और यह संवाद दिया। मेरी कुछ पुस्तकें चितलांगियाजी के पास थीं, इसलिए मुझे भी डर लगने लगा, क्योंकि पुलिस किताबों इत्यादि को देखकर पारस्परिक संबंध स्थापित किया करती थी। परन्तु मुझे तो पुलिस ने कुछ नहीं कहा। लेकिन हमारे अन्य बन्धु पकड़े गये। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला को भी पकड़ने के लिए समन वारंट निकल चुका था, परन्तु वे पकड़ में नहीं आये और बच गये। वर्त्तमान मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, पहले मारवाड़ी सहायक समिति के नाम से काम करती थी। डाक्टर कैलाश बाबू का बड़ा प्रभाव था। सरकार में भी उनकी बड़ी धाक थी। आगे चलकर उन्हें सर की उपाधि सरकार ने दी थी। उस समय के सरकारी वकील तारकनाथ साधु और पुलिस के डिप्टी कमिश्नर श्री पूर्णचन्द्र लाहिरी का मारवाड़ी समाज पर बहुत बड़ा प्रभाव था। वे लोग जो चाहते, वह करना पड़ता था। सर कैलाशचन्द्र बसु नवगठित मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के सभापति बने और इस तरह इस संस्था को सरकार के कोप से बचाया गया, नहीं तो वह भी कालकवलित होने ही वाली थी। सरकार का कोप इसके ऊपर पड़ चुका था। इस घटना के बाद आतंकवादियों का प्रभाव इस समाज के युवकों पर समाप्त-प्राय हो गया।

सोलिसीटर बनने की प्रेरणा

मैं जब कलकत्ता आया तो मेरा इरादा केवल एम० ए० और बी० एल० की परीक्षा पास करके मुजफ्फरपुर लौट जाने का था, जहाँ मैं वकालत आरम्भ करना चाहता था। परन्तु कलकत्ता आने पर मित्रों की सलाह यही रही कि मैं सोलिसीटर हो जाऊँ और कलकत्ता में ही रहकर वकालत करूँ। श्री देवीप्रसाद खेतान उस समय सोलिसीटर वन चुके थे और उनकी आफिस वड़ी शान से चल रही थी। वे स्वयं भी एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। छोटी अदालत में भी वे वकालत करने जाया करते थे। यहीं उन्होंने काफी नाम कमाया था। इसे देखकर मैंने भी सोलिसीटर होना ही अच्छा समझा और सोलिसीटर वन गया।

कलकत्ता में मैंने विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र में राजनीति के साथ एम० ए० की पढ़ाई प्रारम्भ की और यूनिवर्सिटी लॉ कालेज में साथ-साथ कानून पढ़ना भी शुरू किया। कलकत्ता आते ही यहाँ के सार्वजनिक जीवन से भी संवंध जुड़ गया। खेतानों के यहाँ भी मेरा आना-जाना जारी हो गया था।

मारवाड़ी समाज-सुधार का आन्दोलन व जाति-बहिष्कार का दौर

इस समय मारवाड़ी समाज के जितने भी युवक शिक्षा के क्षेत्र में आगे वढ़े थे, वे प्रायः सभी सार्वजनिक क्षेत्र में भी काम करते थे। मैंने मुजफ्फरपुर में जो कुछ इस क्षेत्र में काम आरम्भ किया था, उसका जिक्र ऊपर कर चुका हूँ। कलकत्ता आने के वाद मैं यहाँ के लिए विल्कुल नया आदमी था। धीरे-धीरे परिचय स्थापित होने लगा। इसी समय श्री कालीप्रसादजी खेतान विलायत से वैरिस्टरी पास करके वापस कलकत्ता आये थे। उनके आने के वाद समाज में उनके विरुद्ध आन्दोलन शुरू हो गया। सनातनी दल विलायत यात्रा को धर्म-विरुद्ध मानता था और श्री कालीप्रसादजी खेतान को जाति-बहिष्कृत करना चाहते थे। इसको लेकर समाज में परस्पर खींचा-तानी शुरू हो गयी थी। एक तरफ वे युवक थे जो सुधारक थे और विलायत यात्रा के पक्षपाती थे, दूसरी ओर वे थे जो समाज में अच्छी प्रतिष्ठा रखते थे, धनवान थे लेकिन अपने को सनातनी दल का नेता मानते थे। वे लोग श्री कालीप्रसादजी खेतान की विलायत यात्रा का विरोध कर रहे थे। उस समय श्री सनातन धर्मावलम्बी अग्रवाल सभा, ४०२, अपर चितपुर रोड, फूलकटरा में थी। हमारी गद्दी भी उसी तल्ले पर थी। और हमारी गद्दी के नाम से हमलोग भी इस सभा के सदस्य थे।

जव विलायत विरोधी आन्दोलन शुरू हुआ, तो श्री महादेवलालजी पोद्दार जो बी०ए० पास कर चुके थे, और छात्र निवास में ही रहा करते थे तथा हमारे पास आया-जाया करते थे, उन्होंने मुझ से कहा कि सनातन धर्मावलम्बी अग्रवाल सभा में एक मीटिंग होनेवाली है। उस मीटिंग में श्री कालीप्रसादजी खेतान को जाति वहिष्कृत करने का प्रस्ताव पास होने वाला है। उस प्रस्ताव का विरोध करना जरूरी है। लेकिन हमारे फर्म के सिवाय और कोई भी ऐसे सदस्य नहीं हैं, जिनसे यह आशा की जा सके। अतएव मैं उस मीटिंग में उपस्थित रहूँ। वे लोग यदि खेतानजी को जाति वहिष्कृत करने का प्रस्ताव करें, तो मैं उसका विरोध करूँ। मैं विलायत यात्रा का पक्षपाती था, परन्तु कलकत्ता के जीवन से

सर्वथा अनभिज्ञ था। अतएव मैंने पोद्दारजी से कहा कि मैं तो किसी को जानता भी नहीं और मीटिंग में मुझे क्या करना चाहिए यह भी मुझे मालूम नहीं। वे मुझे श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान के यहाँ ले गये। वहाँ उन लोगों से मेरी बातें हुई। उन्होंने मुझे सारी बातों से अवगत करा दिया और कहा कि मुझे इस मीटिंग में जाकर प्रस्ताव का विरोध करना चाहिए। प्रस्ताव तो वे लोग अवश्य पास कर लेंगे, क्योंकि उनका प्रचण्ड बहुमत है। लेकिन फिर भी उनकी मीटिंग में विरोध हो, यह वांछनीय होगा। मैं इसके लिए राजी हो गया। मैंने पोद्दारजी को भी कहा कि वे भी हमारे साथ उस मीटिंग में चलें तो अच्छा हो। वे सदस्य तो नहीं हैं अतएव वोट नहीं दे सकते, लेकिन उनके रहने से मुझे वल मिलेगा। जव मीटिंग प्रारम्भ हुई तो मैंने देखा कि उस समय के मारवाड़ी समाज के बहुत से लब्ध-प्रतिष्ठित लोग वहाँ उपस्थित थे। उनमें ब्राह्मण भी थे और वैश्य भी। वेश्यों में श्री केशोरामजी पोद्दार, श्री रूढ़मलजी गोयनका आदि थे। इनके अलावा और कौन-कौन से व्यक्ति थे यह मुझे स्मरण नहीं। श्री रूढ़मलजी गोयनका बहुत विद्याप्रेमी समझे जाते थे। उनके घर में एक अच्छी-सी लाइब्रेरी थी। विचारों से कुछ प्रगतिशील समझे जाते थे; परन्तु इस विषय में वे कट्टरपंथी थे। ब्राह्मणों में बहुतों को मैं पहचानता नहीं था; लेकिन श्री हरिवक्सजी गोस्वामी को मैं पहचानता था। वे उस जमाने के बहुत अच्छे वैद्य समझे जाते थे। इनका औषधालय भी फूलकटरा के उसी तल्ले पर था, जिस तल्ले पर हमारी गद्दी थी। इसलिए उनसे भी परिचय हो चुका था। श्री गोविन्दनारायण मिश्र, जो उस समय के प्रख्यात साहित्यिकों में से थे, वे उस सभा के सभापति थे।

विलायत-यात्रा के संवंध में चर्चा चली कि यह भारतीय परम्परा के विरुद्ध है। अतएव श्री कालीप्रसादजी खेतान को जातिच्युत किया जाय। जव यह प्रस्ताव पास किया जाने वाला था और वोट लेने का समय उपस्थित हुआ, तो मैंने असहमति प्रकट की। इसे देखकर वहाँ जो सज्जन उपस्थित थे, उनके कान खड़े हुए और उन्होंने सभा के कर्मचारी से जिज्ञासा की कि मैं सभा का सदस्य हूँ या नहीं? जब कर्मचारी ने कहा कि मैं सभा का सदस्य हूँ, तो वे चुप हो गये और मुझ से पूछने लगे कि मैं इस प्रस्ताव का क्यों विरोध कर रहा हूँ। मैंने उनसे यही कहा कि मैं विलायत-यात्रा का पक्षपाती हूँ, समाज के लिए इसकी आवश्यकता समझता हूँ। इसका विरोध करना समाज के लिए अच्छा नहीं है। इसे सुनकर उन लोगों ने कहा कि यह कार्य धर्म-विरोधी है और भ्रष्टाचार फैलाने वाला है। अगर समाज में विलायत-यात्रा प्रचलित हो गयी तो समाज भ्रष्ट हो जाएगा। अतएव इसे वन्द करना चाहिए। इस पर बहुत देर तक बातें चलती रहीं। सभा के सभापति श्री गोविन्दनारायणजी मिश्र, श्री रूढ़मलजी गोयनका, श्री केशोरामजी पोद्दार, श्री हरि-वक्सजी गोस्वामी आदि उपस्थित सज्जनों ने मुझे समझाने की कोशिश की। मैंने उनसे यही जिज्ञासा की कि श्री कालीप्रसादजी खेतान को किस कारण से जाति-च्युत किया जाता है। वे तो अपने साथ एक रसोइया भी ले गये थे और छुआछूत का भी परहेज किया था, जो कि विलायत जैसे देश में संभव नहीं होता। अगर समुद्र-यात्रा के कारण ही उन्हें जाति-च्युत किया जाता है तो हमारे सैकड़ों भाई रंगून, मौलवीन आदि बर्मा के विभिन्न स्थानों में समुद्र-यात्रा करके गये हैं। चमड़ियों के खानदान के कुछ व्यक्ति चीन तक भी गये हैं, तो उन्हें भी जाति-च्युत क्यों नहीं किया गया? उन लोगों ने उत्तर दिया कि

उनलोगों का आचार भ्रष्ट नहीं हुआ है। मैंने जिज्ञासा की कि श्री कालीप्रसादजी खेतान का आचार कहाँ भ्रष्ट हुआ है, वे तो हिन्दुस्तान से रसोइया भी साथ ले गये थे। ऐसा कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है जिससे कि यह सिद्ध हो सके कि उनका आचार भ्रष्ट हुआ है। तब उनमें से किसी ने कहा कि हमलोगों के पास ऐसी फोटो मौजूद है, जिनसे सिद्ध होता है कि उनका आचार शुद्ध नहीं रहा है। जब मैंने फोटो को उपस्थित करने के लिए कहा तो वे कोई फोटो उपस्थित नहीं कर सके। मैंने पुनः पूछा कि आचार भ्रष्टता का झूठा आरोप क्यों लगाया जा रहा है? जब इसका वे कोई उत्तर नहीं दे सके तो उन लोगों ने कहा कि समुद्र-यात्रा का शास्त्रमें निषेध है, रंगून वगैरह की यात्रा तो हिन्दुस्तान के पास है और हजारों आदमी समाज के वहाँ जा चुके हैं और वहाँ पर हमलोगों के जैसा ही आचार-व्यवहार करते हैं। तब मैंने उनसे यह निवेदन किया कि विलायत-यात्रा शास्त्र विरुद्ध है—इस प्रश्न पर भी सब एकमत नहीं हैं। डा० गंगानाथ झा जो प्रसिद्ध विद्वान हैं, उन्होंने काशी के एक मुकदमें में इजहार दिया था, जिसमें विलायत-यात्रा के समर्थन में उन्होंने काफी प्रमाण दिये थे। इसका उल्लेख करते हुए मैंने कहा कि आप उनके इजहार को पढ़ें तो मालूम होगा कि हमारे शास्त्रों में विलायत-यात्रा के समर्थन में भी बहुत कुछ लिखा गया है, ऐसी स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है कि शास्त्रों में समुद्र-यात्रा का केवल विरोध ही है। रही बात आचार-व्यवहार की, तो चीन में सभी मांसभक्षी हैं। कहने को वे बौद्ध हैं, परन्तु मांसभक्षण इतनी दूर तक बढ़ गया है कि कोई चीज भी उन्होंने नहीं छोड़ी। ऐसी स्थिति में चमड़िया परिवार को क्यों नहीं जाति-च्युत किया गया?—चीन भी कोई हमारे नज़दीक नहीं है, वह भी काफ़ी दूर है। इस तरह विवाद होते बहुत-सा समय व्यतीत होने लगा, तब श्री रूढ़मलजी गोयनका ने कहा कि तुम अभी लड़के हो, कालेज से अभी पास करके आये हो—तुम्हें पूरी बातें मालूम नहीं हैं, तुम कभी मुझसे मिलो तो मैं तुम्हें समझाऊँगा कि विलायत-यात्रा में क्या दोष है? मैंने उनके प्रति अपना आभार प्रकट किया, परन्तु प्रस्ताव के संबंध में मैंने यही कहा कि जब तक मैं यह नहीं समझ लूँ कि विलायत-यात्रा करना उचित नहीं है, तब तक मैं कैसे इस प्रस्ताव का समर्थन कर सकता हूँ। मैं इसके प्रतिवाद में इस सभा से उठकर चला जाता हूँ। मुझे भीतर से डर भी लग रहा था कि कहीं वहाँ उपस्थित लम्बी-लम्बी दाढ़ी वाले ब्राह्मण देवता जो मेरी बातों को सुनकर अपने दांत किट-किटाते थे—आक्रमण न कर बैठें। इसीलिए मैंने अपने मित्र श्री महादेव-लाल पोद्दार को साथ में रखा था और ठीक दरवाजे की बगल में बैठा था कि कहीं यदि आक्रमण हुआ तो सीधे अपनी गद्दी का रास्ता पकड़ूँ। परन्तु ऐसी कोई दुर्घटना नहीं हुई और मैं राजीखुशी अपनी गद्दी में पहुँच गया। उन लोगों को तो प्रस्ताव पास करना ही था, और उन्होंने प्रस्ताव पास भी कर दिया और जाति-बहिष्कृत का आन्दोलन जोरों से चलाया भी। उस जमाने में जाति-बहिष्कृत होने का भय सबों को रहता था क्योंकि विवाह-शादियों के संबंध नहीं मिलते थे। ब्राह्मण उनके यहाँ श्राद्ध इत्यादि अवसरों पर भोजन करने नहीं जाते थे। और भी कई प्रकार की असुविधाएँ होती थीं। अतएव जाति-बहिष्कृत होना अपमानजनक बात थी।

इस जाति-बहिष्कार के आन्दोलन को चलाने के लिए सनातनी दल ने "कलकत्ता समाचार" नामक एक दैनिक पत्र निकाला। जहाँ तक मुझे स्मरण है, इसके सम्पादक

होकर आये श्री द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी और उसके वाद पंचकौड़ी वावू। साहित्य के क्षेत्र में दोनों ही प्रसिद्ध विद्वान थे। इसी तल्ले पर गोविन्द प्रेस भी था, जिसके साथ पं० झावरमलजी शर्मा संबंधित थे। पं० राधाकृष्णजी मिश्र, जो समाज में अच्छी प्रतिष्ठा रखते थे—विद्वान मनुष्य थे और पं० माधव प्रसादजी मिश्र के लघु भ्राता थे, वे भी यहीं रहते थे। पं० माधव प्रसाद मिश्र अपने जमाने के हिन्दी के लेखकों में काफी सम्माननीय थे। धार्मिक विषयों में मेरा विचार सनातनियों से मिलता-जुलता था, केवल सामाजिक सुधारों में उनसे भिन्न मत रखता था, अतएव सनातनी दल में मेरे प्रति सहानुभूति भी थी। मैं माथे पर चन्दन लगाया करता था। दोनों समय संध्या किया करता था। पानी भी लाने के लिए नीचे नल तक स्वयं जाया करता था। श्राद्ध इत्यादि में विश्वास रखता था। धर्मशास्त्रों में आस्था थी। अतएव पं० राधाकृष्ण मिश्र, श्री झावरमल शर्मा तथा श्री हरिवक्स गोस्वामी इत्यादि सनातन दल के नेता भी मुझ से प्रेम और सहानुभूति का वर्ताव रखते थे। इधर वैश्य समाज के श्री रामदेवजी चोखानी, उनके पिता श्री दौलतरामजी चोखानी, श्री चिम्मनलालजी गनेरीवाल, श्री जुहारमलजी खेमका इत्यादि सनातनी दल के मुखियों की भी सहानुभूति मेरे साथ थी। केवल विलायत-यात्रा के प्रश्न पर ही मेरा और उनलोगों का मतभेद था। पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी शतरंज खेल के वड़े शौकीन थे। मुझे भी इसका शौक था। इसलिए घंटों हमलोग आपस में शतरंज खेला करते थे। 'कलकत्ता समाचार' का कार्यालय, रामकुमार रक्षित लेन, (चीनी पट्टी) में था। वहाँ भी मेरा आना-जाना रहता था। रामकुमारजी भगत वगैरह कलकत्ता समाचार के संचालकों में से थे, उनलोगों से भी परिचय हो गया था। कुछ दिनों के वाद कलकत्ता समाचार के सम्पादक होकर आये श्री गणेशसिंहजी मनोरिया। इनका व्यक्तित्व वड़ा प्रभावशाली था—आदमी भी वड़े कर्मठ थे। लेखक भी तगड़े थे और राजपूती दर्प भी था। श्री मूलचन्दजी अग्रवाल भी उसी समय कलकत्ता में आये थे और "कलकत्ता समाचार" में सहायक सम्पादक के रूप में काम करते थे। माथे में वे भी चन्दन लगाया करते थे। व्याख्यान अच्छा दिया करते थे। व्यक्तित्व भी अच्छा था। प्राय: संध्या समय कलकत्ता समाचार में मैं जाया करता था और समय-समय पर उस पत्र में कुछ लिखा भी करता था। लिमिटेड कम्पनियों पर भी कुछ लेख मैंने लिखा था, जो पीछे पुस्तक के रूप में पं० झावरमलजी शर्मा ने प्रकाशित किया था।

श्री मूलचन्दजी अग्रवाल का विवाह गोरखपुर के एक प्रसिद्ध वकील श्री युगलकिशोरजी की कन्या से तय हुआ। श्री युगलकिशोरजी समृद्ध व्यक्ति थे। श्री मूवलचन्दजी की स्थिति उस समय नहीं के वरावर थी। अतएव इस संबंध की समाज में काफी चर्चा हुई। जब वारात गोरखपुर जाने लगी तो "कलकत्ता समाचार" के सम्पादक श्री मनोरियाजी ने मुझ से भी वारात में चलने के लिए आग्रह किया। श्री मूलचन्दजी की ओर से श्री मनोरियाजी ने ही लोगों को निमंत्रण दिया था, और सारे विवाह का प्रवन्ध उन्हीं के हाथों में था। वारात गोरखपुर पहुँची और विवाह में श्री मूलचन्दजी ने विवाह की प्रतिज्ञाएँ संस्कृत में अपने मुँह से उच्चारण करना आरम्भ किया तो सभी ने उनकी प्रशंसा की। उनकी वोली में ओज था और गाम्भीर्य था। विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ। वारात कलकत्ता लौटी और मैं मुजफ्फरपुर चला गया। उत्तर प्रदेशवाले हिन्दीभाषियों में

वारातियों को भी कुछ भेंट देने का रिवाज था और मुझे भी एक कपड़े का थान भेंट में दिया गया। मारवाड़ी समाज में तो इस तरह का कोई रिवाज है नहीं और न पहले ही था। तभी से श्री मूलचन्दजी से हमारा घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ और जब तक वे जीवित रहे, तब तक वह संबंध बना रहा और उसके बाद उनके परिवार के साथ आजतक भी कायम है।

कलकत्ता की कुछ अन्य सामाजिक संस्थायें एवं देश की राजनैतिक गतिविधि

जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया है, जब मैं कलकत्ता आया था तो मेरा परिचय बहुत कम व्यक्तियों से था। उस समय मुजफ्फरपुर के रहनेवाले श्री मदनगोपालजी गाड़ोदिया कलकत्ता आ गये थे और उन्होंने यहाँ पर मल्लिक स्ट्रीट एवं हरिसन रोड के कोने पर जो मकान है, उसके एक तल्ले पर दर्जी का काम आरम्भ किया था। काफ़ी कपड़े भी रखते थे और सिलाई का काम भी होता था। वे बहुत चलते-पुर्जे आदमी थे। थोड़े ही दिनों में इन्होंने कलकत्ता के सामाजिक कार्यकर्त्ताओं और अन्य लोगों से अच्छा संबंध स्थापित कर लिया था। इनकी दुकान पर लोग आया-जाया करते थे। मैं भी शाम के वक्त यहीं चला जाया करता था और वहीं बहुत से आदमियों से मेरा परिचय हो गया था। श्री गाड़ोदियाजी मुझे एक बार मारवाड़ी सहायक समिति की मीटिंग में ले गये और वहाँ के कार्यकर्त्ताओं से मेरा परिचय कराया। श्री जुगलकिशोर जी बिड़ला उसका सभापतित्व कर रहे थे। उस समय वे छोटी उम्र के ही थे और काफी सुन्दर व्यक्तित्व था। इसी मारवाड़ी सहायक समिति का नाम आगे बदलकर मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी हो गया। धीरे-धीरे थोड़े ही दिनों में कलकत्ता के सामाजिक जीवन में मैं भी प्रवेश कर गया।

मारवाड़ी एसोसिएशन उस समय की एक प्रमुख संस्था थी, जिसमें समाज के जितने बड़े आदमी थे, शामिल थे और यह समाज का प्रतिनिधित्व करती थी। उद्योग, वाणिज्य और व्यवसाय के संबंध में सरकार के पास जो कुछ पत्रादि दिये जाते थे, इसी संस्था के द्वारा दिये जाते थे। सरकार भी इस संस्था का सम्मान करती थी। सामाजिक विषयों में भी यह संस्था सबसे प्रभावशाली थी। इस में सर हरिरामजी गोयनका से लेकर समाज के जितने भी धनीमानी व्यक्ति थे, वे सब शामिल थे।

मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्स, जिसका नाम अब भारत चेम्बर आफ कामर्स हो गया है, मारवाड़ी एसोसिएशन की तरह कपड़ा संबंधी विवादों को निपटाने के लिए संस्था थी। मारवाड़ी एसोसिएशन का सदस्य होना महत्व का विषय समझा जाता था। किसे सदस्य लें और किसे न लें, इस पर जब तक उसकी कार्यकारिणी निश्चय न कर ले, तब तक वह सदस्य नहीं बनाया जाता था। मुझे उनलोगों ने मारवाड़ी एसोसिएशन का सदस्य बनाना स्वीकार कर लिया और मैं उसमें आने-जाने लगा। कुछ समय के बाद उन्होंने मुझे उसके सहायक मंत्री के पद पर भी चुन लिया। जब भी सरकार के पास डेपुटेशन जाता तो ये लोग चपकन, पायजामा और एंडी हुई चद्दर और पगड़ी पहन कर जाया करते थे। कोई-कोई चोगा भी पहनते थे। सभी कपड़े प्रायः काले रंग के ही होते थे। इसलिए इन्हें लोग चपकनिया पार्टी कहा करते थे। सामाजिक सुधारों

में ये लोग आगे बढ़ना पसन्द नहीं करते थे, इसलिए इनके साथ नवीन पढ़े-लिखे युवा वर्ग का संघर्ष रहता था। फिर भी जब श्री कालीप्रसादजी खेतान, एम० ए० की परीक्षा में कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में सर्वप्रथम हुए, तो उनका स्वागत इस संस्था से किया गया और गोल्ड मेडल भी उनको दिया गया। जब उन्होंने विलायत जाने के लिए अपना संकल्प जाहिर किया, उस समय भी कोई विरोध नहीं हुआ था—विरोध तो आगे जाकर उत्पन्न हुआ।

श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय की जब नींव दी गयी थी, उस समय सर आशुतोष मुखर्जी ने भी श्री कालीप्रसादजी खेतान के विलायत जाने की चर्चा की थी और उसका समर्थन भी किया था। श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के वर्त्तमान नये मकान की नींव पड़ चुकी थी। उस समय इसमें मुफ्त पढ़ाई होती थी। सब जाति के लोग पढ़ते थे। जो मुफ्त नहीं पढ़ना चाहते थे, वे एक रुपया मासिक फीस देते थे। शिक्षा के क्षेत्र में यह मारवाड़ी समाज की सबसे प्रमुख संस्था थी। बालिकाओं की शिक्षा के लिए सावित्री पाठशाला की स्थापना हो चुकी थी, उसमें भी महिलाएं शिक्षिका नहीं रखी गयी थीं, बल्कि पुरुष ही पढ़ाया करते थे। लड़कियों का पाठशाला की पढ़ाई तक ही पठन-पाठन होता था, उसके आगे पढ़ना सनातनी दल पसन्द नहीं करता था।

खेतान परिवार शिक्षा के क्षेत्र में सबसे आगे था। श्री कालीप्रसादजी खेतान अंग्रेजी में विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम हुए ही थे। श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान, गणित शास्त्र में, एम० ए० प्रथम डिवीजन में पास हुए थे। श्री देवीप्रसादजी खेतान सोलिसीटर हो चुके थे और उन्होंने अपना आफिस खोल दिया था, जो बहुत अच्छी तरह से चलने लगा था। उनके लघु भ्राता श्री चण्डीप्रसादजी खेतान जो अब इस संसार में नहीं हैं, उन्होंने भी बी० ए० की परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान पाया था और ७०० में ६७० नम्बर इनको प्राप्त हुआ था, जो कलकत्ता विश्वविद्यालय के इतिहास में एक नयी बात थी। इनको ईशान स्कालरशिप मिली था, जिसका मिलना बहुत गौरवास्पद समझा जाता था। एक परिवार से चार भाई इतनी ऊंची शिक्षा प्राप्त करें, और विश्वविद्यालय में इतना ऊंचा स्थान पायें, यह केवल मारवाड़ी समाज में ही नहीं, बल्कि बंगाली समाज में भी एक अभूतपूर्व घटना थी। इससे बंगाली समाज में भी खेतान परिवार बड़ी आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा। सर आशुतोष मुखर्जी इन लोगों के बहुत बड़े समर्थक थे और इन्हें बहुत ऊंची निगाहों से देखते थे। जब भी मौका लगता तभी इनको आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देते रहते थे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू भी श्री देवीप्रसाद जी खेतान के साथ प्रेसिडेन्सी कालेज में पढ़ते थे। जब उनकी पढ़ाई समाप्त हुई तो वे कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत करने लगे, उस नाते से भी वे श्री देवीप्रसादजी खेतान के यहाँ आया-जाया करते थे। मेरा भी राजेन्द्र बाबू से परिचय हो गया था। मैं भी बिहार से आया था और वे भी बिहारी थे, इस नाते भी पारस्परिक संबंध मधुर बना हुआ था। उस समय बिहारी स्टुडेन्ट्स एसोसिएशन के नाम से बिहारी छात्रों की एक संस्था राजेन्द्र बाबू ने स्थापित की थी, उसमें भी मैं आया-जाया करता था। मेरा बिहारी छात्रों से काफी सम्पर्क था। बिहार वाले हमें बिहारी समझते और मैं भी अपने को बिहारी समझता था। अतएव बिहारी छात्रों के कार्यों में मैं सम्मिलित हुआ करता था।

इस तरह मेरी पढ़ाई कलकत्ता में चली। लेकिन प्रथम विश्व महायुद्ध १९१४ ई० में ही आरम्भ हो गया था और एमडेन नामक जहाज जो जर्मनों का था, वह मद्रास के समीप आकर कुछ गोले बरसा गया था। इससे देश में बड़ा आतंक छा गया। लोगों को भय होने लगा कि कहीं जर्मनी का आक्रमण हिन्दुस्तान पर न हो जाये। कलकत्ता से भगदड़ शुरू हो गयी थी। बहुत से आदमी कलकत्ता छोड़कर अपने-अपने स्थानों को वापस जाने लगे थे। मेरी भी मुजफ्फरपुर से बार-बार बुलाहट होती कि मैं वापस चला आऊँ, परन्तु मैं तो पढ़ता था और वहाँ जाने से पढ़ाई में हर्ज होता। साथ ही ऐसा कोई खतरा भी नजर नहीं आता था। मैं कलकत्ता में ही रहा और मैंने अपनी पढ़ाई को जारी रखा। इस घटना के सिवा और कोई बात युद्ध के कारण भारतवर्ष में नहीं हुई। हवाई जहाज तो उस समय बने ही थे, परन्तु उनका इस्तेमाल युद्ध में बहुत कम पैमाने पर ही हो सकता था। परन्तु जैसे-जैसे युद्ध बढ़ता गया वैसे-वैसे हवाई जहाज का प्रयोग भी बढ़ता गया। लड़ाई बड़ी गहरी चल रही थी और सारे संसार पर इसका असर पड़ रहा था। चीजें बहुत महंगी होती जा रही थीं। इसके कारण व्यापारी समाज समृद्ध भी होता रहा था। सरकारी नियंत्रण बहुत थोड़े ही क्षेत्रों में आरम्भ हुआ था। मकानों की कमी न हो जाये और इनका भाड़ा अनाप-सनाप न बढ़ जाये, इसके लिए तो कानून बना था ; परन्तु चीजों के दाम नहीं बढ़ने पाये, इसके लिए कोई विशेष कदम नहीं उठाया गया था। अधिकतम मूल्य निर्धारित करना आवश्यक नहीं समझा गया था और अगर कहीं हुआ भी हो, तो मुझे याद नहीं। शायद किसी-किसी चीज में हुआ हो। ब्रिटिश सरकार इस युद्ध में भारतीयों की सहायता चाहती थी।

१९१५ ई० में महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत में आ गये थे। दक्षिण अफ्रीका में इन्होंने जो सत्याग्रह चलाया था, वह संसार में एक नयी घटना थी। अतएव भारत-वर्ष में भी इनका नाम विख्यात हो चला था। इसी साल हरिद्वार में कुम्भ का मेला था। मैं भी पंडितजी के साथ इस मेले में गया था। महाराज दरभंगा भी वहाँ पधारे थे। उन्हीं के कैम्पों में हमलोग ठहरे थे। स्नान के दिन संन्यासियों की इतनी भीड़ थी कि हर की पैड़ी में स्नान करना असंभव हो गया था। अतएव कनखल जाकर गंगाजी में स्नान किया और दूसरे दिन हर की पैड़ी में आकर स्नान किया। महात्मा गांधी के कैम्प में भी गया। वहाँ बहुत बड़ी भीड़ लगी रहती थी और बड़े-बड़े नेता उनसे मिलने आया करते थे। गांधीजी काठियावाड़ी वेश में थे। सिर के ऊपर मुरेठा बांधे रहते थे। बदन में पुराने ढंग की मिर्जई और एक चद्दर रखते थे। हमलोगों को उनसे बातें करने का तो मौका नहीं मिला, लेकिन उनके दर्शन हो गये। यह पहला अवसर था जब महात्मा गांधी का दर्शन हुआ। वहाँ से आते समय हमलोग महाराज दरभंगा की स्पेशल ट्रेन में घर लौट आये।

१९१६ ई० में श्रीमती एनी बेसेण्ट ने होम रूल का आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन का उद्देश्य था भारतवर्ष को स्वराज्य दिलाना। लेकिन उस समय का स्वराज्य पूर्ण स्वराज्य नहीं होकर 'डोमिनियन स्टेट्स' के नाम से मांगा था। उस तरह का स्वराज्य कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों को प्राप्त था। डा० एनी बेसेण्ट बहुत अच्छी वक्ता थीं और जब ये बोलती थीं तो लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे। इनका व्यक्तित्व भी

प्रभावोत्पादक था। सरकार ने इन्हें विना मुकदमा चलाये ही कैद में डाल दिया। इससे उनकी लोकप्रियता और भी वढ़ गयी।

इसी साल मुस्लिम लीग और कांग्रेस में भी समझौता हो गया। मुस्लिम लीग की स्थापना १९०६ ई० में हो गयी थी। उसकी मांग यह थी कि मुसलमानों को अलग से प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। मुसलमान, मुसलमानों को ही वोट देते और हिन्दू, हिन्दू को। अंग्रेज सरकार का उठाया हुआ यह एक खतरनाक काम था, जिससे हिन्दू और मुसलमान एक न हों, लेकिन १९१६ ई० में जव लखनऊ में कांग्रेस हुई, तव दोनों ने यह आवश्यक समझा कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिए दोनों का मिलना आवश्यक है और एक समझौता हुआ, जो लखनऊ पैक्ट के नाम से जाना गया।

१९१७ ई० में कलकत्ते में शानदार कांग्रेस हुई। डा० एनी वेसेण्ट को उसका सभापति चुना गया था, जिन्हें सरकार ने कैद से मुक्त कर दिया था। इनका वड़ावाजार से एक वहुत वड़ा जुलूस निकला था और उस साल की कांग्रेस वड़ी शानदार हुई थी। डा० एनी वेसेण्ट का प्रभाव देश में वहुत वढ़ गया था। महात्मा गांधी उस समय तक आगे नहीं आये थे, वे देश की स्थिति का अध्ययन करने में ही लगे हुए थे। मैं भी इस कांग्रेस में शामिल हुआ था, लेकिन डेलीगेट के रूप में नहीं। उस समय जो भी निश्चित रकम फीस के रूप में दे देते थे, वही कांग्रेस के डेलीगेट हो जाते थे। डेलीगेट चुनने की कोई प्रथा नहीं थी। कांग्रेस में शामिल होनेवाले आदमी वहुत कम होते थे, क्योंकि अंग्रेजों से लोग डरते थे और कांग्रेस में शामिल होने में हिचकते थे। मैं प्रेस के प्रतिनिधि के रूप में इसे देखने के लिए गया था। इसका एक और भी कारण था। १९१७ ई० के नवम्वर में मुझे विहार और उड़ीसा की सरकार ने डेपुटी मजिस्ट्रेट व डेपुटी क्लेक्टर के पद पर नियुक्त कर दिया था। मैं इस पद को स्वीकार करना नहीं चाहता था और इसलिए मैंने तीन महीने की इजाजत मांगी थी, ताकि मैं यह फैसला कर सकूं कि मुझे इस पद पर जाना है या नहीं? इसी अवधि के अन्दर कांग्रेस कलकत्ता में हुई थी। अतएव डेलीगेट वनकर जाना संभव नहीं था। उस समय डेपुटी मजिस्ट्रेट होना वहुत गौरवपूर्ण वात समझी जाती थी, क्योंकि एक हिन्दुस्तानी के लिए इससे आगे का पद अवरुद्ध था। जितने डिस्ट्रीक्ट मजिस्ट्रेट होते थे, वे आई० सी-एस० हुआ करते थे और विलायत से पास करके आते थे। वहीं से उनकी नियुक्ति होती थी। हिन्दुस्तानी आई० सी-एस० गिनती में वहुत थोड़े थे। अधिकांशतः संख्या अंग्रेजों की थी। उन्हीं के भरोसे व्रिटिश शासन हिन्दुस्तान में चलता था। जव ये सरकारी अधिकारी सड़कों पर चलते थे, तो लोग इन्हें वड़े सम्मान के साथ देखते थे। इनको इतना अधिक अधिकार भी था कि जो चाहते सो कर सकते थे। म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट वोर्ड के चेयरमैन भी यही होते थे। शासन के हर महकमें में ऊंचे आफिसर अंग्रेज ही हुआ करते थे। मैं डेपुटी डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट नहीं हो सकता था, क्योंकि इस पद पर उन्हीं की नियुक्ति होती थी, जो वड़े-वड़े घराने के थे, वड़े-वड़े जमींदार थे, जिन्हें अंग्रेज सरकार अपना स्तम्भ समझती थी। कोई परीक्षा नहीं थी, सरकार जिसे चाहे नियुक्त करती थी। मेरी नियुक्ति इस कारण से हुई थी कि कलकत्ता विश्वविद्यालय को यह अधिकार था कि शिक्षा के क्षेत्र में जिन लड़कों ने अपना गौरवपूर्ण स्थान दिखाया हो, उनमें से एक लड़के को वंगाल के लिए और एक लड़के

को बिहार के लिए मनोनीत करने की सिफारिश वह कर सकता था। एम० ए० की परीक्षा में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मेरा द्वितीय स्थान था और बिहार के सभी छात्रों में प्रथम स्थान था, इसलिए मुझे विश्वविद्यालय ने इस पद पर नियुक्त करने की सिफारिश बिहार और उड़ीसा सरकार को कर दी। जो लड़का सर्वप्रथम हुआ था, वह बंगाली था। उसकी सिफारिश उसी पद के लिए बंगाल में कर दी गयी थी। यद्यपि उस समय बिहार अलग प्रान्त बन चुका था, परन्तु अलग विश्वविद्यालय स्थापित नहीं हुआ था, उस समय तक बिहार कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत ही था।

एक मारवाड़ी के लिए यह नियुक्ति एक विशेष गौरव रखती थी। परन्तु मैं इसके पक्ष में नहीं था, क्योंकि मैं समझता था कि सरकारी नौकरी में जाने से मेरी स्वतंत्रता का अपहरण हो जाएगा और मेरे परिवार का क्षेत्र ही बदल जाएगा। मेरे बाद सभी सरकारी नौकरी में ही चले जाएंगे। व्यापार जो हमारे पिता करते थे, उसमें भी मैं शामिल नहीं हो सकूँगा और हमारे परिवार की जीवन-धारा ही बदल जाएगी। डेपुटी कलेक्टर के लिए २५०) रुपये से शुरू होकर १२५०-०० रु० का ग्रेड था। पंडितजी ने मेरे हृदय में बहुत ऊंची अभिलाषा उत्पन्न कर दी थी, अतएव मुझे ऐसा लगता था कि इस नौकरी में जाने के बाद मेरी वह सारी अभिलाषा भूमिसात हो जाएगी। मेरे मन में प्रश्न उठने लगा कि पंडितजी ने तो मुझ से कहा था कि मैं मिनिस्टर आदि होऊँगा। यदि मैं इस नौकरी में चला जाता हूँ, तो इस तरह का कोई अवसर ही प्राप्त नहीं हो सकेगा। जिस ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध देश में स्वतंत्रता का आन्दोलन चल रहा है, उसमें भी मैं कोई भाग ले नहीं सकूँगा।

पंडितजी चाहते थे कि मैं अब कुछ उपार्जन करूँ, क्योंकि हमारे पिताजी ने उनसे यही कहा था कि मुझे अब किसी काम में लगना चाहिए। उनके लिए अकेले गृहस्थी चलाना कठिन हो रहा था। व्यवसाय में भी कुछ कमी हो गयी थी। पंडितजी ने मुझ से कहा कि तुम्हारे पिताजी की यह इच्छा है कि तुम कुछ अर्थोपार्जन का काम करो। सोलिसीटर बनने में अभी लगभग साढ़े तीन वर्ष का विलम्ब है। इतने दिनों तक ठहरना तुम्हारे पिताजी के लिए कठिन है। अतएव मैं इस पद को स्वीकार कर लूँ, तो उन्हें संतोष होगा। परन्तु मैंने उनसे यही कहा कि वे कलकत्ते आ जायें। यहाँ कुछ दिन ठहरें और यहाँ की सारी स्थिति का अध्ययन करके निर्णय करें कि मैं अपने भविष्य-जीवन को किस पक्ष में ले जाऊँ।

उस समय व्यापार बड़े पैमाने पर हो रहा था। लोग लाखों-करोड़ों रुपये युद्ध के कारण कमा रहे थे। मुझे भी कुछ व्यापारिक प्रतिष्ठान अपने प्रतिष्ठानों में शामिल करने के लिए प्रस्तुत थे। उनमें से एक थे श्री बसंतलालजी नाथानी। नाथानी परिवार का संबंध मुजफ्फरपुर से बहुत अधिक था। वहाँ से कई लड़के यहाँ नाथानी परिवारों में दत्तक के रूप में आये थे। नाथानी, दूधवेवाला कहलाते थे। दूधवा राजस्थान में एक स्थान का नाम है। वे लोग वहाँ से आये थे, इसलिए दूधवेवाला के नाम से प्रसिद्ध थे। कलकत्ता में यह परिवार बहुत प्रसिद्ध और धनवान बन गया था। इसी परिवार में रायबहादुर हजारीमलजी दूधवेवाला, श्री बसंतलालजी दूधवेवाला एवं श्री बलदेवदासजी दूधवेवाला—तीनों भाई शेयर बाजार में काम करते थे और उस बाजार में

वहुत वड़े व्यापारी समझे जाते थे। रायवहादुर हजारीमलजी दूधवेवाला ने स्थान-स्थान पर धर्मशालाएं वनवाईं थीं, इस कारण वे भारत-प्रसिद्ध हो गये थे। श्री वसन्तलालजी दूधवेवाला और श्री वलदेवदासजी दूधवेवाला शेयर बाजार के राजा समझे जाते थे। श्री वलदेवदासजी के ही सुपुत्र रायवहादुर रामेश्वरलालजी दूधवेवाला हुए और ये भी समाज में प्रसिद्ध थे। वलदेवदास वसंतलाल के नाम से एक फर्म चलानी का काम करती थी; जिसके द्वारा मुजफ्फरपुर के व्यापारियों को कपड़ा भेजा जाता था। उनके परिवार के वहुत से सदस्य मुजफ्फरपुर में थे और अव भी हैं। उनसे हमारे परिवार का वैवाहिक संवंध भी हो चुका था। इसलिए श्री वसंतलालजी का आग्रह था कि मैं यदि शेयर वाजार में उनके फर्म में शामिल हो जाऊँ तो अच्छी स्थिति में रह सकूँगा। सरकारी नौकरी में जाने की भी आवश्यकता नहीं होगी। इसी तरह एक दूसरा परिवार जो अपने क्षेत्र में वहुत विख्यात था, वह था—श्री गोपीराम भगतराम टिकमानी। ये राजस्थान के रामगढ़ के निवासी थे, जहाँ का मैं भी था। हमारा घर और उनका घर अगल-वगल में होने के कारण हमारे परिवार के साथ इन लोगों की भी वड़ी घनिष्ठता थी। ये भी तीन भाई थे—सर्वश्री गोपीरामजी, वजरंगलालजी और भगतरामजी। कलकत्ता में आरमेनियन स्ट्रीट स्थित 'झगड़ा कोठी' इन्हीं लोगों की थी। हैसियन के वाजार में हैसियन के वादशाह समझे जाते थे। लाखों का वारा-न्यारा वातों ही वातों में कर लिया करते थे। काफी धनी और सम्पन्न हो गये थे। इनका भी सुझाव था कि यदि उनकी फर्म में काम करूँ तो मेरी स्थिति अच्छी हो जाएगी और सरकारी नौकरी में मुझे नहीं जाना पड़ेगा। इनके साथ लगभग पन्द्रह दिनों तक मैं हैसियन वाजार में घूमा भी था। वाजार का वातावरण समझने की चेष्टा भी मैंने की। शेयर वाजार में दो-तीन दिन गया भी था और उसे समझने की भी चेष्टा की।

पंडितजी यहाँ लगभग एक महीना रह गये और वे भी इन सव वातों को समझने की कोशिश कर रहे थे। श्री देवीप्रसादजी खेतान, १९११ ई० में ही सोलिसीटर हो चुके थे। १९१७ ई० में इनकी आफिस काफी वड़ी हो चुकी थी, जिसमें सैकड़ों आदमी कर्मचारी के रूप में काम करते थे। मारवाड़ी समाज में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। हाईकोर्ट में भी वड़ा नाम था। छोटी अदालत में भी वे वड़े श्रेष्ठ वकील समझे जाते थे। पहनावा भी इनका वड़ा आकर्षक था। सिर पर पगड़ी वांधते, वदन में शेरवानी, चपकन और पतलून और पैरों में पूरे जूते पहनते थे। शरीर वड़ा ही सुडोल और सुन्दर था तथा चेहरे पर आभा थी। गौर वर्ण थे। एक प्रभावशाली व्यक्तित्व था। पांच-छः साल में ही इनकी फर्म ने काफी नाम कमा लिया था। श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान भी सोलिसीटर हो गये थे। मारवाड़ी समाज में इस फर्म की वड़ी प्रतिष्ठा हो गयी थी। जितने भी समाज के वड़े-वड़े लोग थे, वे उनके यहाँ जाया करते थे और श्री देवीप्रसादजी उनका काम किया करते थे। सेठ जुगलकिशोरजी विड़ला भी इस फर्म में जाते-आते थे। यह भी एक आकर्षण हमलोगों के लिये था।

एक महीना के वाद पंडितजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि मैं डेपुटी मजिस्ट्रेटी छोड़कर कलकत्ता आऊँ तो सोलिसीटर वनना ठीक रहेगा। इसमें मैं प्रतिष्ठा का भी वोध करूँगा। समाज भी कदर करेगा और किसी खतरे में पड़ने का भय भी नहीं रहेगा।

श्री देवीप्रसादजी की सफलता को देखते हुए यह आशंका भी नहीं थी कि मैं इसमें सफलता नहीं पाऊँगा। व्यापार-क्षेत्र में खतरा भी था और यदि मैं किसी खतरे में पड़ जाऊँगा तो आजीवन मुझे डेपुटी मजिस्ट्रेटी छोड़ने का दंश बना रहेगा। इन सभी दृष्टिकोणों से उनका निर्णय सोलिसीटर के पक्ष में रहा। प्रश्न यह था कि पढ़ाई के तीन वर्ष अभी बाकी थे। इन तीन वर्षों में मैं अपने पैरों पर आर्थिक दृष्टि से कैसे खड़ा रह सकता हूँ। इसी उधेड़-बुन में जब मैं श्री फूलचन्दजी टिकमानी, जो गोपीराम भगतराम के मालिकों में से थे, के पास पहुँचा तो उन्होंने मुझ से पूछा कि माहवारी मुझे कितने रुपयों की आवश्यकता होगी? मैंने कहा कि डेढ़-दो सौ रुपये यथेष्ट होंगे। उन्होंने कहा कि इतने रुपये के लिए सोलिसीटरी की पढ़ाई छोड़कर डिप्टी मजिस्ट्रेटी में जाने की आवश्यकता नहीं है। वे लाखों का घाटा और नफा एक दिन में करते हैं। बाजार के घटने-बढ़ने का अनुभव भी उन्हें पर्याप्त है। अतएव वे मेरे लिए एक कन्ट्राक्ट कर देंगे, जिस कन्ट्राक्ट में नफा होने की ही गुंजाइश सबसे अधिक है। पन्द्रह-बीस दिनों में ही इसका नतीजा भी प्रकट हो जाएगा, क्योंकि बाजार ऊंचा जाने वाला है। ऐसा ही हुआ। पन्द्रह-बीस दिनों में उस कन्ट्राक्ट से मुझे इतनी आमदनी हो गयी, जिससे मैं दो-तीन वर्ष तक अपनी शिक्षा पूरी कर सकता था। जब यह प्रश्न हल हो गया तो यह स्थिर हो गया कि डिप्टी मजिस्ट्रेटी के व्यापार के खतरे में न पड़ कर मैं सोलिसीटर की पढ़ाई पूरी करूँ। यह निर्णय करके पंडितजी दरभंगा वापस चले गये। मैं भी प्रसन्न हो गया।

याने डेपुटी कलक्टरी के लिये मैंने तीन महीने का अवकाश माँगा था, किन्तु पण्डितजी के जाने के बाद मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में पंडितजी की इच्छा इस नौकरी को छोड़ने की नहीं थी। केवल मेरे आग्रह से ही उन्होंने यह स्वीकार किया है। अगर सोलिसीटरी में मैं सफल नहीं हो सका तो आजीवन पश्चात्ताप हो सकता है। हितोपदेश की भी यह शिक्षा है—"जो ध्रुव पदार्थ को छोड़कर अध्रुव पदार्थ की ओर जाता है, उसका ध्रुव पदार्थ नष्ट हो जाता है; अध्रुव पदार्थ तो नष्ट है ही"। मैं सोचने लगा कि डिप्टी मजिस्ट्रेटी ध्रुव पदार्थ है और सब अध्रुव है। अतएव इस ध्रुव पदार्थ को छोड़ना क्या वांछनीय होगा? विशेष कर जबकि मुझे यह सन्देह हुआ कि पंडितजी की वास्तविक इच्छा डेपुटी मजिस्ट्रेट के पक्ष में ही है। नौकरी पर उपस्थित होने की मेरी अवधि एक दिन जब बाकी रही तो मैं मुजफ्फरपुर गया और पंडितजी को दरभंगा से बुला लाया। मैंने उनसे कहा कि यदि वास्तव में उनकी इच्छा मुझे डेपुटी कलक्टर ही बनाने की हो तो वे मुझे बना दें, मैं आना-कानी नहीं करूँगा, क्योंकि मुझे उनके प्रति आन्तरिक आस्था है।

पंडितजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने बताया कि एक माह परिस्थिति के अध्ययन के बाद जब उन्होंने निश्चय किया तो सारी बातें समझ कर निश्चय किया था। अतएव अब उस निश्चय को बदलने की आवश्यकता नहीं। मैं खुशी के साथ इस नौकरी को छोड़ दूं। मैंने एक कागज उनके हाथ में दे दिया। उन्होंने मेरी नौकरी छोड़ने का त्यागपत्र लिख दिया। मैंने उनसे कहा कि दस्तखत भी वे ही कर दें, क्योंकि उनकी दस्तखत और मेरी दस्तखत बिल्कुल मिलती है। पंडितजी ने मेरे नाम से दस्तखत कर दिया। मेरे पिताजी यह सब देख रहे थे, लेकिन इस काम में कोई दखल नहीं दे रहे थे।

सारा भार मुझ पर और पंडितजी पर ही छोड़ दिया था। जब चिट्ठी डाक से डाली जाने लगी, तब सिर्फ एक बार उन्होंने यही पूछा कि क्या हमलोगों का अन्तिम निर्णय यही है। पंडितजी ने कहा—हां। फिर पिताजी ने कुछ नहीं कहा और चिट्ठी डाक में डाल दी गयी। इस तरह डेपुटी मजिस्ट्रेटी के मार्ग का अन्त हो गया। शहर में जब यह बात फैली तो लोगों ने मुझे पागल समझा, नाना प्रकार की टिप्पणियां होने लगीं। पिताजी के पास भी लोग आये और उनसे कहा कि लड़के ने बहुत बड़ी गलती की है। इतना बड़ा पद मिला, उसे योंही छोड़ दिया। ऐसा तो कोई नहीं करता। ऐसी नौकरी का मिलना बड़ा सौभाग्य है। पिताजी ने यह जवाब दिया था कि जो होता है, वह ठीक है; भविष्य में कुछ दूसरा ही होनेवाला है। इसीलिए यह सब हो रहा है। वे तो सब कुछ ब्रह्ममय देखते थे और कहते थे कि जो ब्रह्म चाहता है वही होता है, वही होने दो।

इस फैसले का एक कारण और भी था। जो काम अधिकांश व्यापारी प्रायः किया करते थे। वह काम दलाली का था। दलाल चाहे कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, जब भी अंग्रेजी फर्म में जाता था, तो आफिस के बाहर एक बेंच पड़ी रहती थी, जिस तरह आफिस के आगे बेयरे-चपरासी सब बैठे रहते हैं, वहीं इन्हें बैठना पड़ता था। जब उनकी बुलाहट होती थी, तो वे अन्दर जाते थे, अंग्रेज व्यापारियों को अदब से सलाम किया करते थे और पूछते थे कि कोई काम है तो बताइये। अगर कोई काम होता तो बता देते वर्ना हाथ हिला देते। उनके व्यवहार में किसी प्रकार का सौजन्य दिखाई नहीं पड़ता। दलाली कोई बहुत उत्तम पेशा नहीं माना जाता था। हमलोग जो पढ़े-लिखे थे, उनके लिए यह अपमानजनक कार्य लगता था। एक ओर तो मैं डेपुटी मजिस्ट्रेट हो रहा था, जिसमें मुझे ही सब सलाम करते, और दूसरी ओर यदि मैं इन व्यापारिक फर्मों में जाता तो बेयरों की जगह बैठना पड़ता। यद्यपि इस काम में काफी आमदनी का जरिया हो सकता था तो भी दलाली का पेशा सर्वसाधारण की नजरों में ओछा पेशा समझा जाता था। मुझे भी यह स्थिति अपमानजनक मालूम होती थी। यह भी एक कारण था इस निर्णय का कि मैं यदि डेपुटी मजिस्ट्रेटी छोड़ूं तो मेरे लिये सोलिसीटर होना ही उत्तम और सम्मानजनक भी रहेगा।

मैंने १९१४ ई० में एम० ए० में जब नाम लिखवाया था, तो मैंने अर्थशास्त्र विषय चुना था। उस समय राजनीति शास्त्र अलग विषय विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत नहीं था। एम० ए० की परीक्षा में आठ पेपर हुआ करते थे, जिसमें चार पेपर तो सबों को लेना पड़ता था, इनमें अर्थशास्त्र और राजनीति इत्यादि का साधारण ज्ञान हो जाता था। बाकी चार पेपर के दो भाग थे ग्रूप ए, जिसमें अर्थशास्त्र संबंधी विषय रहते थे और ग्रूप बी, जिसमें राजनीति संबंधी विषयों की प्रधानता थी। मैंने ग्रूप बी पसन्द किया। इस ग्रूप में राजनीति का इतिहास शुरू से लेकर अब तक का पढ़ाया जाता था और अरस्तू, प्लेटो, लाक, रूसो इत्यादि के मूल ग्रन्थ भी पढ़ने पड़ते थे। उस समय द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। अतएव इस विषय में दिलचस्पी मालूम होती थी। अतएव मैंने इस ग्रूप को पसन्द किया और इससे मुझे राजनैतिक विषयों का काफी ज्ञान हो गया। यही कारण था कि मेरा झुकाव बाद के जीवन में भी राजनीति की ओर अधिक रहा; आर्थिक

विषयों को तो मैं प्रायः भूल ही गया था। १९१६ ई० में मैंने एम० ए० की परीक्षा पास कर ली थी। जब मैंने एम० ए० में नाम लिखाया था तो साथ ही मैंने विश्वविद्यालय के ला कालेज में भी नाम लिखवा लिया था। यह पढ़ाई तीन साल की होती थी। क्लास सुबह हुआ करती थी। जो वकील, बैरिस्टर अदालतों में काम करते थे वे प्रातःकाल एक-दो घंटे के लिए आकर लेक्चर दिया करते थे। उस समय छात्रों में किसी प्रकार का औद्धत्त नहीं था, सभी अनुशासन मानते थे और अपने प्रोफेसरों के विरुद्ध किसी प्रकार की बदतमीजी दिखलाने की सोच भी नहीं सकते थे। केवल एक दिन ही एक घटना हुई। जब मैं एम० ए० की क्लास में था, उस समय हमारे एक प्रो० एस० एन० दत्त, अन्तर्राष्ट्रीय कानून पढ़ाने आया करते थे। उनकी छोटी अदालत में अच्छी प्रैक्टिस थी। उन्होंने एक छात्र को अपशब्द कह दिया था। वह छात्र उत्तेजित हो उठा और उसने पुस्तक उनके ऊपर फेंकी थी और कहा कि वह भी वैसा ही प्रतिष्ठित है, जैसा वे हैं। बात आयी-गयी हो गयी और फिर उसकी कोई चर्चा नहीं उठी। इस घटना के अलावा और कोई घटना मेरे कालेज के जीवन में नहीं हुई।

पिछली बार जब मैं कलकत्ता आया था तो मेरी इच्छा यहाँ से इन दो परीक्षाओं को पास करके मुजफ्फरपुर लौट जाने की थी। परन्तु यहाँ आने के बाद जब मुझे यह प्रतीत हुआ कि सोलिसीटर बनना अच्छा रहेगा और मित्रों का भी यही आग्रह था तो अन्त में मैंने सोलिसीटर बनना ही निश्चय कर लिया। उस समय किसी सोलिसीटर के फर्म में आर्टिकिल क्लर्क होना पड़ता था, जिसे ऐपरेंटिस कह सकते हैं। अच्छे फर्म में पाँच वर्ष के लिए उसे इस काम को सीखना पड़ता था। जिस फर्म में भर्ती होना पड़ता था उस फर्म को ऐपरेंटिस लेने के लिए कुछ रुपये भी देना पड़ता था। अच्छी फर्म चार-पाँच हजार रुपये तक लेती थी। वे आगे चलकर सौ-पचास रुपये माहवार उस छात्र को दे भी दिया करते थे। परन्तु यह अनिवार्य चीज नहीं था। किसी अच्छे फर्म में ऐपरेन्टिस हो पाना कठिन ही था। एक समय में केवल एक छात्र ही ऐपरेन्टिस के रूप में भर्ती हो सकता था और फिर ५ वर्ष तक दूसरा कोई छात्र नहीं लिया जा सकता था। जो सोलिसीटर छात्र लेने का अधिकारी था, उनकी अपनी सात वर्ष की प्रैक्टिस की आवश्यकता होती थी। इसके पहले उन्हें ऐपरेंटिस लेने का कोई अधिकार नहीं था।

मेरे निर्णय करने के बाद भी अच्छी आफिस प्राप्त नहीं हो सकी, अतएव मुझे एक साधारण आफिस में ऐपरेंटिस बनना पड़ा। परन्तु काम को सीखने के लिए मैं 'खेतान कम्पनी' में जाने लगा। श्री देवीप्रसाद खेतान ने मुझे इसकी इजाजत दे दी थी। ऐपरेंटिस बनने में मुझे समय लग गया। अतएव बी० ए० पास करके डेढ़ वर्ष बाद ही मैं ऐपरेंटिस बन सका। इसकी परीक्षा भी बहुत कठिन होती थी। दो परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना पड़ता था। उसमें लगभग २५ प्रतिशत लड़के ही पास होते थे। १०० में ६२।। नम्बर लाने पड़ते थे। एक भी प्रश्न-पत्र में यदि कोई व्यक्ति फेल हो जाता तो वह फेल समझा जाता था। जब मैंने इसमें नाम लिखवाया तो जनवरी १९१६ आ गयी थी और उस वक्त से ५ वर्ष का समय जनवरी १९२१ में समाप्त होता था। १९१९ तक मैं डिप्टी मजिस्ट्रेटी आदि के चक्कर में फिर रहा था। निश्चय कुछ देर से होने के कारण मैं इसकी परीक्षाओं में सम्मिलित नहीं हो सका। जब १९२० आ गया तो मेरे सामने

एक कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। दो परीक्षाएं उसी साल में मुझे देनी पड़तीं और यदि मैं उसमें से किसी में उत्तीर्ण नहीं होता तो मुझे और भी अधिक समय सोलिसीटर बनने में लग जाता। फरवरी १९२० में मैंने पहली परीक्षा दी, जिसका नाम था इण्टर-मीडिएट। ईश्वर की कृपा से मैं उसमें उत्तीर्ण हो गया। दूसरी परीक्षा मैंने अगस्त १९२० में ही दे दी। साधारणतया कोई छात्र इसकी हिम्मत नहीं करता था, परन्तु मेरे सामने और समय नहीं था। अतएव मैंने साहस करके परीक्षा दे दी और ईश्वर की कृपा से इसमें भी उत्तीर्ण हो गया। इन दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के वाद भी मेरे हाथ में चार महीने और बच जाते थे, जिसके पूर्ण हुए विना मैं सोलिसीटर वन नहीं सकता था, क्योंकि पाँच वर्ष पूरे नहीं होते थे। अतएव मुझे जनवरी १९२१ तक ठहरना पड़ा। १६ जनवरी को मैं सोलिसीटर वन सका।

सोलिसीटर के कार्य-क्षेत्र

सोलिसीटर क्या चीज है, इसे प्रायः लोग नहीं जानते हैं। अतएव इसको वता देना मैं आवश्यक समझता हूँ। हिन्दुस्तान में वकालत की एक ही परीक्षा होती है, वह पहले वी० एल० कहलाती थी और अव एल० एल० बी०। केवल कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में सोलिसीटर और बैरिस्टर दो प्रकार के वकील होते थे। यह पद्धति इंगलैण्ड में विद्यमान थी और जब पहले-पहल अंग्रेज व्यापारी कलकत्ता, बम्बई एवं मद्रास में आये तो इन तीनों स्थानों में उन लोगों ने यही पद्धति जारी की थी। मद्रास में तो बहुत पहले ही यह पद्धति प्रायः उठा दी गयी, लेकिन कलकत्ता और बम्बई में यह पद्धति जोरों से चल रही है। इस पद्धति के अनुसार दो हजार रुपये तक की नालिश छोटी अदालतों में होती थी, जिसे "स्माल काज कोर्ट" कहते थे। यहाँ पर वकील, बैरिस्टर और सोलिसीटर सभी वकालत कर सकते थे। दो हजार से ऊपर की नालिश हाईकोर्ट में होती थी। हाईकोर्ट में वकालत के दो विभाग कर दिये थे। एक विभाग सोलिसीटर का और दूसरा बैरिस्टर का। सोलिसीटर एक प्रकार से मुवक्किलों के प्रतिनिधि हुआ करते थे, और उनपर अदालतों में काम करने के लिए कुछ प्रतिबन्ध भी था। बैरिस्टर जिरह इत्यादि किया करते और बहस भी। सोलिसीटर वाकी का काम किया करते थे। कोई भी बैरिस्टर बिना सोलिसीटर के अदालतों में काम नहीं कर सकता था। इस तरह से इसे ड्यूवेल सिस्टम अर्थात् युग्म कहा करते थे। यहाँ का उत्तीर्ण एडवोकेट या वकील, चाहे कितना भी विद्वान क्यों न हो, इन मुकदमों में हाजिर होकर काम नहीं कर सकता था। इसे हाईकोर्ट की 'ओरिजिनल साइड' कहा करते हैं—अर्थात् प्रारम्भिक मुकदमें भी हाईकोर्ट में होते थे और उन्हीं मुकदमों से अपील भी हाईकोर्ट में ही होती थी। अपील जहाँ होती थी, वह 'अपीलेट साइड' कहलाती थी। उसमें एडवोकेट, बैरिस्टर और सोलिसीटर भी उपस्थित होकर बहस कर सकते थे। लेकिन ओरिजिनल साइड में यहाँ का एडवोकेट बहस नहीं कर सकता था। इस कारण यहाँ के एडवोकेटों में आन्दोलन रहा और धीरे-धीरे उनका प्रवेश भी ओरिजिनल साइड में होने लगा। अब तो यह स्थिति विल्कुल बदल गयी है। पचास हजार रुपये तक की नालिश 'सिटी सिविल कोर्ट' में होने लगी है, जहाँ पर सभी हाजिर हो सकते हैं। पचास हजार रुपये से ऊपर की

नालिश हाईकोर्ट में होती है और वहाँ पर एडवोकेट हाजिर हो सकते हैं। परन्तु सोलिसीटर-बैरिस्टर या सोलिसीटर-एडवोकेट की पद्धति जारी है—अर्थात् सोलिसीटर का होना जरूरी है। बम्बई में भी इसी तरह का परिवर्तन हुआ है, किन्तु वहाँ पचीस हजार से अधिक के मुकदमें भी हाईकोर्ट के ओरिजिनल साइड में होते हैं। यह पद्धति व्यापारी समाज के अनुकूल पड़ती है। बड़े-बड़े प्रतिष्ठान अपने कानूनी-विषयक कार्य को सोलिसीटर को सौंपकर निश्चित हो जाते हैं। ये उस काम को उनकी तरफ से पूरी जिम्मेदारी के साथ देखते हैं। कई सोलिसीटर मिलकर एक फर्म भी बना लेते हैं—वहाँ पर एक दफ्तर बन जाता है; जिसमें टाइप करने वाले तथा सब तरह के काम करने वाले बहुत से कर्मचारी काम करते हैं। मुकदमों के अतिरिक्त बहुत-सी बड़ी-बड़ी लिखा-पढ़ी एवं एग्रीमेण्ट वगैरह सोलिसीटर के फर्म में होता है और उसमें उनकी विशेषता रहती है। एडवोकेट इस विषय में कमजोर रहते हैं, क्योंकि इसकी पढ़ाई उन्हें नहीं होती। पाँच वर्ष तक एक छात्र सोलिसीटर के फर्म में काम करने के बाद उसमें दक्ष हो जाता है और उस पर भरोसा किया जा सकता है। इसलिए अंग्रेज फर्म इस पद्धति को अब भी पसन्द करते हैं और विलायत में इसीलिए अब तक यही पद्धति जारी है। इसे उठाने की वहाँ पर कोई चर्चा नहीं है।

१९१६ ई० में श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका बंगाल से निष्काशित कर दिये गये थे। अतएव उन्हें अपने ग्राम दुमका में रहना पड़ा था। वहाँ पर उन्होंने वकालत करनी शुरू कर दी थी, किन्तु जब वे कलकत्ता में थे तो सोलिसीटर के फर्म में ऐपरेंटिस के रूप में वे भी शिक्षा पा रहे थे। उनके निष्कासित होने से उनकी शिक्षा बीच में ही रह गयी थी। १९२० ई० में सरकार ने उन्हें बंगाल में आने की इजाजत दी और वे कलकत्ता आ गये, जो अवधि बाकी रह गयी थी, वह उन्हें पूर्ण करनी पड़ी। १९२१, के जून में वे सोलिसीटर हो गये अर्थात् मुझ से ६ महीने बाद, अन्यथा मुझ से तीन-चार वर्ष पहले ही वे सोलिसीटर हो जाते। जब वे पास हुए, तब यह प्रश्न उठा कि मैं और श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका दोनों मिलकर सोलिसीटर के कार्य क्यों न आरम्भ करें। श्री ओंकारमलजी सराफ जो उस समय सार्वजनिक जीवन में प्रमुख भाग लिया करते थे और जिनकी फर्म मारवाड़ी समाज में बड़ी प्रतिष्ठित मानी जाती थी और जो व्यक्तिगत रूप से श्री प्रभुदयालजी के प्रमुख मित्र थे, उनके यहाँ यह बात चली कि मैं और श्री प्रभुदयालजी मिलकर एक फर्म की स्थापना करें तो एक तरफ से खेतानों के यहाँ से तथा दूसरी तरफ अन्य पार्टियों की ओर से काम मिल सकेगा। अतएव कोई असुविधा नहीं होगी और हमलोगों की सफलता में कोई संदेह नहीं रहेगा। परन्तु मारवाड़ी समाज के जो सार्वजनिक व्यक्ति थे, उनकी सलाह यही थी कि यदि एक दूसरी फर्म बन जाय तो दोनों का काम अच्छा चल सकता है। बात भी सही थी और हमलोग प्राय: इस बात पर राजी हो गये थे। इसी बीच में एक घटना हुई, जिसे सुनकर हंसी आएगी। वह घटना इस प्रकार थी।

प्राकृतिक चिकित्सा और मैं

पूजा की छुट्टियों में वकील लोग कलकत्ता से बाहर एक महीना के लिए जाया करते थे। इस बार खेतान परिवार देहरादून गया था। वहाँ पर श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार भी इकट्ठे हो गये थे। श्री चण्डीप्रसादजी खेतान,

जिनका जिक्र मैंने ऊपर किया है, उन्हें कुछ बीमारी थी। देहरादून में एक सज्जन रहते थे जिनका नाम था सेठ लक्ष्मीचन्द। ये प्राकृतिक चिकित्सा के बड़े पक्षपाती थे और लुईकूने नामक जर्मन प्राकृतिक चिकित्सक के अनन्य भक्त थे। उसके अनुसार कोई भी औषधि खाना निषेध था—केवल भोजन, व्यायाम और कुछ स्नान इत्यादि के द्वारा ही यह चिकित्सा होती थी। भोजन असिद्ध करना चाहिए, इसे वे मानते थे। तरकारी में मसाला वगैरह नहीं दिया जाये। तरकारी वगैरह या तो कच्ची खाई जाय या कुछ उबाल कर खाई जाये। रोटी चोकर समेत हो तथा बिना घी की हो। फल का बाहुल्य हो, फल छिलके समेत खाये जायें। जो चीजें सिद्ध करने की हों, वे सब इकमिक कूकर में बनाई जायें तो अच्छा हो। कई प्रकार के स्नान भी इस पद्धति के अन्तर्गत थे, गर्म बाथ, ठंढ़ा बाथ, हिम बाथ इत्यादि। जब ये लोग देहरादून से वापस आये तो सभी दुबले-पतले होकर आये। सबों के वजन काफी घट गये थे, गाल पिचक गये थे, चेहरों की आभा नष्ट हो चुकी थी। लेकिन सभी इस पद्धति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे और जकरिया स्ट्रीट से दौड़ लगाकर अलीपुर के चिड़ियाखाने तक पहुँच जाते थे और वापस भी चले आते थे; तारीफ के पुल बांधते थे और कहते थे कि यद्यपि दुबले-पतले हो गये हैं तो भी बहुत स्वस्थ हैं तथा कब्जियत नहीं रहती है, शरीर में बड़ी स्फूर्ति है, स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। श्री चण्डीप्रसादजी खेतान को जो बीमारी थी, उससे भी वे अपने को मुक्त हुआ बताने लगे। हवा इसके अनुकूल बह गयी थी और हम भी उस हवा में आ गये। हमने भी उस पद्धति को आरम्भ किया, परन्तु यह पद्धति हमारे लिए अनुकूल नहीं बैठी। मुझे इससे कोई लाभ न होकर हानि मालूम होने लगी। शरीर में कमजोरी आ गयी, लगभग २० पौंड वजन कम हो गया, गाल बैठ गये, शरीर स्वस्थ होने के बजाय रुग्ण-सा प्रतीत होने लगा। दो महीने के प्रयोग के बाद मुझे इस पद्धति को छोड़ना पड़ा। अनपच की शिकायत रहने लगी, पेट में कुछ-कुछ दर्द भी होने लगा। एक्स-रे लिया गया। किसी ने कहा कि पेट में घाव हो गया है, इसका ऑपरेशन करवा लें, किसी ने इसका विरोध किया। उस जमाने में ऑपरेशन कराना भी सहज बात नहीं थी। पेन्सिलिन नहीं निकली थी। मृत्यु-संख्या बहुत अधिक होती थी, विशेषकर पेट का ऑपरेशन तो एक तरह से भयानक ही समझा जाता था। मुझे केवल कुछ कब्जियत रहती थी, जिसे दूर करने के लिये मैं अपने बन्धुओं की प्रशंसा में बह गया था। यह कहने में अब हंसी आती है कि छिलके समेत फल खाना इतनी दूर तक पहुंच गया था कि सीताफल के छिलके भी साथ ही खा लिये जायं तो अच्छा रहे। लेकिन सीताफल के छिलके तो बहुत मोटे होते थे। उसका खाना सहज नहीं था। तो भी एक-दो टुकड़े तो खा ही लिया करता था। नतीजा यह हुआ कि हमें कलकत्ता छोड़कर बाहर जाने की आवश्यकता हुई ताकि मैं अपने स्वास्थ्य को सुधार सकूं। मैं भी पछताने लगा कि मैं इस आफत में क्यों पड़ गया। एक संस्कृत का पद है "प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः" मैंने तो अपनी वकालत का आरम्भ ही किया था कि यह अवस्था आ गयी। परन्तु क्या करता, कोई उपाय तो था नहीं; बाहर जाना ही पड़ा। पहले पटना के पास कोइलवरी नामक स्थान पर मैं जाकर रहा जो सोन नदी के किनारे एक ग्राम था, और जहाँ लोग सोन नदी का पानी पीकर स्वास्थ्य लाभ किया करते थे। वहाँ पर जब तबियत ठीक नहीं हुई तो विंध्याचल के पहाड़ पर एक-डेढ़ महीने रहा। वहाँ भी

पेट का दर्द नहीं मिटा तो हरिद्वार चला गया और वहाँ भी कुछ दिन रहा। इस तरह चार-पाँच महीने व्यतीत हो गये, लेकिन न तो वजन वढ़ा और न पेट का दर्द मिटता था।

मेरे पंडितजी का अन्त काल

अन्त में मैं मसूरी पहुंचा, वहाँ कुछ ही दिन बीते थे कि मुझे लौटकर मुजफ्फरपुर आना पड़ा; क्योंकि पंडितजी बहुत बीमार हो गये थे। उन्हें यक्ष्मा रोग ने आक्रान्त कर लिया था। उनकी अवस्था वहुत खराव हो गयी थी। उस समय यक्ष्मा रोग से अच्छा होना सहज वात नहीं थी। मृत्यु सामने दिखाई देने लगती थी। लोग उसकी मृत्यु की वाट देखा करते थे। अच्छा होना वड़ा कठिन था। मैं लौटकर जव आया और पंडितजी के ग्राम पुतई गया तो उनकी अवस्था वहुत खराव हो चुकी थी। मैं उन्हें मुजफ्फरपुर ले आया, किन्तु वे वच नहीं सके, थोड़े दिनों के वाद ही चल वसे। हमारे लिए तो यह वहुत वड़ी दुर्घटना थी। मरने के पहले उन्होंने मुझ से यही कहा कि ईश्वर ने उन्हें जिस उद्देश्य से इस संसार में भेजा था, वह पूरा हो गया। तुमने अपनी शिक्षा समाप्त कर ली। अव इस संसार में कोई उद्देश्य नहीं रहा, इसलिए मैं विदा हो रहा हूँ। हमारे पिताजी तो ब्रह्मवादी थे। जव पंडितजी के मरने का समय आया तो उन्होंने जाकर कहा कि पंडितजी, हमलोग बहुत खुश हैं कि आप इस संसार से विदा हो रहे हैं; मैं भी आपके पीछे-पीछे ही आऊँगा, मेरे लिए भी अच्छा स्थान खोजकर सुरक्षित रखियेगा। उनकी ये अटपटी बातें सुनकर पंडितजी और उनके परिवार वालों का मुँह क्रोध से लाल हो गया। सभी को आश्चर्य हुआ कि पंडितजी तो मर रहे हैं और सेठजी को खुशी हो रही है। ये अच्छे सेठ हैं। लेकिन पिताजी मृत्यु को मृत्यु समझते ही नहीं थे और न उसे दुख ही मानते थे।

पंडितजी देखते-देखते इस संसार से कूच कर गये। इस तरह मेरे जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त हो गया। पंडितजी की जो मदद मुझे थी, उनका जो मार्गदर्शन था, उनका जो सहारा था, सव एक क्षण में समाप्त हो गया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं अव निःसहाय हूँ, मुझे अपने पैरों पर ही खड़ा रहना पड़ेगा।

इस वीच यह कहना आवश्यक है कि श्री चण्डीप्रसादजी खेतान, जो प्राकृतिक चिकित्सा के अनन्य भक्त थे, उन्हें मेनिनजाइटीज रोग ने आक्रान्त किया। इस रोग में रीढ़ का पंक्चर करके चिकित्सा होती है। परन्तु श्री चण्डीप्रसादजी प्राकृतिक चिकित्सा के इतने बड़े भक्त थे कि उन्होंने इस चिकित्सा को कराना स्वीकार नहीं किया और २४ घण्टे के अन्दर ही उनका प्राणान्त हो गया। इसके वाद तो जितने प्राकृतिक चिकित्सा के भक्त थे; उनमें से एक-दो को छोड़कर सभी ने प्राकृतिक चिकित्सा को तिलांजलि दे दी। उन एक-दो भक्तों में एक महावीरप्रसादजी पोद्दार थे, जो अब भी ८० वर्ष की अवस्था में जसीडीह में प्राकृतिक चिकित्सा भवन स्थापित किये हुए हैं और प्राकृतिक चिकित्सा के चिकित्सक हैं। पंडितजी के मरने के पाँच-छः महीने वाद मुझे राजस्थान जाना पड़ा। वहाँ पहले-पहल मैं अपनी जिन्दगी में गया था। दूध-कल्प की चिकित्सा भी मैंने की थी, परन्तु फिर भी कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में हारकर मैं कलकत्ता वापस आ गया। इस प्रकार मेरा एक साल नष्ट हो गया और फिर भी आरोग्य होने में तीन-चार वर्ष का समय और लग गया।

मेरे गुरु

मेरे जीवन में पंडितजी का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना थी। हमारे पिताजी ने उन्हें सिर्फ एक-डेढ़ घंटे अंग्रेजी का ज्ञान करवाने के लिए नियुक्त किया था और दस रुपये मासिक वेतन देना स्वीकार किया था। लेकिन न मालूम हमारे और उनके पूर्व जन्म का क्या संस्कार था, कि हमलोग जब आपस में मिले तो अध्यापक और छात्र का संबंध नहीं रहा। असल गुरु और शिष्य का संबंध स्थापित हो गया था। न मालूम कौन सी ऐसी दैवी शक्ति काम करती थी, जिसने हमलोगों को बहुत समीप ला दिया और दोनों में गहरा संबंध स्थापित हो गया। वे एक त्यागी ब्राह्मण थे—जैसा कि पुराने जमाने में हुआ करता था। रुपये-पैसे के लिए विद्या बेचना वांछनीय नहीं समझते थे। यों तो उनकी आमदनी बहुत कम ही थी, रुपये की आवश्यकता नहीं थी, यह कैसे कहा जा सकता है,—परन्तु उन्होंने हमें जिस प्रकार से पढ़ाना आरम्भ किया और जिस तरह से हमें वास्तविक शिक्षा देने का क्रम जारी किया, उससे यह मानना होगा कि हमारे पूर्व जन्म के अच्छे संस्कार थे, जो ऐसे गुरु हमें प्राप्त हुए।

यद्यपि उनका पार्थिव शरीर १९२२ में ही चला गया, परन्तु आज पचास वर्ष व्यतीत होने पर भी उनकी स्मृति मेरे मानस पटल से एक दिन के लिए भी विस्मृत नहीं हुई। मैं जब स्कूल में पढ़ता था उसी समय उन्होंने मुझे आगे पढ़ने के लिए जो प्रेरणा दी, उससे पढ़ाई की ओर तीव्र उत्कंठा जागृत हो गयी। वे कुछ ज्योतिष का ज्ञान भी रखते थे, कुछ तंत्र भी जानते थे; कुछ मनुष्य स्वभाव की परख भी थी। यह तो उन्होंने कह ही दिया था कि मैं ऊँचे से ऊँचा उठ सकता हूँ। उन्होंने किस आधार पर कहा, यह तो वे ही जानें। ईश्वर में भक्ति भी उनकी अगाध थी। नित्य प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त्त में ही उठते थे और घण्टे दो घण्टे ईश्वर-भजन में व्यतीत करते थे। कभी-कभी इतने तन्मय हो जाते कि आंखों से अश्रुधार भी बहने लगती थी। जब वे मुजफ्फरपुर छोड़कर दरभंगा चले गये, तो भी हमारा और उनका साथ नहीं छूटा। उनके यहाँ जाना-आना, पत्र-व्यवहार उनकी मृत्यु पर्यन्त जारी रहा। उसके बाद भी ऐसा कोई दिन नहीं, जब मुझे उनका स्मरण नहीं हो आया हो। उनका कोई-न-कोई पुत्र हमारे साथ कलकत्ते में सदा रहा और काम कहीं भी करता हो, मिलना-जुलना बराबर ही रहा। आज भी मैं जब पूजा समाप्त करता हूँ, तो उनको भी प्रणाम कर लेता हूँ।

एक विचित्र अनुभव

१९१५ ई० की बात है। मैथिल महासभा का एक अधिवेशन भागलपुर के समीप मंदार हिल में हो रहा था। दिसम्बर की छुट्टियाँ थी। मैं भी कलकत्ता से मुजफ्फरपुर के रास्ते में जाते समय उन्हीं के कैम्प में ठहर गया। सूर्योदय के पहले ही उन्होंने मुझे जगाया और कहा कि आज तो ब्रह्मा से मेरी लड़ाई हुई थी। मैंने कुतूहलवश पूछा कि ब्रह्मा से और लड़ाई, यह कैसी बात हुई? उन्होंने कहा कि तुम्हें दो कन्याएँ हो गयी हैं, और तुम्हें कन्याओं का ही योग है; लेकिन पुत्र का होना आवश्यक है। अतएव मैं ब्रह्माजी से इसी के लिए लड़ रहा था। अब मुझे सफलता प्राप्त हो गयी है और तुम्हें एक पुत्र एक साल के अन्दर ही प्राप्त होगा। जब पुत्र हो जाये, तो वैद्यनाथधाम जाकर

रुद्राष्टाध्यायी से और दूध के द्वारा भगवान शिव की पूजा अवश्य कर लेना। मुझे सुनकर उस समय कुछ आश्चर्य भी हुआ, परन्तु बात सच्ची निकली। मेरे बड़े पुत्र कृष्णानन्द का जन्म एक साल के अन्दर ही हो गया जैसा पंडितजी ने कहा था। उसे लेकर वैद्यनाथधाम जाकर मैंने पूजा की। पंडितजी स्वयं भी उस पूजा के समय पहुंच गये थे। कुछ दिनों के बाद जब कृष्णानन्द दो-तीन महीने का हुआ तो दस्त की भयानक बीमारी से ग्रसित हो गया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसका जीना कठिन है। मैंने पंडितजी को दरभंगा से तार देकर बुलाया और वे आये। बच्चे की अवस्था देखकर दादीजी के मन्दिर में गये। वहाँ से पूजा-पाठ करके आये, साथ में कुछ जल भी लाये और बच्चे के बदन पर छिड़क दिया। उसी दिन से उसकी अवस्था सुधरने लगी और दो-तीन दिन में अच्छा हो गया। उसके बाद वे तो दरभंगा वापस चले गये। उसके बाद जब कभी कृष्णानन्द बीमार पड़ता तो पंडितजी कहा करते कि उसके जीवन की चिन्ता मत करो।

मैंने देखा कि मुझे पुत्रियां अधिक हुईं और उनकी संख्या छः हुई और लड़के दो ही। थोड़े दिनों के बाद एक पुत्र और हुआ। दो-तीन महीने के बाद ही वह बीमार पड़ा व तार से खबर आई। मैं दरभंगा था। पंडितजी ने कहा कि मेरा जाना तो ठीक ही है, लेकिन वह बच्चा अब जीवित नहीं है। जब मैं मुजफ्फरपुर पहुंचा तो मालूम हुआ कि उसकी मृत्यु हो चुकी थी। सायंकाल की गाड़ी से पंडितजी भी पहुँचे। हमलोगों को आश्वासन दिया। इस तरह मैंने देखा कि वे जो कुछ कहते थे, वह सत्य हो जाता था। यह कौन-सी शक्ति है, यह तो मालूम नहीं, परन्तु आज जब मनुष्य चन्द्रलोक में जा सकता है और वहाँ से बातें कर सकता है। वहाँ चलता-फिरता यहाँ दिखाई दे सकता है, तो संभव है कि ऐसी कोई मानसिक शक्ति है, जो इन सब बातों को बताती हो। इन सब बातों को देखकर मेरे मन में पंडितजी के प्रति श्रद्धा और आस्था इतनी हो गयी थी कि मैं उनकी बातों को टाल नहीं सकता था। यही कारण था कि उनके उपदेशों का असर हमारे जीवन पर बहुत कुछ पड़ा। जो कुछ भी मैं अपने जीवन में थोड़ा-बहुत कर पाया उसका श्रेय मैं उन्हीं को देता हूँ। आज न तो वैसे ब्राह्मण गुरु मिलते हैं, और न इन सब बातों में किसी को श्रद्धा है।

द्वितीय अध्याय

मेरी सोलीसिटरशिप, सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश

घृतान्दोलन

जुलाई १९१७ ई० में कलकत्ता में इसकी जोरों से चर्चा थी कि घी में चर्बी मिलाई जाती है। इससे समाज में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो रहा था। जुलाई १९१७ ई० में मारवाड़ी एसोसिएशन में घी के व्यापारियों को बुलाकर उनसे पूछताछ की गई तो उन सभी ने घी में चर्बी मिलाने से इन्कार किया। परन्तु बाजार में इसकी चर्चा जोरों पर थी। एक दिन प्रातःकाल सर्वश्री रंगलालजी पोद्दार, सर हरिरामजी गोयनका, रायबहादुर शिवप्रसादजी झुनझुनवाला, रायबहादुर विश्वेश्वरलालजी हलवासिया, जयनारायणजी पोद्दार, दौलतरामजी चोखानी और मारवाड़ी एसोसिएशन के मंत्री श्री रामदेवजी चोखानी दल बांधकर घी के व्यापारियों के यहाँ पहुँचे और हरेक दूकान एवं गोदाम से एक-एक दो-दो घी के पीपे नमूने के बतौर ले गये और इन नमूने को प्रसिद्ध कैमिस्ट—स्मिथ स्टैनिस्ट्रीट के पास जांच के लिए भेज दिया गया। जांच का परिणाम यह निकला कि जितने पीपे भेजे गये थे, उनमें या तो चर्बी या मूंगफली के तेल की मिलावट थी। यह एक साहसिक कदम था। मारवाड़ी समाज में उस समय जो सूर्य और चांद समझे जाते थे, वे लोग स्वयं बाजार में गये और घी के पीपे उठवाकर ले गये। वह जमाना था जबकि समाज के धनी वर्ग सामाजिक आन्दोलनों में पूरा भाग लेते थे, परन्तु आज तो इस दिशा में वह वर्ग उदासीन है।

जब इस रिपोर्ट की चर्चा बाजार में पहुँची, तो बड़ी सनसनी फैल गयी। इस पर उचित कार्रवाई करने के लिए एसोसिएशन पर दबाव पड़ने लगा। एसोसिएशन ने एक महापंचायत बैठाई; जिसमें राजस्थान के प्रत्येक गाँव से आये हुए व्यक्तियों के एक या दो प्रतिनिधि लिये गये। इस महापंचायत में लगभग १०० आदमी शामिल हुए। यह एक अभूतपूर्व घटना थी। इसके पहले ऐसी कोई महापंचायत नहीं बैठी थी और इसके बाद भी नहीं बैठी। जितने घी के व्यापारी थे, उनके खाते-बही मंगवाये गये और उनकी जांच की गयी। किसी व्यापारी को यह साहस नहीं था कि वो बसने दिखाने से इन्कार कर सकें। ब्राह्मण समाज में घी में चर्बी के मिलावट से बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। हजारों की संख्या में गंगातट पर पहुँचकर उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। महापंचायत का काम प्रारम्भ हुआ और यह लगभग तीन-चार महीने चला।

मैं उस समय मारवाड़ी एसोसिएशन के सहायक मंत्री पद पर था और श्री रामदेवजी चोखानी प्रधान मंत्री थे। अतएव मुझे भी इस पंचायत में रहने और देखने का मौका मिला था। मुझे आश्चर्य होता था कि मारवाड़ी समाज के बड़े-बड़े आदमी, सर हरिरामजी गोयनका सदृश्य अनेक व्यक्ति, प्रातःकाल से ही रात्रि तक बैठे रहते थे। श्री

रंगलालजी पोद्दार ने तो इसमें बड़ा भाग लिया। १९०० ई० के बाद पूर्वी भारत के मारवाड़ी समाज में तीन ही व्यक्तियों ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एन्ट्रेन्स (मैट्रिकुलेशन) की परीक्षा पास की थी—सर्वश्री रायबहादुर नौरंगरायजी खेतान, रंगलालजी पोद्दार और रामदेवजी चोखानी। कलकत्ता के बाहर मैट्रिक की परीक्षा पास करने वालों में स्वनाम-धन्य श्री कृष्णदासज़ी जाजू थे, जिन्होंने पीछे प्लीडरशिप की परीक्षा भी पास की थी, उस समय यह परीक्षा पास करके लोग वकील का काम कर सकते थे। पीछे यह परीक्षा उठा दी गयी। श्री रंगलालजी पोद्दार भोर से शाम तक व्यापारियों से पूछताछ करते थे—वकीलों की तरह जिरह करते थे और दिन भर पान भी चवाया करते थे। उनका मुँह पान के बिना नहीं रहता था। उनकी लगन और परिश्रम देखकर मुझे भी आश्चर्य होता था। पहले तो इस पंचायत ने वहुत से लोगों को जुर्माने किये, जाति-वहिष्कृत भी कुछ समय तक के लिए किया, परन्तु वाद में विचार करके उसमें वहुत कुछ कमी कर दी गयी। ७५,०००) रु० जुर्माने-स्वरूप प्राप्त हुए। इन रुपयों से वृन्दावन में गोचर-भूमि खरीद ली गयी। इस आन्दोलन का प्रभाव अन्य स्थानों पर भी पड़ा और वहाँ भी मिलावट के विरुद्ध में कार्यवाही शुरू हो गयी। कलकत्ता में भी अन्य वहुत-सी संस्थाओं के साथ मारवाड़ी एसोसिएशन का एक डेपुटेशन वंगाल के तत्कालीन राज्यपाल से मिला और उन्होंने पहले तो आर्डिनेन्स पास किया और पीछे उसे कानून का रूप दे दिया। समाज के हाथ में जनमत की शक्ति का यह एक अद्‌भुत नमूना देखने को मिला।

शुद्ध घी के अभाव को देखते हुए पं० मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में मारवाड़ी एसोसिएशन में समाज की सभा हुई और उसमें वारह नियम स्वीकृत किये गये। इन बारह नियमों का उद्देश्य यही था कि वैवाहिक अवसर पर घी का खर्च कम किया जाय।

अगहन बदी ७ रविवार सं० १९६५ (सन् १९०८ ई०) को मारवाड़ी एसोसिएशन ने श्री जयनारायणजी पोद्दार के सभापतित्व में वैवाहिक सुधार को लेकर छब्बीस नियम वनाये और समाज ने इन नियमों का पालन भी किया।

उपर्युक्त वातों से यह स्पष्ट है कि उस समय के मारवाड़ी समाज के धनी और सम्पन्न व्यक्तियों में भी समाज-सुधार की भावना भरी हुई थी। उन्होंने जो भी नियम वनाये, वे धीरे-धीरे समस्त देश में प्रचलित हो गये और उनसे समस्त भारत के मारवाड़ी समाज का बहुत अधिक कल्याण हुआ था। खेद का विषय है कि आज हमारा सम्पन्न वर्ग इन सुधारों में कोई दिलचस्पी लेना नहीं चाहता, जो समाज के लिए एक दुर्भाग्य का विषय है। यहाँ हम यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि श्री रामदेवजी चोखानी जो अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के सभापति थे, वे ही उस पुराने जमाने में मारवाड़ी एसोसिएशन के प्रधान कार्यकर्त्ता थे और उनकी लगन वरावर समाज-सुधार की ओर थी।

मारवाड़ी समाज द्वारा कुछ अन्य सामाजिक, धार्मिक एवं शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना

१८५७ के गदर के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया था। यह मानना होगा कि उसके वाद भारतवर्ष में शान्ति और सुव्यवस्था में बहुत बड़ी वृद्धि हुई और लोगों को यह अनुभव होने लगा कि वे सुरक्षित अवस्था में हैं। अंग्रेजों के

सम्पर्क में आने से देश में प्रजातंत्र की भावना बढ़ने लगी, क्योंकि इंगलैंड एक प्रजातंत्र देश था। अंग्रेजी पढ़ाई जब प्रारम्भ हुई तो भारतवासियों के हृदय में भी अपने देश को स्वतंत्र करने की लालसा जाग उठी। १८८५ ई० में हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। राजनैतिक चेतना के साथ समाज-सुधार की चेतना भी जागृत हुई और सार्वजनिक जीवन का विकास भी होने लगा। मारवाड़ी समाज भी व्यापार के क्षेत्र में आगे बढ़ने लगा और धीरे-धीरे सम्पन्न होने लगा।

कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी की स्थापना

सबसे पहली संस्था मारवाड़ी समाज ने कलकत्ता में स्थापित की, वह थी कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी, जो १८८५ ई० में स्थापित हुई। गोरक्षा के प्रति प्रेम मारवाड़ी समाज का सदा ही रहा है और आज भी विद्यमान है। इस पिंजरापोल की स्थापना में सर्वश्री सर बद्रीदास गोयनका के पिताश्री रामचन्द्रजी गोयनका, श्री सूरजमल झुनझुनवला, श्री जुगलकिशोरजी रूइया, बदरीदासजी मुकीम, राजा शिवबक्सजी बागला आदि सज्जनों का मुख्य हाथ था।

पंचायत

प्राचीन समय में झगड़ों को निपटाने के लिए पंचायतें हुआ करती थीं। कलकत्ता में भी एक ऐसी पंचायत थी, जिसके पंच थे : श्री ताराचन्द घनश्यामदास के श्री जयनारायण जी, श्री हरनाथराय फूलचन्द बागला के श्री लक्ष्मीनारायण कानोड़िया, हरमुखराय रामचन्द्र के श्री सूरजमल खेमका, श्री सेवारामजी रामरिखदास के श्री नानकरामजी सुरेका और सेवारामजी कालूराम के श्री गणेशदासजी बगड़िया।

उस जमाने में अफीम चौरास्ता एक प्रमुख व्यापारी केन्द्र था। यहाँ की पंचायत अलग ही थी और उसके पाँच पंच थे—सर्वश्री बींजराज चौधरी, हरदत्तराय चमड़िया, विश्वेश्वरलाल चितलांगिया, चुन्नीलाल बिन्नानी, शिवनन्दराय तिवाड़ी।

आज की नारायण प्रसाद बाबू लेन को उस समय अफीम चौरास्ता समझा जाता था। हमारे पितामह जब कलकत्ता आते तो इसी अफीम चौरास्ते में स्थित श्री सागरमल शिव-नारायण फर्म, जो हमारे पिताजी के कपड़े की दूकान के बहुत दिनों तक आढ़तिये थे, उनकी गद्दी में ठहरते थे।

मारवाड़ी एसोसियेशन एवं मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स

सन् १८९८ में मारवाड़ी एसोसिएशन की स्थापना हुई। उस जमाने के सार्वजनिक जीवन में भाग लेनेवाले व्यक्तियों ने इस संस्था के द्वारा समाज के विकास का कार्य आरम्भ किया।

इसके पहले ही १८९५ में मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स की स्थापना हो चुकी थी, जो आज 'भारत चैम्बर आफ कामर्स' के नाम से चल रहा है। उस समय इंगलैण्ड में कपड़े के प्रसिद्ध उत्पादक मैनचेस्टर के कपड़े को भारत में लाने वाले रेली ब्रदर्स और ग्राहम

कम्पनी नें अपने कन्ट्राक्ट की शर्तों को कुछ कड़ा कर दिया था। उसके विरुद्ध व्यापारी समाज जाग उठा। इसका प्रारम्भिक नाम "मारवाड़ी एसोसिएशन की कपड़ा शाखा सभा" था, इसी का आगे जाकर 'मारवाड़ी चैम्बर आफ कामर्स' नाम पड़ा।

साहित्यिक क्षेत्र में भी लोगों ने दिलचस्पी लेना आरम्भ किया। श्री रूढ़मलजी गोयनका उस जमाने के साहित्य-प्रेमियों में अग्रणी थे और 'हिन्दी साहित्य सभा' के नाम से एक सभा की स्थापना हुई, जिसमें सर्वश्री बालमुकुन्द गुप्त, सखाराम गणेश देउस्कर, अमृतलाल चक्रवर्ती आदि प्राय: आया करते थे। इसके मंत्री थे श्री शिवचन्द भरतिया और वे 'वैश्योपकारक' नामक पत्र के सम्पादक भी थे। इस बड़े ही रुचिकर पत्र को देखने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सामाजिक कुरीतियों पर भी इसमें कविताएँ-लेख रहा करते थे। वृद्ध विवाह के विरुद्ध में इस पत्र में एक कविता प्रकाशित हुई थी, उसके कुछ पद मुझे अबतक स्मरण हैं। जैसे कि—

सब पूछो तो थैली से थैली परणाई जाती है,
अपने सुख के लिए बिचारी सुता सताई जाती है।

कुछ धार्मिक संस्थाएँ

इस समय धार्मिक जगत में आर्यसमाज वालों के साथ सनातन-धर्मावलम्बियों का संघर्ष था। कलकत्ता में भी ऐसा संघर्ष हुआ। आर्यसमाज की तरफ से लाहौर से स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी और नित्यानन्दजी आर्यसमाज का प्रचार करने के लिए कलकत्ते आये थे। इसके प्रभाव में आनेवाले व्यक्तियों में प्रमुख थे—बाबू टेकचन्द खत्री, श्री हरगोविन्दजी गुप्त, प० अयोध्या प्रसाद, श्री देवीबक्सजी सराफ, श्री जयनारायणजी पोद्दार, श्री छाजूरामजी चौधरी, श्री जगन्नाथजी गुप्त। १९, कार्नवालिस स्ट्रीट में आर्यसमाज की स्थापना हुई।

सनातन धर्म के प्रचार के लिए 'भारत धर्म महामडल' अग्रणी थी, जिसमें हमारे गुरु पं० योगानन्द कुंवर सुपरिन्टेंडेण्ट होकर काशी गये थे। इस बात का भी जिक्र मैंने किया है कि मैं भी उनके साथ कुछ दिन महामंडल के मकान में ही पंडितजी के साथ ठहरा था। महामंडल की ओर से व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयाल शर्मा और पं० ज्वाला-प्रसाद मिश्र भी कलकत्ता आये थे। ऊपर मैंने यह भी उल्लेख किया है कि हमारे विवाह में व्याख्यान देने के लिए पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र बुलाये गये थे। पं० दीनदयालजी के व्याख्यानों से प्रेरित होकर दस-पन्द्रह हजार रुपये सनातन धर्म के प्रचार के लिए इकट्ठे हुए थे। इसी निधि को लेकर श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के निजी भवन की स्थापना का सूत्रपात हुआ।

१९०० में हरिसन रोड स्थित बागला अस्पताल की स्थापना भी हो गयी थी।

मैं जब १९०७ में कलकत्ता आया था, उस समय सेठ दुलीचन्दजी का बगीचा बड़ा नामी था, उसे भी देखने गया था। सुनते हैं कि लार्ड किचनर भी इस बगीचे को देखने के लिए गये थे। सेठ दुलीचन्द बड़े शौकीन आदमी थे। वे मोटर में ड्राइवर के बगल में ही बैठा करते थे, पीछे की सीट में नहीं।

श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय

समय के साथ शिक्षा की प्रगति होनी आवश्यक थी। १९०६ में श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय हाई स्कूल के रूप में परिणत हो गया था। उस समय लड़कों की पढ़ाई मुफ्त होती थी, परन्तु जो छात्र मुफ्त नहीं पढ़ना चाहते थे, वे एक रुपया मासिक चन्दा स्वरूप देते थे। सन् १९१० में विद्यालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर श्री मदनमोहनजी मालवीय ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। उस समय उन्होंने विद्यालय का निजी भवन हो, इसके लिए अपील की थी। उससे प्रेरित होकर समाज के कई मनुष्यों ने अपनी पगड़ियाँ उतार दीं और प्रत्येक ने प्रतीज्ञा की कि जब तक तीन लाख रुपये एकत्र नहीं कर लेंगे, तब तक पुनः पगड़ी नहीं धारण करेंगे। उन लोगों में सबसे आगे श्री रूढ़मलजी गोयनका थे, जो उस समय विद्यालय के मंत्री थे। उनके साथ ही श्री रामकुमारजी गोयनका, श्री लक्ष्मीनारायणजी मोरोदिया, श्री किशनदयालजी जालान, श्री फूलचन्दजी चौधरी, श्री बैजनाथजी केडिया के प्रयत्न से नौ माह के अन्दर ही विद्यालय भवन के लिए ३,००,३०८) रुपये एकत्र हो गये। इस काम में श्री रामदेवजी चोखानी ने भी अथक परिश्रम किया। ८ दिसम्बर १९११ को जिन लोगों ने पगड़ियाँ त्यागी थीं, उन्हें नयी वासंती रंग की पगड़ियां पहनाई गयीं। विद्यालय भवन के लिए चार बीघा जमीन खरीद ली गयी। मिस्टर विसेन्ट जे० एम० ने, जिन्होंने विक्टोरिया मेमोरियल का नक्शा बनाया था, विद्यालय भवन का भी नक्शा बना दिया।

१५ दिसम्बर १९१२ को सर आशुतोष मुखर्जी ने विद्यालय की नींव डाली। ८ जून, १९१४ को विद्यालय का उद्घाटन बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल लार्ड करमाइकल ने किया। इस विद्यालय का नाम वाराणसी के संत श्री विशुद्धानन्द सरस्वती के नाम पर कर दिया गया, जिनका समाज में बहुत बड़ा आदर था। सितम्बर १९०१ को आरम्भ हुआ यह विद्यालय १९१४ में आकर अपने वर्त्तमान रूप में आया। आरम्भ में केवल २५०) रु० महीने की सहायता के आधार पर ही इसका श्रीगणेश हुआ था। इस विद्यालय की सहायता के लिये दूसरा भवन भी बनाया गया, जो हरिसन रोड पर १२ कट्ठा जमीन पर बना हुआ है। उसमें श्री जुहारमलजी खेमका ने २५ हजार रुपये सबसे पहले प्रदान किये। इस विद्यालय के लिए ५० हजार रु० सर हरिरामजी गोयनका ने अपने पिताजी की स्मृति में दान दिये, जिसकी आमदनी से संस्कृत के छात्रों को छात्र-वृत्ति दी जाये। इसके अतिरिक्त विद्यालय के कोष में २२ हजार रु० भी दिये। हरिसन रोड वाली जमीन के सहायतार्थ श्री हजारीमलजी दूधववाला ने ६० हजार रुपये दान दिय।

२० जून, १९१३ को लार्ड हार्डिज के बम से बचने के उपलक्ष में समस्त देश में बाल-दिवस मनाया गया एवं बच्चों को मिठाइयां भी बांटी। हमलोगों ने भी मुजफ्फरपुर में मारवाड़ी युवक सभा की ओरसे यह आयोजन किया था।

प्रीति-सम्मेलन

सन् १९१३ में होली के अवसर पर मारवाड़ी एसोसिएशन ने समाज के बन्धुओं को एक साथ मिलने का सुयोग देने के लिए प्रीति-सम्मेलन की नींव डाली, जो अबतक चल रही है। दीपावली और होली पर यह प्रीति-सम्मेलन होता है।

राजनैतिक गतिविधि

१९१७ में लार्ड मान्टेगू ब्रिटिश सरकार के 'सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया' होकर भारत आये। हिन्दुस्तान के वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड के साथ उन्होंने भारत-भ्रमण किया। उद्देश्य था कि कौन से राजनैतिक सुधार भारतवर्ष में किये जायें। जब वे कलकत्ता आये तो मारवाड़ी एसोसिएशन का एक शिष्टमंडल उनसे मिला। मैं भी उस शिष्टमंडल में शामिल था। उन्होंने हम लोगों का स्मारक-पत्र तो ले लिया, लेकिन उसका कोई उत्तर नहीं दिया। मोन्टेगू साहब जब भारत आये थे, उस समय उनके ऊपर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया था कि किसी प्रकार का भाषण हिन्दुस्तान में नहीं देंगे, केवल सबकी बात सुन लेंगे, अपनी ओर से कुछ नहीं कहेंगे।

मांटेगू चेम्स फोर्ड ने जो रिपोर्ट पार्लियामेण्ट को दी, उसमें यह सुझाव था कि सरकार के कुछ महकमें मिनिस्टरों को दिये जायँ और कुछ एक्जीक्यूटिव कौंसिलर अपने पास रखें। जो मिनिस्टरों को दिये जायँ, उनके लिए वे विधान सभा के समक्ष उत्तरदायी रहेंगे, किन्तु जो एक्जीक्यूटिव कौंसिल के पास रहेंगे उन पर विधान सभा का अधिकार नहीं रहेगा। इसे 'ड्यूवेल सिस्टम' कहते थे। तदन्तर पार्लियामेण्ट ने दो कमेटियां बनाईं। एक कमेटी तो इस बात का निर्णय करने के लिए बनी कि कौन-कौन से विषय मिनिस्टरों को दिये जायँ और कौन-कौन से एक्जीक्यूटिव कौंसिलरों के पास रहें। इसमें जो भी सदस्य थे वे सब पार्लियामेण्ट के सदस्य थे; लेकिन यहाँ आने पर हिन्दुस्तानियों के भी कुछ नेताओं को कमेटी में शामिल कर लिया गया था। दूसरी कमेटी जो भेजी गयी थी, उसमें इस बात का विचार करना था कि मताधिकार किस को दिया जाये और विधान सभाओं के संगठन का क्या रूप हो।

मारवाड़ी एसोसिएशन की तरफ से पहली कमेटी में मैं गया था और दूसरी में श्री देवीप्रसादजी खेतान। हमलोगों ने अपने-अपने विषय पर एसोसिएशन के मत को प्रकट किया और उनलोगों ने जो भी प्रश्न किये उनके उत्तर भी दिये। उस समय मारवाड़ी एसोसिएशन बंगाल विधान सभा और केन्द्रीय विधान सभा में अपना प्रतिनिधित्व चाहती थी। उसका आधार यही था कि मारवाड़ी एसोसिएशन हिन्दुस्तानी व्यापारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है। आगे चलकर ब्रिटिश सरकार ने इसे स्वीकार किया। मारवाड़ी एसोसिएशन को एक सीट बंगाल की विधान सभा में दे दी गयी और केन्द्रीय सभा में भी अन्य दो संस्थाओं के साथ बारी-बारी से जाने का अधिकार दे दिया गया। मारवाड़ी एसोसिएशन उस जमाने में समाज के हर क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती थी, चाहे वह क्षेत्र सामाजिक, व्यापारिक अथवा राजनैतिक हो। मारवाड़ी एसोसिएशन तत्कालीन समाज की सबसे प्रभावशाली संस्था थी। वह यह भी प्रयत्न कर रही थी कि कारपोरेशन में भी उसे अलग प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, किन्तु यह नहीं हो सका।

श्री रामदेवजी चोखानी मारवाड़ी एसोसिएशन के कार्यों में काफी भाग लेते थे। वे ही इसकी सारी गति-विधि को देखते थे और इसे आगे बढ़ने के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा। श्री रामदेवजी चोखानी आज हमलोगों के बीच नहीं हैं। यद्यपि वे सनातनी दल के थे और बराबर संबंधित रहे, तथापि वे प्रगतिशील भावना और विचारों के भी थे। उनके हृदय में समाज के लिए वेदना थी और जब तक वे जीवित थे, हर प्रकार

के सार्वजनिक जीवन में भाग लेते रहे। अंग्रेजी भाषा और बंगला दोनों पर ही उनका बड़ा अधिकार था। अंग्रेजी का उच्चारण बहुत ही सुन्दर करते थे। बंगला भी ऐसा बोलते थे जैसे कि कोई बंगाली बोलता हो। हमारे साथ श्री रामदेवजी की बहुत कुछ पटरी खाती थी, क्योंकि उनकी विचारधारा और मेरी विचारधारा में आगे चलकर बहुत कुछ साम्यता आ गयी थी। जब तक वे जीवित रहे, हमारे साथ उनका बड़ा घनिष्ठ सम्पर्क रहा।

१९१४ ई० में जब मैं कलकत्ता आया था तो उन दिनों मैं माथे पर चन्दन लगाया करता था। उनके पिता श्री दौलतरामजी भी बैठे हुए थे। श्री कालीप्रसादजी खेतान विलायत से लौटकर आये थे और उनके विरुद्ध में आन्दोलन चल रहा था। ऐसी स्थिति में मुझे चन्दन लगाये देखकर उनलोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैं ग्रेजूएट होकर भी चन्दन लगाता हूँ। जब उन लोगों से बात हुई और मेरी धार्मिक भावना से वे अवगत हुए तो बहुत ही सन्तुष्ट हुए। श्री दौलतरामजी का यह शब्द मुझे अबतक याद है जो उन्होंने उस समय मुझसे बात करने के बाद कहा था––'छोरो तो चोखो लागे है'। मैं तो उनके सामने बच्चा ही था। १९ वर्ष की उम्र थी और ग्रेजूएट होकर कलकत्ता आया ही था। यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि मैं संध्या भी करता हूँ, पूजा भी करता हूँ और सनातनी सिद्धान्त को मानता हूँ। यद्यपि मैंने विलायत-यात्रा के पक्ष में अपनी राय बता दी थी, तथापि वे मेरी धार्मिक भावना से सन्तुष्ट थे और उन्होंने मुझे मारवाड़ी एसोसिएशन का सदस्य भी बना लिया। एक प्रकार से सनातनी और सुधारक दल के बीच की कड़ी वे मुझे मानते थे। मेरे विचार स्वतंत्र रहा करते थे और जब भी मौका आता तो स्वतंत्रतापूर्वक ही मैं अपने विचारों को प्रकट करता था। दलगत भावना मुझ में न होने के कारण उन्हें हम से कोई विरोध नहीं था।

लड़कियों की शिक्षा

सनातनी दल में लड़कियों को शिक्षा देना अच्छा नहीं समझा जाता था। हिन्दी का सामान्य ज्ञान कराकर ही उनकी शिक्षा का अन्त कर देना मुनासिब समझा जाता था। इसके लिए उन लोगों ने सावित्री पाठशाला कायम कर दी थी। इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

जातीय महासभाएँ

यह जमाना जातीय महासभाओं का भी था। राजनैतिक जागृति के साथ ही सामाजिक सुधार के लिए भी जागृति पैदा हो गयी थी। सेठ जमनालालजी बजाज ने यह तय किया था कि अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा की स्थापना की जाय। इस प्रस्ताव को लेकर वे कलकत्ता आये और मारवाड़ी एसोसिएशन वालों से बातें कीं और उन्हें इसमें सम्मिलित होने के लिए निवेदन किया, परन्तु वे राजी नहीं हुए, क्योंकि उन्हें यह आशंका थी कि महासभा सामाजिक सुधारों में जितनी दूर जाएगी उतनी दूर वे नहीं जा सकेंगे। अन्त में महासभा का पहला अधिवेशन वर्धा में हुआ और दूसरा अधिवेशन बम्बई में हुआ। बम्बई के अधिवेशन में ६ लाख रुपये की एक निधि कायम की गयी,

जो 'मारवाड़ी अग्रवाल जातीय कोष' के नाम से स्थापित हुई। उसके ब्याज की रकम केवल अग्रवालों की सहायतार्थ खर्च होती है अतएव वह कोष अभी भी बना हुआ है।

मारवाड़ी अग्रवाल महासभा का एक अधिवेशन १९२१ में सेठ नौरंगरायजी खेतान के सभापतित्व में कलकत्ते में हुआ। अग्रवाल महासभा ने जब यह प्रस्ताव रखा कि १२ वर्ष से नीचे की अवस्था की लड़की का विवाह न किया जाय, तो सनातनी दल ने इसे भी पसन्द नहीं किया। उनके अनुसार १२ वर्ष से पहले भी कन्याएँ रजस्वला हो सकती हैं। समाज में दो विचार धाराएं स्पष्ट हो रही थीं। एक विचारधारा तो उनलोगों की थी, जो उन सामाजिक सुधारों में सम्मिलित नहीं होना चाहते थे जिसमें धर्म का कुछ भी संबंध लगा हुआ हो। दूसरी विचारधारा उनलोगों की थीं जो सामाजिक जीवन में बहुत कुछ सुधार करना चाहते थे। तथापि महासभा के मंच से वे उतनी दूर जाना उचित नहीं समझते थे। राजनैतिक दृष्टि से भी इन दोनों का मत अलग-अलग था। मारवाड़ी एसोसिएशन सरकार के साथ संघर्ष करना नहीं चाहती थी। नर्म विचार वाले उन लोगों के साथ थे और सुधारक दल कांग्रेस के साथ। इसलिए अब इन दोनों दलों का आपस में एक साथ मिलकर सार्वजनिक जीवन संभव नहीं था।

१९१८ में जब श्री वृजमोहन विड़ला का विवाह हुआ उस समय श्री कालीप्रसादजी खेतान, जिन्हें जातिच्युत कर दिया गया था, को वापस जाति में सम्मिलित कर लिया गया था। किन्तु इसके लिए उन्हें तीन महीने के लिए तीर्थयात्रा करनी पड़ी और प्रायश्चित भी करना पड़ा। विलायत-यात्रा को लेकर जो विघटन समाज में उत्पन्न हुआ था, वह इस विवाह में मिट गया। अग्रवाल महासभा भी अपने प्रस्तावों को नर्म ही रखती थी, जिससे कि अधिकाधिक लोग सम्मिलित हो सकें। इसके कई अधिवेशन हुए; जिसमें समाज ने बड़े उत्साहपूर्ण हृदय से भाग लिया।

इसी बीच माहेश्वरी महासभा में एक विघटन उत्पन्न हो गया। माहेश्वरी महासभा ने यह निर्णय किया कि कोलवार कहलाने वाले भी माहेश्वरी हैं और इस निर्णय को मानकर श्री रामेश्वरदासजी विड़ला ने एक कोलवार की कन्या से विवाह कर लिया। इसे लेकर माहेश्वरी समाज में बड़ा तुमुल आन्दोलन हुआ और माहेश्वरी समाज दो हिस्सों में बंट गया। जो इस संबंध के विरुद्ध थे वे डीडू माहेश्वरी के नाम से समझे जाते थे। उन्होंने अपनी पंचायत अलग स्थापित की। इन दोनों दलों में इतना पार्थक्य हो गया कि एक दल की कन्या दूसरे दल में यदि विवाहित हो तो वह अपने पिता के घर नहीं जाती थी।

१९२७ में अग्रवाल समाज में जो सुधारक वर्ग थे, उनमें से एक ने विधवा विवाह कर दिया। झरिया के श्री नागरमलजी लील्हा ने जानकी देवी नामक एक विधवा से कलकत्ता में शादी की। सुधारक दल के बहुत से कार्यकर्त्ता इसमें सम्मिलित हुए। इसके कारण अग्रवाल समाज में भी भयंकर तूफान उठा। उनमें सनातन दलवालों ने भी अपनी एक महापंचायत की स्थापना की और विधवा विवाह में प्रमुख भाग लेने वालों में से १२ आदमियों को जाति बहिष्कृत किया। इस विवाह के बाद ही अग्रवाल महासभा का अधिवेशन १९२७ ई० में कलकत्ता में होने जा रहा था, जिसके सभापति बम्बई के श्री केशवदेवजी नेवटियाजी थे और स्वागताध्यक्ष श्री श्रीनिवासजी पोद्दार। श्री पोद्दारजी ने अपना इस्तीफा दे दिया। अब प्रश्न

श्री ईश्वरदासजी जालान की पत्नी
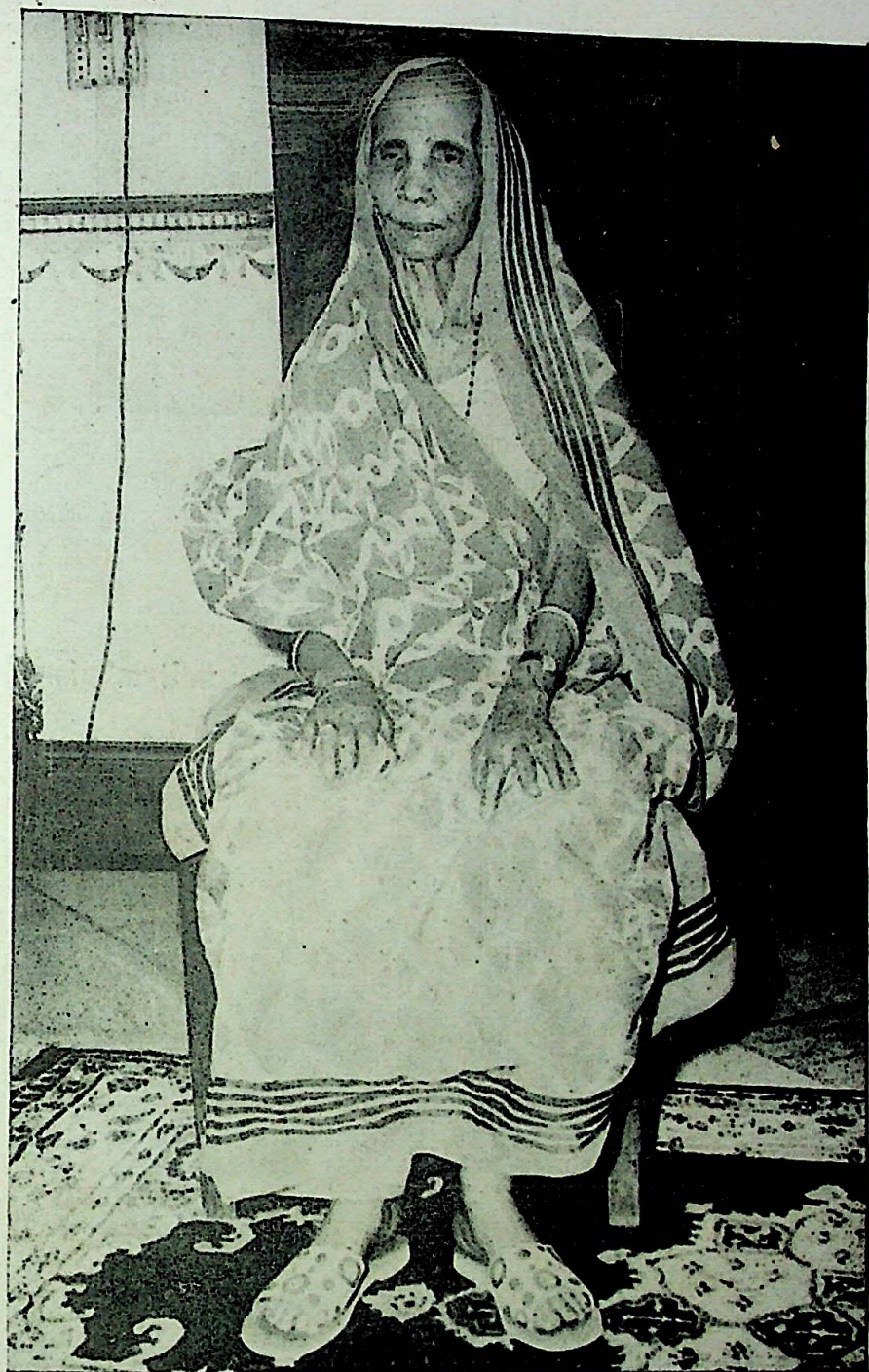
श्रीमती बनारसी देवी

समाज के बदलते चित्र
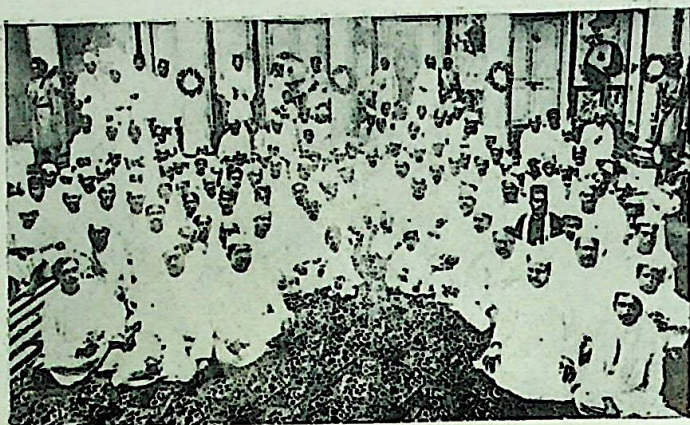
१९०० की जनसभा, स्त्रियों की परिधि से बाहर

पुरुष और स्त्रियों के जमघट का १९७६ की एक जनसभा में उपस्थिति का एक दृश्य
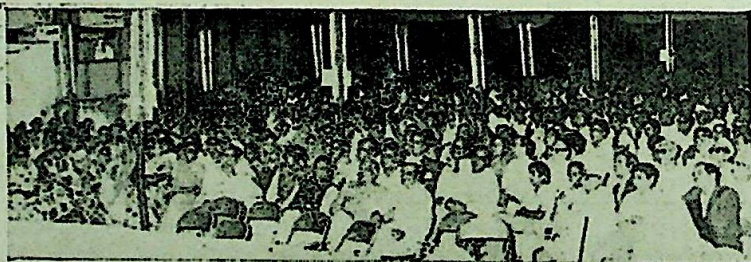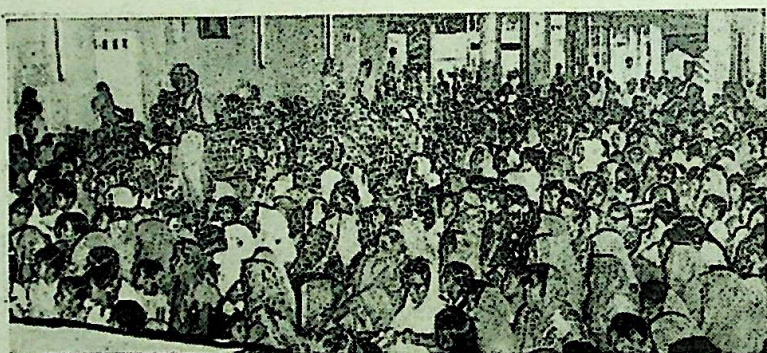
उपस्थित हुआ कि स्वागताध्यक्ष किसे बनाया जाय। मैं विधवा विवाह में सम्मिलित नहीं हुआ था और मेरा विचार भी उस समय इसके पक्ष में नहीं था। अतएव हमारे सुधारक मित्रों ने यह निश्चय किया कि मैं स्वागताध्यक्ष का पद ग्रहण करूँ। मुझे उनकी आज्ञा मानकर इसे ग्रहण करना पड़ा। जब अधिवेशन हुआ और सभापति का जुलूस हवड़ा स्टेशन से बड़ाबाजार होते हुए निकला तो सनातनी दल की ओर से कूड़ा-करकट, सोडा-वाटर की बोतलें इत्यादि फेंके गये। मैं भी सभापतिजी के साथ उनकी ही गाड़ी में बैठा हुआ था। पुलिस के घुड़सवार चारों ओर फैल गये थे और पुलिस के संरक्षण में यह जुलूस निकालना पड़ा। अधिवेशन जोड़ाबगान पार्क में आयोजित हुआ था। उसके झण्डे में विरोधी दल ने आग लगा दी और सभा के अन्दर डेलीगेट के रूप में बहुत वड़ी संख्या में वे पहुंच गये। पंडाल के बाहर भी बराबर ढोल बजाये जा रहे थे। दमकल भी बराबर वहाँ तैनात कर दी गयी थी। श्री पद्मराज जैन उस जमाने के सबसे कट्टर व हिम्मतवाले सुधारक कार्यकर्त्ता माने जाते थे। उन्हीं के हाथ में सारा प्रबन्ध था और वे ही सारा संचालन कर रहे थे। जब अधिवेशन आरम्भ हुआ और सभापति ने अपनी वक्तृता पढ़ी तो उन्होंने अपनी वक्तृता में विधवा विवाह का समर्थन कर दिया। सेठ जमनालालजी बजाज की यह इच्छा नहीं थी कि महासभा के प्लेटफार्म से विधवा विवाह का समर्थन या विरोध किया जाये। वे चाहते थे कि महासभा इस संबंध में तटस्थ रहे। परन्तु सभापतिजी ने जब इसका समर्थन कर दिया तब विरोधी दल को आन्दोलन करने में सुविधा हुई। आन्दोलन की गति तीव्र हो गयी। अधिवेशन में जब एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया, जिसमें सभापतिजी के जुलूस पर जो ईंट-पत्थर फेंके गये थे, उनकी निन्दा की जाती है, तो विरोधी दल ने एक सुझाव उपस्थित किया कि इस प्रस्ताव में यह जोड़ दिया जाय कि ईश्वर सभापतिजी को सुबुद्धि दे, ताकि वे ऐसे भाषण न दिया करें। इसे लेकर सभा में बड़ी खलबली मची। यदि यह स्वीकृत हो जाता तो सभापतिजी के ऊपर निन्दा का प्रस्ताव पास हो जाता और उन्हें इस्तीफा देने की नौबत आ जाती। इसके लिए श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, श्री देवीप्रसादजी खेतान और श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार, जो गीता प्रेस के सर्वेसर्वा थे, वे भी व्याख्यान दिये और लोगों को समझाने की कोशिश की कि वे इसे प्रस्ताव में न जोड़ें; परन्तु सनातनी दल के जो लोग पंडाल में डेलीगेट बनकर आ गये थे, वे किसी तरह मानने को तैयार नहीं थे। उस समय लाउड स्पीकर का प्रचार नहीं हुआ था और वक्ताओं की वक्तृताएँ दूर तक पहुँच नहीं पाती थीं।

स्वागताध्यक्ष के रूप में मेरा भाषण

अन्त में स्वागताध्यक्ष होने के नाते मैंने भी व्याख्यान देने का निश्चय किया और जितनी जोर से मैं बोल सकता था, उतनी जोर से मैं बोला। पन्द्रह-बीस मिनट में ही मेरा गला बैठ गया और फिर उस अधिवेशन में मैं बोलने के लायक नहीं रहा। परन्तु संयोगवश मेरे व्याख्यान का असर उपस्थित जनता पर पड़ गया और वे राजी हो गये कि प्रस्ताव में सुधार नहीं किया जाय और प्रस्ताव बिना किसी सुधार के स्वीकृत हो गया। मैंने जो कुछ कहा उसका आशय यही था कि जहाँतक महासभा का संबंध है, उसने विधवा

विवाह का समर्थन नहीं किया है। सभापति की वक्तृता में जो कुछ उन्होंने कहा है, वह उनकी व्यक्तिगत राय है। मैं स्वयं भी विधवा विवाह के समर्थन में नहीं हूँ; परन्तु तो भी मुझे इस महासभा में सम्मिलित होने में कोई अड़चन नजर नहीं आती। दूसरी बात यह है कि हमारे यहाँ सनातन धर्म में जो अतिथि होता है, उसका हम सम्मान करते हैं, उसे अपमानित नहीं करते और शास्त्र का भी वचन है :—सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः (जो अतिथि होता है वह सबका गुरु होता है)। इसलिए जो भी सनातन धर्म को मानने वाले हैं उनको यह स्वीकार करना होगा कि हमारे सभापति जी अतिथि के रूप में कलकत्ता आये हैं, उनका अपमान करना सनातन धर्म के विरुद्ध है। यह दलील, मैंने अपना सारा जोर लगाकर प्रत्येक कान में पहुंच जाये, इसकी चेष्टा की और इसका फल भी सुन्दर हुआ। सुधार के समर्थन में किसी ने वोट नहीं दिया। प्रस्ताव मूल रूप में स्वीकृत हो जाने से हमारे सुधारक दल में बहुत बड़ा संतोष और आनन्द हुआ। मेरे लिए भी यह एक विजय समझी जाने लगी। लोगों में यह धारणा प्रारम्भ हो गयी कि मैं अच्छी वक्तृता दे सकता हूँ। मेरी प्रतिष्ठा भी हो गयी और मुझे इसका गौरव भी मिला।

इसके बाद सनातनी दल ने महापंचायत की और उसके कई अधिवेशन हुए। उधर अग्रवाल महासभा के भी कई अधिवेशन हुए। दूसरा अधिवेशन अग्रवाल महासभा का बम्बई में हुआ, जिसके सभापति बनाये गये गीता प्रेस के संचालक श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार। बम्बई में सनातनी दल ने श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार को सभापतित्व करने नहीं दिया और वे उन्हें उड़ाकर ले गये। ऐसी परिस्थिति में श्री रंगलालजी जाजोदिया ने सभापति बनकर कार्य-सम्पादन किया। इसके बाद अग्रवाल महासभा के नाम से मारवाड़ी शब्द हटा दिया गया और धीरे-धीरे इसमें विधवा विवाह का समर्थन भी हो गया। कुछ वर्षों के बाद ही अग्रवाल महासभा बन्द हो गयी। उसका अन्तिम अधिवेशन कलकत्ता में श्री रामकृष्णजी डालमिया के सभापतित्व में हुआ, जिसके स्वागताध्यक्ष श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान हुए। परन्तु महासभा निष्प्राण हो गयी। इसी तरह माहेश्वरी महासभा भी निष्प्राण हो गयी। परन्तु सनातनी व सुधारक दोनों दलों की फूट फिर भी कायम रही, यद्यपि उसके तीखेपन में धीरे-धीरे कमी आने लगी। महापंचायत भी बन्द हो गयी और जातीय महासभाओं के युग का एक प्रकार से खातमा हो गया।

इसके बाद यदाकदा अग्रवाल महासभा का अधिवेशन हो जाता है। एक अधिवेशन नागपुर में हुआ, जिसमें मुझे सभापति बनाया गया। १९६० में माहेश्वरी महासभा का फिर से अधिवेशन होना प्रारम्भ हुआ। उस वर्ष बीकानेर में श्री रामगोपालजी मोहता के सभापतित्व में अधिवेशन हुआ। उसमें यह निश्चय किया गया कि स्व० श्रीकृष्णदासजी जाजू की स्मृति में एक कोष की स्थापना की जाय, जिससे माहेश्वरी छात्र एवं गरीब असहाय मनुष्यों को सहायता दी जाये। इस कोष की स्थापना हो गयी और इसमें माहेश्वरी समाज मुक्तहस्त से दान भी दे रहा है। इसके बाद माहेश्वरी महासभा के तीन अधिवेशन और भी हो गये हैं। एक अधिवेशन १९६८ में, दूसरा १९७२ में और तीसरा १९७६ में नागपुर में। इन में दो के सभापति थे श्री रामगोपालजी माहेश्वरी और अन्तिम के श्री लक्ष्मीनारायण राठी। माहेश्वरी महासभा उत्साहपूर्वक अपना कार्य सक्रिय रूप से कर रही है और माहेश्वरी बन्धुओं का इसे पूरा सहयोग प्राप्त है।

इन जातीय महासभाओं द्वारा बहुत से सामाजिक सुधार हुए और समय के प्रभाव ने भी समाज के ढांचे में बहुत परिवर्तन कर डाला है। पुरानी विचारधारा के स्थान पर एक नयी विचारधारा समाज और देश में उत्पन्न हो गयी, जिसका जिक्र आगे चलकर किया जाएगा।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक गतिविधि

१९१८ में प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया। मित्र राष्ट्रों की विजय हुई और जर्मनों की पराजय। वर्साइल्स में एक संधि हुई जो जर्मनों के लिए बहुत ही अपमानजनक थी। वे युद्ध में हार गये थे, अतएव उन्हें वह संधि माननी पड़ी। परन्तु जर्मन राष्ट्र उस अपमान को भूल नहीं सका। इधर भारतवर्ष में स्वराज्य की मांग दिनानुदिन तीव्र होती गयी। महात्मा गांधी के भारतवर्ष में आ जाने के बाद इस मांग ने एक नया रूप धारण किया। सबसे पहले महात्मा गांधी ने चम्पारण में नील की खेती के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। चम्पारण जिले में अंग्रेज उस समय नील की खेती करवाया करते थे और इस खेती को करवाने के लिए रैयतों पर अनुचित दबाव डाला जाता था। इसके विरुद्ध जब महात्मा गांधी ने आन्दोलन प्रारम्भ किया; तब उनका केन्द्रस्थल मुजफ्फरपुर बन गया और बिहार के अनेक नेता उनके साथ काम करने लगे, जिनमें प्रमुख थे—श्री राजेन्द्र बाबू, दरभंगा के श्री ब्रजकिशोर बाबू, मुजफ्फरपुर के श्री विन्देश्वरी बाबू एवं अन्य बहुत से कार्यकर्त्ता। वे किसानों का बयान लेने लगे और नील की खेती करने के लिए उन्हें कितने अत्याचार सहन करने पड़ते हैं, उनका उल्लेख जब उन बयानों में होने लगा तो देश में एक खलबली मच गयी। महात्मा गांधी के ऊपर चम्पारण में प्रवेश न करने के लिए १४४ धारा लगा दी गयी; परन्तु महात्माजी ने इस आज्ञा की अवहेलना करके चम्पारण में प्रवेश किया। वे पकड़े गये। परन्तु आन्दोलन ने भीषण रूप धारण कर लिया। अन्त में सरकार को एक कमेटी बैठानी पड़ी जो इस सबध में जांच करके अपनी सिफारिशें सरकार को दे। इस कमेटी की रिपोर्ट पर सरकार के द्वारा कुछ सुधार किये गये। कुछ समय के बाद तो जर्मनी में नकली नील बनने लगी और नील की खेती होनी ही बन्द हो गयी। इस आन्दोलन ने महात्मा गांधी के प्रभाव का विस्तार किया। बिहार में उनका प्रभाव बहुत ही बढ़ गया।

जलियांवाला बाग

१९१९ ई० में सरकार ने रौलेट एक्ट बनाना चाहा। इसके विरुद्ध देश में बड़ा आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। स्वराज्य की मांग को लेकर जो हिंसक आन्दोलन देश में हो रहा था, उसे दमन करने के लिए रौलेट साहब के नेतृत्व में सरकार ने एक कमीशन बैठाया था; उस कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर सरकार ने जब एक दमनकारी कानून बनाना चाहा, तो देश में उसके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन की सृष्टि हुई। १९१९ ई० में पंजाब के जलियांवाला बाग की प्रसिद्ध घटना हो गयी। वहाँ पर रौलेट एक्ट के विरुद्ध जब एक मीटिंग हो रही थी, ब्रिटिश फौज के द्वारा जनरल डायर के नेतृत्व में उस जनसभा में गोलियाँ बरसाई गयीं और उसके कारण बहुत बड़ी नरहत्या हुई। उस समय

पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर माइकल ओडायर थे। पं० मदनमोहनजी मालवीय ने केन्द्रीय विधान सभा में इस घटना का वर्णन करते हुए जो भाषण दिया, वह रोमहर्षक था। देश में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक तेज हवा बह चली। सरकार ने इसकी जांच करने के लिए एक कमीशन बैठाया और उस कमीशन ने भी इस घटना की निन्दा की। परन्तु ब्रिटेन में वहाँ की जनता ने जनरल डायर को एक थैली दी और उनके कार्य का समर्थन किया। इस खबर से भारतवर्ष के लोगों के मन में आग लग गयी।

असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात

१९२० ई० में जब कलकत्ता में स्पेशल कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तब महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसके अनुसार लड़के स्कूलों को छोड़ दें, वकील वकालत छोड़ दें, विदेशी कपड़े का व्यापार वन्द कर दिया जाये, सरकार को टैक्स देना वन्द हो जाय, टायटिल वाले अपनी टायटिल छोड़ दें, हाथ से काते हुए सूत के वने कपड़े पहने जायें। ऐसे ही कई प्रस्ताव उन्होंने उपस्थित किये। अब तक कांग्रेस सरकार से अनुनय-विनय करती रही थी। महात्माजी ने इस नीति का परित्याग कर दिया और सरकारी नीति से युद्ध करने का निश्चय किया। यह युद्ध सत्य और अहिंसा के आधार पर 'असहयोग आन्दोलन' के रूप में प्रकट हुआ। सरकारी आदेशों और कानून को अमान्य करना इसका मुख्य अस्त्र हुआ। उस समय लार्ड रेडिंग भारतवर्ष के वायसराय थे। उन्होंने महात्माजी के इस कदम को मूर्खतापूर्ण वताया। परन्तु यह प्रस्ताव कांग्रेस में पास हो गया। मैं भी इस कांग्रेस में डेलीगेट के रूप में शामिल हुआ था। इस प्रस्ताव का विरोध स्वयं लाला लाजपतराय ने किया था, जो उस कांग्रेस-अधिवेशन के अध्यक्ष थे; देशबन्धु चित्तरंजनदास ने इसका विरोध किया था। एनी-बेसेण्ट, जिन्ना वगैरह ने तो कांग्रेस को छोड़ ही दिया। इस तरह की आपसी फूट होने पर भी महात्मा गांधी दृढ़ रहे। इस पर गुप्त वोटिंग की पद्धति द्वारा वोट लिये गये। इसके पक्ष में काफी ज्यादा वोट आये और यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। मैंने भी इस प्रस्ताव के पक्ष में वोट दिया था। इसने भारतीय जनता में एक नवीन जागृति उत्पन्न की। जिन्होंने उस दृश्य को देखा था, वे ही उसे अनुभव कर सकते हैं। स्कूलों से लड़के निकल पड़े, स्कूल खाली हो गये। वकीलों ने वकालत छोड़ दी। टायटिल वालों ने टायटिलें छोड़ दीं। विलायती कपड़ों की चारों ओर होली जलने लगी। चर्खे चलने लगे, खादी के कपड़े वनने लगे। टैक्स नहीं दिया जाये, इस आन्दोलन का भी प्रादुर्भाव हो गया। सरकार को भी गांधी की इस आंधी को देखकर चकित होना पड़ा। हजारों की संख्या में लोगों को पकड़ कर जेल भेजा जाने लगा। एक नयी लहर सारे देश में दौड़ गयी। महात्माजी का जादू काम कर गया और ब्रिटिश सरकार के पैर उखड़ते हुए दिखलाई देने लगे। महात्माजी ने एक करोड़ रुपया लोकमान्य तिलक के नाम पर तिलक स्वराज्य फण्ड स्थापित करके एकत्र किये, जो थोड़े दिनों में ही एकत्रित हो गये। इधर यह आन्दोलन चल रहा था, उधर ब्रिटिश सरकार इस चेष्टा में लगी हुई थी कि भारतीय जनता को कौन से शासन-सुधार दिये जायें, जिससे वह संतुष्ट हो सके। परन्तु ब्रिटिश जनता इस दिशा में बहुत आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं थी। भारतवर्ष के ऊपर

से अपना प्रभुत्व छोड़ना उसे मंजूर नहीं था। मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड द्वारा दिया गया शासन-सुधार अपर्याप्त था। उससे हिन्दुस्तान की जनता संतुष्ट होनेवाली नहीं थी। इन सुधारों में भारतीय जनता के हाथों में केवल ऐसे अधिकार छोड़े गये थे, जिनका कोई विशेष महत्व नहीं था। महत्वपूर्ण विषय ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथों में रख लिये थे। मिनिस्टरों के अधिकार बहुत सीमित थे। राजनैतिक क्षेत्र में नर्म दल वाले ही उसे स्वीकार करते थे, परन्तु देश उनके साथ नहीं था। कांग्रेस ने इसके विरोध का निश्चय किया था। अतएव इन शासन-सुधारों के अन्तर्गत जब चुनाव होने लगा तो भीषण संघर्ष का सूत्रपात हुआ।

महात्माजी ने भारतीय जनता को यह आश्वासन दिया था कि यदि वे उनके वताये हुए मार्ग का अलम्वनं करें तो एक वर्ष के अन्दर ही भारत को स्वराज्य प्राप्त हो जाएगा। आन्दोलन बड़ी तेजी के साथ देश में वढ़ा।

मुजफ्फरपुर में जिस मारवाड़ी हाई स्कूल की स्थापना में हमने प्रमुख भाग लिया था, मेरे कलकत्ता आने के वाद मेरे छोटे भाई मोहन ने उसके संचालन में प्रमुख भाग लिया। वह इस संसार में अव नहीं है—छोटी उम्र में ही उसकी मृत्यु हो गयी,

चौराचौरी कांड

सरदार पटेल बारदोली में टैक्स के न देने के आन्दोलन की पूरी तरह से तैयारी कर चुके थे। सारा देश उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। समस्त देश की आँखें उस ओर लगी थीं। उसी समय एक दुर्घटना हुई जो चौराचौरी काण्ड के नाम से विख्यात है। यह घटना १९२२ ई० में ही हो गयी। चौराचौरी के थाने पर जनता ने हिंसक आक्रमण कर दिया और थाने में आग लगा दी, जिसके कारण कुछ सिपाहियों की मृत्यु हो गयी। महात्माजी को इस काण्ड से भयंकर वेदना हुई। उन्हें यह प्रतीत होने लगा कि देश अहिंसा के मार्ग को नहीं समझ पाया है और संभवतः आन्दोलन हिंसक रूप धारण कर लेगा। महात्माजी ने सारा आन्दोलन स्थगित कर दिया। महात्माजी के इस कदम ने भारतीय आशाओं पर पानी फेर दिया। चारों ओर निराशा व्याप्त हो गयी। महात्माजी के इस कदम को लोगों ने पसन्द नहीं किया। उसकी आलोचना शुरू हो गयी। लोग कहने लगे कि महात्माजी की यह बहुत वड़ी व भयंकर भूल है। महात्माजी ने यह क्या किया? जीती हुई वाजी हार में परिणित हो रही है। मुझे भी ऐसा ही प्रतीत हुआ। मैं भी इसे महात्माजी की हिमालय से भी बड़ी भूल समझने लगा। ब्रिटिश सरकार में प्रसन्नता व्याप्त हो गयी और उसने महात्माजी को पकड़ कर जेल में ठेल दिया। स्वतंत्रता की लड़ाई के पहले दौर का यों अन्त हो गया।

राजनीति का नया मोड़

देश की राजनीति ने एक नयी मोड़ ली। नये सुधारों के अनुसार जव पहला चुनाव हुआ तो नर्म दल ने चुनाव में भाग लिया और नये मंत्रिमंडल में सर सुरेन्द्रनाथ वनर्जी जैसे स्वाधीनता-संग्राम के नेता शामिल हो गये और मिनिस्टर भी बन गये। मिनिस्टरी में उन्होंने कलकत्ता कारपोरेशन का नया विधान बनाया, जिसके अनुसार जनता के हाथों में

कारपोरेशन का भार समर्पित कर दिया गया था। कांग्रेस ने उस समय यह उचित समझा कि कारपोरेशन को अपने हाथों में ले ले और इस पर अपना पूर्ण अधिकार कायम कर लिया। देशबन्धु चित्तरंजनदास इसके पहले मेयर वने। श्री सुभाष वोस ने इसी समय विलायत से आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर ली थी, परन्तु उन्होंने इससे त्याग-पत्र दे दिया और देश की स्वतंत्रता के संग्राम में भाग लेने के संकल्प की घोषणा की, जिसका सर्वत्र स्वागत हुआ। सुभाष वावू नये युवक-सेनानी के रूप में जनता के समक्ष आ गये। वे ही कारपोरेशन के पहले एक्जीक्यूटिव आफिसर भी बनाये गये। कारपोरेशन कांग्रेस का गढ़ वन गया।

कुछ समय बाद एसेम्वली का नया चुनाव प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस ने इसके वाद अन्दर जाकर इसे विनष्ट करने का निश्चय किया और चुनावों में भाग लिया। श्री एस० आर० दास, जो उस समय के एडवोकेट जेनरल थे और जो श्री चित्तरंजनदास के भाई थे, उनके विरुद्ध में एक साधारण व्यक्ति श्री सतकौड़ीपति राय खड़े किये गये और उन्होंने श्री एस० आर० दास को हरा दिया। सरकार की ओर से उनके पक्षपातियों की सारी शक्ति लगने पर भी श्री एस० आर० दास जैसे प्रभावशाली नेता हार गये। सर सुरेन्द्रनाथ वनर्जी के विरुद्ध में डा० विधान चन्द्र राय खड़े किये गये। उस समय विधान वावू कोई बड़े नेता नहीं थे—साधारण डाक्टर थे और सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एक महान नेता। परन्तु वे भी हार गये और विधान बाबू जीत गये। इस तरह बंगाल की जो धारा-सभा वनी, उसमें कांग्रेस वड़े पैमाने पर पहुँच गयी और जनता का समर्थन उसे प्राप्त हो गया। अन्दर जाकर कांग्रेस ने विधान सभा को नष्ट कर देने का कार्य आरम्भ किया। इसके पहले जव कारपोरेशन का पहला चुनाव हुआ था, उस समय वड़ावाजार की सीट से सर वद्रीदासजी गोयनका खड़े हुए थे, उनके विरुद्ध कांग्रेस की ओर से जो खड़े हुए थे, वे नगण्य थे। सर बद्रीदासजी गोयनका को अपनी सफलता के लिए सारी शक्ति लगा देनी पड़ी—इज्जत का सवाल वन गया था। सर बद्रीदासजी किसी तरह जीत तो गये, परन्तु उन्होंने कारपोरेशन में कोई भाग नहीं लिया और फिर कभी खड़े नहीं हुए। इस तरह नर्म दल की कमर टूटती जा रही थी और कांग्रेस प्रवल हो रही थी, परन्तु सत्याग्रह के स्थगित होने के कारण देश में निराशा का वातावरण वना ही रहा। इसी वीच में १९२५ ई० में श्री चित्तरंजनदास की मृत्यु हो गयी और इससे कांग्रेस को वहुत वड़ा धक्का लगा। उनके मृत देह का जो जुलूस कलकत्ते में निकला, वह अभूतपूर्व था। इतनी वड़ी भीड़ शीघ्र फिर देखने में नहीं आई।

साम्प्रदायिक संघर्ष

१९२५ ई० से हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष होने लगे। साम्प्रदायिकता वढ़ने लगी—शौकत अली, मुहम्मद अली जो खिलाफत आन्दोलन को लेकर महात्माजी का साथ दे रहे थे, अलग हो गये और देश साम्प्रदायिकता के गर्त में जा गिरा। महात्मा गांधी राजनीति से अलग होकर चुपचाप वैठ गये। उस समय श्रीमती सरोजनी नायडू कांग्रेस की अध्यक्षा थीं। वे बड़ावाजार में भी आयी थीं और वद्रीदासजी मुकीम के मकान के हाल में एक सभा हुई थी, जिसमें महाराजा बर्दवान ने हिन्दू समाज का नेतृत्व किया था। संभवत:

यह सभा उसी हाल में हुई थी, जिसमें इस समय अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन का कार्यालय है। १९२५ ई० के हिन्दू-मुस्लिम दंगों में हम लोगों ने हिन्दू रिलीफ सोसाइटी के नाम से बहुत काम किया था, जिनके पास वन्दूक का लाइसेन्स था, उन्होंने हिन्दू परिवारों का मुस्लिम क्षेत्रों से उद्धार किया। जितने हिन्दू पकड़े गये थे, उनके मुकदमों में पैरवी करने के लिए पूरी व्यवस्था की गयी। इसका कार्यालय १६०, हरिसन रोड में कायम हुआ। स्व० पद्मराजजी जैन इसके प्रधान हुए, तो बड़ी मुस्तैदी के साथ हिन्दुओं की रक्षा का कार्य आरम्भ हुआ। मुझे भी याद है कि खाकी वर्दी और टोप पहनकर, वन्दूक लेकर और कुछ लाठी धारी स्वयंसेवकों को लेकर कई हिन्दू परिवारों को मुस्लिम क्षेत्र से निकालने का काम पड़ा था। महीनों तक हिन्दू-मुस्लिम हत्याएं चलती रहीं। स्वामी विश्वानन्द ने भी बड़ा प्रमुख भाग लिया। देश की अवस्था में साम्प्रदायिकता ने भयंकर रूप से प्रवेश कर लिया और चारों तरफ नैराश्य का वातावरण उत्पन्न हो गया।

इसी समय ब्रिटिश सरकार ने सर जान साइमन के नेतृत्व में साइमन कमीशन भारत में भेजा। इसका कार्य था कि भारतवर्ष को कौन से राजनैतिक सुधार दिये जायं, ताकि भारतवासियों में संतोष हो सके। कांग्रेस ने इसका बायकाट कर दिया, फिर भी कमीशन भारतवर्ष में आया और उसने अपना कार्य आरम्भ किया।

एक अविस्मरणीय दृश्य

जिस समय हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष चल रहा था, उस समय एक प्रश्न यह था कि मस्जिदों के सामने हिन्दुओं का जुलूस बाजा बजाते हुए न निकले। हिन्दुओं का कहना था कि सड़क पर बाजा बजाते हुए जुलूस निकालने का उनका अधिकार है। मस्जिद के सामने बाजा बन्द नहीं होगा। इसको लेकर दंगे-फसाद हो जाते थे। गोहत्या के कारण भी संघर्ष हो जाता था।

बड़ाबाजार से एक जुलूस बाबूलाल अग्रवाल की धर्मशाला से निकला करता था, जिसे राजराजेश्वरी का जुलूस कहते थे। वह जुलूस हरिसन रोड स्थित दीनू मियां की मस्जिद के सामने से निकलता था। अबकी बार जब उसके निकालने का समय आया, तब यह आशंका प्रबल हो उठी कि मस्जिद के सामने से बाजा बजाते हुए अगर जुलूस निकलेगा तो अवश्य दंगा होगा। दोनों दल अपनी-अपनी जिद्द पर डटे हुए थे। जुलूस निकला। हिन्दुओं ने पताकाएं लाठियों पर बांध लीं थी। जिनके पास पिस्तौल थी, वे उसे लेकर शामिल हुए। पुलिस भी काफी संख्या में थी। जब जुलूस दीनू मियां की मस्जिद के सामने से बाजा बजाते हुए निकला, तो मुसलमानों ने ईंट-पत्थर फेंकना आरम्भ किया और दंगा शुरू हो गया। मुझे भी उस जुलूस में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ था। मेरे सामने ही एक मुसलमान बड़ा-सा पत्थर लेकर आया और उसने मुझ पर फेंका। मैंने अपना छाता खोलकर उससे अपने को बचाया। हिन्दुओं ने भी झण्डे निकालकर लाठियों से आक्रमण शुरू किया। जब जुलूस आगे बढ़ने लगा, तो चित्तरंजन एवेन्यू और हरिसन रोड की मोड़ पर चारों तरफ से घेर कर मुसलमानों ने आक्रमण शुरू किया और ऐसा मालूम होने लगा कि जुलूस खतरे में पड़ जाएगा और कितने की जानें चली जाएंगी।

ऐसे मौके पर श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान ने अपना रिवाल्वर निकाला और चित्तरंजन एवेन्यू और हरिसन रोड की मोड़ पर अकेले खड़े होकर, आक्रमण करने के लिए आते हुए मुसलमानों की भीड़ पर धड़ाधड़ गोलियाँ बरसानी शुरू कर दी। यह बड़ी हिम्मत का काम था। इस काम में वे अकेले ही थे, और चौराहे पर खड़े होकर बिना किसी भय के पूरी हिम्मत के साथ वे गोलियां चला रहे थे। वह दृश्य आज भी आंखों के सामने नाच उठता है। इन गोलियों के कारण मुसलमान आक्रमणकारियों का झुण्ड तितर-बितर हो गया और जुलूस हरिसन रोड पारकर चित्तरंजन एवेन्यू की ओर मुड़ गया और हिन्दू मोहल्ले में जा पहुँचा। हिन्दुओं ने अपनी विजय-पताका फहराई। श्री दुर्गा-प्रसादजी खेतान ने अपनी वीरता का जो प्रदर्शन किया था, वह चिरस्मरणीय रहेगा। जब देश में साइमन कमीशन आया और कांग्रेस नें इसका बायकाट किया। महात्माजी जो अबतक चुपचाप बैठे थे, मैदान में आ गये और साइमन कमीशन के विरोध का नेतृत्व फिर से ग्रहण किये।

साइमन कमीशन

साइमन कमीशन की नियुक्ति के कारण देश में पुनः राजनैतिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसके पहले हिन्दू और मुसलमानों का संघर्ष अपनी चरम सीमा को पहुंच गया था। कलकत्ते में यह संघर्ष महीनों चला। अगर किसी दिन हिन्दुओं की मृत्यु-संख्या कम होती, तो मुसलमानों की चेष्टा होती कि दूसरे दिन इस घाटे की पूर्ति की जाये और अगर किसी दिन मुसलमानों की संख्या कम होती, तो हिन्दुओं की तरफ से इसकी पूर्ति करने के लिए चेष्टा की जाती। इस तरह दोनों सम्प्रदायों के बीच में जो कलह उत्पन्न हो गया था, उसने हिन्दू और मुसलमानों के बीच एक गहरी खांई खड़ी कर दी, जो अन्त में पाकिस्तान का रूप लेकर रही।

एक अन्य दुर्घटना

एक दिन की बात है कि माहेश्वरी भवन में साइमन कमीशन के विरुद्ध में एक सभा हो रही थी और मैं भी उसमें शामिल होने के लिए जा रहा था। तभी मुजफ्फरपुर के एक छोटे-मोटे जमींदार, जो हमारे परिचित थे, हमारे पास आये और बोले कि रात्रि में हम उन्हें अपनी गद्दी में टिकने दें, भोर में वे चले जायेंगे। मैंने उन्हें इजाजत दे दी और अपने आदमियों को कह दिया कि उनके भोजन की व्यवस्था कर देना। इसके बाद मैं उस मीटिंग में चला गया। जब मीटिंग से लौटकर रात १० बजे के लगभग आया, तो हमारे आदमियों से मालूम हुआ कि आगन्तुक महोदय ने कुछ भी भोजन आदि करना स्वीकार नहीं किया है। उनकी बातों से मालूम होता है कि उनका दिमाग खराब है। मैंने भी जब उनसे बातें की तो ऐसा ही लगा। उनका अपने पुत्र से झगड़ा चल रहा था। उसी को लेकर उनके मन में यह आशंका घुस गयी थी कि उनका लड़का उन्हें मार डालना चाहता है। वे चारों ओर देखकर बीच-बीच में कह उठते थे कि हमारा लड़का हमें मारने के लिए यहाँ आ रहा है। मैंने उन्हें बहुत आश्वासन देने की कोशिश की, परन्तु वे आश्वस्त नहीं हो सके। तब हमें चिन्ता हुई कि रात कैसे काटी जाये। उनके पास

एक छड़ी थी, जो वजन में मुझे भारी लगी। मैंने खोलकर जब उसे देखा तो वह गुप्ती थी—अर्थात्, उस छड़ी के अन्दर शस्त्र था, जिसे संभवतः वे अपनी आत्मरक्षा के लिए रखे हुए थे। हमें भय हुआ कि यदि रात्रि में हमलोग सो जायें तो कहीं हमीं लोगों के गले में वे उसे न घुसा दें। अतएव हमलोगों ने, जो दो-तीन आदमी थे, निश्चय किया कि रात्रि में बिजली नहीं बुताई जाये और हमलोग सभी जगे रहें और सुबह इन्हें यहाँ से विदा करें। यह सोचकर सोने के लिए बरामदे में बिछौना करवा दिया। हमलोग सभी गद्दी के अन्दर बैठ गये।

जब वे बरामदे में पहुंचे तो जोरों से दुर्गापाठ करते हुए—'नमस्तस्ययी—नमस्तस्ययी' की रट लगाने लगे। मैं उन्हें सुलाने की चेष्टा करने लगा, परन्तु सुनता कौन था। वे दुर्गापाठ और भी तेजी के साथ करने लगे और यकायक बोल उठे कि मैं भी उनके लड़के से मिल गया हूँ और उन्हें मारने के लिए आया हूँ। यह सुनते ही मेरा होश-हवाश गुम हो गया। मैंने हाथ खोलकर उन्हें दिखा दिया कि मेरे पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं है। और जब से मैं आया हूँ उनके सामने हूँ। उनका लड़का तो यहाँ है भी नहीं, फिर मुझसे मिलने का प्रश्न कैसे उठता है। इतनी देर में ही मैं देखता हूँ कि वे यकायक बरामदे की रेलिंग से सड़क पर कूदने की कोशिश कर रहे हैं और अपने पैरों को रेलिंग के उस पार कर चुके हैं। मैंने फौरन उनके हाथों को पकड़ा और जोर से घसीट कर उन्हें फिर से बरामदे में लाने की कोशिश करने लगा। परन्तु वे वजन में बहुत भारी थे और अनवरत नीचे कूदने की चेष्टा में लगे हुए थे। उनको घसीटकर फिर से बरामदे में लाना असंभव हो गया। साथ ही वे जोरों से चिल्ला रहे थे कि काली टोपी से मुँह ढककर रस्सी से उनके गले को बांधकर मैं फांसी पर लटकाना चाहता हूँ। सड़क के ऊपर काफी भीड़ इकट्ठी हो गयी। क्योंकि चितपुर रोड पर बराबर मनुष्यों का आना-जाना रहता ही है। फूलकटरा में मैं दो तल्ले पर था और एक तल्ले पर बरामदा फुटपाथ के ऊपर बना हुआ था। एक तल्ले में बहुत से आदमी इकट्ठे हो गये थे। उन्हें देखकर मैंने उन्हें कहा कि यह आदमी नीचे गिर रहा है, वे लोग उसे बचा लें। अन्त में वह गिर ही गया और गिरने के बाद उसकी जांघों में फ्रेक्चर हो गया। सड़क से काफी लोग हमारी गद्दी में आये और बड़े रोब के साथ हमसे बातें करने लगे। आज का जमाना होता तो बिना पूछे ही हमारी दुर्दशा हो गयी होती। परन्तु वह जमाना दूसरा ही था। हमने उन्हें सारी बातें समझा दीं और बता दिया कि यह आदमी पागल मालूम होता है। मैं स्वयं पुलिस को खबर दे रहा हूँ।

मैंने फौरन श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान को खबर देकर बुलाया और वे तत्काल पहुँच गये। सारी परिस्थिति देखकर हमलोगों ने पुलिस को टेलीफोन किया। पुलिस भी आ गयी। पुलिस के सामने भी वह यह कह रहा था कि हम उसे मारने की कोशिश कर रहे थे, परन्तु साथ में वह यह भी कहने लगा कि पुलिस भी हमारे लड़के से मिल गयी है। अतएव जो पुलिस अफसर आया था उसे भी यह विश्वास हो गया कि इस आदमी का दिमाग ठीक नहीं है। उसे तो हास्पिटल भेज दिया गया और हमलोगों ने थाने में जाकर सारी घटना की डायरी लिखवा दी और चले आये। पुलिस अफसर ने मुझसे कहा भी कि जैसा वह बयान दे रहा है, उस हालत में अगर और कोई होता तो एक बार तो मुझे

गिरफ्तार करना ही पड़ता। परन्तु वह आफिसर मुझे जानता था और ऐसी परिस्थिति में उसने हम से कुछ नहीं कहा। दूसरे दिन मैंने डेपुटी कमिश्नर आफ पुलिस से भेंट की और मालूम पड़ा कि पुलिस की तरफ से कोई चार्ज नहीं है और वह आदमी वास्तव में पागल है। उसका बक्स और बैंडिंग ले जाकर मैंने हास्पिटल में उसे दे दिया। यह एक बड़ा अप्रिय अनुभव था। हितोपदेश में ही एक ऐसा ही श्लोक है। जिसका आशय है—"जिसका कुल-शील अज्ञात हो, उसे अपने घर में रहने देना उचित नहीं है।"

यह सबक मैंने अपनी जिन्दगी भर के लिए ग्रहण कर लिया और फिर ऐसी कोई बारदात नहीं हुई।

मेरे छोटे भाई का निधन

१९२८ ई० में हमारा छोटा भाई मोहन जिसका जन्म १९०७ ई० में हुआ था सख्त बीमार पड़ा। उसे प्लूरसी हो गयी—साथ ही यक्ष्मा भी। इस जमाने में यक्ष्मा का कोई इलाज नहीं निकला था, अतएव उसके नाम से ही आदमी घबड़ा जाता था। परन्तु प्रारम्भिक स्थिति थी। अतएव डाक्टरों को आशा थी कि वे इसे ठीक कर देंगे। उसे दो महीने पुरी भेजा गया। वहाँ पर उसे कुछ आंव की शिकायत हो गयी, जो चिन्ता का कारण बन गयी। उसके पीने के लिए पानी भुवनेश्वर से मंगवाया जाता था। जो कुछ भी संभव था, वह किया जा रहा था। अवस्था में कुछ सुधार हुआ। परन्तु जून के बाद पुरी में मौसम बिल्कुल खराब हो जाता है। उसे भागलपुर के पास मन्दारहिल में छः महीने रखा गया। भागलपुर के वैद्य श्री गौरीशंकरजी ने उसका परपटी का इलाज किया, उससे अवस्था में सुधार हुआ। फिर छः महीने उसे राजस्थान में रखा गया। इस तरह एक वर्ष के बाद वह स्वस्थ हो सका और कलकत्ते वापस आया। परन्तु १९३७ ई० में उसे किडनी की बीमारी हो गयी और उसने भयंकर रूप धारण किया। रक्तचाप २०० से अधिक रहने लगा। अन्त में आंखें खराब हो गयीं और लकवा भी मार गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

मेरे जन्म के बाद मेरे कोई भाई का जन्म १२ वर्ष तक नहीं हुआ था। उसके जन्म के पहले घर में एक प्रकार की चिन्ता व्याप्त हो गयी थी; क्योंकि मैं अकेला ही था। साधारणतया धारणा थी कि एक आँख का क्या भरोसा। हर माता-पिता चाहते थे कि कम-से-कम दो पुत्र तो हों ही। इसके लिए बहुत कुछ टोना-मंतर उस जमाने में किया जाता था। हमारे पिता के मामा धर्मात्मा और धर्मपरायण व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कि इसके लिए भागवत सप्ताह करवाया जाय। हमारे पिताजी को इन बातों में विश्वास तो नहीं था; परन्तु अपने मामाजी के प्रति उन्हें बहुत श्रद्धा थी। मुजफ्फरपुर के निकट सिहोली में, जहाँ हमारे पिताजी के मामा रहते थे, वहीं एक पंडितजी के द्वारा भागवत सप्ताह करवाया गया। जब सप्ताह आरम्भ होता है, तो एक मिट्टी के वर्त्तन में जौ बो दिया जाता है। सात दिनों में जौ उग आता है। सातवें दिन देखा गया तो सभी पत्ते तो हरे थे, लेकिन ५ पत्ते सफेद थे। हमारे पिता के मामाजी ने कहा कि हमारा सप्ताह सफल हो गया। अब तुम्हें पाँच पुत्र होंगे। संयोग की बात है कि हुआ भी ऐसा ही। पहला पुत्र मोहन था। उसके बाद चार और हुए। उनमें से तीन तो

बहुत छोटी अवस्था में ही चल बसे। एक और बच गया; जिसका नाम सच्चिदानन्द था। दुर्भाग्यवश उसकी भी अब मृत्यु हो चुकी है। वह बड़ा होकर स्त्री-पुत्रादि को छोड़कर मरा। अन्त में मैं फिर अकेला का अकेला ही रह गया। यह दूसरा भाई भी कुसंगति में पड़ गया था और मद्यपान करने लगा था। जब हमने यह देखा तो उस पर नियंत्रण करने की कोशिश की; परन्तु सारी कोशिश विफल रही। पैसे की कमी जब होने लगी तो मर्फिया का स्वयं इंजेक्शन लेना शुरू किया, जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था। यह आदत बड़ी भयंकर होती है, जिससे कोई मुक्ति नहीं पा सकता। अन्त में उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ा। जब मैं इन बातों का स्मरण करता हूँ, तो मुझे पंडितजी ने पढ़ने के समय जो प्रतिज्ञायें करवाई थीं कि मद्यपान नहीं करूंगा, उसका महत्व बोध हो जाता है। आज इस मद्यपान के कारण न मालूम कितने युवक अपने प्राणों को खोते हैं, अपना स्वास्थ्य नष्ट करते हैं, परन्तु फिर भी नहीं चेतते।

कलकत्ता कारपोरेशन में अपना समाज

१९२७ ई० के चुनाव में कांग्रेस की ओर से मैं कारपोरेशन के लिए खड़ा हुआ। मेरे साथ ही तत्कालीन वार्ड नं० ७ से श्री बैजनाथप्रसादजी देवड़ा और शीतलप्रसाद खड्ग-प्रसाद फर्म के मालिक श्री कृष्णकुमार भी खड़े हुए। हमलोग तीनों आदमी निर्विरोध चुन लिये गये। इसी तरह तत्कालीन वार्ड नं० ५ से श्री रामकुमारजी गोयनका और ८ नं० वार्ड से श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका भी कारपोरेशन में पहुंच गये। बड़ाबाजार का एक ब्लाक बन गया। हमलोगों की भी यह चेष्टा रही कि बड़ाबाजार की ओर कारपोरेशन ध्यान दे, क्योंकि दक्षिण कलकत्ता के सदस्य अधिक थे और कारपोरेशन में उनका बोलबाला था। इसलिए उस क्षेत्र की ओर कारपोरेशन का ध्यान अधिक था। उत्तर कलकत्ता की ओर कम ध्यान होने के कारण हमलोगों को एक साथ मिलकर कारपोरेशन में लड़ना पड़ा और एक समय ऐसा भी आ गया था कि दक्षिण के लिए कोई मांगें उपस्थित हों तो हमलोग उसका विरोध करने लगे। उस समय श्री सेनगुप्ता मेयर थे। उन्होंने अश्वासन दिया कि वे बड़ाबाजार की ओर भी ध्यान देंगे।

हमलोगों में से सबसे अधिक सक्रिय श्री रामकुमारजी गोयनका थे, वे अपना सारा समय कारपोरेशन की ओर देते थे और बड़ाबाजार की कठिनाइयों की ओर पूरा ध्यान देकर उसे सुधारने की कोशिश करते थे। परन्तु बड़ाबाजार के लोग चाहते थे कि वे उनकी गैर-कानूनी हरकतों में भी उनका साथ दें, परन्तु वे ऐसा करने को तैयार नहीं होते थे। कानून के विरुद्ध मकानों के नक्शों को पास करवाने में वे किसी प्रकार की सहायता नहीं देना चाहते थे। इसी तरह से और भी गैरकानूनी बातों में वे अलग ही रहते थे। बोली में भी वे कुछ अधिक ही स्पष्टवादी थे। श्री सेनगुप्ता उन्हें कहा करते थे कि वे 'ब्रुटली फ्रैंक' (निर्दयतापूर्वक स्पष्टवादी) हैं। वे दुबारा खड़े हुए तो इन्हीं कारणों के सबब सफल नहीं हो सके। यह बड़ाबाजार के लिए एक बहुत बड़ी हानि का कारण हुआ, क्योंकि ऐसी लगनवाला कौंसिलर मिलना कठिन था। चुनाव एक ऐसी जटिल समस्या है, जिसमें वोटरों को खुश रखना आवश्यक हो जाता है और उन्हें खुश रखने के लिए उनके जायज या नाजायज कामों को भी करवाना पड़ता है—यह एक दुर्भाग्य की बात है।

जब तक वोटरों में सच्चा जागरण अपने कर्त्तव्यों के प्रति न हो, उनका निजी स्वार्थ ही सर्वोपरि रहता है। जो कौंसिलर उसमें सहायक हों उसे ही वे वोट देना पसन्द करते हैं। साथ ही अपने वार्ड के एक प्रभावशाली व्यक्ति से गोयनकाजी का विरोध हो गया और चुनाव के समय उन्होंने गोयनकाजी का पूरा विरोध किया। उसके बाद भी एक बार गोयनका जी खड़े हुए, परन्तु फिर भी सफल नहीं हो सके और सार्वजनिक जीवन से उन्होंने वैराग्य ही ले लिया। ९३ वर्ष की उम्र में उनका निधन हुआ। ऐसे कार्यकर्त्ता बहुत कम मिलते हैं। तीन वर्षों में उन्होंने बड़ाबाजार के लिए बहुत से काम करवाये। हमलोग उनका साथ देते थे और एक प्रकार से बड़ाबाजार के लिए कारपोरेशन में दल बन गया था, जो उत्तरी कलकत्ता के अन्य कौंसिलरों के साथ मिलकर उत्तरी कलकत्ता के किसी भी इलाके की समस्याओं में साथ रहता था।

कलकत्ता कारपोरेशन, सुव्यवस्था से परे व भ्रष्टाचार से भरी

कारपोरेशन में कांग्रेस का पूर्णतया राज्य था। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने यह एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया था कि कारपोरेशन में जनता के प्रतिनिधियों की प्रधानता कर दी थी। कांग्रेस ने अपना अधिकार कारपोरेशन में जमा लिया था और कांग्रेस-कर्मियों को उसमें काफी स्थान प्राप्त हुए और अधिकार भी मिले। लेकिन कारपोरेशन की सुव्यवस्था कभी भी नहीं हो सकी। उसे सरकार ने जनता के निर्वाचित सदस्यों से अधिकार छीन कर कई बार अपने हाथों में लिया। फिर भी पुनः-पुनः कारपोरेशन को जनता के हाथ में देना ही पड़ता था। सन् १८९९ ई० में तत्कालीन बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने कहा था—

"यह बातें बनाने के लिए एक किला है और काम में देरी करने के लिए एक शस्त्रागार है।"

यही दशा आज भी बनी हुई है। १९५२ ई० में जब मैं स्वायत्तशासन विभाग का मंत्री बना, नवीन संविधान के अनुसार चुनाव किया गया था। उससे भी कारपोरेशन की कार्य-पद्धति में कोई सुधार नहीं हो सका था। कारपोरेशन की जो वर्त्तमान स्थिति है, उसमें कोई सुधार हो ही नहीं सकता, और कोई काम भी नहीं हो सकता। कारपोरेशन के कर्मचारियों में अपने कर्त्तव्य का बोध बहुत कम मात्रा में है और भ्रष्टाचार भी बहुत व्याप्त है, जिसे दूर करना एक अत्यन्त कठिन समस्या है। देश के राजनैतिक सिद्धान्तों के कारण इसका शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में रहना अनिवार्य है। सरकार अगर इसे अपने हाथों में लेती है, तब थोड़े दिनों के लिए ही वह ऐसा कर सकती है, जो कि इसके सुधार के लिए अपर्याप्त है। इसको तो बहुत दिनों के लिए कड़े-से-कड़े शासन के अन्दर रखना होगा, तभी इसकी अवस्था सुधर सकती है। परन्तु ऐसा करना संभव नहीं है। भविष्य में क्या होगा, यह तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु मुझे इसके सुधरने में निराशा ही प्रतीत होती है—इसे मैं स्वीकारता हूँ।

देश की राजनैतिक स्वतंत्रता की घोषणा :

जब से साइमन कमीशन देश में आया, तब से राजनैतिक हलचल फिर से आरम्भ हुई। महात्मा गांधी भी जो अबतक चुपचाप बैठे हुए थे और देश की समस्याओं का

अध्ययन कर रहे थे, मैदान में आ गये। पं० मोतीलालजी नेहरू की अध्यक्षता में एक संविधान देश की सभी पार्टियों ने मिलकर बनाया, परन्तु ब्रिटिश सरकार को यह संविधान स्वीकार नहीं था। अतएव, लाहौर में १९२९ ई० में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तब पं० जवाहरलालजी नेहरू ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसमें इस बात की घोषणा की गयी कि भारतवर्ष सर्वथा एक स्वतंत्र देश हो। यही हमारा लक्ष्य है। इस प्रस्ताव ने देश के राजनैतिक जीवन में फिर से हलचल पैदा कर दी। कांग्रेस के जो सदस्य एसेम्बलियों में थे, उन्होंने एसेम्बलियां छोड़ दीं और संघर्ष के मैदान में उतर पड़े। देश का वातावरण फिर से गर्म हो उठा।

१९३१ ई० में महात्मा गांधी ने नमक-सत्याग्रह आरम्भ किया और पैदल डंडी की यात्रा की, जहां वे नमक बनाने के लिए अपने दल के साथ चले। ज्यों-ज्यों उनकी पैदल यात्रा चलती जाती थी, त्यों-त्यों देश में आन्दोलन उग्र रूप धारण करता जाता था। कोई नहीं समझता था कि दंडी की यात्रा देश में इतना बड़ा उत्साह पैदा करेगी। सरकार का आसन हिल गया और सारे देश में नमक-सत्याग्रह शुरू हो गया। सरकार को जेलों में आदमियों को फिर से भेजना आरम्भ करना पड़ा।

गोलमेज कांफ्रेंस

विलायत में एक गोलमेज कांफ्रेन्स का आयोजन हुआ। उस समय इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री वहाँ की लेबर पार्टी के नेता रेमजे मैकडानल बन चुके थे। आशा हुई थी कि संभवतः कोई समझौता हो जाय। इसके पहले सरकार और कांग्रेस के बीच में एक समझौता भी हुआ, जिसके अनुसार कांग्रेस ने इस गोलमेज कांफ्रेन्स में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया था। महात्मा गांधी अकेले कांग्रेस की तरफ से प्रतिनिधि बनकर इस कांफ्रेन्स में शामिल हुए, परन्तु किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सका। गांधीजी के वापस आने पर देश में राजनैतिक आन्दोलन और भी जोरों से आरम्भ हुआ। अन्त में १९३५ ई० में ब्रिटिश सरकार ने एक नया संविधान भारतवर्ष के लिए तैयार किया, जो १९३५ ई० का गवर्नमेण्ट इण्डिया एक्ट के अनुसार बना। इसके अनुसार १९३७ ई० में चुनाव आरम्भ हुआ। कांग्रेस ने इसमें भाग लेना स्वीकार किया और प्रायः समस्त देश में कांग्रेस की सरकारें बन गयीं। बंगाल में मुसलिम लीग का शासन बना, क्योंकि यहाँ उसकी प्रधानता थी।

मेरे राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ

इसी समय के आसपास मेरे मन में भी यह विचार उठा कि इस नयी विधान सभा में मैं भी चला जाऊं और एक नये राजनैतिक जीवन का आरम्भ करूं। उस समय तक श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका का प्रभाव कांग्रेस दल में काफी था और मैंने उनसे इस विषय में बातें कीं। उससे ऐसा प्रतीत हुआ कि श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका इन नयी एसेम्बलियों में जाने के इच्छुक नहीं हैं और मैं यदि जाना चाहूँ तो जा सकता हूँ। अतएव मैंने इस चुनाव में खड़ा होने का निश्चय किया और कांग्रेस पार्टी में टिकट के लिए मैंने अपना आवेदन-पत्र दे दिया। किन्तु पीछे से कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गयीं, जिससे

कि श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका ने भी नयी एसेम्वली में जाने का विचार व्यक्त किया। इसे लेकर आपस में कुछ मत-मतान्तर पैदा हो गया। परन्तु मित्रों के बीच में पड़ने के कारण आपस में यह समझौता हो गया कि इस समय श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका को एसेम्वली में निर्विरोध जाने दिया जाय। कुछ समय के वाद वे एसेम्वली छोड़ देंगे, उस समय मैं खड़ा हो सकूँगा। यह समझौता कांग्रेस दल के तत्कालीन नेताओं की सम्मति से हुआ था। अतएव, १९३८ ई० में श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका ने एसेम्वली की सदस्यता को त्याग दिया। यह उनकी उदारता थी, नहीं तो आज के जमाने में कौन इस तरह अपनी सीट को छोड़ता है। जव उनका त्याग-पत्र गवर्नर के पास भेजा जाने लगा, उसके पहले कांग्रेस के नेताओं से वातें हो चुकी थीं कि इस स्थान पर वे मुझे कांग्रेस दल की ओर से खड़े होने की अनुमति प्रदान कर देंगे। इसी आधार के ऊपर यह त्याग-पत्र सरकार के हाथों में भेजा गया और यह सीट खाली हुई। परन्तु खाली होने के वाद कुछ अड़चनें उत्पन्न हो गयीं। ऐसा सोचा जाने लगा कि इस सीट से डा० विधानचन्द्र राय को विधान सभा में भेजा जाय। यह कहा जाने लगा कि वंगाल में आपसी दलवन्दी को खतम करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। उस समय सुभाष वावू कांग्रेस के अध्यक्ष थे और वंगाल एसेम्वली में किसे भेजा जाये और किसे नहीं—इसका अधिकार उनको और मौलाना आजाद को दिया गया था। सुभाष वावू ने मुझे जव यह संदेश वताया तो मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि यह सीट तो हमारे लिए ही खाली हुई थी, अन्यथा यह खाली ही नहीं होती। जव कांग्रेस के वरिष्ट नेताओं की सम्मति से इस सीट को खाली किया गया तो यह वात क्यों उठती है? यदि विधान वावू को एसेम्वली में भेजना आवश्यक ही हो तो और किसी अन्य सीट से भेजा जा सकता है। वड़ावाजार के हिन्दी भाषा-भाषियों में यही एक सीट थी, जहाँ से वे जा सकते थे। अतएव वड़ाबाजार के कार्यकर्त्ता भी यह नहीं चाहते थे कि यह सीट उनके हाथों से निकल जाय। सुभाष वावू की आन्तरिक इच्छा नहीं थी कि यह सीट हिन्दी भाषियों के हाथों से निकल जाये, परन्तु वे स्पष्ट रूप से इस विचार को व्यक्त नहीं करना चाहते थे। अतएव उन्होंने मुझसे कह दिया कि मैं जो कुछ आवश्यक समझूं, इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए करूँ। मैंने वड़ावाजार की संस्थाओं की ओर से एक शिष्टमंडल मौलाना आजाद के पास भिजवाया, जिसने उनसे स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह सीट हिन्दी भाषा-भाषी के लिए कांग्रेस की ओर से सुरक्षित है और यदि विधान वावू का एसेम्वली में जाना ही आवश्यक हो तो वे किसी दूसरी सीट से जायें। मैंने भी मौलाना साहव को स्पष्ट कह दिया कि जव शरत वावू कांग्रेस पार्टी के नेता के रूप में विधान सभा में वर्त्तमान हैं तो विधान वावू के वहाँ जाने से एकता कैसे उत्पन्न होगी ; एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकेंगी, इस पर उन्हें विचार करना चाहिए। अन्त में कांग्रेस के नेताओं ने सारे प्रश्नों पर विचार करके यह स्थिर किया कि इस सीट से मैं ही कांग्रेस के टिकट पर खड़ा होऊँ और विधान वावू को यदि भेजना ही हो तो किसी दूसरी सीट से उन्हें भेजा जाये। परन्तु संभवतः कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं ने यह भी अनुभव किया कि विधान वावू के जाने से आपसी संघर्ष वढ़ सकता है, अतएव मुझे कांग्रेस का टिकट इस सीट के लिए देना निश्चय किया। हमारी ओर से जो शिष्ट-मंडल मौलाना साहव से मिला था, उसका नेतृत्व श्री वेणीशंकरजी शर्मा ने किया था।

वे उर्दू भाषा बहुत अच्छी बोल सकते थे और उन्होंने बड़ाबाजार की ओर से उसकी भावना को मौलाना साहब के समक्ष उपस्थित किया। बड़ाबाजार की कांग्रेस ने भी यह निश्चय किया था कि इस सीट से मुझे ही खड़ा किया जाय। इन सब बातों का प्रभाव कांग्रेस नेताओं पर काफी पड़ा और यही कारण हुआ कि मैं १९३८ ई० में कांग्रेस की ओर से निर्विरोध जाने में समर्थ हो सका और मेरा राजनैतिक जीवन आरम्भ हुआ।

मारवाड़ियों को ब्रिटिश भारत के नागरिकों के समान अधिकार के लिए प्रयत्न

जब ब्रिटिश सरकार द्वारा नया विधान भारतवर्ष के लिए बनाया जा रहा था, उस समय ब्रिटिश सरकार ने एक ह्वाइट पेपर प्रकाशित किया था, जिसमें नवीन विधान की रूप-रेखा दी गयी थी। इसमें ऐसा संकेत दिया गया था कि जो देशी राज्यों की प्रजा है, उन्हें ब्रिटिश राज्य की प्रजा के नागरिक अधिकार नहीं दिये जाएँगे। जब मैंने उसे पढ़ा तो मुझे यह आशंका हुई कि मारवाड़ी समाज के व्यक्ति जो विभिन्न प्रदेशों में बसे हुए हैं, उन्हें देशी राज्यों की प्रजा मानकर यदि नागरिक अधिकार नहीं प्राप्त हुए तो वे देश भर में विदेशियों की तरह समझे जाएँगे। ऐसा होने से न तो उनको वोट का अधिकार होगा और न कोई अन्य नागरिक अधिकार। ऐसी अवस्था में मारवाड़ी समाज की अपार क्षति होगी।

इसके कुछ समय पहले ही आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने अपनी जीवनी प्रकाशित की थी, जिसमें मारवाड़ी समाज के विरुद्ध बहुत कुछ उन्होंने विष उगला था। उसे पढ़कर मन में ऐसी आशंका जागृत हुई कि यदि यह प्रान्तीयता का विष देश में फैल गया तो मारवाड़ी समाज की अवस्था और भी नाजुक हो जाएगी।

मैंने इसके संबंध में स्व० कालीप्रसादजी खेतान से बातें कीं और वे भी इस बात से सहमत हुए कि इसका संशोधन आवश्यक है। देशी राज्य की प्रजाओं को वे सभी अधिकार प्राप्त होने चाहिए, जो ब्रिटिश राज्य की प्रजाओं को प्राप्त होंगे। तभी हमलोगों की राजनैतिक स्थिति स्पष्ट हो सकेगी। फिर हमने श्री बद्रीदासजी गोयनका से इस संबंध में बातें कीं और वे भी हमलोगों के विचारों से सहमत हुए। यह निश्चय हुआ कि मारवाड़ी एसोसिएशन की मार्फत ब्रिटिश सरकार को एक स्मारक-पत्र भेजा जाये और भारत सरकार को भी इस संबंध में लिखा जाये। तदनुसार दोनों सरकारों को स्मारक-पत्र भेजा गया।

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला से भी मैं मिला और उनका ध्यान भी इस ओर आकृष्ट किया। स्व० देवीप्रसादजी खेतान भी वहीं मौजूद थे। उन्होंने भी जब उसे पढ़ा तो वे सहमत हुए कि इस संबंध में आवश्यक कार्यवाही की जाय। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने इसके संबंध में लार्ड रेडिंग, जो भारत के वाइसराय रह चुके थे, उनको पत्र लिखा और सर चार्ल्स टेंगर्ड जो उस समय इंगलैण्ड में "सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया इन कौंसिल" के सदस्य थे और किसी समय कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर भी रह चुके थे, उनको भी पत्र दिया। दोनों के जो जवाब आये, उनसे यह मालूम हुआ कि यह अधिकार तभी दिये जा सकते हैं जब कि देशी राज्य भी उसी तरह के अधिकार ब्रिटिश प्रजा को दें।

इसके बाद हमलोगों ने यह निश्चय किया कि अंग्रेजों की एसोसियेटेड चेम्बर आफ कामर्स और भारतवासियों की फेडरेशन आफ इण्डिया चेम्बर आफ कामर्स के द्वारा भी ब्रिटिश सरकार को यह अधिकार प्रदान करने के लिए लिखवाया जाये। अंग्रेजों की एसोसियेटेड चेम्बर ने इसका समर्थन-सूचक पत्र सरकार को दे दिया; परन्तु फेडरेशन आफ इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स ने यह प्रश्न उठा दिया कि देशी राज्य यदि ब्रिटिश प्रजा को यह अधिकार दें तभी यह अधिकार देशी राज्यों की प्रजा को ब्रिटिश भारत में दिया जा सकना संभव हो सकता है।

इसी बीच ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने एक कमेटी बनाई थी, जिसमें नये संविधान के संबंध में लोगों से विचार-विमर्श किया जा रहा था। हमलोगों ने ऐसा विचार किया कि इस कमेटी के समक्ष अपनी ओर से भी किसी व्यक्ति को भेजना चाहिए। मारवाड़ी एसोसिएशन इस बात के लिए राजी नहीं हुआ, क्योंकि वे लोग विलायत-यात्रा के विरोधी थे। अन्त में हमलोगों ने मारवाड़ी ट्रेड एसोसिएशन की ओर से ब्रिटिश सरकार को पत्र दिया कि वह हमलोगों के प्रतिनिधि को विलायत आने की अनुमति दे, और हमलोगों की जो मांग है उसे उपस्थित करने का मौका दे। ब्रिटिश सरकार ने अनुमति दे दी, परन्तु कोई ऐसा योग्य व्यक्ति नहीं प्राप्त हो सका, जिसे वहां भेजा जाये। हमलोग चाहते थे कि स्व० देवीप्रसादजी खेतान इसके लिए उपयुक्त होंगे। परन्तु इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स ने इस कमेटी को बायकाट कर रखा था, अतएव उनके लिए वहां जाना संभव नहीं था। अन्त में मैं और श्री रामदेवजी चोखानी बम्बई गये और सर मनूभाई मेहता जो बीकानेर के दीवान थे, उनसे मिले और उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और कहा कि वे इस काम को अपने हाथों में लें। परन्तु उनकी बातों से हमलोगों को कोई आशाजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। फिर हमलोग पं० मदनमोहनजी मालवीय से मिले। उन्होंने भी ह्वाइट पेपर को पढ़कर उचित समझा कि इस दिशा में आवश्यक कार्यवाही की जाये। कलकत्ता वापस जाकर हमलोगों ने सर एन० एम० सरकार जो उस समय के एक सुप्रसिद्ध बैरिस्टर थे, और जो इस काम के लिए विलायत जानेवाले थे, उनसे मिले और उनसे अनुरोध किया कि वे इस विषय को अपने हाथों में लें और ब्रिटिश सरकार से इसे स्वीकृत कराने का प्रयत्न करें। सौभाग्यवश वे राजी हो गये। प्रान्तीयता का विष तब तक इतना नहीं फैला था। उन्होंने विलायत जाकर भारत के सेक्रेटरी आफ स्टेट से बातें कीं और सेक्रेटरी महोदय इस आवश्यक सुधार के लिए राजी हो गये और आवश्यक संशोधन करने का प्रस्ताव करते समय बोले कि मारवाड़ी समाज की कठिनाइयों को दूर करने के लिए यह संशोधन किया जा रहा है। परन्तु संशोधन करते समय उन्होंने यह अधिकार प्रान्तीय सरकारों को दे दिया। जब यह कानून बन गया तब तक अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की भी स्थापना हो चुकी थी। उसने यह प्रयत्न किया कि भारतवर्ष की जो प्रान्तीय सरकारें हैं, वे इस अधिकार को प्रदान करें। केवल एक-दो राज्यों में कुछ असुविधा हुई और उसे सुधरवाने के लिए सेठ जमनालालजी बजाज की मार्फत सम्मेलन ने कांग्रेस द्वारा प्रयत्न किया। कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने इसे स्वीकार किया और अन्त में सभी प्रदेशों में यह अधिकार प्राप्त हो गया।

सामाजिक कार्य

१९२० से लेकर १९३० तक देश में राजनैतिक आन्दोलनों के साथ-साथ सामाजिक सुधार के आन्दोलन भी तीव्र गति से हुए और देश के वातावरण में बहुत कुछ परिवर्त्तन आया। १९२१-२२ के राजनैतिक आन्दोलनों में एवं उसके बाद १९३१-३२ के आन्दोलनों में मारवाड़ी समाज के भी बहुत से युवकों ने जेल-यात्राएं कीं और उसमें सक्रिय भाग लिया। इधर सामाजिक आन्दोलन भी काफी तीव्र गति से बढ़े और सामाजिक क्षेत्रों में काफी परिवर्त्तन दिखाई देने लगा। मारवाड़ी समाज में शिक्षा की प्रगति जोरों से बढ़ने लगी। १९३० के बाद समाज के सार्वजनिक जीवन में जो कार्य करने वाले थे, उन्होंने यह अनुभव किया कि उग्र सामाजिक सुधारों के कारण जो आपस में फूट हो गयी है, इससे समाज का अनिष्ट होगा। अतः इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि इस फूट को मिटा दिया जाये। उन्होंने सोचा कि एक ऐसी संस्था खड़ी करनी चाहिए, जिसमें सुधारवादी एवं सनातनी दोनों के ही विचारों के व्यक्ति एक मंच पर आकर काम कर सकें। इसके लिए यह उपयुक्त समझा गया कि समाज में जो शिक्षित वर्ग हैं, उनकी एक संस्था बनाई जाये और शिक्षितों में दोनों ही दलों के व्यक्ति हों। वे इस मंच पर एकत्र होकर यदि काम करने लगें तो इन दोनों के बीच में जो दरार पड़ गयी है, वह धीरे-धीरे मिट जाएगी।

मारवाड़ी छात्र-संघ

अतः पहला प्रयास सन् १९३१ में 'मारवाड़ी छात्र संघ' के नाम से एक संस्था कायम कर किया गया। यद्यपि इसका नाम छात्र संघ था, तथापि इसकी सदस्यता उन लोगों के लिए भी खोल दी गयी थी, जो छात्र न भी हों परन्तु मैट्रिक पास हों। मुझे इस कार्य में बहुत दिलचस्पी थी और सदैव से मेरे विचार मध्यगामी रहते आये थे। अतएव, मैंने इस संस्था के संगठन और चलाने में अन्य मित्रों के साथ प्रमुख भाग लेना आरम्भ किया। मारवाड़ी छात्र निवास, जो उस समय ताराचन्द दत्त स्ट्रीट स्थित एक किराये के मकान में था, उसी में इसकी आफिस खोली गयी। स्व० कालीप्रसादजी खेतान इसके पहले सभापति बनाये गये और श्री वेणीशंकर शर्मा इसके प्रधान मंत्री। सामाजिक प्रश्नों को इसके दायरे से अलग रखा गया और यह संस्था तीव्र गति से आगे बढ़ने लगी। उसकी कार्यकारिणी भी कम सदस्यों की रहती थी और प्रत्येक वर्ष नये सभापति और नये प्रधान मंत्री होते थे। कार्यकारिणी के सदस्यों में भी प्रति वर्ष लगभग एक तिहाई नये सदस्य बदल दिये जाते थे। साल में एक बार इसका वार्षिक अधिवेशन किसी बगीचे में हुआ करता था। उसमें अन्य समाज के किसी प्रमुख व्यक्ति को प्रधान अतिथि बनाकर लाया जाता था और तरह-तरह के मनोरंजक आयोजन भी हुआ करते थे। सभी लोग इसमें बड़े उत्साह से शामिल होते थे। इस जलसे का सभापतित्व वही किया करते थे जो मैट्रिक या उससे अधिक परीक्षोत्तीर्ण होते थे और जो सबसे पुराने होते थे। जो छात्रोपयोगी कार्य किये जाते थे, उनमें कलकत्ते से बाहर समय-समय पर पर्यटन का कार्यक्रम भी रहता था। विशिष्ट पुरुषों के व्याख्यान भी हुआ करते थे। पारस्परिक वाद-विवाद और गोष्ठियां भी हुआ करती थीं। छात्रों को पुस्तकों की एवं अन्य प्रकार से सहायता

दी जाती थी। सनातनी दल के प्रमुख नेताओं में स्व० बद्रीदासजी गोयनका और स्व० रामदेवजी चोखानी भी बड़े उत्साह से भाग लेते थे।

ऐसे एक वार्षिक अधिवेशन में सर पी० सी० राय को भी बुलाया गया था। उन्होंने अपनी जीवनी में मारवाड़ी समाज के ऊपर बहुत कुछ टीका-टिप्पणी की थी। जब इसकी चर्चा उनके समक्ष की गयी तो वे छात्रों को गले लगाकर बोले कि उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह सद्भावना से ही लिखा है। बंगालियों को व्यापारिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देने के लिए ही उन्होंने ऐसा लिखा है, किसी बुरी भावना से नहीं। उन्हें मारवाड़ी समाज से उसी तरह का प्रेम है, जैसा कि बंगाली समाज से। सर पी० सी० राय परमत्यागी और संत पुरुष थे और बंगाली छात्रों में और समाज में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। उन्हें इसीलिए आमंत्रित किया गया था कि जिस विष का उद्गार उन्होंने अपनी जीवनी में किया है, उसका कुछ प्रतिकार हो जाये। इस संस्था द्वारा मारवाड़ी समाज में पारस्परिक विद्वेष बढ़ रहा था वह मिटा और दोनों विचारों के मनुष्य फिर से एक मंच पर शामिल होने लगे।

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन

इसके बाद ही १९३५ में इसी उद्देश्य को लेकर अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का भी जन्म हुआ, क्योंकि मारवाड़ी छात्र संघ का दायरा छोटा और सीमित था। सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में सनातनी दल के प्रमुख नेता श्री रामदेवजी चोखानी ने सभापतित्व किया और उस दल के प्रमुख व्यक्तियों ने पूरी तरह सहयोग भी दिया। समाजिक विषय को उस समय सम्मेलन से अलग रखा गया ; ताकि आपस में फूट न पड़े और विभिन्न जातीय संस्थाओं के स्थान में सब मारवाड़ी शब्द के अन्तर्गत आने वाली जातियों के व्यक्ति इसमें सम्मिलित होकर काम कर सकें। यह पहला अधिवेशन कलकत्ते के मोहम्मदअली पार्क में सम्पन्न हुआ और इसकी आफिस मारवाड़ी छात्र संघ के भवन में खोली गयी।

पोद्दार छात्रावास की स्थापना

जब मारवाड़ी छात्र संघ की स्थापना हुई थी, तब छात्र निवास एक किराये के मकान में चलता था। उसके बाद ही उस काम को जो छात्र संघ ने लिया, वह था छात्र-निवास के भवन का निर्माण। श्री विशनदयाल गजानन्द पोद्दार के परिवार में आपस में बंटवारा हो रहा था, तो उसमें स्व० देवीप्रसादजी खेतान और श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका पंच हुए थे। उन्होंने सवा लाख रुपये छात्र निवास के लिए अलग करवा दिये थे। उसी की आमदनी से ताराचन्द दत्त स्ट्रीट में एक छात्र निवास चलाया जा रहा था, और उसी रुपये को लेकर वर्त्तमान पोद्दार छात्र निवास का भवन चित्तरंजन एवेन्यू में बनवाया गया। जिस जमीन में वह बनवाया गया था, वह एक ऐसा बदनाम मुस्लिम पाड़े में था, जिसमें हिन्दू-मुस्लिम दंगे अक्सर हो जाते थे और इस मोहल्ले में कोई हिन्दू रहना पसन्द नहीं करता था। जिस जमीन पर यह छात्र निवास बना है, वह जमीन १६ हजार रुपये कट्ठे में कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट से सनातनी दल के महापंचायत वालों ने खरीदी थी। परन्तु खरीदने के बाद महा पंचायत भी टूट गयी थी और इस मोहल्ले में वे लोग मकान

वनाना पसन्द नहीं करते थे। अतएव छात्र निवास को यह जमीन केवल ४ हजार रुपये कट्ठे में प्राप्त हो गयी और बाकी ५०,०००) से इस पर मकान बन गया। मकान बनाने का भार स्व० रामकुमारजी गोयनका ने अपने ऊपर लिया। उन्होंने बहुत लगन के साथ इस कार्य को कम से कम खर्च में पूरा किया। वे समाज के त्यागी, दक्ष और श्रेष्ठ कार्यकर्त्ताओं में थे। यह स्वीकार करने में हमें कोई संकोच नहीं है कि ऐसे कार्यकर्त्ता अब बहुत ही कम रह गये हैं। इसी मकान में सम्मेलन की आफिस आगयी और यहीं से उसका कार्य आरम्भ हुआ।

संकीर्णताओं से मुक्ति का युग

जिस जमाने की हम बातें करते हैं। उस समय समाज में छुआछूत और सामाजिक कुरीतियां फैली हुई थीं। महात्मा गांधी के आन्दोलन से छुआछूत में कमी होने लगी थी और उसके शिकंजे से समाज धीरे-धीरे अपने को छुड़ा रहा था, परन्तु प्रगति धीमी थी क्योंकि पुराने संस्कार बहुत मुश्किल से छूटते हैं। उस समय जाति बहिष्कार का शस्त्र समाज के हाथों में था। जो व्यक्ति समाज की मर्यादाओं और मान्यताओं को चुनौती देता था, उसे समाज से बहिष्कृत होने का दंड मिलता था। इससे लड़के-लड़कियों के शादी विवाह में अड़चन पड़ जाती थी। परन्तु जैसे-जैसे समय बदलता गया और महात्मा गांधी द्वारा संचालित हरिजन आन्दोलन आगे बढ़ने लगा—वैसे वैसे छुआछूत का प्रश्न भी घटने लगा और जाति-बहिष्कार का शस्त्र भी कुंठित होने लगा। १९२८ में स्व० देवीप्रसादजी खेतान विलायत गये और साथ में रसोइया भी ले गये। तो भी, जब वे वापस लौटे तो सनातनी दल ने उन्हें भी जाति से बहिष्कृत कर दिया। इसके बाद जब वे दुबारा विलायत गये तो कोई रसोइया वगैरह नहीं ले गये और समाज को एक चुनौती दे गये कि वह चाहे जो करे, उसकी वे कोई परवाह नहीं करेंगे। मुझे स्मरण है कि १९३४ के लगभग जब जटियाजी ने श्री पद्मपतजी सिंघानिया को होटल में पार्टी दी तो उसके विरोध में बहुत से आदमियों ने विज्ञप्ति छपवाई, जिसमें सुधारक दल के भी बहुत से व्यक्ति शामिल थे। इसके पहले यदि किसी विदेशी को होटल में पार्टी दी जाती थी तो समाज के लोग उसमें शामिल होते थे, परन्तु खाने-पीने में कोई भाग नहीं लेता था। नौकरों द्वारा लाया गया कच्चा भोजन भी नहीं करते थे। दाल-भात, फल्का कच्चे भोजन में गिना जाता था, पूड़ी, मिठाई पक्के भोजन में समझी जाती थी। नौकरों के हाथ से पक्का भोजन तो लोग करते थे, परन्तु कच्चा भोजन नहीं करते थे। होटलों में जाकर खाना तो चरित्र-भ्रष्टता का द्योतक था। यदि कोई जाता तो भी लुक-छिपकर। चीनी मिट्टी के वर्त्तनों में खाना निषिद्ध समझा जाता था। बर्फ, सोडावाटर आदि भी निषिद्ध था। १९२५ की बात है कि मैं और खेतान परिवार पुरी जा रहे थे। एक स्टेशन पर मैंने एक मारवाड़ी सज्जन को स्टेशन के रेस्तरां से चाय और पाव रोटी मंगाकर खाते देखा था तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और श्री दुर्गाप्रसादजी खेतान, जो हमारे साथ थे, उनको बुलाकर मैं उस सज्जन को दिखाने ले गया संयोगवश वे हमारी फर्म के मुवक्किल भी थे। कुछ दिनों के बाद जब वे हमारी आफिस में आये तो मुझे इतना कुतूहल हुआ कि अपने कमरे से निकल कर उनको देखने गया। मैं स्वयं भी काफी अरसे तक जूते खोलकर पानी पीता था

और नौकरों के हाथ से कच्चा भोजन नहीं करता था। १९३८ में मैंने पहले-पहल एक प्याला चाय कश्मीर में एक मुसलमान के हाथ से पीने की कोशिश की, परन्तु चाय गले से नीचे नहीं उतरती थी। बड़ी ठंढ पड़ती थी, गुलमर्ग पर चढ़ना था। एक गेस्ट हाउस में हम और स्व० कालीप्रसादजी खेतान पहुंच गये थे। और उनके बहुत आग्रह करने पर ही मैंने मुसलमान के हाथ की चाय पीना मंजूर किया था। पाव-रोटी खानी भी मैंने तब शुरू की जबकि मैं स्पीकर बन चुका था और जगह-जगह पार्टियों में शामिल होना पड़ता था। जितना बड़ा परिवर्त्तन इस दिशा में आज हो गया है, उसके संबंध में कुछ भी कहना अनावश्यक है। विलायत यात्रा, होटलों में खाना, छुआछूत ये सब कहां चले गये—उनकी आज कल्पना भी कोई नहीं कर सकता।

तीर्थ यात्रा

१९३१ में मैंने सपरिवार समस्त भारत की तीर्थ यात्रा की, जो ढाई महीने में पूरी हुई। भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। कलकत्ते से चलकर पहले रामेश्वरम् तथा दक्षिण की यात्रा पूरी की। दक्षिण में प्राकृतिक सौन्दर्य तो देखने को मिला ही; परन्तु हिन्दू धर्म के प्रति जितनी आस्था दक्षिण में मैंने पाई, उतनी उत्तरी भारत में नहीं पाई। बड़े-बड़े विशाल मन्दिर जो दक्षिण में देखे, वे कैसे बने और कितने बड़े व्यय से बने होंगे, उसकी कल्पना करने पर भी समझ में नहीं आता। वहाँ ब्राह्मण और अब्राह्मण का भी बड़ा विभेद देखा। इन दोनों वर्गों में छुआछूत अपनी पराकाष्ठा को पहुंची हुई थी। वहाँ की भाषा से भी हमलोग अनभिज्ञ थे। अतएव परस्पर लोगों से बातें करनी भी मुश्किल होती थीं। परन्तु पण्डे इस कठिनाई को दूर कर देते थे और इस दिशा में वे अत्यन्त सहायक होते थे। हिन्दी का प्रचार महात्माजी के प्रयत्न से दक्षिण में भी आरम्भ हो गया था। कुछ तमिल भाषा के शब्दों को हमने भी याद कर लिया था, जिससे कि जरूरत की चीजें खरीदी जा सकें। जब मैसूर के विख्यात दशहरे के त्योहार को देखने के लिए वहाँ पहुंचा तो किसी भी होटल में या धर्मशाला में जगह नहीं मिलने के कारण एक पारिवारिक गृह में हमलोगों ने शरण ली तो वहाँ की स्त्रियों ने बड़ा हल्ला मचाया कि हम लोग अब्राह्मण हैं और उनके घर को हम लोगों ने अपवित्र कर दिया है। हम लोगों को घर से जब वे लोग निकालने को तैयार हुए तो मैंने अपना यज्ञोपवीत उन्हें दिखलाया और कहा कि हमलोग अब्राह्मण नहीं होते हुए भी ब्राह्मण सदृश हैं। यज्ञोपवीत देखकर उनलोगों को संतोष हुआ और हम लोग किसी तरह एक रात्रि उस घर में काट सके। दक्षिण की यात्रा समाप्त कर हम लोग बम्बई होते हुए द्वारका पहुँचे और वहाँ से कलकत्ते वापस आये।

१९३७ में मुझे नाक का बड़ा ओपरेशन कराना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी घ्राण शक्ति सदा के लिए लुप्त हो गयी। १९३८ में हमने काश्मीर की यात्रा की और लौटते समय लाहौर, रावलपिंडी, पेशावर होते हुए खैबर घाटी पार कर अफगानिस्तान की सीमा के पास तक पहुंच गये। जैसे हमारे यहाँ लोग लाठियां रखते हैं, वैसे ही इस प्रदेश में लोग बन्दूकें रखते हैं। आप यदि सड़क को छोड़कर इधर-उधर चले जायें तो फिर बिना रुपये चुकाये जान बचनी मुश्किल होती है। लेकिन खैबर घाटी का दृश्य

देखने के लायक है। इसके बाद तो उधर जाने का मौका ही कभी नहीं लगा, क्योंकि पाकिस्तान बन गया।

एसेम्बली में मेरा प्रारम्भिक जीवन

१९३८ई० में जब मैं एसेम्बली में प्रथम पहुंचा तो जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। बंगाल में मुसलमानों की संख्या अधिक होने के कारण यहाँ मुस्लिम सरकार बनी हुई थी और ख्वाजा नजीमुद्दीन मुख्य मंत्री थे, जो पीछे चलकर पाकिस्तान के राष्ट्रपति भी हुए। बंगाल की सभी पार्टियों के अग्रणी नेता यहाँ दिखाई दें रहे थे। अंग्रेजों की संख्या भी लगभग तीस सदस्यों की थी, जो विभिन्न चेम्बरों से चुनकर आये थे और उनका एक अलग ब्लाक था। इण्डियन चैम्बर आफ कामर्स से स्व० देवीप्रसादजी खेतान और मारवाड़ी एसोसिएशन से स्व० आनन्दीलाल पोद्दार भी चुनकर पहुँचे थे। स्व० देवीप्रसादजी काफी सक्रिय भाग लेते थे, पर आनन्दीलालजी बहुत थोड़ा। कांग्रेस पार्टी के लगभग ५५ सदस्य थे। एसेम्बली की सारी सदस्य-संख्या २५० थी, किन्तु कांग्रेस पार्टी के सभी वरिष्ठ नेता मौजूद थे। श्री शरत्चन्द्र बोस कांग्रेस पार्टी का नेतृत्व कर रहे थे। सर्वश्री तुलसी गोस्वामी, प्रमथ बनर्जी, हरेन्द्र चौधरी, शरत् बाबू अच्छे वक्ताओं में गिने जाते थे। श्री जे० सी० गुप्ता प्रधान चेतक थे। कृषक प्रजा पार्टी के नेता के रूप में फजलुलहक थे। सर अजीलुल हक स्पीकर थे, जिनकी गिनती अच्छे स्पीकरों में समझी जाती थी। पौने पांच बजे से पौने आठ बजे तक एसेम्बली की बैठक होती थी। अतएव मेम्बरों को बोलने का मौका बहुत कम मिल पाता था। अंग्रेजों की पार्टी की वक्तृता बड़े ध्यान से सुनी जाती थी, क्योंकि जिन विषयों पर वे बोलते थे, उसके वे विशेषज्ञ होते थे और प्रायः एक विषय पर केवल एक ही वक्ता बोलता था। हिन्दू-मुस्लिम समस्या देश में उग्र रूप से खड़ी थी, जिसके कारण एसेम्बली में लोग काफी दिलचस्पी लेते थे और महत्त्व भी काफी दिया जाता था। उच्छृंखलता भी कभी-कभी हो जाती थी। तो भी विधान सभा की बड़ी प्रतिष्ठा थी, स्पीकर के प्रति अच्छा सम्मान था। विधान सभा का स्तर काफी ऊंचा था, जो पीछे धीरे-धीरे काफी गिर गया। एसेम्बली भवन और उसकी साज-सज्जा एवं सामान बहुत ऊँचे दर्जे के थे। खासा दिलचस्प अनुभव होता था।

जब पहले-पहल मैंने अपनी वक्तृता दी तो पर्याप्त अध्ययन के बाद दी, उसे सुनकर सर विजयप्रसाद सिंहराय जो एक मंत्री थे, मेरे पास आये और उन्होंने कहा कि मेरी वक्तृता का स्तर पुराने जमाने की याद दिलाता था, जब कि वक्तृताओं का स्तर बहुत ऊँचा हुआ करता था। इससे मन में आत्म-विश्वास पैदा हुआ और एसेम्बली की कार्यवाही में अधिक रुचि लेने लगा। व्यापारिक विषयों पर कांग्रेस पार्टी की ओर से मुझे बोलने का अवसर दिया जाता था। अभद्रता बहुत कम देखी जाती थी। एसेम्बली की मान-मर्यादा की रक्षा करना सभी दल चाहते थे, यद्यपि कभी-कभी इसका उल्लंघन भी हो जाया करता था।

१९३९ ई० में द्वितीय महायुद्ध का श्रीगणेश हो गया और संसार में हिटलर युग प्रारम्भ हुआ। हिटलर ने जिस खूबी के साथ जर्मनी को बदल दिया—यह इतिहास की एक अविस्मरणीय कथा रहेगी। समस्त जर्मनी एक प्रबल सैनिक राष्ट्र के रूप में उभर कर

संसार के सामने आया और युद्ध प्रारम्भ होते ही जिस तेजी के साथ इसने फ्रान्स को धराशायी कर दिया, उसे देखकर संसार चकित और भयभीत भी हो गया। इंगलैण्ड में आतंक छा गया और वहाँ की सरकार वदल गयी। चेम्बरलेन की जगह चर्चिल प्रधान मंत्री हो गये। उन्होंने इस कठिन समय में जो साहस, धैर्य और नेतृत्व का प्रदर्शन किया, उसने इंगलैण्ड को बचा लिया। लोग समझते थे कि जो दुर्गति फ्रान्स की हुई, वही दुर्गति इंगलैण्ड की भी होनेवाली है, परन्तु चर्चिल ने अभूतपूर्व नेतृत्व दिखाया।

१९३९ ई० में जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ, उस समय वाजार में वहुत तेजी आयी और लोगों ने जोरों से फाटका शुरू किया। हेसियन-बोरों के फाटके में दुर्गाप्रसादजी खेतान भी बहुत लिप्त हो गये। उसे देखकर हमारे लघु भ्राता सच्चिदानन्द भी उसमें लग गये। किन्तु १९४० ई० के प्रारम्भ में उसमें बहुत बड़ी मंदी आई और पासा पलट गया। दुर्गाप्रसादजी को तो बहुत बड़ा नुकसान सहना पड़ा ही, परन्तु देखा-देखी काम करनेवाले हमारे भ्राता को भी काफी नुकसान का सामना करना पड़ा, जिसका वोझ मेरे सिर आ गया। मैं कभी व्यापार में नहीं पड़ता था और विशेष कर घर में किसी को फाटके में पड़ने देना भी नहीं चाहता था। मैंने सच्चिदानन्द को इसे वन्द कर देने के लिए कहा और उसे मुजफ्फरपुर भेज दिया। जो नुकसान हुआ, उसके कारण हमें कुछ समय तक आर्थिक चिन्ता भी रही, परन्तु स्थिति सम्हल गयी।

व्यापारिक विषयों पर एसेम्वली में कांग्रेस पार्टी की ओर से प्राय: मैं वोलने का अवसर पाता था। एक वक्तृता पाट के विषय में मैंने दी ; उसमें कुछ वातें मैंने कही, उसके कारण एसेम्वली में खासी दिलचस्पी रही। यहाँ एक मंत्री पर आक्षेप था, जिसका वास्तविक अर्थ जानने के लिए सदस्यों में वड़ी उत्सुकता रही। एसेम्वली का सेक्रेटरी भी मुझसे पूछने आया कि मैंने जो आक्षेप किया है, वह क्या बात है ? लेकिन सोहरावर्दी साहव उसे पूरी तरह समझ गये थे और अपने उत्तर में उन्होंने मुझे बुरा-भला कहा, परन्तु वात सच्ची थी। इस वक्तृता ने एसेम्वली में मेरी प्रतिष्ठा को वढ़ाया और श्री नलिनीरंजन सरकार जो मंत्रिमंडल में थे, वे हमारे पास आये और हमारे सामने देवीप्रसाद खेतान से कहा कि वे हमारे भाषण से बहुत प्रभावित हुए हैं, क्योंकि वे भी इसका अर्थ समझ गये हैं।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

कुछ दिनों के बाद कांग्रेस पार्टी में दो दल हो गये। एक दल शरत् बाबू के नेतृत्व में सुभाष बाबू के साथ और दूसरा दल कांग्रेस के साथ, जिसके नेता किरणशंकर राय थे। हम कांग्रेस पार्टी में ही रहे। सुभाष वाबू ने मुझे अपने घर पर बुलाया और कहा कि मैं उनके दल में शामिल हो जाऊँ। वे घर पर नजरवन्द थे, परन्तु लोगों को उनसे मिलने दिया जाता था। मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की और कहा कि वे कांग्रेस से वगावत कर रहे हैं, इससे हमारे लिए उनके दल में सम्मिलित होना संभव नहीं है। मैंने उनसे मजाक में कहा कि सुभाष बाबू तो कभी फाँसी पर लटकेंगे और कभी ताज पहनेंगे ; हमें तो न फाँसी पर लटकना है और न ताज पहनना है। आपके साथ इस कंटकाकीर्ण पथ पर हम कैसे चलें ? व्यक्तिगत मैत्री तो सदा बनी ही रहेगी, उसमें कोई आंच नहीं आयेगी।

उस समय सुभाष बाबू लेटे हुए बीमारी का बहाना कर रहे थे। कुछ दाढ़ी-मूंछें भी उन्होंने बढ़ा ली थीं। मुझे यह देखकर कुछ आश्चर्य ही हुआ और पूछने पर उन्होंने स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। कुछ दिनों के बाद ही वे भारतवर्ष से निकल कर जर्मनी पहुंच गये थे और उसके बाद उन्होंने आजाद हिन्द फौज का गठन किया था। जब वे घर से गायब हो गये तो उनके संबंध में नाना प्रकार की कल्पना होने लगी। परन्तु किरण बाबू को शायद मालूम था कि वे जर्मनी की ओर चले गये हैं। कुछ दिनों के बाद यह बात प्रकट ही हो गयी। इस बीच शरत् बाबू ने प्रचार किया कि वे संभवत: संन्यासी हो गये हैं, ताकि पुलिस द्वारा सुभाष बाबू पकड़े न जायें।

बंगाल एसेम्बली में कांग्रेस पार्टी दो विभिन्न दलों में विभक्त होकर काम करने लगी थी और कुछ दिनों तक हमारी पार्टी ने एसेम्बली का बायकाट भी किया था। जब हमलोग फिर वापस एसेम्बली में गये तो किरण बाबू ने मुझे ही यह भार दिया कि मैं अपनी पार्टी की ओर से अपना पक्ष प्रकट करूं कि क्यों फिर से शामिल हो रहे हैं और क्यों हमने बायकाट किया था। किरण बाबू का मुझ में बड़ा विश्वास था कि मैं सही रूप में पार्टी की स्थिति को बता सकूंगा। इसी विश्वास के कारण वे हमारे अन्यतम शुभचिंतकों में रहे। जब भी कभी समय आता तो हमारा समर्थन करते। १९४६ में जब फिर से एसेम्बली का चुनाव हुआ, तब भी कांग्रेस पार्टी की तरफ से मुझे टिकट देने के समय कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं, परन्तु हमारे चुनाव-क्षेत्र के कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं और किरण बाबू के प्रबल समर्थन के कारण वे अड़चनें दूर हो गयीं और मैं बिना विरोध के ही फिर से एसेम्बली में चुन लिया गया।

१९४६ का कलकत्ता का भयानक दंगा

इस समय हिन्दू-मुस्लिम विरोध अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था और १६ अगस्त, १९४६ को कलकत्ता में भीषण हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। हमलोग जकरिया स्ट्रीट में रहते थे, इसलिए हमारे परिवार को बहुत बड़े खतरे का सामना करना पड़ा। परन्तु वे किसी तरह इस मोहल्ले से हटा दिये गये। मैं एक आवश्यक कार्यवश उसके पहले दिन ही कलकत्ता के बाहर चला गया था। मुझे आशंका थी कि १६ अगस्त को हिन्दू मुस्लिम दंगा होने की संभावना है, इसलिए परिवार वालों को सावधान रहने के लिए कह गया था। जब दूसरे दिन रेडियो पर सुना तो बड़ी चिन्ता हुई और मैं फौरन कलकत्ता वापस आ गया। सारा परिवार माहेश्वरी-भवन में था, वहाँ से उन्हें मुजफ्फरपुर पहुंचाया और वहाँ से वापस आकर जब मैं फिर से अपने मकान में आया तो इस मोहल्ले में बहुत ही थोड़े हिन्दू रहते थे जो सदैव आतंकित रहा करते थे। रात में नींद आनी भी मुश्किल थी। परन्तु कलकत्ता में मेरा रहना अनिवार्य था। अतएव लाचार था। कुछ दिनों के बाद मुझे फिर से घर को छोड़ना पड़ा और कुछ महीने तक अपने परममित्र रामदेवजी चोखानी के घर पर ही रहा।

बंगाल का विभाजन

१५ अगस्त, १९४७ को जब स्वतंत्रताप्राप्त हो गयी, उसके बाद ही अपने मकान में लौटकर आ सका। वह समय भी बड़ा ही कठिन था। बंगाल के दो टुकड़े हो गये—

एक पाकिस्तान में चला गया और एक हिन्दुस्तान में रह गया। एसेम्वली के सदस्यों ने इस बँटवारे का समर्थन किया और उस मतदान में मुझे भी शामिल होना ही पड़ा। वड़ा दुखद समय था। लार्ट माउण्ट वेटन भारत के गवर्नर जेनरल थे। उन्होंने वड़ी खूबी के साथ तीन-चार महीने में देश के बँटवारे का काम समाप्त कर दिया। महात्मा जी इस बँटवारे से प्रसन्न नहीं थे। १५ अगस्त को वे दिल्ली में न होकर कलकत्ते में थे। युद्ध के समय में कलकत्ते की स्थिति समय-समय पर परिवर्तित होती रहती थी और जीवन वड़ा अनिश्चित रहता था। १९४३ में जापानियों ने कलकत्ते पर कुछ वम गिराये थे। वे लोग वर्मा को दखल कर चुके थे। ऐसी आशंका होने लगी कि संभवतः वे भारत पर भी आक्रमण कर देंगे। वम के कारण वहुत वड़ी संख्या में लोग कलकत्ता छोड़कर अन्य प्रदेशों में जाने लगे। लाखों आदमी कलकत्ता के वाहर चले गये। हमने भी अपने सारे परिवार को और सारे सामान को मुजफ्फरपुर भेज दिया था। समूचा मकान खाली हो गया। मकान मालिकों ने भाड़ा भी आधा कर दिया। हमारे मकान में केवल मैं और एक-दो अन्य भाड़ेती वच गये। मकान मालिक ने मकान की चाभी हमें दे दी और वे भी छोड़कर दूसरी जगह चले गये। कह गये कि जब तक हम रह सकें रहें, और जव जाने लगें तो ताला वन्द करके चले जायें। सवों को ऐसा विश्वास हो गया था कि जापानी कलकत्ता के ऊपर अपना दखल कर लेंगे और कलकत्ता उनलोगों के आधिपत्य में आ जाएगा। मुझे कलकत्ता में रहना पड़ रहा था, क्योंकि मैं सोलीसिटर था और अदालतें खुली हुई थीं। अतएव हमारे लिए छोड़कर जाना संभव नहीं था। जव वम गिरते थे तो हमलोग दीवालों के सहारे छिप जाते थे, जैसा कि सरकारी आदेश था। वम से आग लगती हुई दिखाई देती थी। चारों ओर अन्धकार रहता था। अजव दृश्य था। युद्ध की भयानकता का एक नमूना भी देखने को मिला। इसी युद्ध के दौरान कलकत्ता में इतना वड़ा अकाल पड़ा कि लाखों आदमी विना अन्न के मर गये और सड़कों पर लाशें पड़ी मिलने लगीं। चावल की गोदामें भरी हुई थीं, लेकिन जनता को वे चावल उपलव्ध नहीं हुए। लार्ड वैवेल उस समय भारत के वाइसराय थे। वे कलकत्ता आये और यहाँ की दर्दनाक दशा देखकर उन्होंने राशनिंग जारी की। १९४५ में जापान के ऊपर एटम वम अमेरिका ने गिराये और जापान ने हार स्वीकार कर ली। इसी वर्ष द्वितीय महायुद्ध का अन्त हो गया। जर्मनी हार गया। हिटलर ने आत्महत्या कर ली। संसार का नक्शा वदल गया। ये सब चीजें आँखों से देखने को मिलीं। भारतवर्ष आजाद हुआ और उसके वाद देश में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ।

तृतीय अध्याय
राजनैतिक जीवन

स्वतन्त्र भारत में

१५ अगस्त १९४७ को जब स्वतंत्रता प्राप्त हुई, कलकत्ता में काफी उत्साह था। उस समय पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री श्री प्रफुल्लचन्द्र घोष हुए और उनका मंत्रिमंडल बना ; परन्तु उसमें कोई हिन्दी भाषा-भाषी नहीं लिया गया था। इसकी चर्चा हमलोगों में थी। कुछ आदमियों के नाम प्रफुल्लो बाबू को सुझाये भी गये थे, परन्तु वे नाम उन्हें मंजूर नहीं थे, क्योंकि उन्हें वे पूंजीपतियों के दल के नाम गिनते थे।

कुछ दिनों के बाद ही मिनिस्ट्री में आपस में फूट हो गयी। उस समय आचार्य कृपलानी कांग्रेस के अध्यक्ष थे। कुछ बंगाली बैंकें फेल हुई थीं। बंगालियों में ऐसी धारणा उत्पन्न हुई कि मारवाड़ी इन बैंकों को फेल कराने की चेष्टा कर रहे हैं। इसलिए क्लाइव रो में कुछ मारवाड़ियों के साथ बंगालियों द्वारा दुर्व्यहार भी हुआ। उस समय ऐसा अनुभव किया गया कि अगर हिन्दी भाषा-भाषी लोगों में से मंत्रिमंडल में कोई नहीं लिया गया तो हमलोगों की स्थिति और प्रतिष्ठा में बहुत बड़ी बाधा पड़ेगी।

स्पीकरशिप, उलझन व निष्पत्ति

रामेश्वरजी नोपानी के घर पर हमलोग कुछ मित्र उपस्थित हुए और यह प्रश्न उठाया गया। मुझ से पूछा गया कि यदि मेरा नाम प्रफुल्लो बाबू को सुझाया जाये तो मुझे मंजूर है या नहीं। मेरे लिए यह कठिन समस्या थी, क्योंकि जो तनख्वाह प्रफुल्लो बाबू ने मिनिस्टरों के लिए तय की थी, वह कुल मिलकर १२५०) रुपये होती थी। इनमें इनकमटैक्स काटकर ११००) रुपये पड़ती थी, इसमें परिवार का निर्वाह करना असंभव था। अतएव मैंने उनलोगों से कहा कि अगर कोई दूसरा आदमी मंत्री बन सके, तो उसके लिए चेष्टा करनी चाहिए। अगर किसी का भी नाम पसन्द नहीं आये और हमारे ही नाम को वे स्वीकार करते हों तो मैं स्वीकार कर लूंगा। दूसरे दिन ही मुझे मालूम हुआ कि वे हमारे नाम पर राजी हैं और कहते हैं कि या तो हम उन्हें मंत्रिमंडल में ले लेंगे या उन्हें स्पीकर का पद देंगे। जब मुझे यह कहा गया तो मेरे लिए एक कठिन समस्या उपस्थित हो गयी, क्योंकि मुझे खेतान कम्पनी से अलग होना पड़ता था और वहाँ की सारी आमदनी से साथ हाथ धोना पड़ता था। जो तनख्वाह मिलनेवाली थी, उससे परिवार का खर्च चलना संभव नहीं था। मित्रों का आग्रह था कि यदि स्पीकर का पद मिलता हो तो अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए। आर्थिक कारणों से अस्वीकार करना समाज के हित में अच्छा नहीं होगा। इसी समय श्री भगवतीप्रसाद खेतान से बातें हुई। वे भी अत्यन्त उत्सुक थे कि मैं स्पीकर के पद को अवश्य स्वीकार कर लूं और वे मेरी जगह में मेरे पुत्र कृष्णानन्द को लेने के लिए तैयार हैं, जिससे आर्थिक समस्या का समाधान हो जाएगा। फिर भी

मुझे ऐसा लगता था कि मैं आर्थिक दृष्टि से खतरा मोल ले रहा हूँ। परन्तु रुपये के दृष्टि-कोण से वह पद स्वीकार न करना सारे समाज की नजरों में गिर जाना था। यद्यपि मन में बेचैनी भी थी, पर मैंने इस पद को स्वीकार लिया। जब पार्टी की मीटिंग हुई तव कृपलानीजी उपस्थित थे। पारस्परिक फूट वहुत वढ़ी हुई थी। कांग्रेस दल में मंत्रि-मंडल को लेकर दलादली हो गयी थी, परन्तु स्पीकर के पद के संवंध में मेरे पक्ष में सभी का मतैक्य था। मैं भीतर से चाहता था कि मतैक्य न हो और परिस्थिति से निकल भागने का अवसर मिल जाये तो अच्छा हो, परन्तु हमारा नाम स्पीकर के पद के लिए तय कर दिया गया और मुझे भी स्वीकार ही करना पड़ा। मैंने सोचा कि दो वर्ष अवश्य रहना पड़ेगा, उसके वाद मैं वापस आकर सोलीसिटर हो जाऊँगा। भगवती वावू ने भी इसमें सहमति प्रकट की।

दूसरे दिन जब पत्रों में मेरे स्पीकर चुनेजाने का समाचार प्रकाशित हो गया, तो बड़ा-वाजार के मित्रों में काफी संतोष दिखाई पड़ा। मेरे जीवन में भी एक नये युग का आरम्भ हुआ। जब मैं किरण वावू से मिला तो उन्होंने मुझ से कहा, मैं इस पद पर जाकर स्व० विट्ठल भाई पटेल के, जो पुराने जमाने के केन्द्रीय विधान सभा के स्पीकर थे, आदर्शों का अनुशरण करूं और स्पीकर के पद की प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता की रक्षा करूं। प्रवल समर्थक किरण वावू की वातों को मैं सदा ही आदर की दृष्टि से देखता रहा। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि जैसा उनका आदेश है वैसा ही करने की मैं अपनी ओर से चेष्टा करूँगा। देश में नया उत्साह था—नयी उमंग थी अतएव उत्साह के साथ मैंने अपना काम प्रारम्भ किया। ता० २१-११-४७ को सर्वसम्मति से मैं स्पीकर के पद पर निर्वाचित हुआ।

छात्रों का जुलूस

एसेम्बली की बैठक जब समाप्त हुई तो मैं गोपाष्टमी के मेला में जाने के विचार से श्री बसंतलालजी मुरारका की गाड़ी में बाहर निकला। गाड़ी पर तिरंगा झंडा फहरा रहा था। वह गाड़ी जब राजभवन के उत्तर वाले दरवाजे के पास पहुंची तो सामने से छात्रों का एक बहुत वड़ा जुलूस आ रहा था। यह जुलूस एसेम्वली भवन जाने के लिए इसी मार्ग से गुजर रहा था। चूंकि एसेम्वली चल रही थी, अतएव पुलिस ने इस जुलूस को आगे बढ़ने से रोक दिया था और एसेम्वली के समाप्त होने पर जुलूस को छोड़ दिया गया। वह जुलूस वहाँ पहुंच गया, जहाँ हमारी गाड़ी खड़ी थी। उस समय जुलूस वालों ने यह समझा कि यह गाड़ी किसी मंत्री की होगी, क्योंकि उस पर तिरंगा झण्डा फहरा रहा था। मैं गाड़ी के एक कोने में बैठा था और कोट पहने हुए था। श्री बसंतलालजी मुरारका बीच में बैठे हुए थे, जो कुर्त्ता पहने हुए थे, और सिर पर खादी की टोपी भी थी। जुलूस वालों ने उन्हीं को मंत्री समझा, हमें नहीं पहचान सके। मंत्रियों को गाली देने लगे—यहाँ तक कि बसंतलालजी के ऊपर चप्पलें वगैरह फेंकनी भी शुरू कर दिये। एक-दो छात्रों ने तो बसंतलालजी की तरफ वाले दरवाजे से उन्हें खींचकर बाहर निकालने की कोशिश की। बसंतलालजी जोर-जोर से चिल्लाकर कह रहे थे कि वे मंत्री नहीं हैं; परन्तु उसे कौन सुनता? जब उनका हाथ पकड़कर लोग बाहर खींचने लगे तो उनकी

एक छोटी लड़की जो सामने की सीट पर वैठी थी, वह रोने लगी। छात्रों का ध्यान उस लड़की की ओर गया और उन्हीं छात्रों में से किसी ने वसंतलालजी मुरारका को पहचान लिया और कहने लगा कि ये तो मुरारकाजी हैं, ये मंत्री नहीं हैं, इन्हें क्यों घसीटते हो। मैं उसी गाड़ी में वैठा हुआ यह सब तमाशा देख रहा था और मेरे मन में यह आशंका भी हो रही थी कि अगर कहीं उनलोगों ने मुझे पहचान लिया कि मैं ही स्पीकर चुना गया हूँ तो फिर मेरी खैरियत नहीं, परन्तु कोई मुझे पहचान नहीं सका और वसंतलालजी को भी छोड़ दिया, क्योंकि वे मंत्री नहीं थे। राम-राम कहते हुए वहाँ से किसी तरह पिंड छूटा। गाड़ी रवाना हुई और जब जुलूस के वाहर आ गयी, तब मन शान्त हुआ। मैंने वसंतलालजी को कहा कि अगर हमें वे लोग पहचान लेते तो दुर्दशा हो जाती और यहाँ राजस्थान वाली कहावत चरितार्थ हो जाती।

'आज मोडो मुंड मोड़ियो और आजी ओला गिरगा'

छात्रों के प्रदर्शन पर गोली

उस समय सरकार के विरुद्ध छात्रों के आन्दोलन चल रहे थे। श्री प्रफुल्लचन्द्र घोष प० वंगाल के मुख्य मंत्री थे। एक दिन की वात है कि छात्रों के एक जुलूस ने एसेम्वली भवन के उत्तर की तरफ के दोनों दरवाजों को घेर लिया और वहीं धरना दे दिया। इसी दरवाजे से ही सदस्य और विशेषकर मंत्री एसेम्वली भवन में जाया करते थे। मैं भी इसी में से किसी एक दरवाजे से ही एसेम्वली-भवन में प्रवेश करना चाहता था, परन्तु छात्रों ने उन दरवाजों पर धरना दे रखा था। मैं समझता था कि स्पीकर के नाते मुझे उसके अन्दर जाने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी, अतः मैं अपनी गाड़ी से उतर गया और मुझे छोड़कर गाड़ी चली गयी। मैंने उनसे अनुरोध किया कि उनकी शिकायत सरकार से हो सकती है, स्पीकर से नहीं, वे मुझे अन्दर जाने दें। परन्तु वे राजी नहीं हो रहे थे। इतने में ही पुलिस के घुड़सवार आ पहुंचे और उन्होंने दरवाजे को खुला रखने के लिए आदमियों को वहाँ से हटाना शुरू किया। मैं दूसरे दरवाजे पर था। एक छात्र ने मुझ से कहा कि मैं इन घुड़सवारों को इस तरह के कार्य करने से रोकूं। मैंने कहा कि ये तो मेरे मातहत नहीं हैं और सड़क ऊपर हैं। वे मुझे अन्दर जाने दें तो ये घुड़-सवार एसेम्वली-भवन के कम्पाउण्ड में अगर जाना चाहेंगे तो मेरा अधिकार हो जाएगा और मैं उन्हें रोक दूंगा। फिर भी वे मुझ से आग्रह कर रहे थे और मैं भी अपनी बात दुहरा रहा था। इतने में ही कम्पाउण्ड के भीतर से एसेम्वली के केयर-टेकर ने हमें देख लिया। भीड़ का ढंग भी ठीक नहीं दिखाई देता था। केयर-टेकर ने मुझे इशारा किया कि पूर्व तरफ एक छोटा दरवाजा कर्मचारियों के आने-जाने का है, उस रास्ते से मैं भीतर आ जाऊँ। मैंने भीड़ वालों से कहा कि यदि आप लोग मुझे भीतर नहीं जाने देते हैं तो मैं लौट जाऊँ। उनका कहना था लौट जायें। मैं वहाँ से अपना पिंड छुड़ा कर उसी पूर्व वाले दरवाजे पर पहुंचा तो वहाँ पर एक नेपाली सिपाही खड़ा था। वह हमें नहीं पहचानता था। वह मुझे अन्दर प्रवेश करने से रोक रहा था। मैं बारम्बार उसे कह रहा था कि मैं स्पीकर हूँ, परन्तु वह बेचारा स्पीकर क्या होता है, यह भी नहीं जानता था। इतने में केयर-टेकर वहाँ पहुंच गया और मैं एसेम्वली के कम्पाउण्ड में दाखिल हुआ।

जब भीड़वालों ने देखा कि मैं तो अन्दर चला गया हूँ तो सब उस दरवाजे की ओर दौड़े, जिधर मैं गया था। परन्तु उधर से किसी का आना-जाना संभव नहीं हुआ। जब एसेम्वली-भवन में मैं दाखिल हुआ तो उस समय चार बज रहे थे और पुलिस के साथ छात्रों की मुठभेड़ शुरू हो गयी थी। पुलिस के जत्थे एसेम्वली हाउस के कम्पाउण्ड से गोली चलाने की सोच रहे थे। उसके पहले वे लोग टियरगैस छोड़ रहे थे और भीड़वाले सारे टियर-गैसों को वापस उन्हीं के ऊपर फेंक देते थे। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि वे लोग यह कैसे कर रहे हैं। हमारे कमरे और एसेम्वली भवन में टियरगैस का धुआँ पहुंच रहा था। जब टियरगैस से भी वे लोग नहीं हटे तो अन्त में गोली चलाने के लिए पुलिस तैयार हो गयी। मैंने अपने सेक्रेटरी को निर्देश दिया कि वे यदि गोली वगैरह चलावें तो एसेम्वली के कम्पाउण्ड से नहीं चलावें—सड़क पर जो कुछ वे चाहें कर सकते हैं, परन्तु एसेम्वली के कम्पाउण्ड से मेरी इजाजत की आवश्यकता होगी, जो मैं देने के लिए तैयार नहीं हूँ। पुलिस वाले मान गये और सड़क पर से ही गोली चलाई गयी। इसके फलस्वरूप एक आदमी की मृत्यु हो गयी और भीड़ भी तितर-बितर हो गयी। प्रफुल्लो बाबू से मैंने टेलीफोन में बातें की तो उन्होंने कहा कि वे लोग सचिवालय से आ रहे हैं और एसेम्वली का काम चलना चाहिए। गोली चलने के पहले उन्होंने मुझ से भी पूछा कि ऐसी हालत में क्या किया जा सकता है—गोली चलाना ही होगा। मैंने कहा कि वे और उनके मंत्रीगण जो भी उचित समझें, करें। इस विषय में कोई भी सलाह देना मेरे दायरे के बाहर है। आधा घण्टे के पश्चात् वहुत से सदस्य और मुख्य मंत्री सचिवालय से पहुँच गये और एसेम्वली का काम शुरू हो गया।

एसेम्वली में यातायात को रोकना व्रिटिश पार्लियामेण्ट के नियमों के प्रतिकूल है। ऐसा करना उचित भी नहीं है। जो कुछ करना हो, कोई कहीं कुछ भी करे, परन्तु एसेम्वली भवन के सामने सदस्यों के आने-जाने का रास्ता वन्द नहीं होना चाहिए।

मुख्यमंत्रित्व की प्रतिद्वन्द्विता

कुछ महीनों वाद ही विधान बाबू चुनकर एसेम्वली में आ गये और अन्त में प्रफुल्लो बाबू की जगह वे मुख्य मंत्री बनाये गये। प्रफुल्लो बाबू के समर्थकों में और विधान बाबू के समर्थकों में एक-दो का ही अन्तर था। अतएव एक समय ऐसा आया जब कि मुझे कहा गया कि मैं पार्टी के अन्दर उपस्थित होकर विधान वावू का समर्थन करूँ। परन्तु मुझे ऐसा लगा कि स्पीकर होने के वाद मेरा उस दलादली में सम्मिलित होना ठीक नहीं है। परन्तु विधान बाबू और मंत्रिमंडल के सदस्य मेरे ऊपर ऐसा करने के लिए दबाव डालरहे थे। कई मंत्री घर पर आये और आग्रह करने लगे कि अवस्था जटिल है। इसीलिए हमारे वोट की भी आवश्यकता होगी। मैंने अपनी कठिनाई का उन्हें वोध कराया और कहा कि यह कार्य स्पीकर की मर्यादा के विरुद्ध होगा। अगर मेरे वोट की भी आवश्यकता हुई तो मैं इस पद को त्याग दूंगा और मीटिंग में अवश्यमेव विधान वाबू का समर्थन करूँगा। किन्तु ऐसा उन लोगों ने वांछनीय नहीं समझा। जब विधान बाबू ने देखा कि स्पीकर पद पर रहते हुए मैं किसी तरह ऐसा करने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ, तो उन्होंने दूसरी व्यवस्था की और पार्टी में उनका बहुमत कायम हो गया और वे मुख्य मंत्री चुने लिये गये।

इतना होने पर भी विधान व.वू के मन में मेरे प्रति कोई विरोधी भावना नहीं जगी। संभवतः उन्होंने स्वीकार किया कि जो मैंने किया है वह स्पीकर की स्वतंत्रता के लिए ठीक मार्ग है। विधान बाबू बहुत उदारचेता राजनीतिज्ञ थे। संकीर्णता उनके हृदय में नहीं थी। जब तक मैं स्पीकर के पद पर रहा—कई बार ऐसा अवसर आया जब मुझे अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए सरकारी इच्छाओं के विपरीत मार्ग पर चलना पड़ा परन्तु विधान बाबू को कभी भी इसके कारण अप्रसन्न होते नहीं देखा।

मेरे इस रूख से सदन के विरोधी दल में मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और उन्होंने भी मुझे सदैव आदर एवं सम्मान दिया। जनसाधारण में भी मुझे ख्याति प्राप्त हुई। एसेम्बली का काम मेरे कार्यकाल में सुगमतापूर्वक चलता रहा, क्योंकि सदस्यगणों में यह भावना रहती थी कि स्पीकरके पद की मर्यादा के अनुकूल जब मैं काम कर रहा हूँ, तो मेरे निर्देशों को वे मानें और अवज्ञा न करें।

स्पीकर-पद की स्वतन्त्रता के प्रयास

इसी समय भारतीय संविधान बन रहा था। मैंने उचित समझा कि स्पीकर की स्वतंत्रता नवीन विधान सभा में स्वीकृत की जाय तो अच्छा हो। मैंने केन्द्रीय लोकसभा के स्पीकर श्री मावलंकर को लिखा कि वे स्पीकरों की एक कांफ्रेन्स बुलावें और नये विधान में इनकी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जो कुछ आवश्यक हो, उसे करें। श्री मावलंकर साहब ने एक दिन के लिए दिल्ली में स्पीकरों की कांफ्रेन्स बुलवाई और वहाँ पर आवश्यक सुझाव सरकार को देने का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। उसके बाद मैं स्वयं डा० अम्बेदकर और श्री बी० एन० राव, जो संविधान बना रहे थे, उनसे मिला और बातें कीं। जब ये बातें नेहरूजी के पास पहुंचीं तो उन्होंने कुछ मुख्य मंत्रियों और कुछ स्पीकरों को सम्मिलित कर एक कमेटी बनाई जो इस प्रश्न पर भी विचार करे। मावलंकर साहब का मत था कि उसे विधान द्वारा बाध्यतामूलक न बनाकर व्यवहार द्वारा मान्य करना चाहिए। मेरा और अन्य सभी स्पीकरों का मत था कि जब विधान बन रहा है और लिखित विधान है तो जबतक उसमें स्पीकरों की स्वतन्त्रता नहीं रहेगी, व्यवहार में स्वतंत्रता नहीं प्राप्त होगी। जैसा हम चाहते थे वैसा रूप तो नहीं हो सका, क्योंकि कुछ मुख्य मंत्री स्पीकरों को स्वतंत्रता देना नहीं चाहते थे। तो भी एसेम्बली का सेक्रेटेरिएट सरकारी सेक्रेटेरिएट से अलग कर दिया गया और प्रत्येक प्रान्त को अधिकार दे दिया गया कि स्पीकर की सलाह से आवश्यक नियम बनावें ताकि विधान सभा की स्वतंत्रता की रक्षा हो सके।

जब १९५२ ई० में नवीन विधान के अनुसार चुनाव होने का समय आया तो मैंने विधान बाबू से कहा कि वे मुझे कांग्रेस पार्टी टिकट पर न खड़ा करके स्वतंत्र रूप से खड़ा होने दें, क्योंकि इंगलैण्ड में स्पीकर चुनाव में किसी राजनैतिक दल से खड़ा न होकर स्वतंत्र रूप से खड़ा होता है। इससे उसे दलगत विवादों में नहीं पड़ना पड़ता है और दूसरी पार्टियाँ भी साधारणतया इंगलैण्ड में स्पीकर के चुनाव का विरोध नहीं करतीं। इससे प्रत्येक दल को स्पीकर की स्वतंत्रता में विश्वास रहता है और चुनाव के समय वह पार्टी के दलदल में नहीं फंसता। विधान बाबू ने मुझे इस संबंध में एक नोट तैयार करने के लिए कहा। मैंने उसे तैयार करके उन्हें दे दिया। उन्होंने उस नोट को पं० जवाहरलाल नेहरू को

दिखलाया और विधान बाबू ने मुझ से आकर कहा कि नेहरूजी इसे पसन्द करते हुए नजर आये ; अतएव उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। पश्चिम वंग कांग्रेस ने भी ऐसा करने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी।

इस सम्बन्ध में जो नोट और ता० १७ सितम्बर १९५१ का पत्र मैंने डा० विधान चन्द्र राय को दिया उसके भावार्थ का सारांश पाठकों की सुविधा के लिये निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रजातंत्र की पार्लियामेण्ट को स्वतंत्रतापूर्वक चलाने के लिए यह मूल सिद्धान्त है कि हर पार्टी या सदस्य को अपने विचारों को व्यक्त करने का पूरा अवसर प्राप्त हो। विधान सभा की धारा १७९ के अन्तर्गत स्पीकर अपने पद पर बना रहेगा, जबतक कि चुनाव खतम होकर नयी एसेम्बली का पहला अधिवेशन न हो। ऐसी स्थिति में स्पीकर का किसी भी पार्टी के टिकट पर खड़ा होना वांछनीय नहीं हो सकता। जिससे वह राजनीति की दलादली व विवाद में नहीं पड़े।

(२) इंगलैण्ड में यह प्रथा है कि स्पीकर किसी दल की ओर से खड़ा नहीं होता। इंगलैण्ड की तीनों प्रधान पार्टियां उसका समर्थन करती हैं। यदि किसी ने विरोध भी कर दिया तो भी स्पीकर राजनैतिक विवाद में नहीं पड़ता। वह केवल अपने उच्चाधिकार और निष्पक्ष कार्य-संचालन को ही मतदाताओं के समक्ष उपस्थित करता है और मतदाताओं के प्रबल समर्थन से वह प्रायः सदैव विजायी होता आया है।

(३) गत २०० वर्षों के इंगलैण्ड के इतिहास में एक बार एक स्पीकर चुनाव में हार गया, जबकि उसके विरुद्ध में पक्षपात का अभियोग लगाया गया था।

(४) १९२५ ई० में जब अपने देश में श्री वी० जे० पटेल तत्कालीन लोकसभा के स्पीकर चुने गये, तो उन्होंने सदन में कहा था कि मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि सदन के कार्य निर्वाह में मैं सब दलों को निरपेक्षिता की दृष्टि से देखूँगा और मैं किसी विशेष दल का नहीं हूँ और सभी दल का हूँ।

(५) पार्लियामेण्ट की मैक्ट्रिस नाम की विश्व विख्यात पुस्तक में अनुच्छेद है कि प्रजातंत्र को सफलतापूर्वक चलाने के लिए यह एक प्रधान सिद्धान्त है कि स्पीकर निष्पक्ष हो। इस निष्पक्षता को सर्वसाधारण में प्रकाशित करने के लिए वह बहुत से कार्यों को करता है। सदन में राजनैतिक विवाद होता है, उसमें स्पीकर भाग नहीं लेता।

(६) इंगलैण्ड में १९३५ ई० में जब हाउस आफ कौमन का चुनाव हो रहा था तो सभी दल से समर्थित होते हुए भी स्पीकर का चुनाव में विरोध हुआ। यह बात ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के लिए असह्य थी और उसने कमेटी मुकर्रर की, जिसमें इंगलैण्ड के तीनों दल के नेता शामिल थे। इनमें मि० चर्चिल, मि० लायड जार्ज और मि० मनकबेरी— तीनों दल के नेता शामिल थे। उन लोगों ने जो रिपोर्ट दी, उसमें लिखा कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्पीकर के पद की मर्यादा और उसकी निष्पक्षता खतरे में पड़ती है, यदि उसे चुनाव में एक राजनैतिक उम्मीदवार की हैसियत से खड़ा होना पड़े। इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि सदन के सारे दल को स्पीकर की निष्पक्षता में पूर्ण आस्था और विश्वास हो।

मैंने भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों के स्पीकरों के साथ भी पत्र-व्यवहार किया और अधिकांश स्पीकर इस बात से सहमत थे। केन्द्रीय विधान सभा के स्पीकर श्री मावलंकर सिद्धान्ततः

इसे स्वीकार करते थे, परन्तु व्यवहार में इसमें कठिनाई अनुभव करते थे और वे स्वयं कांग्रेस टिकट पर खड़ा होना स्वीकार कर चुके थे। इससे हमारा पक्ष कमजोर पड़ जाता था। जब यह प्रश्न कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के सामने पहुंचा तो उसने इसे स्वीकार नहीं किया और यही निर्णय किया कि स्पीकर भी पार्टी टिकट ही पर खड़े हों। जब मुझे यह सूचना मिली तो मैंने श्री मावलंकर, स्पीकर लोकसभा, को लिखा कि उनके कांग्रेस टिकट पर खड़े होने से सिद्धान्त की स्वीकृति में बाधा पड़ रही है। उन्होंने कांग्रेस पार्लियाण्टरी बोर्ड को भी लिखा कि जो स्पीकर स्वतंत्र रूप से खड़ा होना चाहें, उन्हें होने देना चाहिए, परन्तु पार्लियामेण्टरी बोर्ड ने इसे भी स्वीकार नहीं किया। इसके वाद मेरा पत्र-व्यवहार नेहरूजी से हुआ ; उसमें भी नेहरूजी ने इसी वात पर जोर दिया कि इस चुनाव में कांग्रेस पार्टी के टिकट पर ही स्पीकरों को खड़ा होना चाहिए। मैंने अन्त तक कोशिश की कि वे ऐसा न करें और ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के सिद्धान्तों को स्वीकार करें। परन्तु वे राजी नहीं हुए। अन्त में मुझे भी कांग्रेस पार्टी के टिकट पर खड़ा होना पड़ा। मैंने पंडितजी को स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि मैं पार्टी-टिकट पर खड़ा तो होता हूँ, परन्तु यह काम गलत हो रहा है और प्रजातंत्र के आदर्शों को स्थापित करने में बाधक सिद्ध होगा। इससे स्पीकरों की प्रतिष्ठा भी कायम नहीं हो सकेगी और उनकी निष्पक्षता में भी विश्वास पैदा नहीं होगा।

ऐसा ही हुआ थी। इसके वाद जो स्पीकर बने, उन्हें अपमानित और लांछित करने में विरोधी दल को कोई भी हिचकिचाहट नहीं हुई। स्पीकर भी पार्टी का एक अंग बनकर ही रह गया। स्पीकरों के पद की मर्यादा हमारे देश में कायम न हो सकी, अतएव १९५२ के चुनाव में जब मैं खड़ा हुआ तो मेरे विरोध में बहुत-सी पार्टियां खड़ी हो गयीं, यद्यपि इस चुनाव में मेरे सारे विरोधियों की जमानतें जप्त हो गयीं और मैं प्रवल बहुमत से चुना गया। चुनने के वाद जब विधान बाबू ने मुझे अपने मंत्रिमंडल में सम्मिलित होने के लिए प्रस्ताव किया तो मुझे कोई अड़चन नजर नहीं आयी और मैंने इसे स्वीकार कर लिया।

विलायत की पार्लियामेण्ट का यह नियम है कि जो उसके हाउस आफ कामन्स का स्पीकर होता है, वह अपने को दलगत राजनीति से पृथक् कर लेता है और फिर दलगत राजनीति में प्रवेश नहीं करता। अगर दूसरे चुनाव में दूसरी पार्टी की सरकार भी बन जाती है, जो स्पीकर की पार्टी से भिन्न होती है तो भी वही स्पीकर वना रहता है, क्योंकि एक प्रकार से स्पीकर हो जाने के वाद राजनैतिक मृत्यु हो जाती है। हर पार्टी का उसमें विश्वास होता है। जब वह चुनाव में खड़ा होता है, तब भी किसी दल की ओर से खड़ा नहीं होता। जब वह समझता है कि वृद्धावस्था या अन्य किसी कारण से उसे और खड़ा नहीं होना चाहिए तो वह खड़ा नहीं होता। जब वह अवसर ग्रहण करता है तो पार्लियामेण्ट में कानून पास कर उसे आजीवन पेंशन दी जाती है और उसे लार्ड की उपाधि भी दे देते हैं। इस प्रथा के कारण स्पीकर की निष्पक्षता में किसी को अविश्वास नहीं होता। पार्लियामेण्ट का काम भी सम्मान और मर्यादा के साथ चलता रहता है। हमें और हमारे जैसे अन्य स्पीकरों की भी यह इच्छा थी कि आवश्यक परिवर्त्तनों के साथ इस सिद्धान्त के अनुसार स्पीकरों का कार्य आरम्भ किया जाये। यहाँ पर लार्ड की उपाधि देना संभव नहीं है, किन्तु अन्य बातें संभव हैं। १९५२ के चुनाव में हमलोगों ने

यही कहा था कि इस चुनाव में जो स्पीकर खड़ा होता है, उन्हें पार्टी-टिकट लेने के लिए बाध्य नहीं किया जाये और चुनाव होने के बाद यदि उन्हें फिर से स्पीकर न भी चुना जाये तो भी वे इसे चुनाव में स्वीकार कर लें, क्योंकि यह नवीन विधान के अनुसार पहला चुनाव था। धीरे-धीरे इंगलैण्ड में जो प्रथा है, वह यहाँ भी कायम हो जाएगी और प्रजातंत्र का कार्य दृढ़ नीति पर कायम हो जाएगा। परन्तु कांग्रेस के अधिकारी इसे स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हुए और यह सिद्धान्त अब तक स्वीकृत नहीं हो सका। स्पीकर से मीनिस्टर और मीनिस्टर से स्पीकर बनना साधारण-सी बात है। स्पीकर बनने के बाद भी वह पार्टी में उसी तरह भाग लेता है और राजनीति में भी उसी तरह कार्य करता है। जैसा कि वह स्पीकर होने के पहले करता था। यही कारण है कि स्पीकरों की जो इज्जत होनी चाहिए थी, वह नहीं होती और जो आदर्श स्थापित होना चाहिए था, उसके स्थापित न होने से हमारे देश में प्रजातंत्र का वास्तविक रूप उभर नहीं सका। मेरा उत्साह भी ठंढा पड़ गया और मुझे ऐसा लगा कि देश में प्रजातंत्र की सफलता के लिए जिन आधार-भूत सिद्धान्तों को ग्रहण करने की आवश्यकता है, वह मानते हुए भी व्यवहार में स्वीकृत नहीं किये जा रहे हैं और न मुझे उसकी कोई आशा ही बाकी रह गयी थी। अतएव १९५२ के चुनाव के बाद जब विधान बाबू ने मुझ से कहा कि मैं मिनिस्ट्री में चला जाऊँ तो मुझे कोई भी दुविधा नहीं रही, क्योंकि कांग्रेस पार्टी की ओर से मैं खड़ा हो गया था। उपर्युक्त सिद्धान्त को तिलांजलि दी जा चुकी थी।

१९५९ में श्री शंकरदास बनर्जी, जो उस समय के स्पीकर थे, उन्होंने जब इस पद से त्याग पत्र दिया तो विधान बाबू ने मुझ से स्पीकर के पद को फिर से ग्रहण करने के लिए आग्रह किया। परन्तु मैंने इसे स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट की, क्योंकि स्पीकर से मीनिस्टर और मीनिस्टर से स्पीकर बनना उचित नहीं लगा। महीनों तक स्पीकर का पद खाली रहा, क्योंकि उस समय विधान सभा कठिन परिस्थिति से गुजर रही थी। विधान बाबू की हार्दिक इच्छा थी कि ऐसे समय में एक अनुभव-प्राप्त स्पीकर बनाया जाये और इस संबंध में मेरी उनसे कई बार बातें भी हुईं।

स्पीकर की स्वतंत्रता, व्यावहारिक पक्ष

शासन के ३ अंग समझे जाते हैं। एक तो विधान सभा जहाँ जनता के चुने हुए प्रतिनिधि सदस्य होकर जाते हैं और जिस पार्टी का उसमें बहुमत होता है, वही पार्टी मंत्रिमंडल बनाकर देश का शासनभार अपने सिर पर उठाती है। इसकी अध्यक्षता स्पीकर करता है और विधान-सभा के सारे दफ्तर उसी के अधीन होते हैं। इस बात की आवश्यकता होती है कि स्पीकर विधान सभा के गौरव और मर्यादा की रक्षा करे और विभिन्न दलों को बिना किसी पक्षपात के विधान सभा में बोलने एवं कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करे। विधान सभा और उसके कम्पाउण्ड पर उसी का पूर्ण अधिकार रहता है और बिना उसकी अनुमति के मुख्य मंत्री भी उसमें कुछ नहीं कर पाते। यह स्वा-भाविक है कि जिस दल की सरकार होती है, वह सरकार में होने के कारण हर प्रश्न को निष्पक्षता से नहीं देख पाती और विरोधी दल को दबाना चाहती है। स्पीकर एक न्यायाधीश की तरह वहाँ अध्यक्षपद पर बैठता है और उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह

निष्पक्षता से विधान सभा के कार्य का संचालन करे। अपने कार्यकाल में मैंने इस बात का सदैव प्रयत्न किया कि इस निष्पक्षता का आदर्श हमलोगों को अपने देश में कायम करना चाहिए। इस कारण; मैं प्राय: कभी भी विधान बाबू के कमरे में नहीं जाता था ; ताकि विरोधी दल को संदेह उत्पन्न नहीं हो। जब भी विधान बाबू को कोई काम मुझ से होता था तो वे स्वयं ही मेरे कमरे में आ जाते थे। यह उनकी विशेषता थी। जबतक मैं स्पीकर रहा, स्पीकर की मर्यादा को कायम रखने के लिए उन्होंने मुझे कभी भी अपने कमरे में नहीं बुलाया। ऐसा प्रसंग प्राय: उत्पन्न होजाता था, जिसमें सरकारी दल की इच्छा के विरुद्ध में भी स्पीकर को काम करना पड़ता था। मैंने यह सिद्धान्त बना लिया था कि विरोधी दल को बोलने के लिए पूर्ण अवसर दिया जाये और सरकार जो काम विधान सभा में करवाना आवश्यक समझती है, उस काम को पूरा किया जाय ; ताकि शासनचक्र में कोई बाधा न पड़े। ऐसे कुछ प्रसंगों का जिक्र मैं यहाँ करना उचित समझता हूँ, ताकि लोगों को विधान सभा की कुछ कठिनाइयों का ज्ञान प्राप्त हो सके।

१. १९५१ में सरकार ने कलकत्ता कारपोरेशन के संबंध में एक बहुत बड़ा नया बिल एसेम्बली में पेश किया। जितने दिन एसेम्बली के समाप्त होने में बाकी थे, उतने थोड़े समय में इतना बड़ा बिल पास होना कठिन काम था। सरकार की तरफ से सुझाव दिया गया कि मैं आर्डर दूं कि इतने दिनों के अन्दर यह बिल पास किया जाये। विरोधी दल ऐसे आर्डर को गला घोटू आर्डर की संज्ञा देता था, क्योंकि उनके अधिकार में इससे बाधा पड़ती थी। मुझे ऐसा करना उचित नहीं प्रतीत होता था और विशेषकर जबकि विधान सभा का कार्यकाल समाप्त हो रहा था और नया चुनाव १९५२ में होने वाला था। स्पीकर को यद्यपि यह अधिकार प्राप्त था, परन्तु इसका उपयोग अपने स्पीकरशिप के काल में मैंने पहले कभी भी नहीं किया था। इससे मैंने सरकारी पक्ष को सुझाव दिया कि ऐसा आर्डर देना उचित नहीं होगा, मेरे ऊपर लांछन आयेगा। बिल पास करने के लिए सरकार को विरोधी पक्ष से बातें करनी चाहिए और उन्हें समझाना चाहिए कि दोनों पक्ष के सदस्यों को चुनाव में लड़ने जाना है। यदि इस बिल को शीघ्र पास करने में वे सहयोग नहीं देंगे तो विधान सभा का कार्यकाल काफी दिनों तक बढ़ाना पड़ेगा और दोनों ही पक्षों को चुनाव-प्रचार का समय कम मिलेगा। अतएव वे केवल मुख्य-मुख्य विषयों पर ही वादानुवाद करें और जो अन्य विषय हैं, उन्हें छोड़ दें तो यह बिल समय पर पास हो जाएगा। इसके लिए विधान सभा दिन में दो बार बैठाई जाये और दिन के भोजनादि का प्रबन्ध सदस्यों के लिए सरकार कर दे। विधान बाबू ने तदनुसार बातें की और व्यवस्था की और बिल समय के अन्दर ही पास हो गया। मैं भी उस कठिन परिस्थिति से बच गया और सरकार का भी काम हो गया।

२. एक अवसर ऐसा भी उपस्थिति हुआ, जब विधान सभा की मर्यादा का प्रश्न उपस्थित हुआ। पाकिस्तान बन गया था और बंगाल का विभाजन हो गया था। पश्चिम बंगाल और पूर्वी बंगाल की सीमा निर्धारण के लिए एक कमीशन आया। इसके अध्यक्ष रेडक्लीफ साहब थे, जिसे ब्रिटिश सरकार ने भेजा था। पाकिस्तान

वाले चाहते थे कि इसकी मीटिंग एसेम्बली हाल के अन्दर ही होने दी जाये। परन्तु मैं इसे अनुचित समझता था। मेरी राय में इस हाल का उपयोग केवल एसेम्बली के लिए ही होना चाहिए; अगर अन्य मीटिंग के लिए इसका उपयोग होना आरम्भ हो जाएगा तो इसकी मर्यादा नष्ट हो जाएगी और तब यह एक साधारण मीटिंग हाल बन जाएगा। विधान बाबू ने कहा कि पाकिस्तान वालों का बड़ा जोर है कि यह मीटिंग इसी हाल में हो। मैंने कहा कि वे उन्हें कह दें कि स्पीकर इस बात के लिए राजी नहीं होता है और स्पीकर की अनुमति के बिना इस हाल को देना संभव नहीं है। मुझ पर सारा दोष वे दे दें, तो उनकी कठिनाई समाप्त हो जाएगी। मैंने उन्हें इन्कार करने के कारणों पर प्रकाश डाला और वे सहमत हो गये और बोले कि इस हाल को नहीं देने का दोष लेना ही होगा, तो हमलोग सब मिलकर ही ले लेंगे— अकेले स्पीकर पर ही क्यों छोड़ेंगे। यह उनकी विशेषता थी और उन्होंने बुद्धिमत्ता-पूर्वक इस कार्य को एसेम्बली हाल में होने से बचा लिया। वह मीटिंग एसेम्बली भवन के एक कमरे में हुई, जिसमें हमें कोई आपत्ति नहीं थी।

मेरी श्रीलंका-यात्रा

सन् १९५१ में स्पीकरों की कांफ्रेन्स त्रिवेन्द्रम् में हुई थी। उसके पश्चात् मैंने श्रीलंका की यात्रा की। वहां ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट के बहुत से सिद्धान्तों को माना जाता था और मेरी इच्छा उसे देखने की थी। साथ ही श्रीलंका को भी देखने की आकांक्षा बलवती हो रही थी। अतएव मैं श्रीलंका गया और कोलम्बो में पहुंच कर वहाँ के स्पीकर का मेहमान बना। कोलम्बो की पार्लियामेण्ट का अधिवेशन चल रहा था, जिसे देखा। वहाँ के प्रधान मंत्री से भी भेंट हुई। उन्होंने मुझ से मेरा कार्यक्रम मांगा और कहा कि वे आवश्यक प्रबन्ध कर देंगे, परन्तु मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे मुझे स्वतंत्र रूप से ही जहाँ मैं जाना चाहूँ, जाने दें। उन्होंने इस पर कोई आपत्ति नहीं की और मैंने स्वतंत्र रूप से ही वहाँ के विभिन्न स्थानों का परिदर्शन किया और लोगों से भी मिला। उस समय वहाँ पर भारतीयों के विरुद्ध वातावरण बना हुआ था और मुझे अवसर मिला कि मैं भारतीयों और सिंहली जनसाधारण के लोगों से बातें करूँ और मैं वास्तविक स्थिति से अवगत हुआ।

कोलम्बो देखने के बाद मैं कैण्डी गया। यह १८०० फुट की ऊँचाई का छोटा पर्वत है, परन्तु यहां पर भगवान बुद्ध का दांत रखा हुआ है। उसकी पूजा होती है और समय-समय पर उसका उत्सव होता रहता है। मैंने इस मन्दिर का भी दर्शन किया और भगवान बुद्ध के दांत का भी। वहाँ मैं एक सिंहली परिवार के घर में ठहरा था। उन्होंने मेरी सुविधा का पूरा ध्यान रखा और मैं जो कुछ जानना चाहता था, वह उन्होंने मुझे दिल खोल-कर बताया। मुझे मालूम हुआ कि जो सिंहल देश के पुराने आदिवासी हैं, वे वहाँ से बहुत दूर एक स्थान में रहते हैं। उन्हें देखने की मेरी इच्छा तो हुई, परन्तु समय के अभाव में संभव न हो सका। कैण्डी बड़ा ही सुरम्य पहाड़ी स्थान नजर आया। वहाँ से मैं नेवारा एलियां गया। यह एक बहुत ऊँचा रम्य पहाड़ी स्थान है, जो लगभग ७००० फीट ऊँचा होगा। रास्ते में चारों तरफ चाय के बगान दृष्टिगोचर हो रहे थे और

सारा प्रदेश सुरम्य था। नेवारा एलिया में पहुंच कर वहाँ के विख्यात बोटानिकल गार्डन को देखा। मैंने जिज्ञासा की कि रामायण में वर्णित सीताजी के रहने का स्थान कहाँ पर था और उसका कोई चिह्न अवशेष है या नहीं। मुझे एक स्थान कैण्डी से नेवारा एलिया आने के रास्ते में दिखाया गया, जिसे वे सीता एलिया कहते हैं। एक छोटा-सा स्थान था, जो विल्कुल उपेक्षित नजर आता था और उसे कोई विशेष महत्व भी नहीं दिया जाता था। वहाँ से चलकर मैं अनुराधापुर आया। कहा जाता है कि गया के बोधि-वृक्ष की एक शाखा वहाँ पर ले जाकर लगाई गयी थी और वही वृक्ष अवतक वहाँ विद्यमान है। उस वटवृक्ष को मैंने देखा। अनुराधापुर में एक भवन देखा, जिसमें एक हजार खम्मे लगे हुए थे और कहा जाता था कि यहाँ पर बौद्ध-धर्म की सभाएं हुआ करती थीं।

वहाँ से लौटकर मैं भारत वापस आगया। जब मैं सागर को जहाज के द्वारा पार कर रहा था, तो उसके कमाण्डर ने मुझे दूरवीन दी और कहा कि भारतवर्ष और लंका के वीच में एक रास्ता अव भी वर्त्तमान है, जो कि समुद्र में डूबा हुआ है। एक जगह समुद्र में लहरें पैदा हो रही थीं, उसने वताया कि जब समुद्र का पानी उस रास्ते से टक्कर खाता है, तो लहरें पैदा हो जाती हैं।

श्रीलंका में भारतीयों के विरुद्ध वातावरण था। परन्तु श्रीलंका देश देखने योग्य था और मुझे उसे देखकर वड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ।

१९५२ का प्रथम चुनाव

नये विधान के अनुसार पहला चुनाव १९५२ की जनवरी में हुआ। इस चुनाव के समय विरोधी दलों ने अपनी ताकत वहुत बढ़ा ली थी और कांग्रेस भी चिन्तित हो रही थी कि प० बंगाल में इस चुनाव में क्या परिणाम होगा। यद्यपि कांग्रेस ने इस चुनाव में बहुमत प्राप्त किया और २३८ सदस्यों के सदन में कांग्रेस ने १४३ स्थान प्राप्त किया। तथापि कांग्रेस के सात दिग्गज मंत्री हार गये? वे थे सर्वश्री प्रफुल्लचन्द्र सेन, भूपति मजुमदार, निकुंज मैत्री, निहारेन्दुदत्त मजुमदार, कालीपद्दो मुखर्जी, हरेन्द्रनाथ राय चौधरी, विमल-चन्द सिनहा। ये सभी कांग्रेस दल में दिग्गज समझे जाते थे। कम्युनिष्टों ने तीन सीट की जगह अड़तीस सीटें प्राप्त कीं। इसका कारण यह था कि पूर्वी बंगाल से जो शरणार्थी आये थे, उनमें कम्युनिष्टदल ने अपना प्रभाव जमा लिया था और वे कांग्रेस के विरोधी हो गये थे। स्वयं डा० विधानचन्द राय के विरुद्ध में श्री सत्यप्रिय राय को खड़ा किया गया था, जो एक जवर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हुए। डा० राय ४,१११ वोटों से जीत गये और उनके नेतृत्व में कांग्रेस का फिर से मंत्रिमण्डल वन गया। मेरे विरोध में भी ९ आदमी खड़े हुए थे। मेरा निर्वाचन-क्षेत्र हिन्दीभाषियों का बहुमत-क्षेत्र था, और प्रायः समस्त भारतवर्ष के लोग इस क्षेत्र में अपना वाणिज्य-व्यवसाय करते और रहते हैं। इसमें मजदूरों को संख्या भी कम नहीं है। परन्तु वे भी अधिकांश हिन्दी भाषाभाषी होने के कारण कांग्रेस के समर्थक थे। अतएव मेरी जीत प्रचण्ड बहुमत से हुई और हमारे सभी विरोधियों की ज़मानतें जब्त हो गयीं।

वड़ी मुश्किलों से डा० राय ने जवाहरलालजी को राजी करके श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन और श्री कालीपद्दो मुखर्जी को कौंसिल में चुनकर अपने मंत्रिमंडल में शामिल किया और मुझे भी स्पीकर के पद से हटाकर अपने मंत्रिमंडल में ले लिया। ११ जून, १९५२ को मंत्रिमंडल का गठन हुआ और मुख्य मंत्री को मिलाकर १४ मंत्रियों का मंत्रिमंडल वना। परन्तु १६ डिप्टी मिनिस्टर बनाये गये जो वहुत वड़ी संख्या थी अस्तु डा० राय की इच्छा थी कि नये आदमियों को मिनिस्ट्री में लेकर उन्हें शासन चलाने का अनुभव कराया जाये और साथ ही सब दलों को संतुष्ट किया जाये ताकि उनका मंत्रिमंडल दृढ़ रहे और वे अच्छी तरह शासन चला सकें। विरोधी दल के नेता श्री ज्योतिवसु और उपनेता श्री वंकिम मुखर्जी दोनों ही अच्छे वक्ता थे। श्री वंकिम मुखर्जी बहुत दिनों तक कांग्रेस दल के सदस्य रह चुके थे। विधान सभा में इन दोनों की वक्तृताएँ प्रभावशाली होती थीं। श्री ज्योति वसु और विधान बाबू का आपसी सम्बन्ध अच्छा था और दोनों एक दूसरे को आदर के साथ देखते थे। लेकिन धीरे-धीरे विधान सभा में होनेवाली वहस का स्तर बहुत गिरता जा रहा था।

मेरा प्रथम मंत्रित्वकाल : १९५२ से १९५७ तक

१३ जून, १९५२ को विधान बाबू ने अपने मंत्रिमण्डल के सदस्यों के नामों की घोषणा की और किस मंत्री को कौन-सा विभाग दिया गया है, उसे भी प्रकाशित किया। मंत्रिमण्डल में १४ सदस्य कैबिनेट स्तर के मंत्री थे और १५ सदस्य डिप्टी मिनिस्टर वनाये गये थे। मेरा नाम भी कैबिनेट रैंक के मंत्रियों की तालिका में था। मुझे स्वायत्तशासन विभाग सौंपा गया था। यह पहला अवसर था, जब एक हिन्दी भाषा-भाषी को पश्चिम बंगाल के मंत्रिमण्डल में शामिल किया गया था। इससे हमारे क्षेत्र में और मित्रों में प्रसन्नता व्याप्त थी। मेरे मन में इस बात की तो प्रसन्नता अवश्य हुई कि जिस पद पर जाने की कल्पना मेरे स्कूली छात्र-जीवन में की गयी थी, वह अव जाकर साकार हुई। परन्तु मिनिस्टरों की इतनी वड़ी संख्या देखकर कुछ मन में ऐसी भावना भी हुई कि विधान बाबू ने अपने मंत्रिमण्डल में इतने सदस्यों को लेकर मंत्रियों की प्रतिष्ठा में कमी कर दी है। जहाँ एसेम्वली में स्पीकर के पद पर मैं अकेला ही था, वहाँ मंत्रिमडल में आकर २९ सदस्यों में एक था। अन्य प्रदेश में इतने अधिक सदस्य मंत्रिमण्डल में नहीं लिये गये थे। समाचार-पत्रों में इसके कारण कुछ टीका-टिपणी भी हुई।

इस बात को लेकर मुझे कुछ असंतोष भी हुआ कि जो स्वायत्तशासन विभाग हमें दिया गया है, उसका शासन तो स्वायत्तशासित स्थानीय संस्थाओं के सदस्यों द्वारा ही अधिक होता है—सरकार का उन पर बहुत ही सीमित अधिकार रहता है। मंत्री उसके आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करता और इससे इस क्षेत्र में काम करने की विशेष गुंजाइश नहीं रहती। मैंने विधान बाबू से इस संबंध में बातें कीं और अपनी भावना भी उन्हें वता दी। परन्तु विधान बाबू ने मुझे कहा कि यह विभाग अवतक उपेक्षित रहा है, इसमें वहुत कुछ काम करना है, प्रदेश में पंचायतों की स्थापना करनी है, जिसके लिए नया कानून बनाना होगा, और तदनुसार यहाँ पंचायतों की स्थापना करनी होगी—यही सब सोचकर उन्होंने हमें यह विभाग सौंपा है। उनकी बातें सुनने के बाद मेरा मन शान्त हो

गया और मैंने निश्चय किया कि इस विभाग में जो कुछ करना है, उसे पूरी तत्परता से पूरा किया जाये। अन्य मिनिस्टरों ने अपने-अपने पद का भार उसी दिन ग्रहण कर लिया, परन्तु मुझे एक सप्ताह ठहरना पड़ा, जबतक नया स्पीकर चुना जाकर अपने पद का भार ग्रहण न कर ले, तबतक मुझे स्पीकर के पद पर बने रहना आवश्यक था।

२० जून, १९५२ को एसेम्बली में नये स्पीकर का चुनाव हुआ। श्री शैल कुमार मुकर्जी इस पद के लिए निर्वाचित हुए और उसी समय उन्होंने अपना पद-भार ग्रहण कर लिया और मेरे स्पीकर का पद समाप्त हुआ।

२१ जून, १९५२ को मैंने राज्यपाल के सम्मुख जाकर मंत्रित्व की शपथ ली और उसी दिन से मेरा मंत्रित्वकाल आरम्भ हुआ। सोमवार २३ जून, १९५२ को मैं सचिवालय में जाकर अपने आफिस में पहुँच गया और अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

मंत्रियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी थी, अतएव सचिवालय में स्थान की कमी हो गयी। जो चैम्बर मुझे प्राप्त हो सका, वह इसके पहले चीफ ह्वीप (प्रधान सचेतक) का था। यद्यपि यह कमरा काफी बड़ा था, तथापि इसमें हवा के आने-जाने की गुंजाइश बहुत कम थी और इसमें जो कुर्सियां, गलीचे इत्यादि थे, वे भी संतोषजनक नहीं थे। एसेम्बली में स्पीकर का कमरा था, वह बहुत ही अच्छा और प्रभावोत्पादक था। उसकी अपेक्षा यह कमरा मुझे बहुत अखरा और मैंने विधान बाबू का ध्यान इस संबंध में आकर्षित किया। वे अपने चीफ सेक्रेटरी के साथ मेरे कमरे में आये और उसे देखकर यह आदेश दिया कि इस कमरे को आमूल परिवर्त्तन कर दिया जाय और इसके सामान भी सारे बदल कर नये मंगवा दिये जायें। जहाँ तक हवा के आने-जाने का प्रश्न था, उसके लिए एयर कण्डीशन लगा दिया जाये ताकि इसके कारण कोई असुविधा न हो। सचिवालय में दूसरा कोई कमरा उपलब्ध नहीं था। अतएव उन्होंने मुझ से कहा कि जब तक कि ये सारे परिवर्तन नहीं हो जाते हैं, तब तक एसेम्बली में जो मेरा चेम्बर है उसमें मैं अपनी आफिस करूँ। मैंने ऐसा ही किया। कमरे के सारे परिवर्त्तनों में एक माह से अधिक लग गया और जब सब काम पूरा हो गया तो मैं सचिवालय की आफिस में बैठने लगा। विधान बाबू अपने सहयोगियों की कठिनाइयों को दूर करने में सदैव तत्पर रहते थे। अतएव जब भी मैंने कोई शिकायत की तो उसी समय उसे दूर करने के लिए उन्होंने आवश्यक कदम बिना विलम्ब के उठाया। उनका नियम था कि मंत्रियों के चयन और विभागों को सौंपने में संबंधित मंत्रियों से सलाह नहीं करते थे—केवल उसकी घोषणा ही करते थे। उनका यह अनुभव था कि इस विषय में सलाह करके काम शीघ्र सम्पन्न नहीं हो सकता है। यद्यपि हमलोगों को यह अच्छा नहीं लगता था, तथापि उनके तर्क में युक्ति नहीं थी—यह नहीं कहा जा सकता।

जब मैं स्पीकर था, तब जिस समय एसेम्बली होती थी, उस समय तो बहुत व्यस्त कार्यक्रम रहता था, परन्तु उसके बाद प्रायः कुछ भी कार्य नहीं रहता था। परन्तु मंत्री होने के बाद नित्यप्रति बहुत अधिक कार्य रहता था। आने-जाने वालों की संख्या भी बहुत बढ़ गयी थी। अधिकांश लोग अपने निजी कार्यों के लिए ही आते थे। उनसे भी मिलना आवश्यक था और उनकी बातें सुनकर जो कुछ भी संभव होता था, उसे करना भी पड़ता था। सचिवालय में बहुत-सी मीटिंगें हुआ करती थीं और सचिवालय के बाहर

भी वहुत-सी मीटिंगों में, पार्टियों में, समाजों में और समितियों में जाना पड़ता था। अतएव मैंने अपने सारे समय का मनोयोग देकर विभाजन कर दिया और यह सिद्धान्त निश्चित कर दिया कि हर कार्य के लिए एक निर्धारित समय हो और निर्धारित समय में उस कार्य को पूरा किया गाये। ऐसा करने से मुझे बहुत सुविधा हुई और विना किसी प्रकार की असुविधा के सारे कार्य समय पर सम्पन्न हो जाते थे। जीवन में मेरा सदा अभ्यास रहा है कि प्रातःकाल ५ वजे से ६ वजे के बीच मैं सोकर उठ जाता हूँ और रात्रि को १० से ११ बजे के बीच सो जाता हूँ। छात्रजीवन में भी जब परीक्षाएँ होती थीं, उस समय भी मैं रात्रि में अधिक देर नहीं जागता था और सोने के पहले कोई पुस्तक नहीं पढ़ता था और अब भी वही अभ्यास जारी है।

लाल फीतेशाही का खेल

कमरे में जो ६ कुर्सियां रहती थीं, वे एक साथ अधिक मनुष्यों के आने-जाने के कारण यथेष्ट नहीं थीं। मैंने मांग की कि मेरे कमरे में ६ कुर्सियाँ और रख दी जायें। मुझे यह देखकर वड़ा आश्चर्य हुआ कि इसके लिए एक वड़ी फाइल तैयार हो गयी और इस प्रश्न पर विचार होने लगा कि मिनिस्टर के कमरे में आगंतुकों के लिए कितनी कुर्सियां रखी जायें। यह फाइल दो वर्ष तक विभिन्न विभागों में घूमती रही और अन्त में यह तय हुआ कि आठ कुर्सियां यथेष्ट हैं। फाइल के साथ दो और कुर्सियां मेरे कमरे में आ गयीं। लाल फीताशाही किसे कहते हैं, इसका अनुभव भी मुझे हो गया और इस घटना को मैं कभी नहीं भूलता। सचिवालय में कुर्सियों का एक स्टाक रहता है और जब कभी कोई मीटिंग वगैरह होती है, जिसमें अधिक कुर्सियों की जरूरत होती है, तो उस स्टाक से मँगवानी पड़ती है। उसके लाने एवं ले जाने के लिए कुछ चार्ज कन्ट्राक्टर को देना पड़ता है। परन्तु जहाँ नित्य ही अधिक कुर्सियों की आवश्यकता हो, वहाँ तो इस तरह कुर्सियाँ नहीं मंगवाई जा सकती थी, हरेक मिनिस्टर के कमरे में एक सोफा सेट रहा करता है। उस सेट के आने में भी कई महीनों का विलम्ब हो गया। पुराने सेट की एक लम्बी कोच हमारे कमरे में पड़ी थी, और एक दूसरी गद्दीदार कुर्सी, जो विधान बावू के कमरे के लिए आयी हुई बच गयी थी, वह उन्होंने मेरे कमरे में भेज दी थी, अतएव मेरी कमी पूरी हो गयी थी। जब नया सोफा सेट आया तो इन दोनों अतिरिक्त कोचों को उठा ले जाने के लिए आदमी आया। मैंने उन्हें उठाने नहीं दिया और कहा कि इसके लिए भी एक फाइल आरम्भ करो; इस पर फैसला होते-होते मेरा कार्यालय भी पूरा हो जाएगा। परन्तु यह फाइल आरम्भ नहीं हुई और वे कुर्सियां मेरे मंत्रित्वकाल में वहीं पड़ी रहीं। हमारे दफ्तरों में कैसे विलम्ब होता है, इसका मैंने एक नमूना दिखाया है और अपने सहयोगियों को भी कई वार यह कथा सुनाई है।

स्वायत्तशासन कानून में सुधार

कार्य आरम्भ करते समय मैंने यह निश्चय किया कि स्वायत्तशासन संबंधी जितने कानून वने हुए हैं, उनमें आवश्यक सुधार किये जायें और इस कार्य को हाथ में लिया गया और इस विभाग को पूर्ण तत्परता के साथ सम्पन्न करने के लिए अनुरोध किया गया।

कानून बनाने में या संशोधन करने में बहुत कुछ विचार-विमर्श की आवश्यकता होती है, उसे सरकार के कानून विभाग द्वारा ड्राफ्ट के रूप में परिणत करना पड़ता है और कैबिनेट जब उसे स्वीकार कर लेती है तब वह एसेम्बली में उपस्थित करके स्वीकृत कराया जाता है। पश्चिम बंगाल में कौंसिल भी थी, इसलिए उसके द्वारा भी उसे स्वीकृत कराना पड़ता था। राज्यपाल की स्वीकृति के बाद उसे गजट में प्रकाशित करने के उपरान्त कानून को लागू किया जाता है। इस काम में बहुत समय लगता है। सबसे पहले कलकत्ता कारपोरेशन के संबंध में कलकत्ता कारपोरेशन संशोधन एक्ट जो १९५१ में बना था, उसे हाथ में लिया गया। वह कानून बहुत बड़ा था। परन्तु जल्दी में पास करना था। इसलिये उसमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी थी। कारपोरेशन से सलाह करके इन त्रुटियों को दूर करने के लिए कानून का ड्राफ्ट तैयार किया गया, क्योंकि १९५१ में ही बने नये कानून को सैद्धान्तिक परिवर्तन करना उचित नहीं समझा गया। यह संशोधन १९५३ में विधान सभा से स्वीकृत होकर कानून बन गया।

मंत्रियों की तनख्वाहें और भत्ते में वृद्धि

१९४७ से अब तक मंत्रियों को ७५० रुपये तनख़्वाह के रूप में तथा ५०० रु० घर और सवारी भत्ते के रूप में दिये जाते थे, इसमें इनकमटैक्स भी कट जाता था। विधान बाबू ने यह अनुभव किया कि यह रकम मंत्रियों के लिए पर्याप्त नहीं है। उन्होंने यह निश्चय किया कि कैबिनेट मीनिस्टरों के लिए तनख्वाह बढ़ाकर १००० रुपये निश्चित की जाये और ९०० रुपये भत्ते के रूप में दिये जायें। इसके अतिरिक्त, जैसे अन्य सरकारी कर्मचारियों को बीमारी की हालत में मुफ्त चिकित्सा की सुविधा दी जाती है, वह मंत्रियों को भी दी जाये। अन्य प्रान्तों में यह सुविधा उपलब्ध थी। जब यह बिल एसेम्बली में पेश हुआ तो विरोधी दल ने इसका तीव्र विरोध किया। परन्तु विधान बाबू ने बीमारी में इलाज की जो सुविधा देने की बात थी, केवल उसे हटा लिया, और कोई परिवर्तन करना स्वीकार नहीं किया। साधारणतया यह धारणा जनसाधारण में रहती है कि मंत्रियों को तनख्वाहें और भत्ते कम से कम दिये जायें। विधान बाबू की धारणा यह थी कि वे अपने पद के अनुसार अपना जीवनयापन कर सकें, इसकी व्यवस्था अवश्यमेव होनी चाहिए। मंत्रिमंडल में सभी प्रकार के मंत्री रहते हैं, कुछ पैसे वाले, जिन्हें इस बात की कोई परवाह नहीं होती कि उन्हें क्या मिलता है, और अधिकांश वे मंत्री जिन्हें अपना गार्हस्थ जीवन इसी वेतन से चलाना पड़ता है। मंत्री बनने के बाद बहुत तरह के खर्च बढ़ जाते हैं—मेहमानों की संख्या भी कम नहीं रहती, आने जाने वालें की खातिरदारी करनी पड़ती है, जनसम्पर्क भी रखना पड़ता है। अधिकांश मंत्रियों के परिवार भी होते हैं। इन सब बातों पर विचार करके ही विधान बाबू ने यह निश्चय किया था। आगे चलकर इसमें १०० रुपये की कमी कर दी गयी। यह कमी पहले स्वेच्छा से लोगों ने की थी—पीछे इस पर कानून की मोहर लगी।

विधान बाबू का विदेश गमन

कुछ ही दिनों के बाद विधान बाबू को अपनी आँख का ऑपरेशन कराने के लिए विदेश जाना पड़ा। उनकी यह यात्रा दो-तीन महीने की थी, अतएव जितने विभाग उनके

हाथों में थे, उन सबको अन्य मंत्रियों को सौंपना पड़ा। १४ अगस्त १९५२ को उन्होंने विदेश के लिए प्रस्थान किया। उस तारीख से मुझे स्वायत्तशासन विभाग के अतिरिक्त गृह विभाग का जेनरल एडमिनिस्ट्रेशन विभाग एवं उद्योग एवं वाणिज्य विभाग भी मुझे सौंप दिये गये। २७ अक्तूबर १९५२ को विधान बाबू विदेश से वापस पहुँचे और जो विभाग उनकी अनुपस्थिति में हमें दिये गये थे, वे फिर से उन्हीं के अन्तर्गत चले गये।

हाईकोर्ट से विवाद

गृह विभाग के अन्तर्गत साधारण शासन विभाग (जेनरल एडमिनिस्ट्रेशन) के अन्तर्गत सरकार के जितने उच्च आफिसर हैं, उन पर इसी विभाग का अधिकार रहता है। थोड़े दिनों के बाद ऐसा संयोग हुआ कि हाई कोर्ट के प्रधान विचारपति और मुझ में एक प्रश्न को लेकर विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। उसने सरकार और हाई कोर्ट के बीच एक झगड़े का रूप धारण कर लिया। विधान बाबू भी यहाँ नहीं थे, अतएव इसका सारा भार मुझे ही वहन करना पड़ा।

कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट, जो जमीन अधिक ग्रहण करता था और उसके लिए जो मूल्य निर्धारित होता था, उससे यदि कोई भी व्यक्ति असंतुष्ट हो तो वह कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ट्रिब्यूनल में अपील कर सकता था। इसके अध्यक्ष दो वर्ष के लिए नियुक्त होते थे और इसके दो सदस्य भी होते थे जो असेसर कहे जाते थे। परन्तु वे केवल सलाह ही देते थे—फैसले का अधिकार अध्यक्ष के हाथ में रहता था। इस पद पर ऐसे व्यक्ति का रहना आवश्यक था, जो कि केवल दक्ष ही नहीं, बल्कि ईमानदार भी हो और अपील का फैसला भी जल्दी कर सके। परन्तु इस पद के ऊपर जो अध्यक्ष थे, वे बहुत जमाने से उस पद पर चले आ रहे थे और उनकी आँखें भी खराब हो गई थी; उन्हें बदलने की आवश्यकता थी। मैंने इस पद के लिए एक अत्यन्त सुयोग्य और ईमानदार डिस्ट्रिक्ट जज को चुना था जिसे अलीपुर से हटाने के लिए हाईकोर्ट से भी सलाह लेने की आवश्यकता थी। मैंने हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति से इसके लिए बातें की और उनसे अनुरोध किया कि वे निश्चित व्यक्ति को अपने पद से हटाने में सम्मति दें। किसी कारण से उन्होंने ऐसा करने के लिए अधिक समय की आवश्यकता बताई। उस समय जो प्रेसिडेण्ट थे, उनका कार्यकाल बहुत शीघ्र पूरा हो रहा था और उनकी नियुक्ति की अवधि दो वर्ष से कम बढ़ाई नहीं जा सकती थी, जो मैं अवांछनीय समझता था। मैंने सरकारी परामर्शदाताओं से कानूनी स्थिति पर सलाह करके निश्चय किया कि मैं अपने गृह विभाग के अधिकारी से डिस्ट्रिक्ट जज को अपने पद से हटा दूँ और स्वायत्तशासन विभाग के मंत्री के अधिकार से उन्हें उपर्युक्त ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त कर दूँ। मैंने ऐसा ही कर दिया एवं इसकी सूचना मैंने हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति को दे दी। वे इस बात से अत्यन्त अप्रसन्न हुए और उन्हें ऐसा लगा कि यह कार्य अवैधानिक है और इससे उनकी अवहेलना होती है। परन्तु हमलोगों के अनुसार यह कार्य अवैधानिक नहीं था और अवहेलना का कोई प्रश्न ही नहीं था। इसको लेकर परस्पर में कुछ पत्र-व्यवहार हुआ, जिसमें कुछ कटुता थी। उसके बाद, सरकार की ओर से किसी भी विषय पर हाई कोर्ट से राय मांगी जाती तो हाईकोर्ट कोई जवाब नहीं देता था। सरकार ने हाईकोर्ट को

यह प्रस्ताव भी प्रेषित किया था कि जब तक स्थायी नियुक्ति न हो जाये, तब तक डिस्ट्रिक्ट जज के नीचे के जो आफिसर थे, उन्हें डिस्ट्रिक्ट जज का अधिकार देकर काम चलाया जाये; परन्तु हाईकोर्ट ने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया। छुट्टियों के बाद कोर्ट खुलने पर बहुत सी अपीलें दायर करनी होती हैं, उन्हें दायर करने के लिए वकील खड़े थे, परन्तु हाकिम नहीं था। ऐसी परिस्थिति में हमने सरकारी आफिसरों से विचार-विमर्श करके अस्थायी रूप से डिस्ट्रिक्ट जज की नियुक्ति का आर्डर भेज दिया और इस कमी की पूर्ति कर दी गयी। इसके कारण हाईकोर्ट में और नाराजगी उत्पन्न हुई और इसने एक प्रकार से संघर्ष का रूप धारण कर लिया। जब विधान बाबू विदेश से वापस आये तब सारी बातें मैंने उनको बतला दीं। उन्होंने केन्द्रीय सरकार के गृहमंत्री से बातें कीं और उन्होंने सरकार के द्वारा जो कदम उठाये गये थे, उन्हें वैधानिक बताया। केन्द्रीय मंत्रिमंडल के कानून मंत्री श्री सी० सी० विश्वास जब कलकत्ते आये तो उनके साथ मेरी और हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति की बातें हुईं, जिनमें सारी परिस्थिति साफ हो गयी और इस विवाद की समाप्ति हुई।

आफिसर व व्यापारिक अनुभव की कमी

मैंने यह अनुभव किया कि ऊँचे-से-ऊँचे सरकारी आफिसरों में भी व्यापार संबंधी बातों की जानकारी कम होती है। साधारणतया ये आफिसर आई० सी० एस० या आई० ए० एस० होते हैं। व्यापार के व्यावहारिक ज्ञान का उन्हें कोई अवसर मिलता नहीं, इसलिए बहुत-सी बातों को समझने में उन्हें दिक्कत होती है। उदाहरण के लिए सरकार द्वारा एक आर्डिनेन्स निकाला गया था, जिसके अनुसार हैसियन के फाटके पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। उसकी भाषा में कुछ त्रुटि रहने की वजह से यह असर हुआ कि हैसियन वगैरह के जूट मिल एसोसिएशन के निर्धारित कन्ट्राक्ट पर जो सौदे होते थे, वे भी बन्द हो गये। जूट मिल एसोसिएशन की ओर से श्री माधोप्रसाद बिड़ला तथा श्री रामसुन्दर कानोड़िया आदि मेरे पास आये और उन्होंने मेरा ध्यान इस त्रुटि की ओर आकृष्ट किया। मैंने महसूस किया कि इस भूल को सुधारने की आवश्यकता है। जब मैंने इस विभाग के सेक्रेटरी, जो आई० सी० एस० आफिसर थे, से बात की तो लगा कि वे फाटके में और अन्य सौदे में जो फर्क था, उसे समझ नहीं पा रहे थे। ये आफिसर अर्थशास्त्र के भी ज्ञाता थे; परन्तु व्यावहारिक व्यापार का पूर्ण परिचय न होने के कारण कठिनाई हो रही थी। मैंने मजाक में कहा कि चलिये आपको थोड़ा फाटका करवा दिया जाये और फौरन यह फर्क मालूम हो जायेगा। मैंने विधान बाबू का ध्यान इस कठिनाई की ओर आकृष्ट किया और इसे समझने में उन्हें एक क्षण भी नहीं लगा। आर्डिनेन्स में सुधार कर दिया गया और जो कठिनाई उत्पन्न हुई थी, वह दूर हो गयी। विधान बाबू व्यापार को अच्छी तरह समझते थे। इसलिए उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। अब यह भारत सरकार भी अनुभव कर रही है कि केवल आई० ए० एस० या आई० सी० एस० आफिसरों पर व्यापारिक विषयों का भार न सौंपा जाय, बल्कि जिन्हें वाणिज्य व्यापार का पूरा अनुभव हो, उन्हें नियुक्त किया जाये।

मंत्री और सरकारी कर्मचारी

भारतवर्ष में मंत्रियों के विरुद्ध जितनी व्यक्तिगत समालोचना होती है और इल्जाम लगाये जाते हैं, उतने और किसी देश में नहीं होते और ऐसा प्रतीत होता है कि जो इस देश में मंत्री होंगे, उसे इस कटु आलोचना को झेलने के लिए प्रस्तुत रहना पड़ेगा। यही कारण है कि इन आलोचनाओं और इल्जामों को विशेष महत्व नहीं दिया जाता, इनकी उपेक्षा की जाती है। लेकिन इससे जनता की दृष्टि में मंत्रियों के प्रति आस्था नहीं रहती और जनता के ऊपर उनका अधिकार और प्रभाव उतना नहीं रहता, जितना जो अच्छे शासन के लिए आवश्यक है।

यह प्रश्न भी प्रायः उठता रहता है कि मंत्रियों को वहुत दिनों तक मंत्री नहीं रहना चाहिए, परन्तु कार्यरूप में ये सब बातें व्यावहारिक सिद्ध नहीं हुईं। जो एक वार राजनीति में पड़ जाता है, वह सारा जीवन उसी में विताता है। उसकी जीविकायापन का भी वही साधन हो जाता है। राजनीति से पृथक् होकर रहना उसके लिए असंभव हो जाता है। अन्य पाश्चात्य देशों में इस तरह की स्थिति नहीं है। हमारी दृष्टि में स्वच्छ वातावरण उत्पन्न करने के लिए यह मान लेना होगा कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के वाद जनता के मत के आधार पर जो प्रजातांत्रिक सरकार वनती है, उसी के द्वारा देश का अधिकांश सौभाग्य या दुर्भाग्य वनेगा। जवतक स्वतंत्रता नहीं प्राप्त होती है, तब तक इसके लिए जो लड़ाई की जाती है, उसका केवल एक लक्ष्य रहता है कि विदेशी शासन को हटाओ और इसके लिए जो जेलों में जाना पड़ता है या अन्य प्रकार के कष्टों को सहन करना पड़ता है, उसमें निश्चय ही त्याग की मात्रा बहुत होती है। स्वतंत्रता-प्राप्ति की कामना भी मनुष्यों के हृदय में त्याग की भावना उत्पन्न करती है, जो शासनारूढ़ होने के वाद कायम नहीं रहती और उसकी जगह प्रभुता और राजसत्ता का मद उत्पन्न हो जाता है।

इस बात की भी आवश्यकता है कि जो मंत्री वनाये जायें, वे दक्ष हों, अपने विभागीय विषयों के ज्ञाता हों, ईमानदार हों और अपने विभाग के शासन को समुचित रूप से चला सकें। परन्तु हमारे देश में मंत्रियों की नियुक्ति में इन सब बातों का कोई ख्याल नहीं रखा जाता। ऐसे भी मंत्री होते हैं, जिन्हें अपने विभाग से कभी जिन्दगी में कोई संबंध ही नहीं रहा। वित्त मंत्री ऐसे होते हैं, जिनका अर्थशास्त्र से कभी कोई संबंध नहीं रहा। स्वास्थ्य मंत्री ऐसे वन जाते हैं, जिन्हें चिकित्सा से कोई संबंध नहीं रहता। शिक्षा मंत्री ऐसे हो जाते हैं, जिन्हें शिक्षा से कोई संबंध नहीं रहा। इसी तरह की नियुक्ति के कारण शासन ठीक नहीं चल पाता है।

सरदार वल्लभभाई पटेल का सुझाव

यह भी मैंने वहुत वार लोगों को कहते सुना कि अमलासाजी का राज्य है, परन्तु मुझे तो ऐसा नहीं लगा। श्री वल्लभभाई पटेल स्वतंत्रता-प्राप्ति के वाद जव कलकत्ते में आये और हमलोगों से भेंट हुई, तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जो आई० सी० एस० आफिसर भारत में बच गये हैं, वे योग्य हैं और उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं होगा। मुझे भी ऐसा ही अनुभव हुआ। मेरे अधीन भी कई आई० सी० एस० और आई० ए० एस० आफिसरों ने काम किया। उनमें कई आफिसर को मैंने वहुत ही योग्य और ईमान-

दार देखा। कभी भी मेरा उनके साथ किसी प्रकार का संघर्ष नहीं हुआ और मैंने उन्हें बराबर सहयोगी और सहायक पाया। यदि मंत्री योग्य हो, तो उसके अधीनस्थ आॅफिसर अवश्य उसकी कद्र करते हैं। यदि वे अपने विभाग के कामों को देखने योग्य न हों, तो उनके प्रति श्रद्धा कैसे हो सकती है? मंत्रियों का समय भी अनगिनत लोगों से मिलने, बातें करने, मीटिंग-पार्टियों में शामिल होने और राजनैतिक दलादंली एवं संघर्ष से आत्म-रक्षा करने आदि में व्यतीत हो जाता है। अपने विभाग का काम देखने का उन्हें अवसर ही कितना मिलता है? यदि सरकारी आफिसर भी काम न करें, तो निश्चय ही जो कुछ भी आज चल रहा है, वह भी नहीं चल पायेगा और शासनतंत्र बिल्कुल ठप्प हो जायेगा।

यह बात मैंने अवश्य देखी कि लाल फीताशाही के कारण निर्णय करने में बहुत अधिक समय लग जाता है। फाइल बहुत से हाथों से गुजरती है और हर स्थान में अनावश्यक देर हो जाती है। सरकारी कर्मचारियों को जितना समय और ध्यान एवं आस्था अपने विभागीय कार्यों में होनी चाहिए, मैंने नहीं देखी। जनसेवा की भावना की अपेक्षा हुकूमत की भावना अधिक पाई। छोटे-से-छोटे स्तर के कर्मचारियों में भी यह बात मौजूद है। इसके कारण सरकारी मशीनरी में अनावश्यक बहुत विलम्ब होता है। इधर अनैतिकता भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है। ऐसी स्थिति में सरकारी कार्य ठीक तरह नहीं हो पाता और जनता के कष्टों की सीमा भी नहीं रहती।

लाल फीताशाही : एक और अनुभव

कभी-कभी विचित्र आर्डर भी लाल फीताशाही के कारण हो जाते हैं, जो बड़े अव्याव-हारिक होते हैं। मंत्रियों और सेक्रेटरियों को कुछ दैनिक अखबार सरकार की ओर से दिये जाते हैं। एक बार यह आर्डर निकला कि जो अखबार दिये जाते हैं, उनको पढ़ने के बाद सचिवालय को वापस भेज देना चाहिए, क्योंकि यह सरकारी सम्पत्ति है। दैनिक अखबार को हिफाजत से रखना असंभव बात है। जो भी अखबार मिल जाते थे, हमलोगों ने एक पत्र द्वारा उनकी तालिका बनाकर भेजना शुरू किया, तो सचिवालय में एक बहुत बड़ा दफ्तर तैयार हो गया, जिसमें बहुत से आफिसर वगैरह रखे गये, और बहुत बड़ा-सा खर्च बंध गया। "नौ की लकड़ी नब्वे खर्च" वाली कहावत चरितार्थ हुई। एक दिन कैबिनेट में हमलोगों ने विधान बाबू का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और कहा कि यह आदेश अव्यावहारिक है। विधान बाबू ने इस आदेश को वापस लेने का कैबिनेट से प्रस्ताव स्वीकृत करा दिया और यह आदेश हटा दिया गया।

गंगासागर मेला

प्रत्येक वर्ष गंगासागर का मेला एक दिन के लिए १४ जनवरी को गंगासागर में लगता है, जिसमें लाखों आदमी समस्त भारतवर्ष से वहाँ पुण्य-स्नान करने के लिए मकर संक्रान्ति के दिन आते हैं। कहा जाता है कि "और तीर्थ बार-बार, गंगासागर एक बार"। यहाँ पर गंगाजी और सागर का संगम होता है और कपिल मुनि के दर्शन होते हैं। लोग यहाँ जहाजों के द्वारा भी पहुँचते हैं और काकद्वीप तक मोटरों में एवं उसके बाद नौकाएँ और स्टीमरों में भी बहुत बड़ी संख्या में जाते हैं। यह सुन्दरवन में स्थित है। पुराने जमाने

में तो यहाँ बहुत बड़ा जंगल था, जिसमें व्याघ्र भी रहते थे। परन्तु अब तो-जंगल बहुत कुछ कट गया है और व्याघ्र आदि के दर्शन नहीं होते।

मैं पहले-पहल गंगासागर अपने माता-पिता के साथ १९०७ में गया था। उस समय वहाँ के यातायात साधन, इन्तजाम, पीने के पानी की व्यवस्था आदि उस यात्रा-विवरण में मैं लिख चुका हूँ। अब इस मेले का इन्तजाम २४ परगना के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के हाथ में रहता है। यह हमारे विभाग के अन्तर्गत ही था। अतएव, हमने सोचा कि इसकी व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए, जो सरकार की पूरी सहायता के विना संभव नहीं थी। १९५३ के जनवरी महीने में ही मैंने एक आर्डिनेन्स पास करवाया, जिससे इस मेले का सुचारु रूप से इन्तजाम किया जा सका।

विधान बाबू की द्वितीय विदेश यात्रा

२ जुलाई, १९५३ को विधान वावू दुबारा विदेश गये और अपना विभाग विभिन्न मंत्रियों में बाँट गये। मुझे भी उन्होंने गृह-विभाग का एक अंश दे दिया, जो विधान और चुनाव का था। २ अगस्त, १९५३ को विधान वावू विदेश से वापस आ गये और उनका विभाग फिर उनके अधीन हो गया।

कलकत्ता कारपोरेशन

स्वायत्तशासन विभाग के अन्तर्गत जो सबसे महत्वपूर्ण संस्था है—वह है कलकत्ता कारपोरेशन। यह स्वायत्तशासित संस्था है, जिसका शासनभार कलकत्ता के नागरिकों द्वारा चुने हुए सदस्यों द्वारा होता है। जब देश में स्वराज्य की मांग बढ़ने लगी, तो ब्रिटिश सरकार इन संस्थाओं में देश के नागरिकों को अधिकाधिक अधिकार देने लगी, उन्हीं में से कलकत्ता कारपोरेशन भी एक है। १९२१-२२ के पहले कारपोरेशन का मुख्य अधिकारी चेयरमैन कहलाता था और प्राय: वह अंग्रेज ही नियुक्त होता था। उसकी नियुक्ति तत्कालीन सरकार करती थी। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद जब नया शासन विधान १९२१-२२ में इस देश में लागू हुआ, जिसके अनुसार देश में द्वैध शासन चला, तब सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, जिन्होंने सरकार में मंत्री-पद स्वीकार किया था, उन्होंने कलकत्ता कारपोरेशन के लिए नया कानून बनाकर इसके समस्त अधिकार कलकत्ता के नागरिकों द्वारा चुने हुए सदस्यों को सौंप दिये थे, उसका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ। चुने हुए प्रतिनिधि ही चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त करते थे और मेयर सभापतित्व करता था। पांच अल्डरमैन भी चुने जाते थे। श्री सी० आर० दास के शरीरान्त और सुभाष बाबू के चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर से त्यागपत्र देने के बाद से कारपोरेशन सुशासन की जगह कुशासन से ग्रस्त हो गया।

१९४८ में सरकार ने कारपोरेशन को तोड़ दिया और उसे श्री एस० एन० राय, आई०सी०एस०, के हाथ में दे दिया। श्री सी०सी० विश्वास को कारपोरेशन सम्बन्धी सभी बातों की जाँच कर अपनी रिपोर्ट देने का भार दिया गया। श्री विश्वास की रिपोर्ट को ध्यान में रखकर कलकत्ता कारपोरेशन के लिए एक विल्कुल नया विधान बनाया गया, जो १९५१ में पास हो गया। उस समय मैं स्पीकर था। १९५२ में इसके अनुसार कारपोरेशन

का भी नया चुनाव हुआ और कारपोरेशन को फिर से जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में सौंप दिया गया। तथापि वे १९५१ के कानून में जो कुछ त्रुटियां रह गयी थीं, उन्हें कारपोरेशन से सलाह करके संशोधित करने का एक नया बिल १९५३ में मैंने पास करवा दिया।

१९५३ में टालीगंज म्युनिसिपैलिटी को तोड़कर उसके अधीनस्थ जो क्षेत्र थे, उसे कलकत्ता कारपोरेशन में मिला लिया गया और उसके पांच प्रतिनिधि कारपोरेशन में चुन लिये गये। इस तरह कारपोरेशन का क्षेत्रफल और भी बढ़ गया।

कारपोरेशन का शासन

कारपोरेशन के अधिकार में सारा कलकत्ता महानगर है। कारपोरेशन के अधिकार में कलकत्ते की सड़कों की मरम्मत कराना, साफाई कराना, जहाँ जरूरत है, वहाँ नयी सड़कें बनवाना, पीने का पानी और धोने का पानी समूचे शहर में पहुँचाना, रोशनी करना, कूड़ों को हटाना, मकानों को बनाने की इजाजत देना, उन पर कन्ट्रोल करना आदि है।

खेद है कि एक ओर कलकत्ता की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है, दूसरी ओर कारपोरेशन का शासन दिनानुदिन गिरता जा रहा है। शासन खराब होने पर सरकार इसे अपने हाथों में लेकर सुधारने की कोशिश करती है। निर्वाचित सदस्य हटा दिये जाते हैं और सरकारी आफिसर बैठा दिया जाता है। कुछ समय बाद फिर जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में कारपोरेशन को सौंपना पड़ता है, क्योंकि प्रजातंत्र के मूलभूत सिद्धान्त ऐसे ही हैं। परिणामतः जो कुछ सुधार सरकारी शासन में होता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जनसाधारण की सुविधाएँ गिरती जाती हैं। जब कभी कुछ आमदनी किसी भी कारण से बढ़ती है, तो साथ-साथ कर्मचारियों की मांगें भी बढ़ जाती हैं। हड़तालें कर दी जाती हैं, जिसे सरकार प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के कारण उसे बन्द नहीं कर सकती। इसके कर्मचारियों में अनुशासनहीनता बढ़ी ही है। वे न तो समय पर आते हैं और न समय पर जाते हैं। हर चीजों की उपेक्षा होती है। कारपोरेशन के कौंसिलरों के ऊपर कर्मचारियों का प्रभाव रहता है। इसके कारण जो आफिसर हैं, वे कड़ाई से कोई काम नहीं ले सकते हैं और न उनमें भी वह दक्षता एवं कर्त्तव्य-परायणता है, जिससे कि कारपोरेशन का शासन सुधर सके। कारपोरेशन के कर्मचारियों में जितनी गफलत और कर्त्तव्यहीनता प्रवेश कर गयी है, उसे दूर करना तभी संभव है, जब एक लम्बे अर्से तक इसे एक अत्यन्त सुयोग्य, अनुभवी, कर्त्तव्यपरायण शासक के अधीन रखा जाय। फिर भी एक कठिनाई है जिसका इलाज नजर नहीं आता—बात-बात में हड़ताल। प्रजातंत्र के नाम पर इसको सरकार रोकना उचित नहीं समझती और जबतक हड़ताल का अधिकार है तब तक शासन कभी कठोर हो नहीं सकता। कारपोरेशन सम्बन्धी सन् १९५१ के कानून में जब-जब कुछ सुधार की आवश्यकता हुई है, तब-तब सुधार किये गये हैं, लेकिन मर्ज ला-इलाज हो रहा है।

मेयर के चुनाव का अद्भुत दृश्य

जब मेयर का चुनाव होता था, तो कारपोरेशन की दोनों पार्टियां सभापति पद के लिए अपने-अपने नाम का प्रस्ताव करती थीं। प्रस्ताव करते ही एवं पास होने के पहले

ही दोनों प्रस्तावित सदस्य दौड़कर मेयर की कुर्सी पर बैठ जाते थे और जो आदमी पहले पहुँच जाता था, उसकी गोद में दूसरा प्रस्तावित आदमी बैठ जाता था। फिर भी एक दूसरे को हटाने की कोशिश करते थे और मेयर का चुनाव संभव नहीं होता था। इस हास्यास्पद स्थिति को मिटाने के लिए कानून में सुधार कर दिया गया कि जब मेयर का चुनाव होगा, उस सभा का सभापतित्व प्रेसिडेन्सी डिवीजन के कमिश्नर करेंगे। जब यह सुधार उपस्थित किया गया, तब विरोधी दल ने इसका भी विरोध किया और कहा कि यह सदस्यों के प्रजातांत्रिक अधिकार पर कुठाराघात किया जा रहा है। जो दृश्य कारपोरेशन में मेयर के चुनाव के समय उपस्थित होता था, उसके लिए उन्हें कोई लज्जा की अनुभूति नहीं होती थी। इस संशोधन के बाद मेयर का चुनाव प्रत्येक वर्ष विना किसी विघ्नवाधा के हो जाता है। ऐसी-ऐसी छोटी-छोटी कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यक संशोधन किये जा रहे हैं, परन्तु जब तक बुराई के मूल में कुठाराघात नहीं किया जाता—जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, तब तक कारपोरेशन का शासन कभी सुधर नहीं सकता। इस समय फिर से कारपोरेशन को सरकार ने अपने हाथ में ले रखा है।

सी० एम० पी० ओ०

कलकत्ता कारपोरेशन एवं हुगली नदी के दोनों तरफ की म्युनिसिपैलिटियों के क्षेत्रों में बहुत से ऐसे जरूरी काम जिन्हें कारपोरेशन और म्यनिसिपैलिटियाँ करने में असमर्थ हो गई थीं, उन्हें कम करने के लिए एक नई संस्था सी० एम० पी० ओ०, अन्तर्राष्ट्रीय सहायता से कई वर्षों से काम कर रही है। यद्यपि उसका काम तुलनात्मक दृष्टि से संतोषप्रद है, तथापि उसका काम जिस तेजी के साथ होना चाहिए था, वह नहीं हो रहा है। कारपो-रेशन की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए चुंगी लगाने का अधिकार भी सरकार ने लिया है और चुंगी लगाई भी जा चुकी है। परन्तु उसके कर्मचारियों में किसी प्रकार का अनुशासन न रहने के कारण उसकी आर्थिक अवस्था में सुधार हो नहीं पाता है। जब तक कि कारपोरेशन का शासन नहीं सुधरे, यह विषम समस्या सहज में दूर नहीं हो सकती।

मेरे छोटे भाई की मृत्यु

२४ अगस्त, १९५२ को मेरे छोटे भ्राता सच्चिदानन्द की आकस्मिक मृत्यु हो गई। इसके कारण मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और अब मैं भाइयों में अकेला ही रह गया हूँ।

सिटी सिविल कोर्ट की स्थापना

कलकत्ता और बम्बई में जो अदालतें हैं, वे देश के अन्य स्थानों में जो अदालतें हैं, उनसे भिन्न हैं। शुरू में जब अंग्रेजों का शासन इस देश में आरम्भ हुआ, तो उन्होंने कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में, जिस तरह विलायत में अदालतें हैं, उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर इन बड़े-बड़े नगरों में अदालतों की स्थापना की। इन तीन स्थानों को छोड़कर देश के सभी अन्य स्थानों में नये तरीके की अदालतों की स्थापना हुई। इन तीन शहरों के वाहर जो न्यायाधीश होते हैं, उनमें सबसे नीचे मुन्सिफ होते हैं, जिनके यहाँ पांच हजार रुपये तक की नालिश होती है। इसके ऊपर की नालिश सब जज की अदालत में होती है। इन सबके

ऊपर एक डिस्ट्रिक्ट जज होते हैं, जो अपीलें सुनते हैं तथा और भी कई तरह के अन्य मुकदमें सुनते हैं।

जैसा कि मैं सोलीसिटरशिप की अपनी तैयारी की चर्चा में बता चुका हूँ, कलकत्ता में छोटी अदालत होती है, जिसमें दो हजार रुपये तक के मुकदमें होते हैं। दो हजार रुपये से ऊपर के मुकदमें यहाँ हाईकोर्ट की ओरिजिनल साइड में करने पड़ते थे, और इसके दूसरे विभाग याने अपीलेट साइड में केवल अपीलें सुनी जाती हैं। ओरिजिनल साइड में मुकदमें दाखिल करने के लिए सोलीसिटर, जिसे एटर्नी भी कहते हैं, की आवश्यकता होती है। लेकिन जिरह या वहस करने का अधिकार केवल इंगलैण्ड से वैरिस्टरी पास व्यक्तियों का ही था। भारत में पास किये हुए वकील हाईकोर्ट की ओरिजिनल साइड में कोई काम नहीं कर सकते थे। काफी समय से यह आन्दोलन चल रहा था कि यहाँ के पास किये हुए वकीलों को यह अधिकार क्यों नहीं दिया जाता। अब उनको यह अधिकार प्राप्त हो गया है। साथ ही सोलीसिटरी सीखने का समय घटा कर साढ़े तीन वर्ष कर दिया गया है और इस घटी अवधि में परीक्षाओं की संख्या दो से बढ़ा कर तीन कर दी गई है, लेकिन वे पहले जितनी कठिन नहीं रही हैं। अब इस बात का भी कुछ समय से आन्दोलन चल रहा है कि वकील ही सब काम क्यों न करें, सोलीसिटरों की क्या आवश्यकता है?

यह प्रश्न उठा कि हाईकोर्ट में मुकदमें बहुत बाकी हो गये हैं, अतएव सिटी सिविल कोर्ट कायम किया जाये, जिसमें कुछ अधिक रुपयों के मुकदमें सुने जा सकें। इससे जो यहाँ के पासशुदा वकील हैं, उनको भी काम मिल जाएगा और हाईकोर्ट की ओरिजिनल साइड की प्रतिष्ठा भी बनी रहेगी। इस दृष्टि से बम्बई में कुछ वर्षों पहले सिटी सिविल कोर्ट की स्थापना हो चुकी थी—कलकत्ता में अबतक नहीं हुई थी। सरकार ने तय किया कि इस सिटी सिविल कोर्ट में व्यापारिक मुकदमें पाँच हजार रुपये और अन्य मुकदमें दस हजार रुपये तक की राशि के दाखिल हो सकेंगे, और उनके फैसले पर अपील हाईकोर्ट के अपीलेट साइड में होगी। ५ मई, १९५३ को सिटी सिविल कोर्ट बिल विधान सभा से स्वीकृत हो गया। यद्यपि यह बिल मेरे जिम्मे नहीं था, विधि मंत्री श्री एस० के० बसु के जिम्मे था, तथापि मैंने एसेम्बली में इसके पास करने के समय बहुत भाग लिया था। सोलीसिटर होने के नाते मुझे इस प्रश्न का यथेष्ट ज्ञान था, इसलिए मुझे एसेम्बली में इसके संबंध में बहुत अधिक भाग लेना पड़ा। इस बिल के पास हो जाने पर इन अदालतों की स्थापना करने के लिए नया भवन बनवाना पड़ा और दो वर्ष में जब यह भवन तैयार हो गया, तो ये अदालतें प्रारम्भ कर दी गयीं। अब तो सिटी सिविल कोर्ट में पचास हजार रुपये तक के मामले दायर हो सकते हैं।

जमींदारी उन्मूलन

जमींदारी उन्मूलन करने की प्रतिज्ञा कांग्रेस ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले से ही कर रखी थी। जमींदारी उन्मूलन बिल भी इसी वर्ष विधान सभा में पेश किया गया और स्वीकृत हुआ।

कुम्भ स्नान

फरवरी १९५४ में कुम्भ स्नान करने के लिए मैं सपरिवार प्रयाग गया। हमलोगों

के ठहरने के लिए उत्तम प्रबन्ध किया गया था और कोई असुविधा नहीं हुई। उत्तर प्रदेश के मंत्री श्री मोहनलाल गौतम इस मेला के इन्चार्ज थे। इस मेला में इतनी भीड़ हुई कि वहाँ की व्यवस्था सम्हल नहीं सकी और मेला में भगदड़ मचने के कारण सैकड़ों आदमी मर गये। ऐसी दुर्घटना पहले कभी नहीं हुई थी। इस दुर्घटना ने इस अवसर पर इतना शोक पैदा कर दिया कि सारी यात्रा का आनन्द जाता रहा। स्नान करने के बाद हमलोग काशी होकर कलकत्ता वापस आ गये।

कल्याणी में कांग्रेस का अधिवेशन

इस साल १९५४ में कांग्रेस का अधिवेशन कल्याणी में हुआ।

म्युनिसिपल बिल

३० मार्च, १९५४ को विधान सभा में मैंने बंगाल म्युनिसिपल एमेण्डमेण्ट बिल पेश किया। कलकत्ता को छोड़कर पश्चिम बंगाल की समस्त म्युनिसिपैलिटियाँ इस क़ानून के अनुसार संचालित होती हैं। इन कानून में भी संशोधनों की आवश्यकता थी। उन संशोधनों को करने के लिए यह बिल एसेम्बली में उपस्थित किया गया। बंगाल की म्युनिसिपैलिटियों की हालत भी वैसी ही खराबथी, जैसी कि कलकत्ता कारपोरेशन की और उनकी खराबियों के भी वैसे ही कारण थे। इनकी आय कम होती थी, क्योंकि प्रधान स्रोत मकानों पर टैक्स लगाना था और यह टैक्स बहुत कम लगाया जाता था। उसे वसूल करने में भी काफ़ी ढिलाई रहती थी। लोगों द्वारा चुने जानेवाले सदस्य किसी प्रकार का अप्रिय काम नहीं करना चाहते थे।

अन्य संशोधनों के अतिरिक्त मैंने इसमें दो प्रमुख संशोधन पेश किए थे–(१) मुनासिब समझे तो म्युनिसिपैल्टी के लिए एक सरकारी आफिसर नियुक्त कर दे, जिसे टैक्स वसूल करने का अधिकार रहे। और (२) टैक्स निश्चित करने का अधिकार भी सरकार द्वारा नियुक्त आफिसर को ही दिया जाये। म्युनिसिपैलिटी वाले सदस्य और कर्मचारी यह नहीं चाहते थे, इसलिए उनके विरोध के कारण इस बिल को स्वीकार करने में विलम्ब हुआ। अन्त में यह बिल स्वीकृत हो गया।

हबड़ा म्युनिसिपैलिटी

कलकत्ता कारपोरेशन के बाद हवड़ा म्युनिसिपैलिटी पश्चिम बंगाल में सबसे बड़ी म्युनिसिपैलिटी है। परन्तु इसका प्रबन्ध बहुत ही खराब था और लाखों रुपये टैक्स के लोगों में बाकी थे। म्युनिसिपैलिटी की दशा दिनानुदिन खराब होती जा रही थी। चूंकि यह तय कर लिया था कि जिस म्युनिसिपैलिटी की दशा बहुत खराब हो, उसे विघटित कर उस पर सरकारी आफिसर बैठा दिया जाय, हवड़ा म्युनिसिपैलिटी के बारे में शासक के रूप में श्री आर० एस० त्रिवेदी, आई० सी० एस० को नियुक्त किया गया। ये बहुत कड़े और योग्य शासक थे। थोड़े ही दिनों में इन्होंने काफी रुपये वसूल किये और इस म्युनिसिपैलिटी के शासन को सुधारा। कुछ दिनों के बाद सरकार ने इनका तबादला दूसरी जगह कर दिया और चालू किया कार्य अधूरा ही रह गया। मुझसे इस संबंध में कुछ भी बातें नहीं की गयीं। मैंने विधान बाबू से यह शिकायत की कि चीफ सेक्रेटरी को हमसे सलाह करके उन्हें वहाँ से हटाना चाहिए था। ऐसा न करके बड़ा गलत काम किया गया है। अंग्रेजों

के जमाने में एक आफिसर को तीन साल तक नहीं बदलते थे, लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के वाद यह नियम नहीं रहा और आफिसरों का बहुत शीघ्र तबादला होता रहता है, जिसके कारण शासन में बड़ी कमजोरी आ जाती है।

विधान बाबू इससे सहमत हुए और चीफ सेक्रेटरी ने हमारे पास आकर खेद प्रकट किया और क्षमा माँगी। त्रिवेदी महोदय भी इस तवादले से खुश नहीं थे। थोड़े ही दिनों के वाद उन्होंने आत्महत्या कर ली। क्या कारण था यह तो नहीं मालूम, परन्तु एक बहुत अच्छा आफिसर बंगाल सरकार ने खो दिया। इसी प्रकार कुछ अन्य म्युनिसिपैलिटियों को भी, जिनकी हालत विशेष खराव हो गई थी, समय-समय पर विघटित कर सरकार को उनका शासनभार लेना पड़ा था।

जिलाधीशों का सम्मेलन

दिनांक १३-५-५४ को मैंने बंगाल के जिलाधीशों की एक सभा बुलाई और उनसे अनुरोध किया कि वे इन नगरपालिकाओं का समय-समय पर निरीक्षण किया करें, इससे इनमें सुधार होगा। पहले ये लोग निरीक्षण किया करते थे, लेकिन स्वतंत्रता के बाद यह प्रथा प्रायः वन्द हो गयी थी। प्रत्येक म्युनिसिपैल्टी का हिसाब जांच किया जाता था और उसकी रिपोर्ट सरकार को भेजी जाती थी। ये रिपोर्टें फाइल कर दी जाती थीं। न तो कोई उसे पढ़ता था और न उसमें बताई हुई त्रुटियों की ओर ध्यान ही देते थे। मैंने अपने दफ्तर को यह आदेश दिया कि आडिट रिपोर्ट का अध्ययन किया जाये और उसमें बताई हुई त्रुटियों को दूर करने के लिए कार्यवाही की जाये।

शिमला में सम्मेलन

जून १९५४ में शिमला में स्वायत्तशासन विभाग के मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में मैं भी शामिल हुआ। इसके पहले मुझे शिमला जाने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ था। वहाँ जाकर मैं पंजाब के राज्यपाल श्री सी० पी० एन० सिंह का मेहमान होकर गवर्नमेण्ट हाउस में रहा। श्री सिंह से हमारी बहुत पहले की मित्रता चली आ रही थी और वे भी मुजफ्फरपुर के ही रहनेवाले थे। उनके विशेष आग्रह पर मैंने राजभवन में ठहरना स्वीकार कर लिया। केन्द्रीय सरकार इन स्वायत्तशासन संस्थाओं को जितनी मदद देनी चाहिए, उतनी नहीं देती थी, इसलिए मैंने केन्द्रीय सरकार की तीव्र समालोचना की, जो केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों और आफिसरों को अच्छी नहीं लगी, परन्तु अन्य प्रदेशों के मंत्रियों ने इसे पसन्द किया था। उसी समय वहाँ मकानों के मंत्रियों की कांफ्रेन्स भी हुई और उसमें भी मैं शामिल हुआ, यद्यपि हमारे आवास मंत्री भी उसमें शामिल थे। बस्तियों की समस्या पर इन दोनों कांफ्रेन्सों में विचार हुआ। मेरा सुझाव यह था कि जब तक केन्द्रीय सरकार इन बस्तियों के उन्मूलन में और नये मकानों के निर्माण में आधे रुपये सहायता स्वरूप न दे, तव तक इन बस्तियों में कुछ भी काम करना संभव नहीं है। केन्द्रिय मंत्री जो वहाँ उपस्थित थे, उनका कहना था कि केन्द्रीय सरकार सारे रुपये कर्ज के रूप में प्रादेशिक सरकारों को दे। सम्मेलन में जो सुझाव दिया गया था, उसी के पक्ष में पंजाब के राज्यपाल महोदय का भी मत था। जब इस संबंध में मेरी

बातें हुईं तो उन्होंने सलाह दी कि मैं पं० जवाहरलाल नेहरू से इस विषय में बातें करूँ, तो सफलता प्राप्त हो सकती है। अतएव जब मैं दिल्ली वापस आया तो पंडितजी से मिला और उन्हें सारी बातों से अवगत कराया। लगभग ४५ मिनट बातें हुईं। बहुत-सी बातों का उन्होंने इस संबंध में जिक्र किया, परन्तु मैंने उनकी बातों का समुचित और संतोषजनक उत्तर दिया। अन्त में वे मान गये कि आधे रुपये सहायता स्वरूप केन्द्रीय सरकार देगी। उन्होंने मुझसे इस संबंध के सारे कागज़ात श्री गुलजारीलाल नन्दा को देने के लिए कहा और यह भी कहा कि उनसे कह देना कि वे इस संबंध में मुझसे बातें करें। मैंने ऐसा ही किया। थोड़े दिनों के बाद केन्द्रीय सरकार का फैसला प्रान्तीय सरकारों को भेज दिया गया, जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार ने आधा रुपया सहायता स्वरूप देना स्वीकार कर लिया।

जब मैं शिमला में था तो एक दिन राजभवन से कांफ्रेन्स में जाने के लिए हमें राज्यपाल महोदय का रिक्सा मिला। इस रिक्सा को चार वर्दीदार आदमी खींचते थे। मैं उस पर बैठ गया, परन्तु मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मुझे शर्म मालूम हुई कि गांधी टोपी पहन कर इस तरह रिक्सा के ऊपर बैठकर जाया जाये। मैंने अपनी टोपी पाकेट में रख ली और फिर रिक्सा पर बैठ गया। पहाड़ों पर रिक्सा की चढ़ाई बुरी नहीं मानी जाती। सभी चढ़ते हैं, परन्तु फिर भी मुझे ऐसा करना अच्छा नहीं लग रहा था।

शिमला से कुछ मील दूर राजभवन का एक बगीचा है। उसमें ठहरने के लिए एक गेस्ट-हाउस भी है। यह बगीचा बहुत सुन्दर है। एक दिन मैं उसे देखने के लिए गया। वहाँ चैरी के फल बहुत बड़े-बड़े और स्वादिष्ट मिले। ऐसे फल मैंने और कहीं नहीं देखे थे। सुनने में आया कि पं० जवाहरलाल नेहरू इस बगीचे के गेस्ट-हाउस में आकर एक-दो दिन ठहरते थे। जब दूसरी बार स्वायत्तशासन मंत्रियों की बैठक १९५५ में फिर हुई, तो मैं उसमें भी शामिल हुआ था। ३ नवम्बर, १९५५ को स्वायत्तश शासन विभाग की कार्यकारिणी के सदस्यों का अधिवेशन दिल्ली में हुआ, तो मैं उसमें भी उपस्थित था।

चन्दननगर में कारपोरेशन की स्थापना

चन्दननगर में कारपोरेशन की स्थापना हुई। उसका बिल जनवरी में एसेम्बली में गृहीत हुआ। तदनुसार वहाँ कारपोरेशन की स्थापना की गयी।

कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट संशोधक कानून एसेम्बली में पेश किया गया। इसमें एक धारा थी, जिसमें ट्रस्ट को अधिकार दिया गया था कि वह बस्तियों का सुधार करे और उन्हें तोड़कर पक्के मकान बनवा सके। उसे लेकर बस्ती वगैरह में खलबली मची और विपक्षी दल, जिनके वे प्रधान सहायक हैं, ने विरोध का रूप धारण किया। जुलूस इत्यादि निकाले गये। कांग्रेस पार्टी के भी कुछ सदस्य इस आन्दोलन को देखकर घबड़ाये और जब इसके लिए पार्टी की मीटिंग हुई तो सदस्यों में उत्तेजना थी। यह समझा जाता था कि इसका असर बस्ती वालों पर बुरा पड़ेगा और अगले चुनाव में कांग्रेस को बाधा पड़ेगी। हमारी समझ में इसमें ऐसी कोई बात नहीं थी, तथापि पार्टी की मीटिंग में यह तय हुआ कि बस्ती को तोड़ा जाएगा तो उसमें बसने वालों को वहाँ से एक मील के अन्दर में रहने के लिए स्थान दिया जाएगा। एक मील की लिमिट अव्यावहारिक थी, किन्तु पार्टी के सदस्यों

का रुख देखकर इसे स्वीकार करना पड़ा। यह बिल एसेम्बली में पेश हुआ तथा विरोधी दल ने उसका तीव्र विरोध किया।

३० मार्च, १९५५ को बंगाल म्युनिसिपल बिल पास हो गया।

कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट संशोधन कानून

यद्यपि कलकत्ता दो-ढाई सौ वर्षों के अन्दर ही बसा है, तथापि इसमें जो मकान बने, गलियां और सड़कें बनीं, वे किसी प्लान के हिसाब से नहीं बने। पटना, काशी इत्यादि पुराने शहरों की तरह यहाँ की सड़कें भी चौड़ी नहीं हैं—विशेष कर उत्तर कलकत्ता और मध्य कलकत्ता की सड़कें। १९११ में कलकत्ता के सुधार के लिए कानून बना, जिसके अनुसार कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट की स्थापना हुई। उसने कलकत्ता शहर में बहुत कुछ सुधार किया, परन्तु बड़ावाजार एवं उत्तर कलकत्ता में जितना होना चाहिए था, उतना नहीं हो सका था। और अव तो जमीन के दाम भी इतने बढ़ गये हैं कि यह करना असंभव है। इस कानून में बहुत दिनों से संशोधन नहीं हुए थे। ट्रस्ट के चेयरमैन एक बड़े योग्य आफिसर श्री एस० के० गुप्ता, आई० सी० एस० थे। मेरी उनसे बातें हुईं तो उन्होंने संशोधन की आवश्यकता बताई। तदनुसार एक बिल संशोधन के लिए तैयार हुआ और उस बिल को १९५५ में विधान सभा में प्रस्तुत करके पास कराया गया।

ऐसे तो इस कानून में अनेक परिवर्तन किये गये, परन्तु मुख्य परिवर्त्तन यह था कि ट्रस्ट रहने के लिए मकान बनवा सकता है और बस्तियों के सुधार का काम भी अपने हाथों में ले सकता है। जो जमीन या मकान ट्रस्ट सड़कों को चौड़ी करने के लिए लेता था, उसे उसकी कीमत उसे बाजार दर से अतिरिक्त १५ रुपये सैकड़ा अधिक देनी पड़ती थी। यह समझा गया कि जमीन की कीमत इतनी बढ़ गयी है कि बढ़ी हुई कीमत ही यथेष्ट होगी। क्योंकि खर्च को कम किये विना कलकत्ता में आवश्यक सुधार होना संभव नहीं है। इसलिए इस बिल में यह धारा दी गयी कि १५ प्रतिशत नहीं दिया जाएगा। जब यह बिल एसेम्बली में पेश किया गया तब बस्ती वालों ने इसका विरोध किया और विरोधी पक्ष ने उनका समर्थन किया, क्योंकि लिरोधी पक्ष को बस्ती वालों से काफी वोट मिलते थे। विरोधी पक्ष एक ओर जमींदारी के मुआवजे को कम-से-कम देने के लिए कहा करते थे और यहाँ बस्ती वालों को १५ प्रतिशत न देने के लिए बिल का विरोध कर रहा था। इन बस्तियों में लोग कुछ जमीन लीज पर ले लेते हैं। एक-आध कमरे में स्वयं रहते हैं और कुछ कमरे भाड़े पर लगा देते हैं और उससे वे काफी आमदनी कर लेते हैं। पाखाना, पानी वगैरह की सुविधा बहुत कम रहती है। अन्तिम दिन कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों ने यहाँ तक कहना आरम्भ किया कि इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट से कोई लाभ नहीं है। इसके चलते मध्यम दर्जे के परिवार उखड़ जाते हैं और उसकी जगह बड़े-बड़े मकान बन जाते हैं, जिसमें वे रह नहीं सकते। इसी तरह विवेकानन्द रोड, चित्तरंजन एवेन्यू वगैरह राजस्थान बन गया है।

जब मैं उनका उत्तर देने के लिए खड़ा हुआ तो कम्युनिस्ट पार्टी के एक सदस्य ने कहा

कि मैं बंगला में भाषण दूँ। उसका आशय यही था कि मैं राजस्थानी हूँ और बंगला में भाषण नहीं दे सकता। लोगों से मैं बंगला में भी बातचीत करता था, एसेम्बली में बंगला में प्रश्नों का उत्तर भी दे देता था, लेकिन लम्बी वक्तृता नहीं दिया करता था। परन्तु इस अवसर पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि विरोधी सदस्यों की चुनौती स्वीकार करनी ही उचित होगी। मैंने बंगला में ही बोलना आरम्भ किया। यद्यपि आरम्भ में बड़ी हिचक मालूम हुई, परन्तु भाषण आरम्भ करने के बाद हिचक जाती रही। लगभग ४५ मिनट मैंने बंगला में ही भाषण दिया और जो कुछ मुझे उनके प्रश्नों के जवाब में कहना था, वह मैंने कह दिया। संयोगवश वह भाषण बड़ा रोचक और हृदयाकर्षक बन गया। जितने एसेम्बली के सदस्य इधर-उधर थे, वे सभी एसेम्बली के हाल में पहुँच गये, क्योंकि मेरा बंगला में भाषण करना उन्हें एक नयी बात मालूम हुई। मेरे भाषण का सारांश यही था कि यदि ट्रस्ट के कारण विवेकानन्द रोड, चित्तरंजन एवेन्यू वास्तव में राजस्थान बन गये हैं तो इसकी जिम्मेवारी मेरी नहीं है। मेरे पहले १९११ से जो मंत्री रहे हैं, वे राजस्थानी नहीं थे और इस प्रकार का जिक्र करना विरोधी दल को उचित नहीं है। ऐसी ओछी बात से वे इस प्रदेश की गद्दी पर बैठना चाहें तो नहीं बैठ सकते। मेरे पीछे जो ६ फीट लम्बा बाघ जैसे चेहरे वाला बूढ़ा विधान बाबू जबतक बैठा है, तबतक वे इस गद्दी पर नहीं आ सकते और राजस्थान की चिल्लाहट से वे उन्हें इस गद्दी से हटा भी नहीं सकते। आश्चर्य की बात है कि जो कम्युनिस्ट पार्टी जमींदारी मुआवजे को कम-से-कम देना चाहती है, वह इन बस्ती वालों को बाजार दर से अधिक १५ प्रतिशत जो दिया जाता है, उसका भी समर्थन कर रही है, क्योंकि उनके वोटों की उन्हें दरकार है। उनका सिद्धान्त कहाँ गया? जो मकानात ट्रस्ट ने बंगालियों से लिये होंगे, उसका मुआवजा पूरा-पूरा दे दिया गया है और उन्होंने भी उन रुपयों से दक्षिण में और खासकर लेक एरिया में बहुत सस्ते में बहुत जमीन ली है, जिनका दाम अब बढ़कर बहुत अधिक हो गया है। अतएव वे भी कोई घाटे में नहीं हैं। ट्रस्ट उसी को जमीन बेचती है, जो सबसे अधिक दाम दे। ऐसा किये बिना ट्रस्ट का काम चल नहीं सकता। खरीदने वाले कौन व्यक्ति हैं, इससे उसे कोई मतलब नहीं। जब मैंने अपने भाषण को शेष किया तो हमारी पार्टी वालों ने तो मुझे काफी बधाइयां दी हीं, कम्युनिस्ट पार्टी वालों ने भी यही कहा कि मैंने उनकी दलीलों को हंसी-हंसी में उड़ा दिया। वे भी उस भाषण से प्रसन्न हुए और उन्होंने मजाक में कहा कि मैं अब बंगाली हो गया हूँ।

ढाकुरिया लेक का नाम रवीन्द्र सरोवर रखने और वहाँ पर एक स्टैडियम बनाने का प्रस्ताव किया गया, जो मैंने स्वीकार कर लिया और ट्रस्ट के चेयरमैन को उत्साहित किया कि वे इस कार्य को शीघ्र सम्पन्न कर दें।

अंततोगत्वा इम्प्रूवमेन्ट संशोधन बिल पास हो गया।

हवड़ा इम्प्रूवमेण्ट बिल

२४ मार्च, १९५६ को हवड़ा के सुधार के लिए हवड़ा इम्प्रूवमेण्ट एक्ट पास करवाया गया, जिसके अनुसार हवड़ा इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट की स्थापना हुई। हवड़ा शहर अभी बहुत गन्दा है और बहुत सुधार की उसमें आवश्यकता है।

पंचायत बिल

समस्त प्रदेश में पंचायतों की स्थापना के लिए पंचायत बिल बनाकर एसेम्बली से स्वीकृत कराकर कानून बनाया गया। विरोधी दल नहीं चाहता था कि १९५७ के चुनाव के पहले यह बिल पास हो और इसने अडंगा-नीति का अवलम्बन किया, जिसके कारण इसे पास कराने में बहुत दिन लग गये। मैंने भी यह निश्चय कर लिया था कि जब तक यह बिल पास न हो तबतक एसेम्बली को चलाया जाएगा—चाहे कितना ही समय क्यों न लगे। विधान बाबू की सम्मति इसके प्रतिकूल थी। परन्तु मेरे समझाने से वे इस बात के लिए सहमत हो गये कि बिल पास करने के बाद ही एसेम्बली को स्थगित किया जाये। इस विषय में दृढ़ता से काम लिया गया।

बंगाल-बिहार के एकीकरण का प्रस्ताव

दिनांक २३-१-५६ को बिहार के मुख्य मंत्री श्रीकृष्ण सिन्हा और पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री डा० विधानचन्द्र राय ने प० बंगाल और बिहार को मिलाकर एक प्रान्त बना देने का प्रस्ताव किया। यह प्रस्ताव मुझे बड़ा अटपटा-सा लगा और मुझे ऐसी आशा कभी नहीं हुई कि यह संभव होगा।

मुझसे जब विधान बाबू ने इसकी चर्चा की तो हंसी में उन्होंने कहा कि अब मुजफ्फरपुर की लीची बंगाल में आ जाएगी। मैंने कहा कि जब मैं जन्मा था, तो मुजफ्फरपुर बंगाल में ही था और अब जब मरूँगा तो बंगाल में ही रहूँगा। हमारे लिए तो कोई नयी बात नहीं है। संदेह यही है कि क्या यह संभव है!

प० बंगाल में इसका विरोध होने लगा और अन्त में इसे छोड़ देना पड़ा। इसी समय श्री ए० के० सेन पार्लियामेण्ट के लिए एक उपचुनाव में खड़े हुए और यही प्रश्न प्रमुख होकर सामने आ गया। जब श्री ए० के० सेन इस चुनाव में हार गये, तब विधान बाबू ने यह घोषणा की कि प० बंगाल इसे स्वीकार नहीं करता है। अतएव इस विचार को त्याग देना ही उचित है।

स्पीकर की अवमानना

दिनांक २५-२-५६ को श्री हरिपदो चटर्जी, जो विधान - सभा के एक सदस्य थे, उत्तेजित होकर स्पीकर के पास आये और उन्हें अपने आसन से नीचे उतर आने को कहा। यह देखकर मुझे बड़ा दुख हुआ कि स्पीकर का सम्मान रखना भी सदस्य भूल गये। जो सिद्धान्त मैं स्थापित करना चाहता था, यदि वह स्थापित हो गया होता तो संभवतः ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती। अब तो विधान-सभा के सदस्य जैसे मिनिस्टरों के साथ बर्ताव करते हैं, वैसे ही स्पीकर के साथ करने में भी किसी प्रकार की हिचकिचाहट अनुभव नहीं करते। यह समूची विधान-सभा का अपमान करना होता है और ऐसे बर्ताव के लिए सजा भी दी जा सकती है। परन्तु ऐसी घटना को भी एक सामान्य बात समझी जाने लगी है। यही कारण है कि विधान-सभाओं में अनुचित-से-अनुचित काम करने में भी सदस्यों को किसी प्रकार के भय का बोध नहीं होता।

भाड़ा संशोधन बिल

दिनांक ३-३-५६ को भाड़ा संशोधन बिल विधान सभा से स्वीकृत हुआ। यद्यपि यह बिल मेरे अधीन में नहीं था, तथापि मंत्रिमण्डल में जब इस पर विचार हो रहा था, उस समय मैंने इसमें काफी दिलचस्पी ली थी। मैं चाहता था कि यह बिल ठीक से बनाया जाये, जिसमें भाड़ेतियों को उचित सुविधा प्राप्त हो और मालिक-मकानों के प्रति भी अन्याय न हो। अतएव एसेम्बली में भी मैंने इसमें काफी दिलचस्पी रखी थी। यह बिल अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

पंडित नेहरू चीन से वापस

२ नवम्बर, १९५४को पं० जवाहरलाल नेहरू चीन यात्रा से वापस लौटे और कलकत्ता के मैदान में एक विशाल सभा हुई, जिसमें लगभग १०,००.०० (दस) लाख आदमी इकट्ठे थे। इतनी बड़ी जनसभा इससे पहले भारतवर्ष में पहले कभी हुई हो, ऐसा कहीं से ज्ञात नहीं होता। यह जनता का एक अभूतपूर्व समावेश था। इसीमें पण्डितजीने घोषणा की थी कि भारतवर्ष का लक्ष्य प्रजातांत्रिक समाजवादी समाज का गठन करना है।

मार्शल टीटो का भारत-भ्रमण

दिसम्बर १९५४ में यूगोस्लोवाकिया के प्रेसिडेण्ट मार्शल टीटो भारत आये। हम-लोगों ने स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया। उनका व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावो-त्पादक था। भारतवर्ष की भाँति ये भी किसी गुट में शामिल नहीं थे। इसी समय बाण्डुंग में उन राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ, जो किसी गुट में शामिल नहीं थे। उसमें नेहरूजी ने बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया और निर्दलीय राष्ट्रों का एक समुदाय बन गया।

जनरल नासिर

२७-४-५५ को पं० जवाहरलाल नेहरू जनरल नासिर के साथ कलकत्ता आये। हवाई अड्डे पर मंत्रिमण्डल के सदस्यों ने उनका स्वागत किया। उनका व्यक्तित्व भी प्रभावशाली था।

ख्रु श्चेव एवं बुल्गानिन का भारत-आगमन

रूस के प्रधान मंत्री बुल्गानिन और वहाँ की कम्यूनिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी ख्रु श्चेव का भारत में ता० २९-११-५५ को आगमन हुआ। जब वे कलकत्ता आये, हमलोग समस्त मंत्रिमंडल के सदस्य दमदम हवाई अड्डे पर उनके स्वागत में पहुँचे। अपार जनसमूह दमदम से ही आरम्भ हो गया था और राजभवन तक बना रहा। बुल्गानिन से अधिक ख्रू श्चेव की ओर लोगों का ध्यान था। ये काफ़ी मोटे व्यक्ति थे। इनकी आँखें भी बहुत बड़ी-बड़ी थीं। चूंकि मंत्रियों में गांधी टोपी पहनने वालों में केवल मैं था, इसलिए जब मुझसे हाथ मिलाने आये तो बड़े गौर से मेरी टोपी को देखते रहे। उनकी तोंद भी बहुत बड़ी थी, उसे देखकर मुझे थोड़ा कुतूहल भी हुआ। अपने पास ही खड़े हुए एक पश्चिमी देश के राजदूत से मैंने कहा कि ये तो कम्युनिष्ट सरीखे नहीं मालूम होते हैं। ये तो हमारे यहाँ के बड़े सेठ दिखाई देते हैं। यह सुनकर वह हंस पड़ा। जुलूस जब

चित्तरंजन एवेन्यू में पहुँचा तो उन लोगों की गाड़ी भीड़ की काफी बड़ी गहराई के कारण आगे बढ़ नहीं सकी। सारी भीड़ उनकी गाड़ी के ऊपर टूट पड़ी। उन्होंने अपने देश में इस तरह जनता को नज़दीक आते नहीं देखा था। अतएव वे कुछ घवड़ा उठे। अन्त में उन्हें पुलिस ने अपनी वान में बैठाकर राजभवन पहुँचाया। शाम को मैदान में जो जनसभा हुई, वहाँ जनता की इतनी भीड़ हुई जितनी इसके पहले कभी नहीं देखी गयी थी। उन लोगों के सम्मान में कई आयोजन—भोज हुए, जिसमें मैं भी शामिल हुआ। विधान वावू तो प्रायः उनके साथ ही रहते थे। भारत में उनलोगों का जैसा अपूर्व स्वागत हुआ, उसकी कोई कल्पना उनलोगों ने भी नहीं की थी। विधान वावू कहते थे कि ख्रूश्चेव ने उनसे पूछा कि वे ईश्वर में विश्वास करते हैं या नहीं। विधान वावू ने हाँ में उसका उत्तर दिया तो वे बोले कि हमलोग तो विश्वास नहीं करते, आप क्यों करते हैं विधान वावू ने उत्तर दिया कि मानसिक शान्ति के लिए। उस समय के कुछ पहले से भारत के साथ रूस का संवंध अच्छा बना हुआ है और वैसा ही दृढ़ भी है।

मारवाड़ी सम्मेलन

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना के पहले से ही मैं इसके सभी कार्यों में पूरी दिलचस्पी लेता था और अपने दैनिक जीवन का कुछ समय इसके संचालन में देता था। विभिन्न प्रान्तों में इसकी शाखाएँ थीं। समय-समय पर इसने समाज के लिये अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये थे, जिनका सुफल समय पाकर समाज को मिला।

३१ दिसम्वर, १९५३ को इसका सप्तम् अधिवेशन कलकत्ता में सम्पन्न हुआ। इसके सभापति सेठ गोविन्ददासजी हुए। इसमें मुझे बहुत व्यस्त रहना पड़ा, लेकिन सम्मेलन अच्छी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

जनवरी १९५५ में मैंने असम का दौरा किया और असम प्रान्तीय मारवाड़ी सम्मेलन के अधिवेशन में शामिल हुआ।

अप्रैल १९५५ को कूचविहार, अलीपुरद्वार में मारवाड़ी समाज के विरुद्ध दंगा शुरू हुआ, जिसमें समाज के वहुत से मकान लूटे और जलाये गये। इससे वहाँ वड़ा आतंक फैल गया था। मैं वहाँ पर गया और जो उचित कार्यवाही थी, उसे किया। मारवाड़ी समाज की मांग थी कि सशस्त्र पुलिस वहाँ तीन महीने और रहनी चाहिए। विधान वावू से वातें करके मैंने इसकी व्यवस्था करवा दी।

ता० ६-९-५५ को झरिया में मारवाड़ी समाज के विरुद्ध दंगा हुआ। उसके लिए समुचित कदम उठाये गये।

प० बंग प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन

दिनांक ४-१-५६ को आसनसोल में डा० बनारसीप्रसाद केड़िया के सभापतित्व में एक सम्मेलन हुआ, जो बड़ी शान के साथ सम्पन्न हुआ। महिला सम्मेलन में इतनी उपस्थिति थी, जितनी कि इसके पहले कभी नहीं हुई थी। पश्चिम बंगीय मारवाड़ी सम्मेलन शिक्षाकोष की स्थापना भी इस अधिवेशन में हुई।

मैं कह देना चाहूँगा कि इस समय श्री नन्दकिशोर जालान सम्मेलन के प्रधान मंत्री थे।

उन्होंने अपने परिश्रम और सूझ-बूझ से इसके विस्तार व कार्य को काफी सुचारु रूप से संभाला।

एक दुखद घटना

२४-९-५४ को श्री केशरदेव जालान की अकस्मात् मृत्यु हो गयी। उनकी उम्र अधिक नहीं थी, परन्तु अपनी प्रतिभा, योग्यता और सुन्दर व्यक्तित्व से उन्होंने बहुत अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया था। हमारे साथ तो उनका बहुत बड़ा स्नेह था। उनके मरने से हमें बड़ा हार्दिक दुःख हुआ और समाज ने भी एक होनहार युवक को खो दिया। वे असाधारण परिश्रम करते थे। रक्तचाप रहते हुए भी, ऐसा करते थे। हमने उन्हें कई बार कहा कि वे शक्ति के बाहर श्रम न करें, परन्तु काम का इतना बोझ अपने सिर पर उन्होंने ले रखा था कि एक क्षण की फ़ुर्सत उन्हें नहीं मिलती थी।

कुरुक्षेत्र

३० जून, १९५४ को मैं कुरुक्षेत्र गया था। मैंने महाभारत की भूमि का दर्शन किया और उसी दिन वापस दिल्ली आ गया था।

गोरक्षा-आन्दोलन

सितम्बर १९५४ में गोरक्षा के संबंध में एक आन्दोलन शुरू हुआ और एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला गया, जिसका नेतृत्व श्री सोहनलालजी दूगड़ ने किया। सरकार ने सब नेताओं को पकड़ कर जेल में डाल दिया। उसके बाद स्त्रियों का एक बहुत बड़ा जुलूस बड़ाबाजार से निकला। स्त्रियों का इतना बड़ा जुलूस पहले कभी देखने को नहीं मिला था। यह एक उल्लेखनीय घटना थी। इसके बाद मैंने प्रयत्न किया कि विधान बाबू और आन्दोलनकारियों में कुछ समझौता हो जाय, लेकिन समझौता नहीं हो सका।

स्वायत्तशासन कांफ्रेन्स व ऊटी

सितम्बर १९५६ में स्वायत्तशासन की एक और कांफ्रेन्स ऊटी में हुई। इसमें मैं सम्मिलित हुआ और प्रमुख भाग लिया। वहाँ कांफ्रेन्स के बाद कुछ दिन ठहर गया। एक अच्छा बंगला मिल गया था। हमारी पत्नी भी साथ में थी और हमारा पौत्र विमल भी आ गया था। ऊटी अच्छी जगह थी। वहाँ के दर्शनीय स्थानों को देखा। वहाँ से मैसूर जाने के रास्ते में ऊटी से लगभग ४० मील दूर जंगल में गया, जो सुरक्षित है। प्रातःकाल हाथी पर चढ़कर जंगल में कुछ दूर तक गया, परन्तु किसी पशु के दर्शन नहीं हुए, अतएव निराशा ही रही। इन जंगलों में व्याघ्र आदि पशु कभी-कभी मिल जाते हैं। इसी आशा में लोग यहाँ आते हैं, परन्तु जब नहीं मिलते, तो निराश होते हैं। यहाँ पर ठहरने के लिए सरकारी बंगला बना हुआ है, जो आरामदायक है। दूसरे दिन ऊटी वापस आ गया।

दक्षिण भ्रमण

ऊटी से कोचीन की राजधानी अरणाकुलम् गया। यह स्थान हमें बहुत दर्शनीय लगा। समुद्र का पानी इस तरह प्रधान समुद्र से निकल कर बह गया है, कि एक टापू

बीच में बन गया है। जहाँ हम लोग ठहरे थे, वह सरकारी गेस्ट-हाउस था और उसका एक भाग समुद्र के जल के ऊपर ही बना हुआ था, जो इसकी शोभा को बहुत बढ़ा देता था। पुराने राजाओं के गेस्ट-हाउस भी बहुत ही सुन्दर बने हुए थे। यहाँ के गेस्ट हाउस को देखकर उन प्राचीन रजवाड़ों के वैभव की याद हो आयी, जिनके न रहने के कारण ये गेस्ट हाउस अब धीरे-धीरे शोभाहीन होते जा रहे हैं।

मेरी पत्नी इन स्थानों में भोजन नहीं करती थी। अतएव इकमिक कूकर, स्टोव आदि साथ में ले जाना पड़ता था। परन्तु यहाँ केवल बाथरूम को छोड़कर कोई स्थान बिना गलीचे के नहीं था। कुछ वृष्टि भी हो रही थी। अतएव इकमिक कूकर में भी भोजन बनाने का स्थान नहीं मिलने के कारण बड़ी असुविधा हुई। एक जगह मकान की छत कुछ आगे निकली हुई थी। उसी के नीचे इकमिक कूकर में कुछ भोजन बनाना पड़ा। इसके बाद एक स्टीम लंच में चारों ओर समुद्र के पानी से घिरे उस टापू का एक चक्कर लगाकर वापस आया। ऐसे स्थानों में पुरानी विचारधारा के व्यक्तियों के लिए बड़ी असुविधा होती है। जब कोई स्थान भोजन बनाने के लिए नहीं मिल रहा था, तब मैंने कहा कि बाथरूम बहुत बड़ा है, चाहो तो इसमें जगह विभाजित कर स्थान बना लो, परन्तु मेरी पत्नी कब स्वीकार करने वाली थी।

वहाँ से हमलोग रोलियर लेक पहुँचे, जो वहाँ से लगभग १३५ मील है। यहाँ से संभवत: मद्रास को पानी सप्लाई होता है और इसके किनारे पर एक सुन्दर होटल बना हुआ है, जहाँ दर्शक जाकर ठहरते हैं। हमलोग तो लेक के बीच में सरकारी गेस्ट हाउस में ठहरे थे। यहाँ एक बहुत बड़ा जंगल है, जहाँ हाथियों के झुण्ड स्वच्छन्द रूप से विचरते हैं। हाथियों को देखा और एक स्टीम लंच पर लेक में घूम आये। यह भी एक बड़ा दर्शनीय स्थान है। रात को हमलोग यहाँ पहुँचे थे, अत: हमारी पत्नी को कुछ दूध और फल खाकर ही रात काटनी पड़ी।

श्री कामराज

वहाँ से हम मदुरा पहुँचे और सरकारी डाक बंगले में ठहरे। वहीं पर मद्रास के मुख्यमंत्री कामराज से भेंट हुई। यही हमारी उनसे पहली भेंट थी। जब वे आये तो हमारी पत्नी अपने कमरे के आगे रोटी बना रही थी। यह देखकर वे हंसे, परन्तु दक्षिण में लोग खान-पान के विषय में छुवाछूत को बहुत अधिक मानते हैं, इसलिए उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। मैंने उनसे हंसकर इस बात का जिक्र किया।

रामेश्वरम् दर्शन करने के बाद और भी इधर-उधर के कई स्थानों को देखता हुआ पाण्डिचेरी पहुँचा। यहाँ श्री मंगतूराम जयपुरिया की कपड़े की मिल होने के कारण वहीं हमलोग ठहरे और पाण्डिचेरी के अरविन्द-आश्रम को देखा। श्री माँ जो लगभग ९० वर्ष की होकर मरी हैं, उनके भी हमलोगों ने दर्शन किये। आश्रम में रहनेवालों से बातें कीं और सारी व्यवस्था देखी। यह बहुत बड़ा आश्रम है। बिना कुछ दिन यहाँ रहे इसके संबन्ध में कुछ भी कहना संभव नहीं है।

यहाँ से बंगलौर आया। मैं तो सर्किट हाउस में ठहर गया, किन्तु हमारी पत्नी को खाने-पीने की असुविधा के कारण नन्दकिशोर झाझरिया के घर पर उतारा। यहाँ से

कोलर की सोने की खान देखने गये। यह बहुत गहरी है। सोना निकलते हुए देखा। बंगलौर से मैसूर आये। दशहरे का अवसर था। यहाँ पर दशहरे के उत्सव बड़े पैमाने पर होते हैं। लाखों की संख्या में लोग इसे देखने आते हैं। मैं सरकारी सर्किट हाउस में ठहरा और फिर यहाँ से वृन्दावन गार्डेन की रोशनी देखने के लिए वहाँ के होटल में ठहरा। काफी रोशनी की जाती है, उसकी शोभा निराली होती है, स्थान बड़ा दर्शनीय है। वृष्टि हो रही थी, इसलिए कुछ असुविधा अवश्य हुई। यहाँ से मैं श्रवण बेलगोला गया, जो जैनियों का तीर्थस्थान है। यहाँ बहुत बड़ी दिगम्बर मूर्त्ति है। वहाँ से हसन नामक स्थान में गया और एक मन्दिर को देखा, जिसके पत्थरों की चित्रकारी देखकर आश्चर्य चकित हो गया। दक्षिण में बहुत बड़े-बड़े मन्दिर हैं, जिनमें तरह-तरह की चित्रकारियां देखने को मिलती हैं। परन्तु यहाँ की चित्रकारी को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि भारतवर्ष में चित्रकला कहाँ तक पहुँची, यह दक्षिण में ही देखने को मिल सकता है। हमारी पत्नी को भोजन की असुविधा के कारण वहाँ से बंगलौर वापस भेज दिया और मैं जोगफाल्स देखने के लिए चला गया। यह फाल्स भारतवर्ष में सबसे ऊँचा है और दर्शनीय भी। वहाँ से बंगलौर लौटकर मद्रास वापस आया। तिरुपति गया, जो दक्षिण में एक बड़ा पवित्र तीर्थ माना जाता है और जिसकी सम्पत्ति करोड़ों की है। वहाँ से वापस आकर कलकत्ते लौट गया। हिन्दू धर्म के मन्दिर जैसे दक्षिण में पाये जाते हैं, वैसे और कहीं नहीं मिलते। दक्षिण की यात्रा बड़ी सुखद रही।

द्वितीय मंत्रित्वकाल

दूसरे चुनाव में देश के सभी प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत मिला। बंगाल में भी दिनांक २६-४-५७ को दार्जिलिंग में नवीन कांग्रेस मंत्रिमंडल ने शपथ ग्रहण की। दार्जिलिंग जाने के पहले विधान बाबू ने मन्त्रियों को यह नहीं बताया कि कौन-कौन सज्जन पुराने मंत्रियों में से नवीन मंत्रिमंडल में लिये जायेंगे। केवल मंत्रिमंडल के जो सदस्य पिछले कार्यकाल में थे, उन्हें कह दिया गया था कि वे लोग दार्जिलिंग आ जायें, परन्तु यह वचन नहीं दिया गया था कि वे नवीन मंत्रिमंडल में सम्मिलित किये जायेंगे या नहीं। बड़ी कौतूहल-जनक स्थिति थी। मंत्रियों के बीच में आपस में तरह-तरह की कल्पना हो रही थी। मैंने अपने साथियों को यही कहा कि जब वे दार्जिलिंग निमंत्रित किये गये हैं, तो निश्चय ही मंत्रिमंडल में लिये जायेंगे। ऐसा ही हुआ ; परन्तु जब तक मंत्रियों को शपथ नहीं दिला दी गयी, तब तक अनिश्चित की यह अवस्था कायम रही।

बस्ती-सुधार

जो मनुष्य बस्तियों में रहते हैं, वे प्रायः पशुओं की तरह ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। सबसे अधिक बस्तियां कलकत्ते में ही हैं। मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि बाजार दर से १५ प्रतिशत अधिक देने की बात को रद्द कर के इनके सुधार के लिये नया कानून बनाया गया और किस प्रकार कम्यूनिस्ट पार्टी ने इस बिल का विरोध किया।

वास्तव में इन बस्तियों में रहनेवालों की श्रेणियां हैं। जमीन के मालिक से वस्ती का हिस्सा भाड़े पर कुछ अवधि के लिए ले लेते हैं और उस पर खपरपोश मकान बनाकर खुद भी रहते हैं और भाड़ेतियों से भी अच्छी आमदनी कर लेते हैं। यही श्रेणी कम्यूनिस्ट पार्टी की सबसे अधिक भक्त होती है और कम्यूनिस्ट पार्टी उनके हितों की रक्षा के लिए वाध्य होती है—कैसी एक विचित्र बात है। चाहे पशुओं की तरह ही जीवन व्यतीत करना पड़े, तो भी इनमें रहनेवाले को भाड़ा दो या तीन रुपये मासिक से अधिक न लगे यही वे चाहते हैं। यही कारण है कि इन बस्तियों का सुधार आज तक नहीं हो सका। कलकत्ता कारपोरेशन को भी यह अधिकार दिया गया था कि वह इनका सुधार करे, परन्तु वह भी कुछ न कर सकी। उसके बाद भी जितने प्रयत्न किये जाते रहे, उनमें बाधाओं की सृष्टि इतनी अधिक रहती और खर्च भी इतना अधिक होता कि एक बड़े पैमाने पर इनमें न तो सुधार हो सका और न इन्हें तोड़कर उस स्थान पर वस्तीवासियों के रहने लायक नये मकान बनाये जा सके।

विभागीय शासनकाल

मंत्रियों का अधिकांश समय शासन कार्य में चला जाता है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक जीवन में आदमियों से मिलने और उनकी व्यक्तिगत कठिनाइयों को यथासाध्य दूर करने में समय वीत जाता है। प्रजातंत्र में जनसम्पर्क भी सदैव बनाये रखना पड़ता है। शासन-संबंधी मीटिंग बराबर होती ही रहती हैं। इसके अतिरिक्त दलगत मीटिंग भी होती हैं। विदेशों से आने-जाने वाले मनुष्यों की संख्या भी कम नहीं होती। वे जब आते हैं तो हवाई अड्डे पर या स्टेशन पर उनका स्वागत करना पड़ता है और जब जाते हैं, तो विदाई देनी पड़ती है।

स्वायत्तशासन विभाग के अन्तर्गत म्युनिसिपैलिटियां, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, पंचायतें, यूनियन बोर्ड इत्यादि आ जाते हैं। वे अपने दायित्वों को पालन करने में प्रायः असमर्थ रहते हैं। इससे यही होता है कि जितने खर्च का दायित्व इनके ऊपर है, उतनी आमदनी उनको नहीं होती। प्रादेशिक सरकार एवं केन्द्रीय सरकार की आर्थिक सहायता के ऊपर इन्हें निर्भर रहना पड़ता है और वह सहायता यथेष्ट नहीं होती। जिन सदस्यों और कर्मचारियों पर इसके शासन का भार रहता है, वे भी अपने उत्तरदायित्व के संबंध में गफलत करते हैं। मकानों पर टैक्स या अन्य टैक्स का अधिकार इन्हें जो दिया गया है, उनका भी लाभ ये संस्थाएं नहीं उठातीं। इनके सदस्य रुपये वसूल करने में बहुत ढिलाई करते हैं, ताकि वे लोगों में अप्रिय न हो जायें और चुनाव द्वारा फिर से आने में उन्हें कठिनाई न हो। जहाँ तक कानून में सुधार करके इन कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है, वहाँ तक कानून में संशोधन करके दूर कर दिया गया। जो परिवर्तन किये गये, उन्हें अब कार्य रूप में परिणत करना आवश्यक हो गया और उसी ओर सबसे अधिक ध्यान दिया गया। म्युनिसिपैलिटियों में सरकार द्वारा जो हस्तक्षेप किया जाता था और समय-समय पर म्युनिसिपैलिटियों को सरकार अपने हाथों में ले लेती थी, उसके अनुसार जो म्युनिसिपैलिटियां बहुत खराब अवस्था में थीं, उनके लिए एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त करके शासन में दक्षता लाने की कोशिश की गई। १९६२ तक स्वायत्तशासन विभाग और पंचायत

विभाग मेरे आधीन थे। इस अवधि में ग्यारह निकम्मी म्युनिसिपैलिटियों को अपने हाथों में लेकर, उसमें सुधार किया गया और एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त करके काम चलाया गया। समस्त प्रान्त में फैली हुई स्वायत्तशासन संस्थाओं का समय-समय पर निरीक्षण भी किया गया। इनकी समस्याओं को कठिन देखकर ही एक बड़ी संस्था अन्तर्राष्ट्रीय सहायता से स्थापित की गयी है, जिससे कलकत्ते के इर्द-गिर्द गंगा के दोनों तरफ जो म्युनिसिपैलिटियां हैं, उनके प्रश्नों को इसके द्वारा सुलझाया जाये। परन्तु इनकी गति भी धीमी है। अभी बहुत दिन लगेंगे जबकि इन शहरों की अवस्था में मूल सुधार संभव होगा। देश में अन्न-वस्त्र की समस्या सदैव गुरुतर रही है और उसी को सुलझाने में प्राथमिकता दी जाती है। मंत्रिमण्डल के अधिकांश सदस्य इन समस्याओं के कारण विरोधी दल की ओर से जो वायुमंडल को विषाक्त किया जाता है और सरकार के विरुद्ध भावना पैदा की जाती है, उसी के निराकरण में व्यस्त रहते हैं।

स्वायत्तशासन विभाग की समस्याओं के समाधान के लिए समस्त प्रदेशों के मंत्रियों की और केन्द्रीय अधिकारियों की साल में एक बार कहीं-न-कहीं कांफ्रेन्स भी की जाती है। १९५७ से १९६१ के बीच में ऐसी कई कांफ्रेन्सें हुईं, जिनका समुचित विवरण नीचे दिया जा रहा है।

(१) ता० २६-९-५७ को श्रीनगर (कश्मीर) में स्वायत्तशासन विभाग की कांफ्रेन्स हुई। इसका उद्घाटन कश्मीर के मुख्य मंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद ने किया। मैं इसमें सम्मिलित हुआ। चुनाव के बाद विभिन्न प्रदेशों में इस विभाग के और नये मंत्री चुने गये थे। उनसे पारस्परिक परिचय हुआ, परन्तु बहुत से इस विभाग से परिचित नहीं प्रतीत हुए। कांफ्रेन्स में अधिकतर पारस्परिक परिचय होता है और उस विभाग के संबंध के प्रश्नों पर विचार-विनिमय भी हो जाता है। केन्द्रीय मंत्री भी इसमें सम्मिलित होते हैं। इसलिए केन्द्र राज्यों से क्या चाहता है, और राज्य केन्द्र से क्या चाहते हैं, इन विषयों पर विशेष चर्चा होती है। रुपये-पैसों को लेकर दोनों में खींचातानी रहती है। राज्यों को आर्थिक सहायता के लिए केन्द्र पर निर्भर करना पड़ता है। कुछ दिन कांफ्रेन्स के बाद वहाँ ठहर कर कलकत्ते वापस चला आया।

(२) दिनांक १-९-५८ को दार्जिलिंग में आवास विभाग की कांफ्रेन्स हुई, जिसमें मैं सम्मिलित हुआ। कांफ्रेन्स के समाप्त होने पर गंगटोक होकर नाथू ला पर्वत शिखर पर जीप द्वारा गया। यह रास्ता उसी साल खुला था। यह शिखर १४,००० फीट की ऊंचाई पर है और सिक्किम की राजधानी गंगटोक से ३४ मील की दूरी पर है। यहाँ से थोड़ी दूर के बाद ही चीन की सरहद शुरू हो जाती है। यह पहले तिब्बत के आधीन था। बड़ी ठंढ थी। हमारे एक-दो सहयात्री का तो माथा चकराने लगा। इतनी ऊंचाई पर जाने का यही पहला अवसर था। वहाँ से लौटकर कालिम्पोंग होते हुए दार्जिलिंग आया। नाथू ला में अपनी सेना की टुकड़ी रहती है। हमारे साथ एक सेना के अधिकारी भी थे। अतएव उन्होंने हमलोगों के लिए भोजनकी व्यवस्था भी करवा दी थी। जाड़े के दिनों में वे लोग यहाँ की भयंकर सर्दी को कैसे बर्दास्त करते हैं, उसका विवरण उन्होंने दिया। उन सब सामग्रियों को देखा जो वे रात्रि में सोने के समय काम में लाते हैं। यहीं पर छंगा लेक नामक झील है, जिसका पानी शीतकाल में जम जाता है।

लन्दन-यात्रा

१९६१ के सितम्बर महीने में लंदन में कौमनवेल्थ पार्लियामेन्ट्री कांफ्रेन्स होने वाली थी। मैं कभी विदेश नहीं गया था। अतएव वहाँ जाने की उत्कंठा रहती थी। विधान बाबू से बातें होने के उपरान्त पश्चिम बंगाल की कौमनवेल्थ शाखा की ओर से मुझे प्रतिनिधि चुन लिया गया। मेरी एक आँख में लोटेशन डोकोवा (काला मोतिया-बिन्द) उत्पन्न हो गया था। यह बीमारी आँखों को नष्ट करनेवाली होती है। यदि लोटेशन ऊँचा होता तो ऑपरेशन के द्वारा इसको यहीं रोक दिया जाता, परन्तु वह स्थिति नहीं होने के कारण यह संभव नहीं था। फिर भी कलकत्ते के कुछ डाक्टरों का मत ऑपरेशन के पक्ष में और बम्बई वालों का इसके विपरीत था। ऐसी स्थिति में मैं कांफ्रेन्स से एक माह पहले लंदन १ अगस्त, १९६१ को चला गया। लंदन में मेरा दौहित्र सुशील एफ० आर० सी० एस० की तैयारी कर रहा था। सुशील हवाई अड्डे पर ही था। वहीं से उसी के घर चला गया और वहीं ठहरा। मेरा पौत्र विमल भी वहीं था। बिहारी लालजी, चिरकुण्डा वाले हमारे साथ गये थे। इसलिए अच्छा जमावड़ा लंदन में हो गया था। लंदन की दुनिया अजीब दिखाई देते हुए भी इस जमावड़े के कारण विदेश प्रतीत नहीं होता था। श्री रामकुमारजी भुवालका भी उस समय लंदन में ही थे। कलकत्ते के और भी कई बन्धु वहाँ समय-समय पर मिलते ही रहते थे। श्री सोहनलाल केजड़ी-वाल भी मिलते रहते थे, वे तो लंदन में ही बस गये थे और वहीं कपड़े का व्यापार करते थे। खाने-पीने की कोई असुविधा नहीं थी। एक फ्लैट मैंने सुशील के मकान में ही अपने लिए भाड़े पर ले लिया था। सुशील की मोटर भी अपनी थी। इसलिए घूमने-फिरने में बहुत आराम रहता था।

मैंने अपनी आँखों को सर स्टुवार्ट ड्यूक एल्डर को दिखाया। ये आँख के सबसे बड़े चिकित्सक हैं। इन्होंने आँखें बहुत अच्छी तरह से जांच कीं। और भी कई डाक्टरों को दिखलाया। सिर का एक्स-रे लिया गया। अन्त में यह नतीजा निकला कि ऑपरेशन नहीं किया जा सकता है और ऑपरेशन करना अत्यन्त हानिकारक होगा। इसे तो औषधोपचार के द्वारा ही नियंत्रण करना होगा, जो उस समय केवल इतना ही था कि पाइलोकारपीन की एक बूंद भोर में और एक बूंद रात में आँख में डाल दिया करूँ। समय-समय पर जांच कराता रहूँ। मेरे ठेहुने में भी बहुत दिनों से दर्द रहा करता था। उसके लिए भी मैंने कई डाक्टरों से सलाह ली। सबसे यही निष्कर्ष निकला कि इसे मिटाया नहीं जा सकता, इसको भी नियंत्रित ही रखा जा सकता है। मेरे ठेहुने का व्यायाम इसमें सबसे अधिक उपयोगी है। दर्द को कम करने के लिए बहुत-सी औषधियां दी जाती है, परन्तु उनसे बीमारी में कोई फर्क नहीं पड़ता। डाक्टर आर० मेंशन इसके विशेषज्ञ माने जाते हैं। मुझे एक दूसरे डाक्टर के पास भेजा, जिसने लगभग २०-२५ बार बिजली के सेंक का इलाज किया। विमल के साथ मैं कैम्ब्रिज भी गया। विमल जिस मकान में रहता था, उसके मालिक से भी मिला। कैम्ब्रिज की दुनिया एक अलग ही दुनिया है। उसका भी निरीक्षण किया। वहाँ से ब्राइटन भी गया। यहाँ एक सुन्दर समुद्रतट है, जहाँ सप्ताह में लाखों आदमी सैर करने के लिए आते रहते हैं। समुद्र-स्नान भी करते हैं। अच्छी रम्य जगह है।

मैंने वियना के सुविख्यात डाक्टर वैक को भी अपनी आँखें दिखलाईं। उन्होंने भी ऑपरेशन करने के लिए सलाह नहीं दी।

कौमनवेल्थ पार्लियामेन्टरी कान्फ्रेन्स

कौमनवेल्थ पार्लियामेन्टरी कांफ्रेन्स हर दो साल पर किसी कौमनवेल्थ वाले देश में हुआ करती है। इस बार वह सितम्वर के अन्तिम सप्ताह में लंदन में हुई, जिसमें संसार के वहुत से देशों के प्रतिनिधि आये। ब्रिटेन का जो प्रतिनिधित्व करते थे, उनमें लार्ड एटली थे, जिन्होंने भारतवर्ष को स्वतंत्रता प्रदान की थी। भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व तत्कालीन लोकसभा के स्पीकर श्री आयंगर कर रहे थे, और उसमें सरदार हुकुम सिंह, दीवान चमनलाल, श्री विभूति मिश्र आदि सात-आठ प्रतिनिधि भी शामिल थे। दस दिनों तक यह कांफ्रेन्स हाउस आफ लार्ड्स के चैम्वर में हुई थी। हाउस आफ लार्ड्स बहुत ही शानदार चैम्वर है। अफसोस की बात यही थी कि भारत सरकार ने प्रतिनिधियों को एक महीने के निवास के लिए केवल १८ पौंड दिया था, जिसके कारण भारतीय प्रतिनिधियों को आवश्यक खर्च करने में वड़ी दिक्कत होती थी। हमलोगों को ब्रिटिश सरकार ने सेवाय होटल में ठहराया था, जो बहुत खर्चीला होटल समझा जाता है। वहाँ के वेयरों को अगर टिप नहीं दी जाये, तो वे ध्यान नहीं देते हैं। प्रत्येक सेवा के लिए कुछ-न-कुछ उन्हें देना आवश्यक होता है। आयंगर साहव और प्रतिनिधियों या और किसी आगंतुक को एक प्याला चाय भी देने की स्थिति में नहीं थे। इस विषय में हमारे भारत के अर्थमंत्री श्री मोरारजी देसाई बहुत कड़े थे और कुछ प्रतिनिधियों को उनके इस फैसले पर वड़ा रोष था। अन्य देशों के प्रतिनिधि काफी खर्च करते थे और हमारे प्रतिनिधियों के लिए टैक्सी करके भी कहीं जाना-आना मुश्किल था। कहां तक यह नीति उचित है, वह तो सरकार ही कह सकती है, परन्तु हमलोग जो वहाँ गये थे, उन्हें तो काफी असुविधा होती थी।

मुझे भी एक वार इस अवसर पर सभा कक्ष में बोलने का अवसर दिया गया था। मैंने चाहा कि वक्तृता लिख ली जाये तो अच्छा हो, परन्तु लिखने का अभ्यास न होने के कारण मुझे मौखिक रूप से ही अपना व्याख्यान देना पड़ा। इस तरह का व्याख्यान लोगों को अच्छा लगता है, वनिस्पत लिखे हुए व्याख्यान के। हमारे व्याख्यान को लोगों ने पसन्द किया और उन्हें वह रोचक लगा। जव हमलोग मीटिंग के वाद चाय पार्टी में शामिल हुए, उस समय कई देशों के प्रतिनिधि हम से मिले और अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

मेरा तृतीय मन्त्रित्वकाल

तृतीय चुनाव १९६२ में हुआ। इस चुनाव में मैं यथापूर्वक कांग्रेस पार्टी की ओर से वड़ाबाजार निर्वाचन क्षेत्र से खड़ा हुआ। अवकी वार कम्यूनिस्ट पार्टी ने भी श्री माखरिया को मेरे विपक्ष में खड़ा किया। इसके पहले चुनावों में प्रायः सभी दल ने अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किये थे और वे सभी बुरी तरह हार गये थे। यह चुनाव २५ फरवरी को हुआ और २७ फरवरी को इसका फल प्रकाशित हुआ। पहले चुनावों के

अनुसार ही हमें प्रचण्ड बहुमत प्राप्त हुआ और सभी विरोधियों की जमानतें जब्त हो गयीं।

इस चुनाव में श्री बंकिम कर जो स्पीकर थे, वे हार गये और मुझे यह आशंका हुई कि विधान बाबू कहीं फिर से स्पीकर बनने के लिए मुझ पर दबाव न डालें, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। १० मार्च को मंत्रिमंडल के सदस्यों के नाम की घोषणा हो गयी। मुझे विधि विभाग दिया गया। मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या बहुत बड़ी थी। इसमें १३ मंत्री, ११ राज्य मंत्री १० उपमंत्री नियुक्त हुए थे। ११ मार्च को हमने अन्य मन्त्रियों के साथ शपथ ग्रहण की और मेरा तृतीय मंत्रित्वकाल आरम्भ हुआ।

विधान बाबू का निधन

सन् १९६२ ई० में विधान बाबू का निधन हो गया। उनके स्वास्थ्य को देखते हुए यह आशंका नहीं थी कि वे इतनी जल्दी मृत्यु को प्राप्त होंगे। परन्तु हृदय रोग के आक्रमण से वे बच नहीं सके। मरने के दो दिन पहले ही उन्होंने अपने घर में बैठकर कैबिनेट की मीटिंग की थी और मरने के एक दिन पहले ही राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन से भी बातें की थीं। उनके मरने से बंगाल का एक बहुत योग्य व्यक्ति उठ गया। उनके प्रति जनता की कितनी बड़ी श्रद्धा थी, यह उनके मरने के बाद देखने में आयी। श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन नये मुख्य मंत्री हुए और उन्होंने भी अपना कार्यभार तन और मन लगाकर सँभाला। लोगों की दृष्टि में प्रफुल्ल बाबू बहुत ऊँचे उठ गये और मुख्य मंत्रित्व के पद पर उन्होंने आशातीत सफलता प्राप्त की। विधान बाबू की स्मृति में एक कोष की स्थापना हुई। थोड़े दिनों के अन्दर ही इस कोष में ४० लाख रुपये से अधिक प्राप्त हो गया। प्रफुल्ल बाबू ने इसकी सफलता के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा और इसी कोष से पोलियो से ग्रस्त बीमार बच्चों के लिए अस्पताल स्थापित हुआ।

चीन का भारत पर आक्रमण

१५ अक्तूबर, १९६२ को अचानक चीन ने भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया। भारतीय फौज इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी—न उसके पास आवश्यक जाड़े का वस्त्र था और न सैनिक-सामग्री। भारतीय फौज पीछे हटनी शुरू हुई और चीन की फौज ने तेजी के साथ आगे बढ़ना शुरू किया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि असम चीन के अधिकार में चला जाएगा। देश में भयंकर आतंक उपस्थित हो गया। समस्त भारतीय जनता ने सरकार का हृदय से साथ दिया। देश-भक्ति की लहर बह गयी। विवाह-शादियों में स्वत: सादगी आ गयी। कृष्णानन्द वगैरह शिलांग में थे। उनके संबंध में बहुत चिन्ता हुई कि उन्हें वहाँ से कैसे कलकत्ते बुलाया जाय। हवाई जहाज मिल नहीं रहे थे। असम-सरकार के मंत्री श्री फकरुद्दीन अली अहमद, जो विगत राष्ट्रपति थे, को हमने टेलीफोन किया और उन्होंने उसकी व्यवस्था करवा दी। कृष्णानन्द वगैरह कलकत्ता लौट आये। तब चित्त में शान्ति आयी। सौभाग्यवश चीन आगे नहीं बढ़कर स्वत: पीछे लौट गया—यह भी एक विचित्र घटना थी। श्री बी के०

कृष्णमेनन उस समय सुरक्षा मंत्री थे। उन्हें अपने पद को त्यागना पड़ा। उनकी जगह श्री वाई० वी० चह्वान सुरक्षा मंत्री हुए। हमारी फौजों की बड़ी दुर्दशा हुई।

कामराज योजना

१९६३ में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस द्वारा एक योजना बनाई, जिसे कामराज योजना कहते हैं। इसके अनुसार सभी केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों में जितने मंत्री थे, उन्होंने अपने-अपने इस्तीफे प्रधान मंत्री और मुख्य मंत्रियों के हाथों में दे दिये। जिससे वे जिन्हें चाहें उनके इस्तीफे को स्वीकार करें और वे मंत्रिमण्डल से अलग हो जायें। केन्द्र में और सभी प्रदेशों में सभी मंत्रियों ने अपने-अपने इस्तीफे दे दिये। यह कहा गया था कि जो वरिष्ठ मंत्री हैं, वे कांग्रेस संगठन को मजबूत करने में अपना समय देंगे और नये आदमियों को मंत्रिमंडल में आने का अवसर प्राप्त होगा।

इस योजना के अनुसार मैंने भी अपना इस्तीफा मुख्य मंत्री के हाथ में दे दिया। केन्द्र में सर्वश्री मोरारजी देसाई, जगजीवनराम, लालबहादुर शास्त्री, एस० के० पाटिल जैसे वरिष्ठ नेता मंत्रिमंडल से अलग कर दिये गये। बंगाल में सभी डिप्टी मिनिस्टर हटा दिये गये और राज्य मंत्रियों की संख्या में बहुत कमी कर दी गयी। कैबिनेट के मंत्रियों में श्री शंकरदास बनर्जी और श्री अजय मुकर्जी मंत्रिमंडल से हट गये। यह योजना फलवती नहीं हुई। जैसी आशा की गयी थी, वह आशा पूरी नहीं हुई। जो प्रदेशों के मुख्य मंत्री एवं अन्य मंत्री और केन्द्र के जो वरिष्ठ मंत्री हट गये, उनके जिम्मे संगठन का भी कोई काम नहीं रहा और इस योजना का उल्टा ही अर्थ लगाया जाने लगा। 'कामराज प्लान' की जगह 'यमराज प्लान' इसका नाम पड़ा और ऐसी धारणा हुई कि पंडितजी जिन मंत्रियों को नहीं चाहते थे, उन्हें मंत्रिमंडल से अलग करने के लिए यह केवल एक तरीका मात्र था। इसके कारण सभी जगह राजनीतिज्ञों में नाराजगी पैदा हुई, जिसके कारण कांग्रेस कमजोर हुई और आगे चलकर उसका दुखद परिणाम सामने आया। पंडितजी का स्वास्थ्य इस समय खराब हो चला था।

कांजीरंगा जंगल

दिसम्बर १९६३ में आसाम प्रान्तीय मारवाड़ी सम्मेलन के अवसर पर मैंने आसाम का भ्रमण किया, जिसमें कांजीरंगा जंगल में भी गया। यह जंगल आसाम में गैण्डों की रक्षा के लिए रखा गया है। लोग हाथी पर चढ़कर इस जंगल में जाते हैं और जंगलों में फिरते हुए गैण्डों को देखते हैं। हमलोगों की पार्टी भी ३-४ हाथियों पर चढ़कर एकदम प्रातःकाल जंगल में घूमी। बहुत दूर प्रवेश करने के बाद एक गैण्डा से भेंट हुई। अपने को घिरा हुआ पाकर गैण्डा ने हाथियों पर आक्रमण करने का रुख अपनाया और जोर से चीत्कार किया। हाथी भी सहम गये और हमलोग भी भयभीत हो गये। परन्तु गैण्डा शीघ्र ही वहाँ से अपनी जान बचाकर भाग गया और हमलोगों को शान्ति मिली। यहाँ पर गैण्डे शिकारियों द्वारा मारे जाते हैं और उनके नाक पर जो सींग होती है, वह बहुत अधिक कीमत पर विदेशों में बिकती है। गैण्डों की संख्या देशों में कम हो रही है,

इसके संवंध में चिन्ता व्यक्त की जा रही है। और कांजीरंगा का प्रधान उद्देश्य उनकी सुरक्षा कर उनकी नस्ल को विनाश से बचाने का है।

पं० जवाहरलाल की मृत्यु

पं० जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु सन् १९६४ में हुई। उनके मरने से देश का दिग्गज नेता उठ गया। सभी समझते थे कि कांग्रेस का बल वहुत कुछ जवाहरलालजी के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है और यह उनके परिश्रम और अतुलनीय नेतृत्व का परिणाम था कि इतने दिनों तक भारतवर्ष के शासन में कोई गड़वड़ी नहीं हुई। जहाँ पड़ोसी राज्य एकतांत्रिक अधिकार में आ गये थे और वहाँ राजनैतिक उथल-पुथल भयंकर रूप से हो गयी, वहाँ भारतवर्ष जैसे महानदेश में प्रजातंत्र ज्यों-का-त्यों कायम रहा। भारत की जनसंख्या वड़ी तेजी के साथ भारत में वढ़ रही थी और कन्ट्रोल के कारण काला वाजारी और अफसरों में घूसखोरी और राजनीतिज्ञों में भी लोभ की पराकाष्ठा ने भारतीय प्रजातंत्र को कमजोर अवश्यमेव कर दिया, जिसका परिणाम पंडितजी के मरने के वाद प्रकट हुआ। चीन-युद्ध में भी जनता ने दिल खोलकर सब प्रकार की सहायता प्रदान की। प्रफुल्ल वावू ने इसके लिए धन एकत्र करने के लिए जी-तोड़ परिश्रम किया और वहुत सफलता प्राप्त हुई। सभी मंत्रियों ने उन्हें सहयोग दिया। यह कोई नहीं कह सकता कि जवाहरलालजी के शासनकाल में भूलें नहीं हुईं या उनकी नीति सदा अच्छी ही रही; तथापि यह कहने में कोई संकोच नहीं हो सकता कि पंडितजी के कारण भारतवर्ष की राजनैतिक एकता कायम रह सकी। वही एक नेता थे, जिनकी वक्तृता सुनने के लिए लाखों आदमियों की भीड़ वारम्वार इकट्ठी हो जाती थी।

श्री लालबहादुर शास्त्री, प्रधान मंत्री

जवाहरलालजी के वाद श्री लालवहादुर शास्त्री, प्रधान मंत्री के पद पर चुने गये। इन्हीं के कार्यकाल में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया, परन्तु इसमें पाकिस्तान को सफलता नहीं मिली। रूस के वीच-वचाव से भारत और पाकिस्तान में एक संधि हो गयी। परन्तु शास्त्रीजी का देहान्त विदेश में ता० १०-१-६६ को हठात् ही हो गया। उसके वाद श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधान मंत्री चुनी गयीं।

विधि-विभाग की व्यस्तता, एक महत्वपूर्ण कदम भी

मैं अपने न्याय-विभाग के कार्य में व्यस्त हो गया और दैनंदिन जो कार्य करने पड़ते थे, वे सुचारु रूप से शीघ्र सम्पन्न हो जायें, इसके लिए मैंने प्रयत्न आरम्भ किया। विधान में यह लिखा गया है कि न्याय-विभाग को शासन-विभाग से पृथक् कर दिया जाये ताकि वह स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य करे। सबसे पहले मैंने इस कार्य को आरम्भ किया। फौजदारी मुकदमें मजिस्ट्रेट सुना करते थे और वे ही शासन का अन्य काम भी करते थे। ऐसा समझा जाता था कि इसके कारण न्याय-विभाग की स्वतंत्रता की हानि होती है। अतएव जिन मजिस्ट्रेटों को मुकदमा विचार करने का अधिकार दिया जाये, उनको शासन के अन्य काम नहीं सौंपें जायें। समस्त प्रदेश में एक साथ ऐसा करना सभव नहीं था, क्योंकि इतने मजिस्ट्रेट नहीं थे, जिनको केवल न्याय-विभाग का काम ही सौंपा जा सके। अतएव,

कुछ जिलों से यह प्रारम्भ किया गया और धीरे-धीरे इसको बढ़ाया जाने लगा। न्याय विभाग में मुन्सिफ और सब-जज के ऊपर हाईकोर्ट का पूर्ण अधिकार रहता है, वे ही उनका तबादला इत्यादि करते हैं। परन्तु डिस्ट्रिक्ट जजों और उनके तबादले पर सरकार के गृह-विभाग का अधिकार रहता था। यह अंग्रेजों के जमाने से चला आ रहा है। उपर्युक्त काम न्याय-विभाग के जिम्मे सौंपा जाये, मैंने इसके लिए प्रयत्न किया और यह स्वीकार भी करवा लिया।

इस विभाग की सबसे बड़ी कमजोरी है कि मुकदमों का फैसला जल्दी नहीं होता। यह बड़ी कठिन समस्या है और काफी समय तक प्रयत्न करने पर भी इस समस्या का समाधान नहीं हो पाया। इस संबंध में मैंने ला-कमीशन के अनुरोध पर एक व्याख्यान दिया था। न्याय-विभाग में हाकिमों की कमी है और नये लड़के इसमें जाना नहीं चाहते। जो अच्छे लड़के होते हैं, वे बी० ए० पास करने के बाद ही या तो आई० ए० एफ० में चले जाते हैं या प्रदेश के शासन-विभाग में जाने का प्रयत्न करते हैं। न्याय विभाग में जाने के लिए बी० एल० या एल० एल० बी० की उपाधि प्राप्त करनी पड़ती है। इसे प्राप्त करने के लिए बी० ए० पास करने के बाद तीन वर्ष लगता है। इतने दिनों तक अच्छे लड़के ठहरना नहीं चाहते। इसलिए इस विभाग में जो नियुक्तियां होती हैं, उसमें बहुत अच्छे लड़के नहीं मिलते। सरकार भी पर्याप्त संख्या में इनकी नियुक्ति नहीं करती। इस विभाग की ओर जितना ध्यान देना चाहिए, उतना सरकार नहीं देती है। यह एक प्रकार से उपेक्षित विभाग है। अच्छी नियुक्तियां हों, इसके लिए कुछ नियुक्तियां करने का अधिकार हमलोगों ने हाईकोर्ट को भी दिया, जिससे विभिन्न अदालतों में जो वकालत करते हैं, उनमें जो योग्य हों, उन्हें हाईकोर्ट चुनकर भेज दे और सरकार उनकी नियुक्ति कर दे। परन्तु देखा गया कि इसमें भी जो लोग नियुक्ति के लिए दरख्वास्त देते हैं, उनका विद्यार्थी-जीवन का परीक्षाफल उत्कृष्ट दर्जे का नहीं होता। मुंसिफ ही समय पाकर हाईकोर्ट के जज हो जाते हैं, फिर भी इस विभाग के प्रति अच्छे छात्रों में आकर्षण की कमी है।

शासन के कुछ अनुभव

स्वायत्तशासन-विभाग के अन्तर्गत म्युनिसिपैलिटियाँ और कलकत्ता कारपोरेशन आता है। इन सबों की स्थिति बराबर ही असंतोषजनक रहती है। न तो इनके पास यथेष्ट धन रहता है और न सरकार ही इन्हें इतना धन दे सकती है, जिससे इन्हें आर्थिक असुविधा न हो। कलकत्ता कारपोरेशन के विषय में १८९९ में भी तत्कालीन बंगाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने कहा था—'यह देरी से काम करने का किला है और बातें करने के लिए शस्त्रागार'। आज अस्सी वर्षों के बाद भी वही स्थिति है। जितनी भी आमदनी क्यों न बढ़ जाये, फौरन कर्मचारियों की मांग उन्हें खा जाती है। शहर का कोई कल्याण नहीं हो पाता। कर्मचारी काम ठीक तरह नहीं करते। घूसखोरी भी चरम सीमा पर पहुँची हुई है।

मैं लिख चुका हूँ कि जब मैं स्पीकर था, उस समय कारपोरेशन को सरकार ने चार वर्षों तक अपने हाथों में ले रखा, हाईकोर्ट के जज श्री सी० सी० विश्वास के सभापतित्व

में बैठाये गये कमीशन के आधार पर नया बिल पास किया गया और कारपोरेशन कौन्सिलरों का १९५२ का चुनाव उसी आधार पर किया गया ; परन्तु शासन में कोई परिवर्त्तन नहीं आ सका। जहाँ पर नैतिक स्तर बहुत गिर जाता है, वहाँ कोई भी काम अच्छी तरह सम्पन्न नहीं हो सकता। कलकत्ता कारपोरेशन के कर्मचारियों में निरंकुशता और काम नहीं करने की आदत हो गयी है और इनका यह जन्मसिद्ध अधिकार बन गया है। इस संबंध में भी जो आवश्यक संशोधन करना जरूरी था, वह मैंने अपने मंत्रित्व के कार्यकाल में कर दिया। परन्तु मेरे इस विभाग में आने के पूर्व ही नया बिल बन गया था ; जिसके ५ मूलभूत सिद्धान्तों को जबतक उनका परीक्षण न हो जाय परिवर्त्तन करना मैंने उचित नहीं समझा। उसके बाद भी अवस्था में कोई सुधार नजर नहीं आया और आज भी उसकी वही अवस्था है और लगता है आगे भी ऐसी ही रहेगी। इसे तो एक सुदक्ष सरकारी आफिसर के मातहत कम-से-कम १० वर्ष तक रहने से शायद इसमें परिवर्त्तन आ सकेगा। आज तो नारेबाजी का जमाना है और प्रजातंत्र के नाम पर चाहे जितना भी कुशासन क्यों न हो, उसे कायम रखना जरूरी है—यह हमारे प्रजातंत्र की एक बहुत बड़ी कमजोरी है। जहाँ पर लोगों में कम-से-कम जितनी आवश्यक ईमानदारी होनी चाहिए, वह नहीं होती, वहां प्रजातंत्र चल नहीं सकता।

अन्य म्युनिसिपैलिटियों की भी हालत ऐसी ही खराब है। मैंने अपने कार्यकाल में ११ म्युनिसिपैलिटियों को सरकारी आफिसर के अधीन करके देखा। इनमें हवड़ा और आसनसोल की म्युनिसिपैलिटी भी थी। उसमें सरकारी आफिसर भी अच्छे-से-अच्छे चुनकर दिये गये। जबतक वे रहे बहुत कुछ सुधार हुआ, आर्थिक स्थिति भी सुधरने लगी। परन्तु जब आर्थिक स्थिति सुधरती थी, कर्मचारियों की मांग फौरन आ जाती थी और जो कुछ फायदा रहता था उसका लाभ कर्मचारी ही ले भागते थे। जनता जो टैक्स देती थी और जिनसे कड़ाई करके बाकी टैक्स अदाई किये जाते थे, उन्हें कोई लाभ नहीं होता था। अन्त में मैंने उसे सरकारी अधिकार में लेना बन्द कर दिया। स्वायत्त-शासन संस्थाओं को प्रजातंत्र की भित्ति मानते हैं। शासन चाहे सुधरे या नहीं, लोगों को फायदा हो या नहीं हो, प्रजातंत्र तो कायम रहना ही चाहिए—मैं तो इसी नतीजा पर आया हूँ। मैं जानता हूँ कि जो प्रजातंत्र की दुहाई देते हैं, वे इसे पसन्द नहीं करेंगे। परन्तु मेरा जो अनुभव है, उसे मैंने व्यक्त कर दिया।

म्युनिसिपैलिटियों को सरकारी हाथों में नहीं लेना पड़े, इसके लिए मैंने कानून में सुधार करके म्युनिसिपैलिटियों में एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त करने का नियम बनाया और बहुत से अधिकार भी उन्हें दिये और यह आशा की थी कि संभवतः इससे शासन में सुधार संभव होगा। देखा गया कि ये आफिसर भी सदस्यों की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर पाते हैं और जो अधिकार उन्हें सौंपे गये हैं, उनका उपयोग भी सदस्यों की इच्छा के बिना नहीं हो पाता है। अतएव इस संशोधन से भी जो लाभ मिलना चाहिए था, वह लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। तथ्य की बात यह है कि इन स्वायत्तशासन संस्थाओं में जबतक शासन कठोर नहीं होगा, कर्मचारी अनुशासन मानने के लिए बाध्य नहीं होंगे, भ्रष्टाचार नहीं मिटेगा। जो निर्वाचित सदस्य हैं, वे निष्ठावान, कर्त्तव्यपरायण नहीं होंगे

और जितने धन की इनको आवश्यकता है, उतना इन्हें प्राप्त नहीं होगा, तबतक इन संस्थाओं की स्थिति में सुधार होना संभव नहीं और यह गाड़ी ऐसी ही घिसटती रहेगी।

मेरा आखिरी चुनाव

१९६७ में नवीन चुनाव हुआ। इस चुनाव में मेरे विरुद्ध में जनसंघ की ओर से डा० बनारसीप्रसाद केड़िया खड़े हुए। यह एक अप्रत्याशित घटना थी। बड़ाबाजार की हवा कांग्रेस के विरुद्ध हो रही थी, क्योंकि कुछ मारवाड़ी व्यापारियों को प्रफुल्ल बाबू ने नजरवन्द कर दिया था और उन्हें छुड़ाने के लिए जो भी चेष्टाएँ की गयीं, वे सफल नहीं हुईं। प्रफुल्ल बाबू से मैंने भी कई बार उन्हें छोड़ने के लिए कहा। वे आश्वासन तो बराबर देते रहे, परन्तु छोड़ने में काफी विलम्ब हो जाने के कारण बड़ाबाजार के मारवाड़ी समाज में क्षोभ उत्पन्न हो गया था। मेरी दाहिनी आंख भी खराब होनी शुरू हो गयी थी। बायीं तो पहले से ही खराब हो रही थी। मैं इसके लिए विदेश जाने की सोच रहा था, परन्तु हठात् केड़ियाजी से मुठभेड़ होने के कारण नहीं गया और चुनाव में लग गया। पहली बार वास्तविक रूप से चुनाव की लड़ाई हुई। केड़ियाजी की ओर से जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वाले कार्यकर्त्ता लग गये। समाज का भी एक सम्पन्न वर्ग केड़ियाजी के साथ हो गया था। मैंने नित्य पांच-छ मीटिंगों में भाषण द्वारा ही जन-सम्पर्क रखना आरम्भ किया, बाकी व्यवस्था श्यामानन्द को सौंप दी। अन्त में दस हजार वोटों से मैं विजयी हो गया। इसके बाद मेरे समर्थकों ने जैसा जुलूस निकाला, वैसा इसके पहले किसी चुनाव के बाद नहीं निकला था। रास्ते में एक-दो मिनट के लिए मुझे कुछ मूर्च्छा भी आ गयी, परन्तु जुलूस वैसे ही चलता रहा।

बंगाल में गैर कांग्रेसी मंत्रिमंडल

सन् १९६७ के चुनाव में सबसे बड़ी अफसोस की बात यह हुई कि प्रफुल्ल बाबू अपने चुनाव में हार गये और कांग्रेस पार्टी बहुमत नहीं प्राप्त कर सकी। २ मार्च, १९६७ से विरोधी दल ने शासनभार ग्रहण किया। श्री अजय मुखर्जी मुख्यमंत्री हुए और श्री ज्योति बसु उपमंत्री। ८ मार्च, १९६७ को एसेम्बली का अधिवेशन हुआ। सारी एसेम्बली जनता के लिए खोल दी गयी। जनता की अगाध भीड़ एकत्रित हो गयी। कांग्रेसवालों का एसेम्बली में जाना मुश्किल हो गया, यद्यपि मुझे व्यक्तिगत रूप से कोई कठिनाई नहीं हुई। इस तरह मेरे मंत्रित्व का अन्त हुआ और एक नये जीवन का प्रारम्भ।

इस वर्ष कांग्रेस दल की तरफ से विरोधी मंत्रिमंडल को गिराने की बराबर चेष्टा होती रही। अन्त में नवम्बर १९६७ में श्री प्रफुल्ल घोष के दल ने विरोधी दल का त्याग किया और कांग्रेस के साथ मिलकर एक नयी सरकार की स्थापना की गयी। ९ महीने के शासनकाल में कम्युनिस्ट पार्टी ने अपना आधिपत्य जमाने की पूरी चेष्टा की थी और बंगाल का व्यापार अस्त-व्यस्त हो गया था। इससे उनका सहयोगी दल भी उनसे अप्रसन्न हो गया और मिनिस्ट्री में परिवर्तन हुआ।

द्वितीय विदेश यात्रा

मुझे अपनी आंखों को दिखाने के लिए नवम्बर १९६७ में स्वीटजरलैंड और इंगलैंड जाना पड़ा। विमल भी अपने काम से स्वीटजरलैंड आया हुआ था। वहाँ पर मैंने दो वड़े नेत्र विशेषज्ञ गोल्डमैन और फ्रान्सिस चेट्टी को आंखें दिखाईं। किसी ने भी ऑपरेशन कराने की सलाह नहीं दी। वहाँ से मैं लंदन चला गया। विमल सीधे अमेरिका चला गया। लंदन में कमल आ गया था और वहाँ पर फिर सर स्टुवांर्ट ड्यूक एल्डर को आंखें दिखाईं। उन्होंने भी पूर्ववत् चिकित्सा जारी रखने की ही सलाह दी, ऑपरेशन की सलाह नहीं। इसी समय इंगलैंड में पाउण्ड का दाम कम कर दिया गया। मैं कमल के साथ एडिनवर्ग चला गया, जहाँ काफी सर्दी पड़ रही थी। वहाँ पर मैंने हृदय रोग के विशेषज्ञ को दिखलाया। उसने कोई रोग नहीं वताया। पैरों के दर्द के बारे में भी वहाँ के डाक्टर से सलाह की, परन्तु कोई इलाज नजर नहीं आया। इसी बीच कलकत्ते में एसेम्वली बुला ली गयी और कलकत्ते से टेलीफोन मिला कि हमारा उसमें शामिल होना निहायत जरूरी है और प्रफुल्लो वावू वगैरह हमारे यहाँ लौट आने के लिए बरावर कृष्णानन्द को आग्रह कर रहे हैं। श्री सिद्धार्थ शंकर राय भी लंदन में थे, उनसे भी वात हुई और अन्त में यह निश्चय हुआ कि हिन्दुस्तान लौटा जाये। मैं वहाँ से एक दिन के लिए कुसुम के पास मैनचेस्टर गया और उनसे मिलकर लंदन चला आया और हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गया। नवम्वर का अन्त होते-होते मैं हिन्दुस्तान में पहुँच गया।

राजनैतिक उथल-पुथल

कलकत्ता पर राजनैतिक उथल-पुथल हो रही थी। जव एसेम्वली का सेशन हुआ तो उसके अध्यक्ष श्री बी० के० बनर्जी ने यह कहा कि वे नवीन मंत्रिमंडल को स्वीकार नहीं करते और एसेम्वली को मुल्तवी कर दिया। यह एक अप्रत्याशित घटना थी। उसके वाद मैं मुजफ्फरपुर चला गया।

जनवरी १९६८ में कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि हृदय में ऐंजाइना का आक्रमण हुआ है। कलकत्ते से श्यामानन्द और उसकी मां भी आ गयीं और मुझे बिल्कुल पड़े रहने का आदेश हुआ। पन्द्रह-बीस दिन के वाद मैं ठीक हो गया और कलकत्ता आ गया।

२० फरवरी, १९६८ को फिर से एसेम्वली बैठी। श्री धर्मवीर राज्यपाल थे। वे मुश्किल से एसेम्वली में पहुँचे, परन्तु उनको वक्तृता नहीं देने दी गयी और स्पीकर ने फिर से एसेम्बली को मुल्तवी कर दिया। मेरी समझ में तो स्पीकर का काम उचित नहीं था, परन्तु वैधानिक कोई उपाय नहीं रहने के कारण राज्यपाल का शासन कर दिया गया और एसेम्वली भंग कर दी गयी। मैं लगभग ३० वर्ष एसेम्वली का सदस्य रहा।

इधर रह-रह कर मेरे हृदय में दर्द हो जाता था और यद्यपि डा० चड्ढा इसे हृदय का रोग नहीं मानते थे, परन्तु अन्य डाक्टर इसे ऐंजाइना ही समझ कर इलाज करते थे। इसी बीच नया चुनाव नवम्वर में होने की तिथियां निश्चित हो गयीं और ऐसा मालूम होता था कि कांग्रेस चुनाव में विजयी हो जाएगी। विरोधी पार्टी से जनता ऊब गयी है—ऐसे लक्षण दिखाई दे रहे थे। कांग्रेस के नेता मुझे अपनी सीट से खड़ा होने के लिए

आग्रह कर रहे थे, परन्तु मैं कुछ ठीक नहीं कर पाता था कि क्या किया जाय ? एक ओर हृदय की तथाकथित व्याधि के कारण घर के लोगों की सलाह नहीं थी, दूसरी ओर मेरे मन में यह निश्चय नहीं होता था कि फिर मैं क्या काम करूँगा। लेकिन अन्त में यह तय हुआ कि नहीं खड़ा होना चाहिए और मेरी जगह श्री रामकृष्ण सरावगी खड़े हो गये। अतुल्य वाबू ने ऐसा करने के कारण कुछ अप्रसन्नता व्यक्त की, परन्तु मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि हमारी सीट कांग्रेस को ही मिलेगी। जब चुनाव हुआ तो उसका फल बहुत ही बुरा हुआ। कांग्रेस को केवल ५५ सीटें ही मिलीं और विरोधी दल ने अपनी सरकार फिर से वनाई। यह सरकार भी बहुत दिनों तक नहीं चल सकी और फिर से गवर्नर शासन हुआ।

इस समय देश भर में कांग्रेस दल में फूट पैदा हो रही थी और राजनैतिक अस्थिरता देश में व्याप्त हो गयी। १९६९ में नये राष्ट्रपति का चुनाव होने लगा, तो यह फूट जनता के समक्ष उग्र रूप में उपस्थित हुई और कांग्रेस ने एक नया रूप धारण किया।

जहाँ तक मेरा संवंध था, फरवरी १९६८ के वाद राजनैतिक जीवन से मैं अलग हो गया और मैंने अपना ध्यान आध्यात्मिकता की ओर लगाना आरम्भ किया। श्री भगवानदत्त जोशी रोज एक घंटे उपनिषद् आदि ग्रन्थों को सुना जाते। इसी बीच रामा और गोविन्द के साथ कुछ घरेलू झगड़े उत्पन्न हो गये, जिसके कारण मन में अशान्ति रहती थी। जव आपसी झगड़ों का १९६९ में अन्त हो गया, तो मैं कलकत्ते से वाहर निकला और एक महीना के लिए चित्रकूट की यात्रा की। इसी बीच बम्बई भी हो आया और वहाँ पर फिर से आँखों की परीक्षा करवाई, परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला। दिसम्बर के शेष में हमारी छाती में भीषण दर्द पैदा हुआ। ८-१० रोज के वाद शरीर ठीक हुआ, परन्तु आँखों की रोशनी में बहुत कमी आ गयी। पढ़ना-लिखना असंभव हो गया। मार्च १९१७ में मैं वापस कलकत्ता आगया और फिर यहीं रहा। स्वास्थ्य गड़वड़ रहने लगा, विकोलाई हो गयी, जो नहीं छूटी और अन्त में फरवरी १९७१ में प्रास्टेट का ऑपरेशन कराना पड़ा, जो व्हैलोर के डा० भट्ट ने किया। इसके वाद स्वास्थ्य की अवस्था कभी संतोषजनक नहीं रही और मैं प्राय: कलकत्ता में ही रहा। इस बीच मैंने अपनी जीवनी लिखवाई और सम्मेलन का कुछ कार्य भी किया।

विदेश की महत्वपूर्ण विभूतियों से भेंट-मुलाकात

मंत्री की हैसियत से जब कभी विदेशों के राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री आदि आते हैं, तो उनके आने और जाने के वक्त हवाई अड्डे पर मंत्रियों को भी शिष्टाचार के नाते जाना पड़ता है और वे जब यहाँ रहते हैं तो कुछ मौके भी मिल जाते हैं, जिसमें परस्पर वार्त्तालाप हो। ऐसे विशिष्ट पुरुषों की कुछ भेंट का जिक्र यहाँ कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

चीन के प्रधान मंत्री चाउ-एन-लाई

चीन के प्रधान मंत्री चाउ-एन-लाइ दिसम्बर १९५६ में कलकत्ता आये। उनके स्वागत के लिए हम लोग हवाई अड्डे पर पहुंचे। ये जब हम लोगों से हाथ मिला रहे थे, तो हमने देखा कि ये बहुत गम्भीर व्यक्ति हैं—न हंसते हैं और न अधिक बोलते हैं।

मैदान में एक बहुत बड़ी जनसभा हुई, जिसमें ये बोले और हिन्दी-चीनी भाई-भाई का नारा बुलन्द हुआ। रात्रि में जो भोज इन्हें दिया गया, उसमें मैं भी सम्मिलित हुआ।

अन्त में चीन और भारत का जो युद्ध हुआ, उससे भारत और चीन के बीच जो विरोध उत्पन्न हुआ, वह सर्वविदित है और आज तक वह नहीं मिट पाया है।

दिल्ली में पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिलकर उन्होंने जो समझौता किया, वह पंचशील के नाम से जाना जाता है। यह समझौता बहुत दिन कायम नहीं रह सका। इसके कुछ दिनों बाद ही चीन ने तिब्बत को अपने कब्जे में कर लिया और दलाई लामा को तिब्बत छोड़कर भारत में आश्रय लेना पड़ा। तब से वे यहीं हैं।

नोर्थ वियतनाम के राष्ट्रपति होचीमिन

जिन्होंने साउथ वियतनाम के साथ युद्ध करने में अमेरिका जैसे महान राष्ट्र के दाँत भी खट्टे कर दिये थे, वे होचीमिन १९५८ में कलकत्ते आये, तो मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ। कलकत्ता कारपोरेशन ने उनको एक अभिनन्दन-पत्र दिया था और मुझे राजभवन से उन्हें लेकर कारपोरेशन की आफिस में जाना पड़ा था। वे और हम राजभवन से निकल कर राजभवन के मैदान में टहलने लगे थे, क्योंकि कारपोरेशन में जाने में कुछ देर थी। वे बड़े सीधे-सादे मनुष्य थे। कहा जाता था कि वे वहाँ के गांधी हैं। दुबले-पतले मनुष्य थे, दाढ़ी में थोड़े छुटपुट बाल भी थे। वे बिना किसी हिचक के राजभवन की लॉन की जमीन पर ही बैठ गये। हम दोनों आदमी जमीन पर बैठे ही बैठे कुछ देर तक बातें करते रहे। वे अंग्रेजी अच्छी बोलते थे, इसलिए बातें करने में कोई असुविधा नहीं थी। उस वक्त तो वियतनाम से युद्ध शुरू नहीं हुआ था, अतएव उनका इतना बड़ा महत्व भी नहीं था। मैं भी नहीं जानता था कि वे इतने कठोर व्यक्ति भी हैं। अपने देश की बहुत-सी बातें उन्होंने बताईं और जब समय हो गया तो मैं उन्हें कारपोरेशन में ले गया और वहाँ उनका अभिनंदन किया गया।

आर्च बिशप मकारियां

तीसरे सज्जन जिनका जिक्र करना मैं आवश्यक समझता हूँ, वे हैं आर्च बिशप मकारियां, जो साइप्रस के राष्ट्रपति रहे हैं और वर्त्तमान साइप्रस में जो कुछ अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएं हो रही हैं, उस नाटक के प्रधान पात्रों में हैं। उनके साथ मुझे भी कुछ देर बातें करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मुझे वे बहुत ही सीधे-सादे साधु स्वभाव वाले पादरी लगे। मैंने उनसे उनके देश के बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की और उन्होंने सब बातें दिल खोलकर बताईं। जब मैंने उनसे यह पूछा कि उनका इतना छोटा देश अगर युद्ध हो तो अपनी रक्षा कैसे कर सकेगा, तो उन्होंने जवाब दिया कि युद्ध होगा ही नहीं और अगर होगा तो दूसरे ही इसके लिए लड़ेंगे।

इंगलैण्ड की महारानी एलिजाबेथ

चौथा व्यक्तित्व था—इंगलैण्ड की महारानी एलिजाबेथ और उनके पति एडिनबर्ग के ड्यूक। ड्यूक महोदय बड़े मिलनसार स्वभाव के थे—बराबर मुस्कराते ही रहते

थे। महारानी एलिजाबेथ जब विदा हुई थीं, तब हमारा मंत्रिमंडल उन्हें विदाई देने के लिए हवाई अड्डे पर गया था। आगे-आगे महारानी और उनके पीछे ड्यूक प्रत्येक मंत्री से हाथ मिलाते हुए जा रहे थे। जब महारानी मुझसे हाथ मिलाकर आगे बढीं, तो मेरे पास जो हमारे साथी मंत्री खड़े थे, वे महारानी की ओर ही देखते रह गये। उनके पीछे ड्यूक आ रहे हैं, यह वे भूल गये। उनसे हाथ मिलाकर ड्यूक वहाँ खड़े हो गये, परन्तु हमारे उक्त साथी ने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया और न हाथ आगे बढ़ाया। मैंने उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए उनके वदन को धक्का दिया, परन्तु उस पर भी उनका ध्यान ड्यूक की ओर नहीं गया। जब मैंने दुबारा धक्का मारा, तब उनका ध्यान इधर आया और हाथ उन्होंने बढ़ाया। ड्यूक मुस्कराकर बोले—'आई एम सोरी टू डिस्टर्ब यू' (मुझे दुख है कि मैंने आपको बाधा दी)। वहाँ की रस्म तो खतम हो गयी, परन्तु हम लोगों के बीच में यह एक हास्य का विषय बराबर बना रहा।

बर्मा के प्रधान मंत्री यू नू

१६ जनवरी, १९६२ को बर्मा के प्रधान मंत्री यू नू के साथ भेंट हुई। वे कलकत्ते आये थे और हबड़ा स्टेशन पर सरकार की ओर से मैंने उनका स्वागत किया और राजभवन में ले गया। उनसे बर्मा के संबंध में कुछ बातें कीं।

कम्बोडिया के प्रिन्स नरोदम सिनूक

प्रिन्स नरोदम सिनूक, कम्बोडिया के प्रधान कलकत्ते आये। कम्बोडियन नृत्य करनेवाली महिलाओं का एक दल भी उनके साथ आया था, जिसमें उनकी लड़की भी शामिल थी। राजभवन में उनका नृत्य देखने का अवसर प्राप्त हुआ। ये बाद में कम्बोडियन युद्ध में बहुत नामी हो गये थे और चीन के साथ मिलकर कम्युनिस्ट शासन स्थापित करने में समर्थ हुए थे। उस समय जब हमने इनको देखा तो ऐसा नहीं मालूम हुआ था कि ये आगे चलकर इतने प्रमुख व्यक्ति हो जायेंगे। बन्द गले का काला कोट पहने हुए थे, सोने की बटन थी, हंसमुख चेहरा था। उनकी कन्या भी बहुत छोटी लड़की-सी लगती थी। उसके बारे में स्वयं वे बोले कि मेरी कन्या को आप कितनी बड़ी समझते हैं? यह चार बच्चों की मां है। हमलोग तो सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। कम्बोडिया वालों का नृत्य सुन्दर होता है। जिन्होंने इसमें भाग लिया, उन्होंने अच्छा निभाया।

चतुर्थ अध्याय

अवकाश ग्रहण
याने सन् १९६८ के बाद

विधान सभा की लगभग तीस वर्षों की सदस्यता में विधान सभा के कार्य विभिन्न पहलुओं से करने और देखने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के पूर्व मुस्लिम लीग के शासन काल का एवं स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस एवं विरोधी पक्ष के शासनकाल का भी दृश्य देखने में आया। साधारण सदस्य के नाते, स्पीकर के पद पर रहकर एवं मिनिस्टर के पद पर रहते हुए, विधान सभा में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। चुनाव में भी मुझे सदा अभूतपूर्व सफलता प्राप्त होती रही और अपने निर्वाचन क्षेत्र को मुझे कभी भी बदलना नहीं पड़ा। १९३८ में मैं निर्विरोध विधान सभा में गया। १९४६ में भी बिना वास्तविक विरोध के मैं गया; क्योंकि नाम उठाने की अवधि बीत चुकी थी, अतएव मतदान हुआ अवश्य, लेकिन दोनों तरफ का मतदान हमलोगों को ही करना पड़ा, ताकि हमारे विरोध में जो खड़े हुए थे, उनकी जमानत जब्त न हो जाय। १९५२, १९५७ एवं १९६२ तीनों ही चुनावों में मुझे लगभग ७५ प्रतिशत मत प्राप्त हुए और सभी विरोधी दलों की जमानतें जप्त हुई। १९६७ में हमारे विरोध में जनसंघ की ओर से डा० बनारसीप्रसाद केडिया के खड़े होने के कारण वास्तव में जिसे संघर्ष कहना चाहिए, वह हुआ। किन्तु इस चुनाव में भी प्रचण्ड बहुमत से मेरी विजय हुई। इस तरह मैं छ: चुनावों में लगातार सफलता के साथ चुनावों में लड़ा।

मेरा चुनाव-क्षेत्र 'बड़ाबाजार निर्वाचन क्षेत्र' के नाम से परिचित था। कलकत्ते में यह क्षेत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र समझा जाता था। सारा व्यापार—क्या देशी, क्या विदेशी—सभी इस क्षेत्र में हैं। जितनी महत्वपूर्ण सरकारी संस्थाएँ हैं, वे इसी के अन्दर हैं—राइटर्स बिल्डिंग, नया सचिवालय, हाईकोर्ट, राजभवन, रिजर्व बैंक, प० बंगाल विधान सभा एवं अन्य सरकारी संस्थाएँ आदि। भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों के लोग इस क्षेत्र में काफी संख्या में निवास करते हैं। धन की दृष्टि से भी यहाँ सभी वर्गों के लोग पाये जाते हैं। मजदूर वर्ग की संख्या भी बहुत बड़ी है—उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब इत्यादि जगहों के मनुष्यों की संख्या बहुत काफी है। मुसलमान भी बहुत बड़ी संख्या में हैं। गरीब और अमीर वर्ग, दोनों ही यहाँ काफी प्रभाव रखते हैं। इस तरह सब मिलाकर अबंगालियों की संख्या अधिक होने के कारण यह क्षेत्र अबंगाली क्षेत्र समझा जाता है।

हमारे निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाताओं का विश्वास इतनी लम्बी अवधि तक बना रहा, इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। चुनाव के समय भी मुझे अपने मतदाताओं के घरों में जाकर मत के लिए कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी—केवल अपने क्षेत्र में सब जगह

सभाएँ कर देता था और वहीं पर उस मोहल्ले के मतदाताओं से जो मुलाकात हो जाती थी, वही यथेष्ट था। सच पूछिये तो राजनैतिक जीवन में चुनावों का वास्तविक कष्ट मुझे भोगना नहीं पड़ा, जो कि साधारणतया लोगों को भोगना पड़ता है—न हमें किन्हीं मतदाताओं को निरर्थक आश्वासन ही देने पड़े और न उन्होंने हमें किसी प्रकार का कष्ट ही दिया।

मंत्रिमण्डल में भी शामिल होने में कभी कोई कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। प्रत्येक राजनीतिज्ञ का अनुभव मुझ से भिन्न था। राजनैतिक क्षेत्रों में यह धारणा हो गयी थी कि मैं अपने क्षेत्र में अजेय हूँ और इस क्षेत्र से कांग्रेस विजयी होगी, इसका संदेह किसी को भी नहीं रहता था। पार्लियामेण्ट के लिए कांग्रेस के द्वारा जो सदस्य खड़े होते थे, उनको भी हमारे क्षेत्र से वहुत वड़े मतों का सहारा मिल जाता था। १९५२ ई० में लोक सभा के लिए इस क्षेत्र से श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका खड़े हुए। दुर्भाग्यवश उनके विरुद्ध में डा० मेघनाद साहा जैसे विख्यात वैज्ञानिक के खड़े हो जाने के कारण वे सफल न हो सके। इसके वाद १९५७, १९६२, १९६७ में श्री अशोक सेन कांग्रेस की ओर से खड़े हुए और वे इन सभी चुनावों में सफल हुए।

१९६७-६८, प० बंगाल का राजनैतिक वातावरण

ता० १ मार्च, १९६७ को मेरा मंत्रित्वकाल समाप्त हुआ। कांग्रेस दल का विधान सभा में वहुमत नहीं रहा और श्री अतुल्यघोष ने यह घोषणा कर दी कि वे किसी दूसरे दल के साथ मिलकर मंत्रिमण्डल का गठन नहीं करेंगे। उस समय केवल १३ सीटों की आवश्यकता थी और यह आसानी से संभव था कि किसी दूसरे दल के साथ मंत्रिमण्डल वनाया जा सके। पीछे यह कठिन हो गया और प्रयत्न करने पर भी उसमें सफलता नहीं मिल सकी थी। १-२ मार्च को कांग्रेस विरोधी दल ने अपना मंत्रिमण्डल वनाया, जिसके मुख्य मंत्री श्री अजय मुखर्जी हुए और उप मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु हुए। इस मंत्रिमण्डल में कम्युनिस्ट पार्टी की तूती वोलने लगी।

८ मार्च, १९६७ को नये गैरकांग्रेसी मंत्रिमण्डल के मंत्रित्वकाल में प० वंगाल विधान सभा की पहली बैठक हुई। विधान सभा के सारे दरवाज़े दर्शकों के लिए खोल दिये गये, कोई प्रवेशपत्र की दरकार नहीं थी, अतएव दर्शकों से सारी विधान सभा भर गयी। जो कांग्रेसी सदस्य विधान सभा में जाते थे, उन्हें उपस्थित जनसमूह के द्वारा वेइज्जत होना पड़ता था। ऐसा नज़ारा विधान सभा के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मुझे भीतर प्रवेश करने में कोई कठिनाई नहीं हुई, तो भी विधान सभा का सारा वातावरण दूषित हो गया था। विधान सभा के अध्यक्ष श्री विजयकुमार वनर्जी चुने गये और इनका कार्य विना विघ्न-वाधा के लगभग चार हफ्ते चला। हमलोग विरोधी दल की सीटों पर बैठे थे, जो वहुत दिनों के वाद एक नया अनुभव था। कांग्रेस पार्टी के नेता प्रफुल्ल वावू नहीं वनाये गये, क्योंकि वे विधान सभा के सदस्य नहीं चुने गये। उनके स्थान में श्री खगेन्द्रनाथ दासगुप्ता दल के नेता वने। कांग्रेस दल की संख्या यथेष्ट होते हुए भी वह श्रीविहीन हो गयी। तथापि इस वात की सदैव चेष्टा जारी रही कि नवीन मंत्रिमण्डल में फूट पड़ जाये और यह टूट जाये।

नये मंत्रिमण्डल में श्री सुबोध बनर्जी श्रम-विभाग के मंत्री हुए। इन्होंने मजदूरों को खुली इजाजत दे दी कि वे मालिकों को, जब चाहें और जहाँ चाहें, घेराव करके रख लें और खाने-पीने या जाने-आने की सुविधा भी नहीं दें, जब तक कि मजदूरों को मांग वे स्वीकार न करें। इसके कारण पश्चिम बंगाल के व्यापारी समाज में बड़ा आतंक पैदा हो गया और यहाँ से व्यापार-वाणिज्य अन्य प्रान्तों में स्थानान्तर होना शुरू हो गया। नया व्यापार तो कोई इस प्रान्त में बैठाना ही नहीं चाहता था। ऐसा करना सरासर कानून के बरखिलाफ था, लेकिन उस समय की सरकार द्वारा पुलिस को घेरावों से मालिकों को छुड़ाने का आदेश देने से इन्कार करने से बड़ी कठिन समस्या पैदा हो गयी। उधर उत्तरी बंगाल में नक्सलवाड़ी के इलाके में एक दल ऐसा उत्पन्न हुआ, जो जोतदारों की हत्या करने लगा और तत्कालीन सरकार द्वारा उनकी भी रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की गयी। इस दल का नाम ही नक्सलवाड़ी दल पड़ गया, जो जब चाहे जिस किसी को जान से मार दे और उसका कुछ भी नहीं हो। बहुत से पुलिस के अधिकारी राह चलते मारे जाने लगे। सड़कों पर ट्राफिक का संचालन करनेवाले कितने ही पुलिसवाले मार दिये गये। हेमन्त वसु, नेपाल राय जैसे नेताओं को भी मार दिया गया, और भी कितने ही आदमी मारे गये। अराजकता का साम्राज्य हो गया। कम्युनिस्ट पार्टी भी अपनी नयी सहयोगी पार्टियों के साथ मिलकर काम करने के बजाय अपना आधिपत्य कायम रखने में लगी हुई थी। मुख्यमंत्री श्री अजय मुखर्जी को राइटर्स बिल्डिंग में उनके चैम्बर के बाहर बेइज्जत कर दिया गया, किन्तु श्री ज्योति बोस अपने चैम्बर से बाहर तक नहीं आये। पश्चिम बंगाल की ऐसी दुर्वस्था हो गयी कि लोग अन्य प्रान्तों में जाकर व्यापार ही नहीं करने लगे, बल्कि रहने भी लगे। फलस्वरूप कम्युनिस्ट पार्टी के विरुद्ध उसी की अन्य सहयोगी पार्टियां भी काम करने लगीं।

२ अक्तूबर, १९६७ को ऐसी स्थिति हो गयी थी कि अजय बाबू अपना इस्तीफा देने के लिए राजभवन में चले गये थे। हमलोग सभी कांग्रेस भवन में बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे कि उनके इस्तीफे की खबर किसी भी समय मिल जाय। परन्तु अन्तिम समय में अजय बाबू ने अपना मत बदल दिया और उन्होंने इस्तीफा नहीं दिया। अन्त में ४ नवम्बर, १९६७ को श्री प्रफुल्ल घोष ने मंत्रिमंडल से स्तीफा दे दिया और कांग्रेस के सहयोग से उन्होंने मंत्रिमंडल का गठन किया। कांग्रेस पार्टी मंत्रिमंडल में शामिल नहीं हुई, लेकिन अपना समर्थन इस मंत्रिमंडल को देना स्वीकार किया। श्री प्रफुल्ल घोष बराबर कांग्रेस को आग्रह करते रहे कि उनके मंत्रिमंडल में बिना शामिल हुए वे कार्य नहीं चला सकते हैं। अतएव, जनवरी १९६८ में कांग्रेस मंत्रिमंडल में शामिल हो गयी।

१४ फरवरी, १९६८ को एसेम्बली का अधिवेशन हुआ; परन्तु स्पीकर ने उस अधिवेशन को भी मुल्तवी कर दिया। विरोधी पार्टी किसी भी तरह सदन का काम चलने देना नहीं चाहती थी। अतएव राज्यपाल महोदय एक बगल के दरवाजे से बहुत मुश्किल से सदन के अन्दर पहुँच पाये। वे कुछ ही शब्द बोल पाये थे कि स्पीकर महोदय ने इस अधिवेशन को भी स्थगित कर दिया। स्पीकर महोदय इस मंत्रिमण्डल को स्वीकार नहीं करते थे। अन्त में जब कोई उपाय नहीं दिखाई दिया, तब २० फरवरी, १९६८ को केन्द्र ने प० बंगाल में गवर्नर का शासन लागू कर दिया और एसेम्बली

भंग कर दी गई। इस तरह लगभग ३० वर्षों तक एसेम्बली का सदस्य रहकर मेरा कार्यकाल समाप्त हुआ और इसके साथ ही मेरे सक्रिय राजनैतिक जीवन का भी अन्त हुआ।

राज्यपाल का शासन होने के वाद चुनाव के लिए नयी तिथियां पहली नवम्बर १९६८ में निश्चित हुईं, किन्तु उस साल भयंकर वाढ़ आ जाने के कारण अन्त में यह तिथियां वदल कर फरवरी १९६९ में रखी गयीं। ९ महीने के विरोधी दल के शासन में लोगों को जिन कठिनाइयों को झेलना पड़ा और दुर्दशा इस प्रान्त की हुई, उससे ऐसी आशा की जाने लगी थी कि अगले चुनाव में कांग्रेस विजयी हो सकेगी। कांग्रेस पार्टी ने मुझ से इस चुनाव में अपने क्षेत्र से खड़ा होने के लिए कहा। परन्तु राजनीति की जो दुर्वस्था भारत के हर प्रान्त में हो चुकी थी, प० वंगाल में तो सभी शासन गड़वड़ हो चुका था, उसमें राजनीति में रहना उचित नहीं मालूम पड़ा। परिवार वाले भी इस में रहने के पक्ष में नहीं थे। मेरा स्वास्थ्य भी कुछ ठीक नहीं था और काफी समय तक मैं विधान सभा और मंत्रिमण्डल में रह चुका था। अतएव यह निश्चय किया गया कि अब मैं चुनाव में न खड़ा होऊँ, यद्यपि मुझे इस निर्णय के करने में काफ़ी कठिनाई हुई। जब मैंने इसकी सूचना कांग्रेस को दी तो कुछ अधिकारी मित्र अप्रसन्न भी हुए, तथापि मैंने और खड़ा होना उचित नहीं समझा और मेरे स्थान में श्री रामकृष्ण सरावगी, जो मेरे बन्धुओं में थे, तथा अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के प्रधान मंत्री भी थे; कांग्रेस के द्वारा मनोनीत किये गये और चुनाव में सफल भी हुए। अतएव यह सीट छोड़ने के वाद भी कांग्रेस पार्टी के हाथों में ही रही। चुनाव १९६९ में हुआ, परन्तु इसमें कांग्रेस बहुत कम सीटें प्राप्त कर सकी। लोगों ने तो बहुमत की आशा की थी, परन्तु बहुत कम सीटें ही मिलीं—वहुमत तो दूर की वात थी। विरोधी पार्टी ने फिर मंत्रिमंडल का गठन किया, परन्तु यह मंत्रिमंडल भी बहुत दिनों तक नहीं चल सका और फिर से राज्यपाल का शासन हो गया और एसेम्वली तोड़ दी गयी।

१९६८ के चुनाव के वाद कांग्रेस पार्टी हर प्रान्त में निर्बल हो गयी और वहुत से सदस्य कांग्रेस छोड़कर अन्य पार्टियों में जा मिले और नयी-नयी पार्टियों का भी प्रादुर्भाव हुआ। देश में अराजकता का वातावरण फैल गया। देश का राजनैतिक भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा।

१९६९ का राष्ट्रपति चुनाव, तदुपरान्त. . . .

१९६९ में राष्ट्रपति का निर्वाचन होने वाला था। कांग्रेस के वरिष्ठ नेता श्री मोरारजी देसाई, श्री एस० के० पाटिल, श्री अतुल्य घोष आदि चाहते थे कि लोकसभा के स्पीकर श्री एन० संजीव रेड्डी को राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित किया जाये। परन्तु प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का मत कांग्रेस के इन पुराने और वरिष्ट नेताओं से नहीं मिलता था और ऐसी आशंका हो रही थी कि श्रीमती गांधी को अपने प्रधान मंत्रित्व पद से हटाने के लिए चेष्टाएँ हो रही हैं। कांग्रेस पार्टी में फूट के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वे कांग्रेस के संगठन में जो उनके विरोधी हैं, उनसे लड़ेंगी। यद्यपि संजीव रेड्डी के नामांकन पत्र में उनका दस्तखत हो गया था तथापि उनका भीतरी समर्थन उनको प्राप्त नहीं था। श्री वी० वी० गिरि जो उस समय कार्यवाहक राष्ट्रपति थे, वे श्री संजीव रेड्डी के विरुद्ध में खड़े हो गये। श्रीमती इन्दिरा

गांधी और इनके समर्थकों ने श्री वी० वी० गिरि का समर्थन किया और समूची कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गयी। श्री वी० वी० गिरि चुनाव जीत गये। उनके जीतने से श्रीमती गांधी का प्रभाव देश में बहुत बढ़ गया। श्री मोरारजी देसाई से श्रीमती इन्दिरा गांधी ने वित्त विभाग ले लिया और मुरारजी भाई ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। हठात् बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर डाला गया। इसका प्रभाव देश में श्रीमती गांधी के अनुकूल बहुत रहा और धीरे-धीरे पुराने कांग्रेसी नेताओं का प्रभाव घटता चला गया। श्रीमती इन्दिरा गांधी अत्यन्त प्रभावशाली कांग्रेस नेता के रूप में देश के सामने आयीं और ऐसा प्रतीत हुआ कि देश में जो विघटन हो रहा है, वह रुक सकेगा।

१९७१ में लोकसभा का चुनाव हुआ और इसमें कांग्रेस प्रचण्ड बहुमत से विजयी हुई। सन् १९७१ दिसम्बर में पाकिस्तान के साथ पुनः युद्ध हुआ, जिसमें भारत विजयी हुआ और पाकिस्तान का पूर्वी हिस्सा उससे अलग होकर 'बंगलादेश' के नाम से एक स्वतंत्र राज्य बना। इस युद्ध के आगे-पीछे की राजनीति में भी श्रीमती गांधी नेउच्च कोटि की राजनैतिक प्रौढ़ता का परिचय दिया। १९७२ में सब प्रान्तों का निर्वाचन हुआ, उसमें भी श्रीमती गांधी के दल की भारी विजय हुई।

इस तरह देश के राजनैतिक गगन में एक नये दिव्य चमकते हुए तारे का उदय हुआ और देश में स्थायी शासन का आविर्भाव दिखाई देने लगा। पुराने कांग्रेसी नेता सभी प्रभावहीन हो गये और उनका प्रभाव देश में कुछ भी नहीं रहा। प० बंगाल में फिर से कांग्रेस का शासन हुआ और उसके मुख्य मंत्री श्री सिद्धार्थ शंकर राय हुए। श्री रामकृष्ण सरावगी, जो हमारी सीट पर खड़े होकर विजयी हुए, वे भी इस मंत्रिमण्डल में लिये गये और राज्यमंत्री के रूप में काम करने लगे। प० बंगाल में फिर से राजनैतिक स्थिरता आयी। व्यापार बढ़ा, स्थिति सुधरी। नक्सली लोगों का भी दमन किया गया। जान और माल सुरक्षित हुए और सारे देश की हवा बदल गयी। श्रीमती गांधी ने इतने थोड़े समय में जितना प्रभाव पैदा किया, वह एक अभूतपूर्व घटना है।

१९७३ और १९७४ में कहीं बाढ़ और कहीं सूखा के कारण अन्न की उपज में कमी हुई और उसके दाम अनाप-शनाप बढ़ने लगे। उधर तेल पैदा करनेवाले देशों ने यकायक तेल का दाम तिगुना कर दिया। इसका असर सारे संसार के ऊपर पड़ा। संसार की आर्थिक व्यवस्था डावांडोल हो गई। उसके कारण भी महंगी का वातावरण संसार में उत्पन्न हो गया और भारतवर्ष पर भी उसका असर पड़े बिना नहीं रहा। हर चीजें इतनी महंगी हो गयीं कि जनता में बड़ी बेचैनी आ गयी। साथ-साथ हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार भी इतना बढ़ा, जितना पहले कभी नहीं हुआ था। इधर सरकार ने भी कोयले का राष्ट्रीयकरण कर लिया, जिससे बाजारों में कोयले का अभाव हो गया और दाम भी बहुत बढ़ गया। गेहूँ के व्यापार का राष्ट्रीयकरण भी सरकार ने करने की घोषणा की, उससे भी एक विकट स्थिति उत्पन्न हो गयी। अन्त में सरकार को गेहूँ के व्यापार के राष्ट्रीयकरण का विचार त्याग देना पड़ा।

श्री जयप्रकाश नारायण और बिहार का छात्र आन्दोलन

१९७४ में श्री जयप्रकाश नारायण ने बिहार में छात्र आन्दोलन का साथ दिया।

उन्होंने मांग की कि बिहार के मंत्रिमंडल को तोड़ दिया जाये। एसेम्बली को भंग कर दिया जाये, भ्रष्टाचार को रोका जाये, महंगाई कम की जाये इत्यादि। श्रीमती गांधी की सरकार ने ऐसा करना उचित नहीं समझा और श्री जयप्रकाश नारायण एवं श्रीमती गांधी में गहरा मतभेद उत्पन्न हो गया और पारस्परिक राजनैतिक युद्ध का श्रीगणेश हो गया।

कांग्रेस की स्थिति में और श्रीमती गांधी के प्रभाव में इस समय के बाद से ही फर्क पड़ना प्रारंभ हो गया। भविष्य के गर्त में क्या है कहना मुश्किल है, परन्तु जो भी हो अगर राजनैतिक अस्थिरता पैदा हुई तो देश के लिए बहुत हानिकारक होगी। भ्रष्टाचार इस सीमा तक पहुँच गया है कि इसे हटाना सहज नहीं है। प्रजातंत्र और साम्यवाद हमारा राजनैतिक सिद्धान्त है, जिनके द्वारा हम देश को समृद्ध बनाना चाहते हैं। सिद्धान्ततः यह ठीक है, परन्तु आज जो भ्रष्टाचार हो रहा है, वह इन दोनों सिद्धान्तों के कारण भी हो रहा है। इन दोनों की जो मूर्ति पाश्चात्य देशों से हमें मिली है, वह हमारे देश की परिस्थिति से भिन्न है। इसे हमें अपनी स्थिति के अनुकूल रूप देना होगा, तभी हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे। जब से चुनाव आरम्भ होता है उसी समय से भ्रष्टाचर भी शुरू हो जाता है। जब हम समाजवाद के सिद्धान्तानुसार चलने की कोशिश करते हैं और विभिन्न व्यापारों को अपने हाथों में लेते हैं, तभी हमें सरकारी कर्मचारियों के द्वारा इन व्यापारों को चलाना पड़ता है। अत्यन्त दुख का विषय है कि सरकारी कर्मचारियों का नैतिक स्तर भी ऐसा नहीं है, जो देश के कल्याण की दृष्टि से वे इन राष्ट्रीयकृत व्यापारों को चला सकें। जो ऊँचे आफिसर हैं, उनकी तनख्वाहें तो बढ़ाई नहीं जा सकतीं, क्योंकि साम्यवाद इसमें बाधक है, परन्तु जितना अधिकार उनको प्राप्त है और उसमें वे जितना भ्रष्टाचार के द्वारा लाभ उठा सकते हैं, उस लोभ का संवरण करना भी उनके लिए असंभव है। उनकी जो तनख्वाहें भी हैं, उनमें से इन्कमटैक्स वगैरह काटकर जो उन्हें प्राप्त होता है, वह इस महंगी के जमाने में उनके परिवार के जीवनयापन के लिये बिल्कुल अपर्याप्त है। स्वाभाविक है कि वे भी स्थितिवश लाचार होकर भ्रष्टाचार में आ जाते हैं और उसके बाद वह एक आदत बन जाती है। यह एक बहुत बड़ा विषय है। जिस पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

अन्तर्देशीय आपातकालीन स्थिति

१९७५ में देश की राजनैतिक स्थित अत्यन्त गंभीर हो गयी——तबतक श्री जयप्रकाश नारायण ने बिहार में अपनी मांगों को पूरा कराने के लिए वहाँ के शासन को ठप्प कर देना चाहा और दूसरी समानान्तर सरकार कायम करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुलिस और फौज के आदमियों को भी आह्वान किया कि वे सरकार के गैरकानूनी आदेशों को अमान्य करें। कांग्रेस के जो विरोधी दल थे, उन्होंने भी उनका साथ दिया और इस आन्दोलन को भारतव्यापी बनाने की योजना बनने लगी। ऐसा प्रतीत होता था कि देश में अराजकता की सृष्टि हो रही है और देश का शासन इस स्थिति का मुकाबला करने में अपने को असमर्थ पा रहा है। इस कठिन समय में भारत सरकार ने आन्तरिक आपातकालीन स्थिति की घोषणा की। जयप्रकाश नारायण एवं अन्य विरोधी दल के

नेताओं को नजरबन्द कर दिया गया। समाचार-पत्रों की खबरें सेंसर होकर आने लगीं। अदालतों के अधिकार छीन लिये गये। सरकार ने अपने कर्मचारियों के विरुद्ध भी कदम उठाये, जिससे कर्मचारियों में भय व्याप्त हुआ और उनमें जो भारी अनुशासनहीनता आ गयी थी, वह बहुत अंशों में दूर भी हो गयी। कर्मचारी डरने लगे कि कहीं उन्हें नौकरी से हाथ न धोना पड़े। साथ ही व्यापारियों के विरुद्ध भी कठोर कदम उठाये गये और सारे देश के व्यापारी समाज में आतंक छा गया। एक मौका व्यापारी समाज को भी दिया गया कि वे अपनी छिपी आय एवं सम्पत्ति को बतला दें, तो उनके साथ रियायतें की जाएंगी। इसका भी परिणाम अच्छा हुआ। ३१ दिसम्बर, १९७५ तक साढ़े चौदह सौ करोड़ की आय और सम्पत्ति घोषित हुई। जनकल्याण के भी बहुत से कार्य उठाये गये, जिसका परिणाम अच्छा हुआ और सरकार के पैर फिर से मजबूत हो गये। जो काले बादल आकाश में मंडरा रहे थे, वे तितर-बितर हो गये। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने जैसा पहले चमत्कार दिखलाया था, इसी तरह से इस कठिन समय में भी प्रदर्शित किया। यद्यपि विदेशों में इसकी समालोचना की जा रही है कि जनता के प्रजातांत्रिक अधिकारों को छीन लिया गया है तथापि देश की जो स्थिति हो गयी थी, उसमें यह कदम अनिवार्य था।

लेकिन सन् १९७६ के पूर्वार्द्ध के बीतते-न-बीतते आपातकालीन घोषणा एवं स्थिति का दुरुपयोग किया जाने लगा। हजारों आदमियों को मीसा के अन्तर्गत जेलों में ठूँस दिया गया और उनमें से अधिकांश व्यक्तियों को 'सी' क्लास में रखा गया। आदालत में अपील करने का इनका अधिकार भी छीन लिया गया। साथ ही जनता के मौलिक अधिकारों को भी मुवत्तल कर दिया गया। नसबन्दी के कारण भी बहुत बड़ा अनाचार हुआ। इन सबसे देश में श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रति भावना, कुभावना में उत्पन्न हो गई।

श्रीमती गांधी के पुत्र श्री संजय गांधी को राजनीति में आगे बढ़ाने के लिए बहुत कुछ और कई तरह से प्रोत्साहन दिया गया। लोगों की ऐसी धारणा बन गई कि श्रीमती गांधी अपने पुत्र को प्रधान मंत्री पद के लिए तैयार कर रही हैं। निरंकुश शासन का अधिकार पाने के बाद उसका कई प्रकार का दुरुपयोग स्वाभाविक हो जाता है।

बिना स्थिति को समझे श्रीमती गांधी ने चुनाव की घोषणा कर दी। इसका परिणाम जो कुछ हुआ, वह सभी की आँखों के सामने है। उत्तरी भारत के शासनतंत्र से कांग्रेस धो-पोंछकर फेंक दी गई और नई बनी जनता पार्टी को देश के राजतंत्र का अधिकार प्राप्त हुआ। परन्तु जनता पार्टी पूरी तरह से अभी तक सुदृढ़ता नहीं ला पाई है। अतः आगामी दो-तीन वर्ष भारतवर्ष की राजनीति बड़े महत्व की रहेगी।

मेरी धारणा और विश्वास रहा है कि प्रकृति के नियमानुसार भारतवर्ष जो किसी समय चरम शिखर पर था और जिसके ज्ञान, वैभव व संस्कृति से संसार लाभान्वित होता था, उसके घोर पतन और सैकड़ो वर्षों की गुलामी के बाद दिन पलटे हैं और इसका उत्थान का समय आया है। मैं देख रहा हूँ कि जब-जब कुछ चिन्ताजनक समय उपस्थित हुआ है, तब-तब ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिससे वह अवस्था फिर से सुधर गयी है। भारतवर्ष एक विषम परिस्थिति से गुजर रहा है, परन्तु इसका भविष्य मुझे काफी आशामय ही लग

रहा है। मेरा विश्वास है कि देश सारी कठिनाइयों को झेलते हुए आगे बढ़ेगा। फिर ईश्वर की मर्जी।

मेरी सोलीसिटरी की स्वर्ण-जयन्ती

मैं जनवरी १९२१ में सोलीसिटर हुआ था। यद्यपि स्पीकरशिप व मंत्रित्वकाल ने मेरी सोलीसिटर छुड़ा दी थी, तथापि जनवरी १९७१ में मेरी सोलीसिटरी के ५० वर्ष पूरे हो गये। सोलीसिटरों की कलकत्ता हाईकोर्ट में जो संस्था है, उसका नाम है 'इनकारपोरेटेड ला-सोसाइटी'। इस संस्था के द्वारा मेरी स्वर्ण जयन्ती मनाई गयी और एक अभिनन्दन-पत्र मुझे प्रदान किया गया। इस आयोजन में उक्त सोसाइटी के सदस्य बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुए थे। श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका भी जून १९२१ में सोलीसिटर हो गये थे। अतएव उनकी भी स्वर्ण-जयन्ती इसी के साथ मनाई गयी। सोलीसिटर का व्यवसाय एक जमाने में बहुत लाभप्रद था, परन्तु हाईकोर्ट से ओरिजिनल साइड के अधिकारों में जैसे-जैसे कमी होती गयी; वैसे-वैसे इस व्यवसाय का भी भविष्य खराब होता गया। चूंकि मुकदमों के अतिरिक्त अन्य कार्यों में सोलीसिटर संलग्न रहते हैं, अतएव कुछ बड़े-बड़े सोलीसिटर तो अपनी आफिस पूर्ववत् ही चला रहे हैं। परन्तु अन्य सोलीसिटर जो हाईकोर्ट के ऊपर ही निर्भर करते थे, उनकी अवस्था शोचनीय हो जाने के कारण वे चिंतित थे और उन्होंने अपनी कठिनाइयों का जिक्र भी किया। इसका समुचित उत्तर मैंने और श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका ने भी दिया। प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका हम से कई वर्ष बड़े होते हुए भीउनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है और अब भी पूर्ववत् सब कामों को करते हैं। यह एक सौभाग्य और गर्व की बात है।

मेरी धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाएँ

जब मुझे एसेम्बली से छुटकारा मिल गया और स्वास्थ्य के खराब रहने के कारण दूसरा कोई कार्य करना संभव नहीं था, तब यही विचार उत्पन्न हुआ कि अधिकांश समय धार्मिक और आध्यात्मिक पठन-पाठन और भावनाओं में विताया जाये। मेरी धर्मपत्नी कुछ वर्षों पहले से ही वेदान्त के ग्रन्थों में रुचि लेने लगी थीं और उसका पठन-पाठन, उपदेश-सत्संग भी बराबर चलता रहता था। नित्य एक घंटे कोई धार्मिक ग्रन्थ सुनाने के लिए एक व्यक्ति उसने नियुक्त कर लिया था और इसके अतिरिक्त २४ घण्टे में ५-६ घण्टे धार्मिक और आध्यात्मिक ध्यान, पूजा, गीता-पाठ इत्यादि करने में समय लगाती थीं। वह पढ़ी-लिखी बहुत थोड़ी थी—केवल हिन्दी की पुस्तकें पढ़ सकती थी, तो भी अधिकांश समय घरेलू कामों में न लगकर धार्मिक और आध्यात्मिक चर्चाओं में ही रहतीं।

मैं जब मंत्री था, तो सदैव व्यस्त रहता था। किसी भी समय मुझे अवकाश नहीं मिलता था। १९६७ में जब मैं चुनाव में खड़ा हुआ और गहरी प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न हुई तो वह मुझसे कहा करती थीं कि तुम चुनाव में हार जाओ तो अच्छा हो, क्योंकि बिना हारे हुए तुम इस जंजाल को नहीं छोड़ सकोगे और इन्हीं सांसारिक झंझटों में फंसे रह जाओगे। परन्तु मैं तो चुनाव को जीतने की ही बात सोचता था। चुनाव में मेरी विजय हुई परन्तु कांग्रेस पार्टी बहुमत में नहीं आयी और कांग्रेस पार्टी का मंत्रिमंडल नहीं बना और

मेरा मंत्रित्वकाल समाप्त हुआ। मेरी पत्नी को कोई दुख नहीं हुआ, बल्कि खुशी हुई। जब थोड़े दिनों के बाद पुनः चुनाव में खड़े होने की चर्चा आरम्भ हुई, तो उसका विरोध करने में सबसे अग्रसर वही थीं।

श्री हनुमानदत्तजी जोशी, जो एक अच्छे विद्वान थ और सनातनी दल के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता भी थे, ने उसी समय के आसपास आकर मुझसे कहा कि मैं उनको पन्द्रह मिनट का समय दिया करूँ, ताकि वे कुछ धार्मिक प्रवचन मुझे सुना सकें। उस दिन मुझे मालूम हुआ कि वे एक साल से एक घण्टा के लिए धार्मिक कथाएँ सुनाने के लिए घर में आते हैं। चूँकि हमारे चुनाव इत्यादि हो रहे थे, उन्होंने कभी भी अपना परिचय नहीं दिया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि मैं उनको बहुत वर्षों से जानता था। मैंने उन्हें कहा कि वे हमें एक घण्टा ही धार्मिक प्रवचन सुना दिया करें, मैं उनको समय दे दूंगा। तब से नित्यप्रति एक घण्टा धार्मिक प्रवचन आरम्भ हुआ, जिसे नियमित रूप से मेरी पत्नी तो सुनती ही थीं, परन्तु मैं भी सुनने लगा। बहुत-सी धार्मिक पुस्तकें मैंने गत कई वर्षों में पढ़वाकर सुनीं। बहुत कुछ ज्ञान भी हुआ और हृदय पर भी असर पड़ा। दुर्भाग्यवश श्री जोशीजी का देहान्त हो गया। उसके बाद धार्मिक प्रवचन तो १ घण्टा नित्य ही चलता है, परन्तु वैसा विद्वान व्यक्ति नहीं मिला। इस क्रम में मुझे श्रीमद्भगवद्गीता का शंकर भाष्य, अष्टावक्रगीता, योगवाशिष्ट, महाभारत का शान्तिपर्व, मनुस्मृति, कई उपनिषद्, पंचदशी एवं बहुत से अन्य उपनिषदों व ग्रन्थों के सुनने का अवसर प्राप्त हुआ।

जीवन के प्रारम्भ से ही मुझ में धर्म के संबंध में आस्था थी और अनेक धार्मिक ग्रन्थों को मैंने अपने छात्र-जीवन में ही पढ़ लिया था। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ कि हमारे गुरु पं० योगानन्द कुमार जब हमें पढ़ाने लगे, उसी समय से उनकी अनवरत चेष्टा रही कि मेरा चरित्र उत्तम बने। वे जहाँ रहते थे और जो हमारे पढ़ने का स्थान था, वह एक मन्दिर होने के कारण गुरुकुल की तरह हो गया था। बैठने के लिए मृगछाला, कंबल, चटाई और मन्दिर का चौतरा था। रोज एक श्लोक या हिन्दी-कविता भगवद्भक्ति के संबंध की, मुझे याद करने के लिए दी जाती थी। रोज रात्रि में जब मैं अपनी पढ़ाई समाप्त करता था १ या २ श्लोक गीता के अर्थ सहित बताये जाते थे। सोते समय मनोभावना अच्छी रहे, उसके लिए अच्छी चीजों को स्मरण करते हुए सोने का उपदेश मिलता। चरित्र-गठन और धर्म-संबंधी पुस्तक मुझे पढ़ने के लिए दी जाती। गन्दे लड़कों के साथ मिलने-जुलने का मौका नहीं दिया जाता। सिनेमा, बाइस्कोप इत्यादि जो कुछ भी थे, उसे मैं नहीं देखता था। मेरा यज्ञोपवीत कर दिया गया था। दोनों समय मैं संध्या किया करता था। एक समय तो आजीवन ही करता आया हूँ। श्रीसूक्त, लक्ष्मीसूक्त, गुरुसूक्त मुझे कंठस्थ कराये गये, उसका पाठ जो मैंने छात्र-जीवन में शुरू किया; वह आज भी नित्य करता हूँ। स्तोत्र इत्यादि को कंठस्थ करना और उसे बचपन से ही पढ़ना जारी हो गया था। मनुस्मृति, तुलसीकृत रामायण, महाभारत, बाल्मीकि रामायण इत्यादि धार्मिक ग्रन्थ छात्रजीवन में ही पढ़ चुका था। मेरी आस्था सनातन धर्म में थी, परन्तु सामाजिक सुधारों के संबंध में मेरे विचार सुधारकों से बहुत कुछ अंशों में मिलते थे, फिर भी मैं उग्र सुधारक नहीं था। मेरे विचार मध्यम मार्गीय होते थे। इन सब मार्गों का अवलम्बन करने के कारण मेरे चरित्र में बहुत कुछ सुधार हुआ और आजीवन

बना रहा। इसका परिणाम मेरे लिए बड़ा लाभदायक और शान्ति देनेवाला हुआ। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मनुष्य जीवन में धार्मिक भावना और सच्चरित्रता की बड़ी आवश्यकता है। उससे वे अपने को सफल और सुखी बना सकते हैं। और यही समाज की रीढ़ है, जिस पर समाज टिक सकता है।

अपने धर्म को समझने के लिए संस्कृत के ज्ञान की भी आवश्यकता है। मैंने बी० ए० तक संस्कृत पढ़ा, उसके कारण मुझे संस्कृत के ग्रन्थों के पढ़ने में बहुत कुछ सुविधा प्राप्त हुई। अब तो संस्कृत की शिक्षा की उपेक्षा की जाती है। यह घातक स्थिति है। विना संस्कृत के ज्ञान के अपने धर्म को समझना असंभव है। धार्मिक भावना को जागृत करना, बचपन से ही आरम्भ करना चाहिए। पीछे चलकर नहीं होता।

समाज-सुधार, शिक्षा-प्रचार और प्रान्तीयता निवारण के प्रयत्न

जैसा कि मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ—मैट्रिकुलेशन पास करने के पश्चात् से ही मेरा सार्वजनिक जीवन आरम्भ हो गया था और उसका प्रारम्भ समाज-सुधार एवं शिक्षा प्रचार के क्षेत्र में आरम्भ हुआ। जबतक मैं मुजफ्फरपुर में था, वहाँ पर जो कुछ किया, उसका विवरण दे चुका हूँ। उसके पश्चात् कलकत्ता आया एवं यहाँ प्रारम्भ में जो कुछ किया, वह भी लिख चुका हूँ।

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की स्थापना १९३५ में हुई। उपर्युक्त क्षेत्रों में काम करने की जो कुछ आवश्यकता मुझे प्रतीत हुई, वह इसी संस्था के माध्यम से करना मैंने उचित समझा। विना किसी संस्था के माध्यम से कोई भी काम करना संभव नहीं होता। समाज-सुधार और शिक्षा-प्रचार का काम था, वह मारवाड़ी समाज के अन्तर्गत हुआ, क्योंकि इसी में सुविधा और सफलता हो सकती है। दायरा यदि बहुत बड़ा हो जाये तो कोई काम ठीक ढंग से नहीं हो पाता। जहाँ तक प्रान्तीयता-निवारण का विषय था, वह भी प्रधानतया मारवाड़ी समाज से ही संबंधित था, क्योंकि इसी समाज के विरुद्ध में प्रान्तीयता की भावना से समय-समय पर पत्रों, फिल्मों एवं पुस्तिकाओं द्वारा विष-वमन किया जाता रहा है और इसके कारण समय-समय पर दंगे भी हो जाया करते थे। दंगे विशेषकर असम और पश्चिम बंगाल में अधिक होते थे। मंत्री होने के नाते पश्चिम बंगाल में जो कुछ भी होता था, वह मेरे मंत्रित्व के दायरे में आ जाता था। परन्तु असम में जो दंगे होते थे, वे मारवाड़ियों और बंगालियों के सम्मिलित विरोध में होते थे, इसलिए उस प्रश्न को अधिक व्यापक रूप में वहाँ लेना पड़ा। मारवाड़ी समाज के विरुद्ध दंगा-फ़साद रोकने, उनके प्रति विष उगलनेवालों का प्रतिकार करने आदि इस प्रकार के अनेक कार्य सम्मेलन के द्वारा ही हुए हैं।

सम्मेलन एक अखिल भारतीय संस्था के रूप में प्रकट हुआ। इसका जन्म कब और कहाँ हुआ, इसका विवरण मैं पहले दे चुका हूँ। १९३७ से ही सम्मेलन का भार मैंने मित्रों के सहयोग से अपने कंधों पर लिया। इसका द्वितीय अधिवेशन १९३८ में सर पद्मपतजी सिंघानिया के सभापतित्व में कलकत्ते में हुआ, तब इसके प्रधान मंत्री के पद को मैंने ग्रहण किया। उस समय अन्य जातीय संस्थाएँ या तो प्रायः लुप्त हो चुकी थीं, या उनकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी। प्रान्तीयता की भावना हर प्रान्त में कुछ न

कुछ बढ़ती जा रही थी, इसलिए सम्मेलन को एक उपयोगी और बलवान संस्था के रूप में बनाना वांछनीय हो गया था। उस समय तक सामाजिक सुधारों के विषय को सम्मेलन के मंच से पृथक् रखा गया था, ताकि सनातनी और सुधारक दोनों दल का एक साथ मिलकर काम करना संभव हो सके। कुछ मित्र समाज-सुधार को इसके अन्तर्गत रखना चाहते थे। उन्होंने अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी कार्यकर्त्ता के नाम से एक अधिवेशन उड़ीसा में किया। परन्तु उसके बाद इसका कोई अधिवेशन नहीं हुआ। परन्तु इसके कारण उड़ीसा में सम्मेलन की प्रान्तीय शाखा बहुत दिनों तक नहीं खोली जा सकी। अन्य आसपास के प्रान्तों में सम्मेलन की शाखाएँ खोली गयीं और समाजोत्थान के जो भी कार्य थे, वे सब प्रारम्भ किये गये। जिस प्रान्त में जितना उत्साह था और जितने कार्य-कर्त्ता प्राप्त होते थे, उसी हिसाब से वहाँ काम किया जाता था। धीरे-धीरे समस्त भारतवर्ष में सम्मेलन की शाखाएँ खोली गयीं, जिनकी संख्या लगभग ६००-७०० होगी। प्रत्येक प्रान्त में प्रचारक भेजे गये और हर प्रान्त में प्रान्तीय सम्मेलन हो, इसकी चेष्टा की गयी। प्रान्तीय सम्मेलनों में सबसे अधिक क्रियाशील विहार सम्मेलन का स्थान रहा और उसके ही सबसे अधिक अधिवेशन हुए। उन्होंने सम्मेलन को चलाने के लिए एक स्थायी कोष भी कायम कर लिया। शिक्षा कोष से भी लगभग सात लाख रुपये अबतक उन्होंने विद्यार्थियों को सहायता दी।

उड़ीसा-असम एवं पश्चिम बंगाल में शिक्षा-कोष की स्थापना हुई और इन कोषों के द्वारा भी छात्रों को सहायता दी जाती रही है। कुल मिलाकर दस लाख रुपयों से अधिक अबतक छात्रों को सहायता स्वरूप दिये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं छात्रावास भी खोले गये हैं। कलकत्ता में भी छात्रावास के लिए सन् १९६४ में जमीन ली गयी, परन्तु अभी तक उस जमीन पर छात्रावास या अन्य कोई संस्था खड़ी नहीं हो सकी है। मारवाड़ी समाज में शिक्षा का बहुत अधिक विस्तार हुआ है। स्त्रियों में भी बहुत अधिक शिक्षा बढ़ी है। शिक्षा में जो कमी थी, वह अब कमी नहीं रही है। हर क्षेत्र में समाज के बन्धु आगे बढ़ रहे हैं। १९२० तक बंगाल, बिहार, उड़ीसा एवं असम में हमलोग केवल ६ एम० ए० पास थे, आज उसकी संख्या हजारों मे पहुँच गयी है। बहुतों ने डाक्टरेट भी प्राप्त कर ली है। सरकारी नौकरियों में भी जहाँ कोई नहीं था, अब आई० ए० एस० तक की नौकरियों में समाज के व्यक्ति देखे जाते हैं। विदेशों में भी डाक्टरी, इंजीनियरिंग, एकाउन्टेन्सी एवं अन्य विभागों में सैकड़ों व्यक्ति पास करके भारत के विभिन्न क्षेत्रों में काम करते हैं और सैकड़ों पढ़ रहे हैं। जिस समय हमने वकालत पास की थी, उस समय समाज के विभिन्न नवयुवकों का इसी ओर झुकाव था। डाक्टरी में केवल डा० किशोरीलाल शर्माने, एल० एम० एफ० और डी० टी० एम० की परीक्षा पास की थी और उनके कुछ समय बाद डा० बनारसी प्रसाद केडिया, एम० बी० बी० एस० हुए थे। अब तो हजारों ही डाक्टर मारवाड़ी समाज के सारे देश में हैं। इंजीनियरिंग में भी जहाँ कोई नहीं दिखाई देता था, वहाँ अब हजारों युवक दिखाई दे रहे हैं। चार्टर्ड एकाउण्टेन्सी सबसे पहले श्री हरिप्रसाद खण्डेलवाल विलायत से पास करके आये और उसी समय श्री काशीनाथजी गुटगुटिया ने भारत में पास की। श्री रामचन्द्रजी सिंघी और श्री जसवंतसिंहजी लोढ़ा जब विलायत चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट बनने के लिए जा रहे थे, तो उनकी

विदाई में छात्रनिवास में एक सभा हुई। मुझे तो आश्चर्य हो रहा था कि हिसाब-किताब सीखने के लिए ये विलायत क्यों जा रहे हैं? जब वे लोग वहाँ से उत्तीर्ण होकर आये तब इसकी महत्ता सर्वविदित हो गयी थी और सैकड़ों मारवाड़ी समाज के युवक अब चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट हो चुके हैं।

सन् १९४७ में सम्मेलन ने पर्दा-प्रथा और दहेज, ये दो सामाजिक विषय अपने कार्य-क्रम में शामिल किए। पर्दा-प्रथा के विरुद्ध विवाह के अवसरों पर प्रदर्शन और आन्दोलन किए गये। इस बुरी प्रथा को समाज से मिटाने का प्रयास तब से अब तक चलता रहा है और समाज के एक बहुत बड़े अंश से यह विनाशकारी प्रथा उठाने में सम्मेलन समर्थ हुआ है। आज भी दक्षिण-मध्य व उत्तर भारत के अधिकतर अंशों में पर्दा-प्रथा विद्यमान है, जो इस बात को काटती है कि केवल शिक्षाप्रचार या समय की हवा से यह प्रथा उठ गई। जिस अंचल में सम्मेलन ने इस प्रथा के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई, वहीं यह प्रथा सर्वाधिक समाप्त हुई है।

दहेज, आडम्वर व दिखावे के विरुद्ध भी सम्मेलन ने समय-समय पर आन्दोलन किए हैं और आज भी कर रहा है। लेकिन समाज के कुछ अंश को इससे राहत देने के अलावा आशातीत सफलता इस क्षेत्र में नहीं मिली है।

उद्योग-धन्धों के प्रति जागरुक होने, बदलती हवा के अनुकूल समाज को परिर्वातित करने, जिस प्रान्तमें रहते हैं, उससे समरस हो जाने आदि अनेक ऐसी महत्वपूर्ण बातें हैं जिनका प्रचार - प्रसार कर सम्मेलन समाज में उपयोगी और ऐसी भूमिका निभा रहा है जो आज अन्य कोई संस्था नहीं करती।

विगत ७० वर्षों में शिक्षा व सामाजिक स्तर का बदलाव : वंश-वृक्ष के परिपेक्ष्य में

मेरे परिवार को छोड़, जिसके सभी सदस्य, कलकत्ता में बस गये हैं, इस समय हमारे भाइयों के परिवार के अधिकांश सदस्य मुजफ्फरपूर में निवास करते हैं और राजस्थान में कोई सदस्य स्थायी रूप से नहीं रहता।

मुझे दो पुत्र एवं ६ कन्यायें हुईं, जिनमें सबसे बड़ी कन्या का देहावसान हो गया। मेरे शिक्षा के क्षेत्र में आ जाने से हमारे परिवार में शिक्षा का प्रसार निरन्तर बढ़ता ही गया। सामाजिक सुधारों की प्रगति भी परिवार में बढ़ती गई। मेरे जीवनकाल में समाज में जो परिवर्त्तन हुए, उनका प्रतिविम्ब मेरे निजी परिवार के ऊपर पड़े बिना कैसे रह सकता था! और इस प्रकार निजी परिवार का इतिहास, शिक्षा की प्रगति और समाज के सुधार—समाज के इतिहास, शिक्षा की प्रगतिऔर सुधारों का द्योतक है।

मेरे पिताजी केवल हिन्दी की पुस्तक ही पढ़ सकते थे, पत्र हिन्दी में लिखना उनके लिए कठिन था। गृह-कार्य में निपुण और दक्ष मेरी माता तो हिन्दी भी बहुत कम जानती थीं—किसी तरह धीरे-धीरे हिन्दी की कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ पाती थीं। मेरे परिवार में मैंने ही पहले-पहल अंग्रेजी में उच्च शिक्षा प्राप्त की और व्यापार को छोड़कर

वकालत के पेशे में आया। पिताजी का जो व्यवसाय था, वह मैंने अपने छोटे भाई को समर्पण कर दिया।

मेरे सबसे बड़े पुत्र कृष्णानन्द का जन्म मुजफ्फरपुर में हुआ और प्रारम्भिक जीवन वहीं बीता। वहीं मारवाड़ी हाई इंगलिश स्कूल में कुछ वर्षों तक पढ़ने के बाद वह कलकत्ता आया तथा श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय में कुछ वर्षों तक पढ़ने के बाद हेयर स्कूल से मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की। प्रेसिडेन्सी कालेज से आई० ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ पास कीं। बी० ए० की परीक्षा में इतिहास में आनर्स लेकर कलकत्ता विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण हुआ और १९४२ में उसने सोलीसिटर की परीक्षा पास करके खेतान एण्ड कम्पनी, जिसमें मैं था, उसी में वह सोलीसिटर बना। सन् १९४३ में वह व्यापारक्षेत्र में प्रविष्ट हुआ और १९४५ में आस्ट्रेलिया जाकर चेन स्टोर संचालन का अनुभव प्राप्त किया। मेरे स्पीकर बनने पर उसने पुनः खेतान एण्ड कम्पनी में सोलीसिटरी प्रारम्भ की और सन् १९५० में जालान एण्ड कम्पनी के नाम से स्वयं का सोलीसिटर फर्म चालू किया।

मेरे कनिष्ठ पुत्र श्यामानन्द ने वकालत की परीक्षा पास करके कलकत्ता हाईकोर्ट में एडवोकेट की हैसियत से कार्य आरम्भ किया। कुछ समय के पश्चात् ही उसने सोलीसिटर की परीक्षा भी पास कर ली और अपने बड़े भाई के प्रतिष्ठान जालान एण्ड कम्पनी में शामिल हो गया। अपने व्यवसाय के अतिरिक्त उसे हिन्दी नाटचकला में प्रारम्भ से ही रुचि रही। उसने बहुत से हिन्दी नाटकों का संचालन किया और उनके अभिनय में भाग भी लिया। अनामिका और अनामिका कला संगम नामक कलकत्ता की प्रसिद्ध नाट्य संस्थाओं में उसका बहुत बड़ा हाथ है। उसने हिन्दी नाटच जगत में अच्छी ख्याति पाई है, जिसके कारण संगीत नाटयकला एकेडेमी, जो भारत सरकार की संस्था है, ने अपना एवार्ड देकर उसे सम्मानित भी किया है।

मेरी पहली कन्या जिसका नाम राधा था (पति—स्व० बृजलालजी तमाखूवाला, साहेबगंज और जो अब इस संसार में नहीं है) का विवाह जब वह १३ वर्ष थी, उसी समय हुआ था। शिक्षा भी उसने बहुत ही कम पाई थी, क्योंकि जमाना वैसा ही था।

दूसरी कन्या लक्ष्मी (पति—तोलारामजी अग्रवाल, किशनगंज) का भी विवाह १३ वर्ष की उम्र में ही हो गया था। उसने भी चार-पाँच क्लास तक ही शिक्षा पाई थी, परन्तु पीछे पठन-पाठन बहुत कुछ चलता रहा, अतएव उसे शिक्षिता कहने में कोई संकोच नहीं है। उसी के सबसे बड़े पुत्र डा० सुशील कुमार अग्रवाल, एफ० आर० सी० एस० हैं, जिनकी मान्यता कलकत्ते के अच्छे सर्जनों में है। उसका दूसरा लड़का श्री नवलकिशोर अग्रवाल कई वर्षों तक मैरिन इंजीनियरिंग पास करके जहाजों में इंजीनियर था। चीफ इंजीनियर के पद पर पहुँच कर उसने इस कार्य को छोड़ दिया और व्यापार-क्षेत्र में आ गया। सबसे छोटा लड़का श्री ओमप्रकाश अग्रवाल खेतान एण्ड कम्पनी में सोलीसिटर है।

तीसरी कन्या सीता है (पति—नारायणप्रसादजी अग्रवाल, पटना) जिसका विवाह १९४० में १५ वर्ष की उम्र में हुआ। पहली कन्याओं के विवाह की तुलना में दो वर्ष की

देरी हुई और इसने मैट्रिक की परीक्षा पास की। सबसे पहले बिना दहेज के विवाह का आरम्भ हमारे परिवार में इसी विवाह से हुआ।

चौथी कन्या गीता (पति—पुरुषोत्तमजी सराफ, रानीगंज) का विवाह रानीगंज में हुआ। उसने भी मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली थी और उसकी उम्र भी १५ वर्ष की थी। यह विवाह भी बिना दहेज के हुआ और इस प्रणाली को आगे बढ़ाया।

पांचवीं कन्या गायत्री (पति—स्व० सज्जनकुमारजी खेतान) का विवाह १७ वर्ष की उम्र में हुआ, जब वह ग्रेजुएट हो चुकी थी।

छठवीं कन्या उमा है (पति—रमेशकुमारजी गुप्ता) इसका विवाह १८ वर्ष की उम्र में हुआ और इसने एम० ए० किया।

हमारे बड़े पुत्र श्री कृष्णानन्द को भी तीन कन्याएँ हैं। सबसे बड़ी कन्या कला (पति—गिरधारीलालजी चौधरी) का विवाह १८ वर्ष की उम्र में हुआ और वह ग्रेजुएट है। उससे छोटी कुसुम (पति—डा० बंसीधरजी अग्रवाल) का विवाह २५ वर्ष की उम्र में हुआ और इसने एम० ए० फर्स्ट डिवीजन में पास किया एवं वकालत की परीक्षा भी पास की। अनुसंधान की छात्रवृत्ति कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त करके कुछ समय अनुसंधान का कार्य किया। तीसरी कन्या निर्मला, (पति—कृष्णकुमारजी छावछरिया) ने एम० ए० की पढ़ाई पूर्ण कर ली थी, परन्तु परीक्षा देने के पहले उसका विवाह हो गया।

इससे स्पष्ट है कि समाज में धीरे-धीरे कन्याओं के विवाह की उम्र बढ़ती गई और कन्याओं में शिक्षा भी बढ़ती रही। समाज का स्त्रीवर्ग जिन परिवर्तनों से इस अवधि में गुजरा, उसका यह सही द्योतक है।

मेरे पौत्र

बड़े पुत्र कृष्णानन्द के दो लड़के हैं। बड़े का नाम कमलनयन जालान और छोटे का विमलनयन जालान है। ये दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। बड़ा लड़का डाक्टर है और पेट की बीमारियों का विशेषज्ञ है और छोटा अर्थ-शास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करके भारत सरकार में एकोनोमिक एडवाइजर के पद पर नियुक्त है।

हमें इस बात का संतोष है कि हमारे बाद हमारी तीसरी पीढ़ी भी देश-सेवा में संलग्न रहेगी और कुल की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी और देश-सेवा-रत रहेगी। आजकल तो एक पीढ़ी का भी ठिकाना नहीं रहता कि क्या होगा? ऐसी स्थिति में हम इसे ईश्वर की विशेष कृपा ही मानते हैं।

अपने परिवार के विषय में लिखते हुए यदि मैं अपनी सहधर्मिणी के संबंध में कुछ भी नहीं कहूँ तो अनुचित होगा। यह मुझसे केवल छः महीने छोटी हैं और आजीवन पेचिश की बीमारी सहते हुए भी आज जीवित और सक्रिय हैं। उनसे मुझे बहुत कुछ सहायता प्राप्त होती है। विशेष रूप से धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-पोत रहने के कारण मुझे भी इन विषयों से सदैव प्रेरणा मिलती रहती है और मेरी जीवन की नैय्या को दक्षता एवं सुखद रूप से चलाने में बहुत बड़ी सहायता मिली है। मैं इसे ईश्वर की असीम कृपा ही समझता हूँ।

हमारे छोटे भ्राता सच्चिदानन्द की तो अकाल मृत्यु ही हो गयी—जैसा कि मैंने पहले वर्णन किया है। उनके तीन लड़के एवं दो कन्याएँ हैं। तीनों लड़के ग्रेजुएट हैं और एक कन्या संस्कृत में एम० ए० में बिहार विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई है। वह बी० ए० आनर्स में बिहार विश्वविद्यालय में प्रथम हुई थी। हमारे छोटे भाई का परिवार मुजफ्फरपुर में ही निवास करता है। एक छोटा भाई मोहनलाल जालान जो असमय में ही कालकवलित हो गया, जिसका जिक्र मैंने पहले किया है, वह अपने पीछे एक पुत्र और एक कन्या छोड़ गया। उसका पुत्र परमानन्द जालान कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत करता है।

मेरा स्वास्थ्य

१९६८ के जनवरी महीने में मैं मजफ्फरपुर में था, वहीं पर एक रात कुछ छाती में दर्द हुआ। इ. सी. जी. किया गया, उसमें कुछ ऐसा मालूम हुआ कि हृदय में कुछ कम रक्त पहुंच रहा है। पूर्ण विश्राम के लिए आदेश दिया गया और कलकत्ते से श्यामानन्द और राधा की मां को भी बुलाया गया। इसे एक्जाइना समझा गया और उसी का इलाज होने लगा। दो-तीन सप्ताह में मैं अच्छा हो गया और कलकत्ते आ गया। इसके वाद भी वार-वार छाती में कुछ दर्द हो जाता था और उसके कारण विश्राम करने की ही सलाह दी गई। यद्यपि हमारी बीमारी के कुछ लक्षण एक्जाइना से मिलते-जुलते नहीं थे, अतएव डा० चड्ढा जो एक अच्छे डाक्टर हैं, उनका मत था कि यह केवल अर्थराइटिस की वजह से ही दर्द हो जाता है—हृदय से इसका संबंध नहीं है। परन्तु मैं जिनकी चिकित्सा के अधीन था, वे उसे एक्जाइना ही मानते थे। बम्बई के डाक्टर दाँते हृदय रोग के प्रसिद्ध चिकित्सक हैं, कलकत्ते आये और उनको भी दिखाया गया। उन्होंने भी इसे एक्जाइना ही वताया। चार-पांच महीने तक यह दर्द समय-समय पर होता रहा। इसी समय आगामी चुनाव की घोषणा हुई और मेरे समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि मैं अगले चुनाव में खड़ा होऊं या नहीं। घर वालों की इच्छा खड़ा होने देने के लिए नहीं थी। हृदय रोग के कारण मेरा मन दृढ़ नहीं होता था। न खड़े होने से आगे बेकारी दिखाई देती थी। इसी दुविधा ने मुझे कष्ट दिया। परन्तु अंत में यह निश्चय हुआ कि मैं बहुत दिनों तक राजनीति में रह चुका हूँ। अब मुझे खड़ा नहीं होना चाहिए और मैं चुनाव में खड़ा नहीं हुआ।

पुनः दिसम्बर १९६९ के शेष में मेरी छाती में बहुत दर्द पैदा हुआ। बैठना और सोना मुश्किल हो गया। कुछ दिनों में मैं स्वस्थ हो गया, लेकिन इसी बीच वात रोग की शिकायत समूचे शरीर में पैदा हो गयी। मार्च १९७० में मैं कलकत्ते आया, लेकिन वात रोग बना रहा। मैं अक्टूबर में परिवार के साथ चित्रकूट गया और एक महीने वहीं रहा। मैं इस बीच बम्बई हो आया और वहाँ पर भी डाक्टरों से विविध रोगों के लिए सलाह की, परन्तु कोई नयी बात नहीं मालूम हुई। चित्रकूट से वापस आने के बाद श्री नन्दलाल ऊँटवालिया की कन्या का विवाह पटना में हुआ, उसमें शामिल हुआ और रेणु का विवाह दिसम्बर में पटना में हुआ, उसमें भी शामिल हुआ। १९७१ के प्रथम भाग में कुछ दिन मुजफ्फरपुर रहकर कलकत्ता आ गया। यहाँ आने के बाद कुछ

बिकोलाई का उपद्रव शरू हुआ, जो चिकित्सा से छूट नहीं रहा था। अन्त में निश्चय हुआ कि प्रास्टेस का ऑपरेशन करवा लेना चाहिए। इस ऑपरेशन से मुझे बराबर डर लगता था, परन्तु इस बार आपरेशन करवा लेना अनिवार्य था। ८ फरवरी, १९७२ को यह ऑपरेशन कलकत्ते में हुआ। इसे मद्रास के प्रसिद्ध हापिस्टल वेलोर के सर्जन डा० भट्ट ने आकर किया। ऑपरेशन सफल हो गया, लेकिन तीन-चार दिनों के बाद सेप्टिक हो गया और छाती में सर्दी तथा कफ पैदा होकर डवल निमोनिया का रूप धारण कर लिया। इससे चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न हो गयी, परन्तु डाक्टरों ने इस स्थिति को सुधार लिया और मैं लगभग एक महीने वेलव्यू नर्सिग होम में रहकर घर वापस आ गया और स्वस्थ्य हो गया। बिकोलाई भी मिट गयी, परन्तु कमजोरी बनी रही। समय-समय पर सर्दी-खाँसी होती रही। इसके बाद मैं बरावर कलकत्ते में ही रहा। मजफ्फरपुर नहीं जा सका। जीवन में यह पहला ही अवसर था जो इतने वर्षों तक मैं मुजफ्फरपुर नहीं गया।

अक्टूवर में टाटानगर में विहार प्रान्तीय मारवाड़ी सम्मेलन के अधिवेशन में शामिल हुआ, परन्तु तबियत खराब हो जाने के कारण दूसरे ही दिन वापस कलकत्ता आगया। सन् १९७३ के अन्त में रांची में विहार प्रान्तीय मारवाड़ी सम्मेलन के साथ अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन का भी अधिवेशन सम्पन्न हुआ। पुनः काफी बड़े पैमाने पर अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का अधिवेशन हैदराबाद में नवम्बर १९७५ में हुआ। इन दोनों ही अधिवेशनों के सभापति हुए श्री भंवरमल सिंघी और प्रधान मंत्री हुए श्री नन्दकिशोर जालान, जिनके सुदक्ष कार्य संचालन में सम्मेलन ने पुनः इन वर्षों में काफी उन्नति की है। मैं इन दोनों ही अधिवेशनों में स्वास्थ्य खराब होने के कारण सम्मिलित नहीं हो सका।

२२ नवम्बर, १९७४ को मैं गिर गया और उससे कमर और पीठ की हड्डी में कुछ चोट आयी। यद्यपि डाक्टरों ने इसे फ्रेक्चर नहीं वताया—वैठना और चलना मुश्किल हो रहा था, तो भी मुझे कई महीनों तक खाट पर ही विश्राम करना पड़ा और अव तो कुछ महीनों से लकवा की भी शिकायत हो गई है। पर उसमें क्रमशः सुधार हुआ है।

उपसंहार

पिछले पृष्ठों में अपनी जीवनगाथा कहने की धृष्टता की है। जो कुछ मैं कर सका हूँ, उसे करनेवाला परमात्मा ही है—मैं तो केवल एक निमित्तमात्र रहा हूँ। भगवान ने गीता में कहा है कि "अहंकार विमूढ़ आत्मा करता है।" अर्जुन को समझाते हुए उन्होंने यही कहा था कि जिन्हें तुम सामने देखते हो, वे तो मरे हुए हैं, तुम तो केवल एक निमित्त मात्र हो। जीवन में मैंने भी यही अनुभव किया है कि ईश्वर की जो इच्छा होती है, वही होता है। विष अमृत हो जाता है और अमृत विष। मैं कोई बड़ा साहित्यिक नहीं हूँ, जो एक सुन्दर काव्य की रचना कर सकूँ। न मेरा जीवन ही कुछ ऐसी घटनाओं से भरा हुआ है, जो किसी के लिए रोचक वन सकता है। मैंने तो सीधी-साधी सरल भाषा में अपनी जीवन गाथा और संस्मरण लिखा है, ताकि मेरी इहलीला संवरण के बाद भी मेरी रामकहानी अपने मित्रों व परिजनों के लिए स्मृति रूप में बनी

रहे। अपनी जीवनगाथा लिखना बड़ा कठिन काम है। बहुत-सी त्रुटियां इसमें रहनी अनिवार्य हैं, जिसके लिए पाठकगण हमें क्षमा करेंगे।

मेरा ८३ वर्ष का दीर्घ जीवन २० वीं सदी से आरम्भ हुआ। इस २० वीं सदी में देश एवं विदेश के इतिहास में सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में अनेक परिवर्त्तन हुए हैं, जितने कि किसी एक सदी में पहले कभी नहीं हुए होंगे। हमारा देश इन परिवर्त्तनों से भरा पड़ा है। २० वीं सदी के प्रारम्भ में जो भारतवर्ष था, वह आज नहीं है—वह एक अतीत की कथा मात्र है। मेरे व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन भी प्रारम्भ से ही लगा हुआ था—इस कारण भी मैंने अपना कर्त्तव्य समझा कि उसका एक लेखा-जोखा दे दूं। प्रत्येक मनुष्य के जीवन से कुछ-न-कुछ प्रेरणा मिलती ही है। मैंने अपने जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न किया है। बड़े भाग्य से मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है। अगर हम इसे योंही गवां दें, तो इससे अधिक दुःख का विषय हो नहीं सकता। सफलता और विफलता तो अपने-अपने प्रारब्ध के अनुसार मिलती है। महात्मा गांधी ने कहा था कि बिना ईश्वर की इच्छा के एक तिनका भी नहीं हिलता। मुझे अपनी सफलताओं और विफलताओं का पूरा ज्ञान है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे अपने जीवन से संतोष है और इसके लिए परमब्रह्म परमात्मा का मैं अत्यन्त अनुग्रह मानता हूँ। जो मनुष्य इस संसार में आता है, उसे एक दिन यहाँ से जाना ही पड़ता है, परन्तु मृत्यु के पहले यदि वह कह सके कि उसने अपना जीवन ठीक तरह चलाया है, तो उससे अधिक भाग्यवान कोई हो नहीं सकता। मेरे पीछे जिन्हें मैं छोड़ूंगा, वे तीसरी पीढ़ी तक मेरे सामने कर्म-क्षेत्र में अवतीर्ण हैं। मेरा विश्वास है कि वे समाज और देश के प्रति कर्त्तव्य का पालन करेंगे।

मेरा जन्म मारवाड़ी समाज के एक साधारण घर में हुआ था। इस समाज में शिक्षा के प्रति उस समय उदासीनता ही दृष्टिगोचर हो रही थी। ऐसी परिस्थिति में सौभाग्य से मुझे ऐसा गुरु प्राप्त हुआ, जैसा किसी बिरले ही भाग्यवान को प्राप्त होता है। उन्होंने मेरे जीवन को ऐसे सांचे में ढाला कि आजीवन मैंने उसका सुखद परिणाम अनुभव किया। यह प्रभु का असीम अनुग्रह था। जीवन के आरम्भ से ही मेरा प्रयत्न था कि मैं सत्पथ पर अपना जीवन-यापन करूँ और यथाशक्ति समाज और देश की सेवा करता रहूँ। अपने जीवन और परिवार को तो सभी देखते हैं, परन्तु वास्तव में जीवन की सार्थकता तभी होती है, जबकि इस शरीर से किसी दूसरे मनुष्य का कल्याण हो सके। मनुष्य कर्त्तव्यों की पोटली अपने सिर पर रखकर जीवन आरम्भ करता है। उसका कर्त्तव्य अपने परिवार के प्रति, समाज और देश के प्रति एवं विश्व के प्रति भी रहता है। जो जितने अंशों में अपने इन कर्त्तव्यों का पालन करता है, उतने ही अंशों में उसका जीवन सफल माना जा सकता है। मनुष्य की सार्थकता संग्रह में नहीं, त्याग में होती है। इसी सिद्धान्त को सामने रखकर जीवन चलाना श्रेयस्कर मार्ग है।

राजनैतिक दृष्टि से इस युग में भारतवर्ष ने बहुत बड़ी उन्नति की है। सैकड़ों वर्षों की पराधीनता ने इसे जर्जर कर डाला था। प्रकृति के नियमानुसार फिर देश के अभ्युदय के दिन आये हैं। पराधीनता की बेड़ी टूटी और देश ने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त की एवं इस स्वतंत्रता को भी शान के साथ निबाहा और अब भी निबाहे जा रहा है।

देश की आर्थिक दुर्दशा भी कम नहीं हुई है। अभी तक देश में करोड़ों मनुष्य दुख और दारिद्र्य के पंक में फंसे हुए हैं—इससे उद्धार पाने का प्रयत्न जारी है और मेरा विश्वास है कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा जबकि हम देश को दरिद्रता के शिकंजे से निकाल सकेंगे और प्रत्येक प्राणी सुख की नींद सो सकेगा। '२० वीं सदी के प्रारम्भ में नारी समाज की भी जो दुर्दशा थी, उसमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है और जो कुछ बाकी है, वह भी शीघ्र पूर्ण हो जाएगा—ऐसा ही मेरा विश्वास है। मैं देश के भविष्य को उज्ज्वल समझता हूँ।

अन्त में मैं अपने प्रेमी मित्रों, शुभचिन्तकों एवं पाठकों से यही सविनय निवेदन करता हूँ कि जो कुछ भी त्रुटियां इस कथा में हुई हों, उसे वे उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री एवं कांग्रेस अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू से हुआ पत्र व्यवहार

New Delhi
October 31, 1951

Dear Mr. Jalan,

Dr. B. C. Roy has written to me and sent me a note prepared by you on the subject of Speakers standing for election. Together with your note, there are copies of correspondence between you and other Speakers. It has been suggested by you as well as by many of the other speakers that a Speaker should stand as an Independent candidate, the idea being that he should not have to contest a seat. The example of the United Kingdom is given.

We have considered this question carefully and we have come to the conclusion that this would not be a proper procedure. We think that a Speaker whom we support should stand as a Congress candidate. This does not come in the way of his impartiality as a Speaker as after election of the Speaker, he does not belong to a party.

If the principle is laid down that a Speaker should stand as an independent candidate and should not be opposed, then it means that every person who is elected as Speaker, must continue as such for the rest of his life unless he himself chooses to leave his post. A Speaker may have functioned only for a short while and there is no reason why he should be presumed to remain a Speaker for ever. Also there is no guarantee that others will not oppose him.

We have therefore come to the conclusion, after careful thought that a Speaker should stand like any other. He may stand as a party candidate or, if he stands as an independent, he takes the risk of being opposed.

Yours sincerely,
Jawaharlal Nehru

The Hon'ble
Shri I. D. Jalan
Speaker, West Bengal Legislative Assembly
Calcutta

Legislative Assembly, West Bengal
Calcutta, The 3rd November, 1951

Dear Srijut Nehru,

Your letter of the 31st October 1951 to hand. I have sent to you a telegram in reply, a copy of which is sent herewith. I appreciate your grounds for objection to the course suggested by me. I had therefore made it clear in my note which I gave to Dr. B. C. Roy in September last (a copy of which is also sent herewith) that I did not desire to bind down the party to re-elect me as the Speaker. It is true that the new Assembly should be free to choose its Speaker and I have therefore wired to you again to give the necessary permission subject to the understanding that it did not imply continuity of office.

If those Speakers who are desirous of standing as Independent candidates be permitted to do so and the Congress either support them or does not set up candidates against them a good start will be made towards the achievement of the goal. An atmosphere has already been created in favour of the Speaker being returned so far as possible without contest and in favour of this principle. For instance, I expect that in my constituency there may not be a contest if I stand as a Speaker or if there be a contest it will be very feeble one, but if I stand on party lines then there is bound to be a contest. If in this election so much be achieved that the Speakers stand as non-party candidates and the Congress being the main political body in the country does not oppose it, in future further progress is likely to be made in this direction, but if no start is made at all I do not know when this will be achieved.

It will also relieve the present Speakers from the embarrassing position of continuing as Speakers and taking part in party campaign. If you still hold the same view as contained in your letter I have no objection to stand as a party candidate.

The Hon'ble Sri Jawaharlal Nehru,
Congress President.
New Delhi

Yours sincerely,
I. D. Jalan

ALL INDIA CONGRESS COMMITTEE
7, JANTAR MANTAR ROAD, NEW DELHI

Date 5th November 1951

Dear Mr. Jalan,

Thank you for your letter of the 3rd November.

We gave full consideration to all aspects of this question and we came to the conclusion that the Speakers should not be differentiated in any way

from other candidates in this election. Any other course is full of difficulties. If they stand as independent candidates, they will have to take the chance of being opposed. Our own wish is that Speakers who belonged to the Congress Party should stand as Congress candidates. That is what the Speaker of Parliament and some others have decided to do so.

The Hon'ble,
Shri I. D. Jalan,
Speaker, Legislative Assembly,
West Bengal, Calcutta

Yours sincerely,
Jawaharlal Nehru

Assembly House, Calcutta
The November 1951

Dear Srijut Nehru,

Yours of the 5th instant to hand. As desired by yourselves I am standing as a Congress candidate in the next election. There was never any question of standing as an Independent candidate without the consent of the authorities of the Congress. The proposal was made simply to establish better traditions and gradually to bring about a healthy convention. I, however, realise the difficulties which have resulted in the decision. The reiteration of a possible opposition by the Congress leaves an impression as if there is some apprehensions in this respect. I should, however, assure that there should be no such misapprehension. Speaking personally, I have been associated with the Congress since 1920 and have stuck steadfastly to it. In my letter to Dr. Roy when he was going to Delhi on the 2nd instant (copy of it is enclosed), I have made it clear that there was no question of any defiance of the Congress though I feel that the decision has put the clock back a bit. I bow down to it.

With regards,

Yours sincerely,
I. D. Jalan

The Hon'ble Shri Jawaharlal Nehru,
President, All India Congress,
7, Jantar Mantar Road
New Delhi

पश्चिमबंगाल के द्वितीय मुख्य-मन्त्री डा० विधानचन्द्र राय से हुआ पत्र-व्यवहार

'Assembly House'
The 15th September, 1951

Dear Dr. Roy,

With reference to the talk that I had with you the other day regarding the propriety of my standing not as a Congress Party candidate, but as a candidate supported by the Congress, I am sending you the following note as desired by you.

(1) You know that the well established cardinal principle for successful working of our Legislatures is that the Speaker should be impartial so that all sections of the House may have implicit faith in his fairplay and willingly obey his authority.

(2) I expressed my desire to you that consistently with the dignity and impartiality of my position as a Speaker, which office I continue to hold during the entire period in which elections will be run and until the first meeting of the Assembly to be held after the general elections under Article 179 of the Constitution and following the practice prevalent in the House of the Commons I should be permitted to stand not as a Party candidate but as a candidate without a party ticket and supported by the Congress as well as by as many other parties as possible. I had also drawn your attention to a resolution (Annexure A) which after much consideration was passed by the last Speakers' Conference, which opined that the Speaker should not enter into party politics and that efforts should be made to establish the convention that his seat should not be originally contested.

(3) In England the general practice is that the Speaker does not stand as a party candidate. He stands in the election as a Speaker and is generally supported by the principal parties of the country. Of course there is always the possibility of a contest when an Independent stands as a rival candidate, but the principal parties support his candidature so that as far as possible his return may be ensured and the contest, if at all, may be easy and the Speaker may not enter into political partisanship in the election compaign. Even if contest occurs the Speaker does not enter into controversies, but relies on the dignity of his high office and impartial discharge of his duties. It is sad that a Speaker is defeated and whenever such a defeat has occurred allegations of partiality were made and that was the ground on which the Speaker lost his election, but such cases have occurred only once or twice during the last 200 years.

(4) The Speaker should be a non-party man after his election and

should not take part in Party politics, is almost an established convention in even our country since the time Mr. V. J. Patel occupied the chair in 1925. On his election as President he declared:

"In the discharge of my duties, I shall, I assure you, observe strict impartiality in dealing with all sections of the House, irrespective of party considerations. From this moment, I cease to be a party man. I belong to no Party. I belong to all Parties."

(5) May, the great Parliamentary authority, has stated:

"Confidence in the impartiality of the Speaker is an indispensable condition of the successful working of procedure and many conventions exist which have as their object not only to ensure the impartiality of the Speaker, but also to ensure that his impartiality is generally recognised. He takes no part in debate either in the House etc. etc. At a general election his seat is rarely contested etc. etc."

(6) In 1935 the Speaker, though was supported by all the Parties, was defeated in the election and the House of Commons therefore appointed a Committee which included Mr. Churchill, Leader of the Conservative Party, Mr. Lloyd George, Leader of the Liberal Party, and Mr. Lansbury, Leader of the Labour Party to find out as to whether any effective device could be adopted to make the Speaker's Seat uncontested and submitted a valuable report on the subject. Some of the relevant passages therefrom are contained in Annexure C. The Committee observed:

"Few can doubt that the task of preserving the traditional dignity and impartiality of his office would be increased if the Speaker felt obliged to enter the electoral contest as a political candidate. However completely he might succeed in preserving within himself his integrity, the implicit trust now placed by all members of the House in his essential justness must inevitably suffer and with this loss in that sense or security which arises from the expectation of fairplay would disappear one of the fundamental features of our political life.

In paragraph 5 they observed: "With the general increase in political consciousness, the Speaker has drawn more and more sway from the dust of the party arena, until by the growth of tradition he has become not only the impartial arbiter of debate, but the non-political embodiment of the House of Commons as a whole."

In Paragraph 32 they observed: "He clearly cannot stand as a party candidate; but he can stand as the Speaker seeking re-election — a course which has been followed not only by the present Speaker in 1935 etc. As a non-party and independent candidate with no political proposals to put before the electors he can but offer them the high ideals of his office, the historical background from which these have developed and the need for

their preservation if freedom of speech and a proper regard for minority opinions are to remain outstanding characteristics of the House of Commons. Thus confining himself to the pure statement of a case without in any way being drawn into argument with his opponents or attempting to controvert any statements that they may make, he is placed in the embarrassing position of being a party to a fight in which he can take no part."

In paragraph 33 the Committee observed "Your Committee cannot but agree that such a state of affairs is far from desirable. On the other hand they are emphatically of opinion that any departure from these traditions that would again bring the Speaker back into the mill of party controversy and so strip him of that great authority he can wield in the defence of democracy, would be a retrograde step which would inevitably tend to cast doubt upon the impartiality of the occupant of the Chair and thus impair that confidence which is essential to its unique influence and prestige."

In paragraph 57 of the Committee observed: "When there be an opposition the Speaker meets such opposition with the same consistent impartiality which marks his conduct in the Chair and the highest traditions of the Speakership are best served by this course. It would be better that a Speaker should suffer defeat through strict adherence to his principles than he should deviate in the slightest degree towards political controversy."

(7) The above quotations will convince you that if we wish to develop the high traditions of this office in our country the Speaker should not stand as a party candidate. He can then approach the parties, if necessary, to support his candidature and it is likely that he may succeed.

(8) In the last session of our Assembly one of the newspapers included the Speaker in the list of Government Supporters and this was regarded as charging the Speaker with partiality and the point was raised in the House by the Congress party itself. I declared on the floor of the House that I do not take part in party politics after my election as Speaker and have tried to be impartial in the discharge of my duties and any imputation of partiality to the Speaker was a contempt of the House. The paper concerned, however, expressed its regret to the House and stated:

"The comment was made by a writer who was not conversant with the day to day working in the Assembly House and he does not know that in spite of being a member of the Congress Assembly party you have held the balance even and carried on impartially the business of the House under very trying circumstances."

On this expression the House condoned the offence. If after that I take part in party politics and hold the office of the Speaker at the same time, you can realise as to what embarrassing position I shall be. The next session of our Assembly starts on the 17th instant and may continue even till after

the Pujah holidays. There may be a further session even in February. Even if there is no session he has to remain free from party politics during the tenure of office. If I stand as a party candidate in the meantime there may be opposition by other parties and I am not at all in a position to ward off the same. In the election campaign speeches will be delivered on party basis. I may have to criticise the policy of the other parties and I shall also be subject to criticise by others. All this will happen during the tenure of the office. I feel that such a course destroys the traditions of impartiality that we have endeavoured to build.

(9) Whether the Speaker will be elected as the Speaker or not must be left to the new Assembly. So far as the present is concerned, I believe, that the Congress should help the growth of this convention. I do not for one moment wish to bind down any party to the future, but it is most embarrassing for me to enter into political controversy while occupying the office of the Speaker.

(10) In conclusion I wish to point out that conventions grow not by enactment of laws or formulating big decisions, but by course of conduct from time to time and I believe that by allowing me to adopt the course suggested by me you will be helping the establishment of good democratic principles.

The Hon'ble Dr. Bidhan Ch. Roy
Chief Minister, West Bengal

Yours sincerely,
I. D. Jalan

Calcutta
September 10, 1959

Dear Dr. Roy,

With reference to the talk that I had with you a few days ago, I have given the matter my deepest and most anxious consideration, and as promised by me I beg to acquaint you with my feeling on the subject.

I was a Speaker for a number of years and then became a Minister. Now after several years remaining as such if I go back to the same post of Speaker, it will look very odd and seems to me to be against the best tradition of the office. You perhaps remember that when I was appointed as a Minister, I was subjected to criticism in the House on this score and if I go back to the same post again, I am sure that Opposition will get a good handle to castigate me and the Government much more severely and I believe justifiably than

before. While the action of the Govt. will be subject to severest criticism in the House, an erstwhile member of the Cabinet who was also constitutionally responsible for the same should sit on the Chair as an embodiment of impartial arbiter of debate is against all decorum and principles of parliamentary practice. He can never enjoy the confidence of all sections of the House which is so essential for success of a Speaker. The opposition will have no faith in his impartiality. You know the behaviour of the House as it has developed during the last few years and you are also fully aware of the present tension of the national and international situation and there will be constant friction between the Government and the opposition at the present juncture. Even my administration of my Department may be subjected to criticism in the House and it will be embarrassing for me to be on the Chair. Any decision going against the Opposition will bring down upon me allegations of partiality, insult and abuses to which they have become habituated with additional venom on this score and I will look very small in the House and public eyes. I do not think it will be advisable even for the Government to send one of its Ministers direct from the Writers' Buildings to the Speaker's Chair and it will be misrepresented as a manouvre by the Government to gag the Opposition. Some coercive measures may be necessary for preservation of Order in the House, and every action of mine will be viewed with a prejudiced eye. You know that during my tenure as a Speaker I had worked hard for the establishment of the best traditions of this office and it is distressing to see that I shall be violating the same. This is a situation which I feel will be neither proper for the Government nor for me and deserves serious consideration.

Besides the above, even from my personal point of view, I had informed you on earlier occasions that I did not feel the slightest enthusiasm for the same. I would not be wrong if I say that it is almost a torture to hear irrelevant, repetitive, insipid and drab speeches day in and day out for months and years and performing the only task of carrying on a meeting followed by long period of idleness which I dislike from the core of my heart having spent the whole life as a busy practitioner. There is no zest in the humdrum business, no policy to be considered, no new thing to be thought of, no ideal to strive for. During my last term I was new to the office full of enthusiasm and pleasure with an ideal to be achieved to establish the independence of the Legislature. The Constitution was changed and many other reforms were done in this direction. Even then towards the end of my term I had developed a dislike. Fortunately it ended. A man can do his best in a job which he likes and can feel pleasure. He can never show his best in a job which he does not like. Chances of Failure are greater and I may not be able to come up to your expectations.

Age is advancing and it may prove a great strain on my nerves.

Besides the above there are other difficulties which need not be discussed.

Under the circumstances I do not know what I should do. I realise your difficulties fully and the way in which you pointed out the same made my position exceedingly embarrassing. It let me to think and think over the problem for days together and now I may be excused for taking the liberty of placing the facts above mentioned before you. I hold you in the highest esteem and regard and so I find myself unable to express myself face to face. I will ask you indulgence for inflicting such a long letter on you and taxing your patience. I will implore you not to misunderstand me. I can only request you to give this matter your deepest consideration before you come to any decision.

With regards,

Dr. B. C. Roy,
Chief Minister
West Bengal

Yours sincerely,
Sd/- I. D. Jalan

MINISTER, LAW, LOCAL SELF GOVERNMENT AND PANCHAYATS DEPARTMENTS, GOVERNMENT OF WEST BENGAL

Calcutta 24.1.60

Dear Dr. Roy,

Before you left for Darjeeling you were pleased refer to me about the question of Speaker's Seat. I have already sent a letter to you in September last explaining my views and feelings on the subject and the talks that I had with you thereafter it appeared to me that you appreciated my view points. Since you referred to it again recently I again give my most serious and anxious consideration to the problem but I regret to state that I still feel no inclination for it and apart from other important considerations it seems to be inadvisable for me. A Minister to assume the office of the Speaker in the midst of the term. It will always be a cause of Embarrasment to me and I believe to the Government as well. I hope you will be pleased to consider this.

Yours sincerely,
I. D. Jalan

लोकसभा के प्रथम स्पीकर, श्री जी. वी. मावलंकर, से हुआ पत्र-व्यवहार

The 24th September 1951

Dear Srijut Mavalankar,

Yours of the 21st instant to hand. I understand from Dr. B. C. Roy that Panditji has written to him in favour of such a convention and has left the matter to him to do what he considers proper in my case. I understand that he has stated as to how far other parties will agree to such a course, can not be predicted. So far as I am concerned I intend standing as an Independent candidate with the consent of the Congress authorities here. I hope that I will be able to get the support of other parties. In any event even if a contest occurs, it will be a very feeble one. I shall let you know how the matter stands in the end.

I have come to know from the Speakers of Bihar, Orissa, Madras and U.P. that all of them have not applied for the Congress ticket and are standing as Independent with the concurrence of the Congress authorities. They also expect that the major parties may not contest their seats. Similarly the Chairman of the Bihar Legislative Council has not stood as a Congress candidate and this is also in concurrence with the Congress authorities. There is no doubt that this course will either eliminate the contest completely or substantially and will go a long way in establishing some sort of convention that the Speaker should not be ordinarily contested.

I have sent to you a note which I delivered to Dr. Roy to be sent to Panditji. I would like to know your personal reactions to the same. We are all anxious that the traditions of the office should be established and unless steps are taken in this very election to that end we shall not be able to achieve results hereafter. I would therefore earnestly request you to add your strength to the establishment of this principle.

I am sorry, however, that you are not in a position to be at Delhi on account of your mother's illness. I hope, however, that she will recover.

Yours sincerely,
I. D. Jalan

The Hon'ble Shri G. V. Mavalankar
Speaker, Indian Parliament, 'SEVAKUTIR'.
16, Maharashtra Society, Ellis Bridge
Ahmedabad

No. A. 4250/51
'Sevakutir'
16, Maharashtra Society, Ellis Bridge
Ahmedabad, the 23rd October, 1951

Dear Shri Jalan,

Kindly excuse me such long delay in replying to yours of the 24th September. You will remember, soon after I received it, you phoned to me that I need not write to Panditji.

Thereafter, I had a communication from the Hon'ble Shri Ghandhyamsingh Gupta, Speaker, Madhya Pradesh Assembly enclosing a copy of your letter of the 25th September, along with a copy of your letter to Dr. Roy, dated the 25th September.

Being engrossed in my mother's illness, her demise and subsequent obsequies, it was not possible for me to attend to the matter and reply to Shri Ghanshyamsingh Gupta. I received a phone from him on Saturday, the 20th instant, and, as a result of our phone talks, I wired to Panditji immediately as per copy enclosed.

I have read your letter to Dr. Roy, which places the whole case fully and exhaustively. You have taken great pains in studying the question. While I am in entire agreement with what the proper convention should be, my real problem is how to deal with the present situation, as we find it in our country. The fundamental fact, that we have to remember is that at present there are no organised parties in the country. There are different lines of thought and programmes; but, besides the Congress, there is practically no party which has got a country-wide organisation, which can approach the electorate all round. Though the Convention is based on sound lines, it presupposes an organised political life. With the ignorance of our electorates generally, what worries me is that if anyone of us stands as an independent candiate, an impression is likely to be created, or caused, or even a mischievous propaganda is likely to be launched by interested parties that, so and so has considered it proper not to accept the Congress ticket and has preferred to stand as an independent candidate, suggesting thereby that the Congress is now an organisation which people must not support. Then the British Convention, if I mistake not, (before 1935) had been that the candidate did not abandon his party label. At any rate, he was known to belong to and have the views on all political questions of a particular party, and still his election was not opposed. Things would stand differently, if this impression of mine is not correct.

However, the situation will be different in different places. But anyway the Convention is worth having that the Speaker's election should not be

opposed; the considerations, which I am mentioning, are really of a secondary importance. It all depends upon the local situation.

With kind regards,

Yours sincerely,
G. V. Mavalankar

The Hon'ble Shri I. D. Jalan
Speaker, Legislative Assembly
West Bengal, Calcutta

Assembly House
The 27th October, 1951

Dear Srijut Mavalankar,

Your esteemed letter no. A 4350/51 dated the 23rd instant to hand. I am greateful to you for your compliments regarding the note. Before I deal with the subsequent developments that have taken place I wish to clear a few matters referred to in your letter under reply.

(1) The British convention will clearly appear from the following extract from (*a*) the report of the Select Committee on Parliamentary Elections regarding Mr. Speaker's seat, which was referred to in my note.

> "Para 32. He clearly *cannot stand as a party candidate*; but he can stand as the Speaker seeking re-election — a course *which has been followed not only by the present Speaker in 1936, but by those Speakers in New Zealand who have most closely adhered to the British tradition.* As a non-party and independent candidate with no political proposals to put before the electors he can but offer them the high ideals of his office, the historical background from which these have developed, and the need for their preservation if freedom of speech had a proper regard for minority opinion are to remain outstanding characteristics of the House of Commons. Thus confining himself to the pure statement of a case without in any way being drawn into argument with his opponents or attempting to controvert any statements that they make etc. etc."

(*b*) "I also find from Keesing's Contemporary Archives for 1950-52 Page 10560, the following sentence regarding the general election results of the United Kingdom of 1950:

> "The Speaker of the House of Commons (Colonel Douglas Clifton Brown, who was re-elected for Hexham) bears no party designation."

On Page 10565 of the same Archives where against every candidate it is mentioned to which party he belongs, against the Speaker no party whatsoever was mentioned. Whereas as against other candidates it mentioned Conservative or Labour or Liberal regarding the Speaker it was simply stated 'The Speaker's majority'.

(c) I also find on page 475 of "The Theory and Practice of Modern Government" by Harmen Finer, the following passage regarding Speaker:

> "It is the convention that he shall cease to have connection with political parties or membership of a political club. His constituency was never contested from 1895 to 1935, when the Labour Party was ill-advised to contest Speaker Fitzroy's seat unsuccessfully."

I also find later on page 477 thereof the words "the present Speaker a former Conservative."

(1) It will be clear from the passages above that the English Speaker does not stand as party candidate. And I do not think that there was any difference before 1935. As a matter of fact there was no contest prior to that for about 40 years since 1895.

(2) The next point mentioned by you is as to what impression it will leave on the minds of the public if the Speaker does not accept the Congress Ticket. I am clear in my mind that no such impression can be left on the minds of the electorate. It can be explained that on account of the Constitutional property he is not standing on a party ticket and people understand it. Thousands of people of great eminence are standing on Congress tickets. If the Speaker in a State does not stand with a party label the public is sufficiently enlightened to understand the implication of it. Moreover the Speaker does not take the label of any other party in the field. To my mind it appears that it leaves no adverse impression regarding the importance of the Congress if the Speaker stands without a party label. The Congress even accept independents to be Congress candidates. On the contrary if the Congress accepts this position it adds to its glory. This party which is the only organised party in the country takes the lead. It becomes tremendous gain. If it does not, the convention is finished for ever.

(3) The attitude which I and many other Speakers have taken in this matter is that we should do what lies within our power to establish the good tradition, and the only thing that we can do is to play our parts by not standing as party candidates. Whether other parties will set up a candidate against a Speaker or not is the look out of the other parties to decide. The Congress being the principal party in the country on whose shoulders rests laying the foundations of good democratic principles, at least should come forward to held this convention by not compelling its Speakers to stand on its own tickets. If after these two steps are taken the other parties do not

observe this tradition and set up their candidates, they will be responsible for the results thereof, but I find that on account of the attitude taken up by the Speakers so far an atmosphere has already been created in favour of the Speakers seat not being contested. I find that apart from your seat and the Seat of the Madras Speaker and Orissa Speaker are not being contested by the Socialist Party as so far announced by them in the papers. I also find that a tendency has become manifest in the public mind that the Speaker should not be contested. Had the steps taken by us not being taken at all the atmosphere would not have been at all created.

(4) I am thankful to you for the telegram that you have sent, but I was sorry to learn from Dr. Roy yesterday that though the West Bengal Provincial Congress Committee accepted the position that I should stand without a party label and Panditji seems now to be of the view that we should stand on Congress tickets. This is in spite of the fact that I learnt from Dr. Roy myself at the time when we were in touch with each other regarding this matter, that Panditji had approved of the convention and left it to Dr. Roy to do what he thought proper. I do not know the reason of the change. It may be due to the knowledge that you have stood on the Congress ticket. Not only myself but the other Speakers who have announced in the public that they are standing as Independent candidates will be in a thoroughly embarrassed position if they now have to take Congress tickets. I know that the Speakers of Madras, Orissa, Bihar, U.P. and myself expressed their desire to stand as Independents and this position was with the consent of the Provincial Committees. The President of Bihar is also standing without party label. The Speaker and President of Bombay and the Speaker of Assam are not standing as candidates for the next election at all. The Punjab Speaker is non-existent. Apart from yourself the only Speaker of Part A States who has applied for Congress ticket is the M. P. Speaker. If after all the announcements and public impressions they have to resile from their present stand, it will be a very serious matter. You will find therefore that it is absolutely necessary now after the development that they have taken place and after the resolution passed by the Speaker's Conference pursuant to which these steps were taken the matters should be pressed home to Panditji and if necessary the Central Election Board and they should allow its Speakers to stand without any Party label. I hope you will consider the matter seriously and take immediate steps so that the Congress may not compel us to stand on party label.

Yours very sincerely,
I. D. Jalan

The Hon'ble Shri G. V. Mavalankar,
Speaker, Indian Parliament, 'Sevakutir'
16, Maharashtra Society, Ellis Bridge, Ahmedabad

SPEECH DELIVERED BY

Hon. I. D. JALAN M. L. A (*Minister of Law, Local Self-Government and Panchayats*), West Bengal in September, 1961, at the Commonwealth Parliamentary Conference, London, held under the Chairmanship of Sir Ronald Robinson, M. P.

Mr. Chairman and fellow Delegates,

I am grateful for this opportunity to say a few words about the subject under discussion. It is such a vast subject that it is almost impossible to do justice to it within the short time at my disposal. Therefore, I shall confine myself to one aspect of it, and that is the challenge to democracy by authoritarianism.

The world has before it the serious problem of how to maintain and preserve democracy in face of the grave threat which confronts it from such great nations as Russia and China. In the underdeveloped countries the system adopted in Russia and China has an appeal, and that appeal must be resisted by democracy. How far democracy will succeed in this remains to be seen.

The first World War was waged in order to give peace to mankind, but that peace never came. The Second World War was again fought in order to give peace to mankind, but that peace still never came. We are now on the brink of a third world war. Nations are opposed to each other. We are afraid about what the outcome will be. This is not a war between two nations. It is rather a war between two ideologies. One ideology is authoritarianism, and the other is democracy. Consequently, we must consider ways and means of meeting this situation. Those assembled in this house are all lovers of democracy. At the moment they have their own systems based more or less on the United Kingdom pattern of democracy. We like it, and we want to preserve it. The question is, what leads to the situation with which we are today faced?

There are signs of disruption everywhere. During the last few days that I have been here, I have been listening to the speeches by Members of the Commonwealth on the question of the European Economic Community. I am very sorry to find that a situation is arising which may end in a crisis in the Commonwealth itself. India joined the Commonwealth being perfectly well aware that unless and until the nations united and worked out their destinies together, the future of the world would be dark indeed. That was

the reason why India, when she achieved independence, in spite of some opposition from some quarters, came to the firm decision that she should remain a partner in the Commonwealth and thus work for peace for mankind.

A real testing time has come. There is no doubt that the United Kingdom is at liberty to choose what path she considers to be in the interests of her own people. After her decision is taken, it will be for the Commonwealth countries to decide what lies in their own interests. However, I see signs not of harmony but of disharmony. Even in those spheres in which there was harmony, I find signs which are very disquietening indeed.

India achieved independence only 14 years ago. I pay my tribute to Lord Attlee, who is one of the members of the United Kingdom Delegation here, for the wise statesmanship that he showed at the time of giving way to the claim for independence of a vast country such as India. The result has been that there is profound goodwill between the Indians and the British. That was quite manifest when Her Majesty the Queen visited our country. A voluntary expression of great welcome was found. Also there are hundreds of British firms which are doing business quite well in India, especially in the city of Calcutta, to which I belong.

But we must remember that the time has come when we must seek ways and means of preserving our freedom. I come from West Bengal, in the Assembly of which there are about 50 Communist members. We know what they are striving for. It will be appreciated, however, that India has faith in democracy and wishes to maintain it. India's achievement so far is not to be ignored. As a matter of fact, we have achieved political integrity. When the British left India in 1947, we had 700 Indian States which were more or less independent in their own territories and in respect of their internal affairs. They were relics of history stretching back to hundreds of years. Within one year all those Indian States were liquidated not by war or coercion but by the willing consent of the parties concerned. India now has political integrity. The whole of the territory of India is now one. There is now no princely State or other State which can disturb the decisions which India takes in her own interest.

With regard to India's economy, we have decided that India shall have a socialist state of society. Previously all these individual countries had a capitalistic basis but India has now decided to have a socialist basis and all the Indian people have accepted it.

Even in the social sphere it will be found that the vast majority of the population were governed by rules and laws which were very ancient in origin and which were very different fundamentally from the laws which govern European nations. Fundamental changes have now been brought about in those laws, and the people of India have accepted this with good

grace. We have held two elections on the basis of adult franchise. We have given a Constitution to India, and nobody will deny that this was a vast experiment which has been successfully carried out. We are now on the eve of the third election.

We have planned our economic policy on a firm basis. We had our First Five-year Plan, we had our Second Five-year Plan and now we have our Third Five-year Plan, and we are going to improve the economic position of India by following a pattern of economy by means of which we intend to do away with the poverty with which my country is afflicted. This poverty is a legacy from the past. I trust that my friends in the United Kingdom will excuse me if I say that they share some of the responsibility for that and that it is now up to them to assist us to get rid of this poverty and to ensure that our country, which is a citadel of democracy, does not go down for lack of financial assistance which is required to eradicate its poverty.

India has extended the principles of democracy to her villages. It has been decided that even in small villages there shall be a republican society. These institutions are called 'panchayats'. These are elected on the basis of adult franchise, and there will be a democratic decentralization of power from the Government to them. These small village republics are to be invested with the power to work out their own destiny.

The substance of what I have to say is that India is wedded to democracy and desires that democracy should succeed. Our leader, Shri Nehru, is well known to you all for his efforts in striving his utmost to prevent war and maintain peace. We are also extending the principles of democracy to our remote villages, where there will be found a pattern of society the like of which cannot be found anywhere else. Consequently, it cannot be said for one moment that India is not wedded to democracy and does not desire that democracy should succeed.

India has provided herself with a Constitution which contains ample safeguards. Reference has been made to this by previous speakers in our debates, and so I need not go into the details again. We have worked out a Constitution which is best suited to the needs of our country. It is primarily based upon the Constitution of the United Kingdom. It contains ample safeguards to prevent autocracy coming into play.

There is one pertinent question which has persistently been asked of me since I came to London: "What after Nehru" — as if democracy depends on one man. I do not think that anybody should doubt that the democracy of a nation does not depend upon one man alone. There was a greater man Mahatma Gandhi who brought about the independence of India. He disappeared from the scene, but our country goes on. It is not desirable to name who might be the successor, and it is not desirable to think that the

future government of a country depends on one individual. Even if you consider that a certain person might be a desirable successor, you might find that successor does not in the end turn out well.

I am sure my friends of the United Kingdom will excuse me, If I mention that I have just been reading the autobiography of Sir Winston Churchill, in which it was stated that in 1937 when Sir Anthony Eden resigned from the Cabinet, Sir Winston had the only night when he could not sleep, and it was because he was afraid about the future of the United Kingdom without him. However, I would point out that when the time came Sir Anthony proved to be not equal to the task. Consequently, in a democracy it is dangerous to forecast who is likely to rule after a certain person has gone. Let us not indulge in that sort of thinking. Let Delegates rest assured that India is a vast country, equal to the entire continent of Europe, minus the U.S.S.R., and with a vast population, and, if democracy should fail in India, it will be a serious challenge to democracy in the world.

For this reason it is important that we should take steps to ensure that the underdeveloped countries do not fall a prey to Communist doctrine. There is no possibility today for a nation to become wealthy through exploitation of other nations. That time has vanished for ever. There is only one thing which can solve our problem. Along with our own efforts, it should be the desire of all the nations of the world which are in the category of 'haves' to help the 'have-nots,' if they really desire that democracy should remain in this world.

Students of political science know that when a monarchy degenerates one has autocracy and that this is followed by aristocracy, and when it deteriorates, this results in oligarchy and democracy comes and when democracy degenerates there is autocracy again. Unless and until we remove the defects in the democratic working of our countries, democracy is bound to go. Nobody can resist that drift otherwise.

I would point out that a Constitution, no matter what form it may have, can at once be changed by a military junta or by a Communistic element. Who can show better results than India? Yet India is surrounded by China and Russia, two Communist countries and by Pakistan, which is ruled by a military junta. It is in the light of that situation that India has to retain her democracy, to which she is wedded, but she may not be able to do so, unless she is given economic and material assistance by the other nations of the world who have power to assist.

I do not wish to take up more time. I have simply alluded to the broad outlines of the question and, within the few minutes that we have at our disposal, I cannot do more.

SPEECH DELIVERED BY

Sri I. D. JALAN, M.L.A., Bengal, on Jute Policy of the then Govt. of Bengal on 8th August, 1940, while speaking on the Resolution on Bengal Raw Jute Futures and Hessian Cloth Futures Ordinance, 1940

Mr. Speaker,

I beg to support the resolution moved in this House disapproving of the jute ordinance promulgated by the Government. Enough has been said with regard to this ordinance by the Press and the public. The question before us is as to whether the policy adopted by the Government with regard to jute has been a sound policy calculated to be for the benefit of the cultivators and for the benefit of the trade generally.

There are a few salient facts which must be put before the House, before the House can come to a conclusion as to whether the policy pursued by Government has been a sound policy in the interest of the province. There is not a single soul in this House who will deny the fact that after all the majority of the people of Bengal are cultivators and nothing should be done to jeopardise their interests in this province or in any other province whatsoever. But we have got to judge by this standard as to whether the steps taken from time to time by the Government have fulfilled the object with which they have been taken by Government or that they have been taken in the name of doing good to the cultivators and the masses but really for the benefit of other elements. Since the war began, Sir, there was a feeling that the market has got a tendency to rise and on account of the extreme demands on account of the war situation, jute would be regarded as a war commodity. The Ministers as well as the public took it into their heads that the market price of jute would rise to an abnormal extent. It took, Sir, 4 years during the last war for jute prices to rise and during these four years the market price of jute did not rise beyond Rs. 60 or Rs. 65, though the price of hessian in the fourth year rose to Rs. 52. But, Sir, during the three months of this war the price of jute rose to Rs. 125-an unprecedented rise in the price of jute which was absolutely uneconomic and which was absolutely to the detriment of the interests of this province. The policy of the Ministry was responsible for it to a large extent.

Sir, there has been a persistent rumour in the market that the policy of the Government is not being guided by the interests of the province, but by the interests of some of the Ministers themselves. That is the persistent

grievance. You will see hundreds of persons talking about this, that it is really the speculative operations of some of the Ministers involved that is responsible for the policy adopted by the Government; otherwise, it is impossible for any sane Government to formulate a policy which this Government has formulated. The Government left no steps to be taken and left no stone unturned in order to impress upon the public that the price of jute would rise by Rs. 20 per maund. The market rose to that extent and the result was that there was no demand from the consuming countries and every one in the trade felt in his heart of hearts that this was leading to a disaster of the first magnitude. It did come up to Rs. 125, but the price of jute soon began to fall, and inspite of the earnest efforts by the Ministers in order to prop it up, it has not been revived again, and at present the market price of jute outside the market is not more than Rs. 42 or Rs. 45; inspite of the jute ordinance, inspite of minimum fixation of price, inspite of the statements every week by the Government in order to increase the price, the prices have not increased, and we are now faced with a crop of 1 crore 30 lakhs bales atleast, which crop it will be impossible for this Government to absorb. Now what was the policy which was followed by the Government in fixing the price at Rs. 60 when just before the war the Government fixed the price at Rs. 36. Now what has happened since then? The whole of the export market has been stopped; the whole of the continent which used to purchase jute during the last war is now enemy country.

Now the utmost estimate is that not more than 20,00,000 of bales can be exported to foreign countries and 70,00,000 bales are all that can be consumed by these mills. Now 90,00,000 bales can be consumed during the year. So what is going to happen with regard to 40,00,000 bales which will remain as a halter round the neck of the Government? Is the Government prepared to purchase these 40,00,000 bales? Is it possible for the Government to restrict the sowings next year in order to enable them to sell and dispose of these 40,00,000 bales? Has the Government means to do so? I think it is impossiblefor this Government at the present state of affairs to do so. The Government has followed a policy of a very week-kneed nature. One day the Government announces before the public that Government is going to curtail production of the year 1940 and the whole of the trade is proceeding upon this basis that the Government is going to restrict the sowings of 1940. Now, after a few weeks or a few days Government comes and announces — No, we are not going to restrict the crop of 1940. What is this after all? The Government should either rule or resign. If the Government was of opinion and is still of opinion that there should have been a restriction of the 1940 crop, then the Government should have insisted on it inspite of the objections of its followers and inspite of all objections to it because without it the Govern-

ment could not keep up the prices of jute. Once having yielded on that point, there was no use fixing minimum price and purchasing jute bales. Naturally the Government is faced with a serious crisis. The Government had purchased 50,000 bales at present at the rate of Rs. 60, whereas the present price is Rs. 42 or Rs. 43. So there is a net loss of Rs. 10,00,000 for the Government to-day. Now if the Government purchase a further lot, there will be an additional loss to an abnormal extent. If the Government had any purchasing policy, it ought to have known that it was not in a position to follow the policy effectively. To do so in order to maintain the market at Rs. 60 the Government must be able to purchase the entire surplus in the market. This requires a mint of money more than the revenues of the Government. In the market, jute is now selling at Rs. 42. But why did the Government not purchase the same in the market even at Rs. 42? If the Government had not the means to purchase at Rs. 42, what reason was there for the Government to purchase at Rs. 60? And what was the value of the jute in the month in which Government purchased it? And from whom did the Government purchase it and for whose benefit did the Government purchase it? It is surely not for the benefit of the cultivator. It is really for the benefit of those arch gamblers in whose interests the whole policy has been formulated and the whole policy has been carried out. (Cries of 'Shame ! Shame !' from the Congress Benches). Sir, there is not time enough for me to enumerate the facts and figures which I have to show as to how the market has been manipulated from day to day by the Ministers. It has gone to such an extent that it has amounted to a scandal in the market. (Cries of Shame, shame from the Congress Benches). The whole of the trade is based upon certain assumptions of world supply and demand. Nothing, but supply and demand can regulate the price. If the Government wants a recent example, let it take lessons from the sugar crisis and the result of the disaster which has taken place. The Bihar and the United Provinces Governments wanted to fix the price at 10 annas or 9 annas per maund of sugarcane and the Sugar Syndicate fixed a high price. Now the crisis is so great that the sugar trade is thinking as to whether it is possible to run the mills or not. Similarly, in foreign countries, where the Governments are sufficiently strong, where they have got much more enlightenment than what we possess much more resources than what we can ever dream of, but still they too have failed in artificially propping up the price. That goes to show that it is impossible for this Government to face the crisis at present and the Government policy is bound to bring disaster not only upon the cultivators but on the trade upon which the interests of the cultivators depend, and I must say, Sir, that so far as the Government is concerned, their policy is bound to fail — it has already failed and it is bound to fail. The Government cannot resist the world forces upon which

the prices of jute depend. Sir, as a matter of fact Government enjoys a safe majority and on account of its safety they do not feel the necessity of listening to the opposition or to its arguments, however reasonable they may be. Our experience in this House has been that it is very seldom, if at all, that even a sane thing which has been said by the Opposition is listened to by Government or acted upon. Government feels that so long as it enjoys a comfortable majority in this House, it need not listen to reason, nor care for their line of action, however grossly atrocious it may be. The popular feeling is that the policy of the Government is not being formulated in Writers Buildings, it is not being formulated in conferences with the experts, businessmen, traders or persons who are working for the cultivators' interests, but it is being moulded in Pretoria Street in conferences with arch gamblers and insolvent satellites, under the benumbing influence of coloured glasses and fair eyes. . . .

ता: ५ अप्रैल १९५५ को दी कलकत्ता इम्प्रूभमेन्ट (संशोधन) बिल पर बंगला भाषामें पश्चिम बंगाल धारा सभा में दिये हुए भाषण का देवनागरी लिपि में रूपान्तर

माननीय स्पीकार महोदय,

एई बिलेर ऊपर डिबेट आरम्भ थेके एतो हरएक रकम कथा शुनलाम जे आश्चर्य होये जेते हय। डा० शिवकुमार बनर्जी महाशय, जिनी इंगरेजी भाषार एकजन एतो बड़ो पंडित, तिनी ३९-एर कथा ना की बुझते पारलेन ना। वीरेनबाबू 'बेहाला-बेहाला' बोले अनेक चीत्कार करलेन। सुबोधबाबू, सुधीरबाबू अनेक कथा बोललेन जा आमि सब ठीक मतो बुझलाम ना। तारा सहज कथाके नानाभावे विकृत कोरे अर्थ करलेन। आमि एई बिल जतोई विवेचना कोरछि तोतोई आमार मने होच्छे जे की आमरा होये गियेछि। आमरा की एतो नीचे नेमे गियेछि? एकबार आरम्भ होलो 'बस्ती ड्वेलर्स इन डेन्जर'। जखन देखलेन बस्ती ड्वेलर्स इन डेन्जर नेई, amendment has taken the wind out of the sail, तखन नोतून आतंकेर शुरू होयेछे--बांगाली-अबांगाली। एकटा कोथा मने कोरिये दिच्छि। आमि खूब बड़ोलोक नइ, आमार एक बिन्दु जमीओ नेई।

(A voice from the opposition किन्तु बैंक बैलेन्स?)

ताओ जा किछू छिलो एई पाँच-सात बछरे शेष होये गियेछे। जाक, तारपर देखुन १९११ साले एई कलकत्ता इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट होलो, आमरा एलाम १९५२ साले। ता होले एर मध्ये कि होलो तार जन्ये आमि कि दायी? सेई जे काहिनी आछे उल्फ एन्ड दि लैम्बेर—तुमि जल घलिये ना दिलेओ तोमार बाप तो दियेछिलो। १९११ थेके १९५२ साल पर्यन्त जा कोरेछे इम्प्रूभमेन्ट ट्रस्ट आर गवर्नमेंट आफ वेस्ट बंगाल तार जन्य कि आमि दायी? तार पर, आपनारा केनो एतो भावछेन? केनो एतो गालागाल आमाके कोरछेन? एई बिल तो आमार नय, एटा गवर्नमेन्ट आफ वेस्ट बंगालेर। ना होय आमाके दो-चारटे कथा बोले दिते पारेन, ना होय एटोर्नी छिलाम, ताई होये थाकबो। किन्तु ताते आपनारा तो एखाने आसते पारबेन ना। ओई जे बूड़ो ओई पिछने बोसे आछेन,

छय फुट लम्बा चेहरा बाघेर मोतो मुख, ओके की आपनी परास्त कोरते पारवेन ; तातो पारवेन ना, मोशाय। तार पर सुधीरबाबू जे बांगाली-अबांगालीर गन्ध एई बिलेर मध्ये पेयेछेन ए सम्बन्धे आमि किछू बोलबो ना, कारन आमार विश्वास एई सब छोटोखाटो जिनिस जतो दिन आपनादेर भीतर थेके ना जाबे ततो दिन एई सब गुली सुधू बुले नेक्स्ट इलेक्शनेर बैतरनी पार हऊआ चोलबे ना। आपनाके जदि सत्यई किछू कोरते होय ता होले किछू सोलीड काज करुन, एई सब पोचा जिनिस घेटे कोनो लाभ होबे ना। आपनी एटर्नी होये सब किछुई बुझे फेललेन, किन्तु एखाने जे तीन जन एटर्नी, एखाने एकटू सावधान होएई कोथाबार्ता बोलले भालो होय।

एखन एईजे एक्ट, ओई एक्टे आमि की कोरेछी, मोशाय? जे एक्ट छिलो सेई एक्ट आछे, आमार अपराध की एई होलो जे आमी बोले दियेछी जे बस्ती बासीदेर उत्खात करा होबे ना—जतो दिन तादेर जन्य अल्टरनेटिव एकोमोडेशनेर व्यवस्था ना कोरा हय? यदि बोलेन तो स्टेटस-को रेखे दिच्छी। ता बोलबार साहस आछे की? ना, से साहस नेई। एई सेक्शने आमरा की कोरछी? कलकत्ता इम्प्रूभमेन्ट ट्रस्ट जा काज कोरछिलो ओते आमरा एकटा एड कोरेछी-जे जेनेरल इम्प्रूभमेन्ट स्कीमे जदी कोनो बस्ती धरे ताहिले ओई बस्तीर बासिन्दारा उत्खात होबेना, जतोदिन आमरा ओदेर जन्नो एकटा अल्टरनेटिव अकोमेडेशन ना दिते पारि। एते की आमार अपराध होयेछे जार जन्यो एतो गालागाली खाबो मोशाय? जा ता ना बोले यदी धैर्य धरे सोनेन ताहोले जा बोलबो ताते सब बूझते पारवेन। जदी अयोक्तिक कथा बोली, ना हाय आमाके बोसिये देबेन। आमि कालके बोलेछी आजके आमार पूर्बे जे वक्ता छिलेन, तिनिओ बोलेछेन, फेर आमी बोलछी जे रेन्ट की होबे ता निर्दिष्ट कोरे बोला जाय ना। एकटा रेन्ट सर्वत्र होते पारे ना। एकटा बस्ती जदी इम्प्रूभ कोरते होय ता होले सेई बस्तीर अधिवासीरा की रेन्ट दिच्छे, कोथाय आमरा ऊई अल्टरनेटिब एकोमोडेशन दिते पारबो ए समस्त जिनिस विचार कोरते होबे। ऊई अल्टरनेटिब एको-मोडेशनेर जन्य कोतो आमादेर सबसिडी होबे, कोतो टाका आमादेर खरच होबे एटा देखते होबे। कोथाओ होयतो जमी आमरा २००० टाकाय पाबो, कोथाय होयतो ६००० टाकाय कीनते होबे। यदी इन्डिया गवर्नमेन्ट दिये देय ३/४, ता होले १० टाका केनो ५ टाका कोरे रेन्ट कोरबो। इन्डिया गवर्नमेन्ट यदी ना देय ताहोले हय तो बेशीं कोरबे। सेइ जन्यो बोलछी जे रेन्टटा स्टेटूटरिली फिक्स कोरा चोलेना; एतो फैक्टर्स आछे जा सोलभ ना होले किछुई गवर्नमेन्ट फिक्स कोरते पारे ना। काजेइ गवर्नमेन्टर असाधु बुद्धि, आर सब ताते आपनादेरई साधु बुद्धि देखान एटा भाबते

पारेन ना। आपनारा यखन एखाने आसवेन आमरा या कोरेछि एर चेयेओ वेसी खराव अवस्थार सृष्ठि कोरवेन। आमी जखन बंकिमवावुर संगे ओई खाने बोस्ताम तखन आमिओ अनेक कथा वोलेछी किन्तु मुखे वोला एक आर काजे करा आर एक जिनिस। रिजनेवेल रेन्ट जा होवे ताइ कोरा होवे। किन्तु एटाके फिक्स कोरे वोले देखानो चोले ना। हरिपदोवावू बोललेन एदेर दिये काज होवे ना। आपनादेर गवर्नमेन्ट आपनादेर विश्वास ना थाकले निजेरा आसवार चेष्टा कोरते पारेन। गालागाली दिये की होवे? आमादेर जाना आछे मंत्री होले एकटू थिक-स्कीन होवे होवे, कारन गालागाली खेतेई होवे। से जन्ये जतोई आपनारा गालागाली देन ना केनो ओते आमादेर किछू आसे जाय ना। से जन्य आपनारा किछू भाववेन ना।

अल्टारनेटिव अकोमोडेशन कोथाय होवे बोला जाय ना। कोनो बस्तीर हयतो चारीदिके खूब पाका बाड़ी आछे। घर आमि एखाने दिते ना पारी आर कोथाओ दिते पारी। गवर्नमेन्ट अफ इन्डिया केनो इन-दि-वर्ल्ड एटा केऊ गारान्टी दिते पारे ना कोथाय होवे। विले आमी ताई प्रविशान कोरते पारी येटा एनफोर्सड होते पारे। आमि ए सव सम्वन्धे एटा वोलते पारी जे जखन अल्टारनेटिव अकोमोडेशन होवे तखन कोनो गवर्नमेन्ट, जे गवर्नमेन्टेर पोपुलार सपोर्ट आछे, जे गवर्नमेन्ट रेस्पान्सिवल टू दि पिपल सेई गवर्नमेन्ट की कखनोऊ एइ रकम काज कोरते पारे जाते जन कल्याण ना होय। जखन एकटा गवर्नमेन्ट के कोनो एक्ट कोरते हय तखन गवर्नमेन्ट एकटा रेस्पन्सिविलिटी आछे, सेई रेस्पन्सिविलिटी निये एक्ट कोरते होय, इरेस्पन्सिवुल हये कोनो गवर्नमेन्ट एक्ट कोरते पारे ना। सेई जन्य आमि जखन कोनो ला निर्माण कोरी तखन आमाके भावते हय जे ला होवे, एइ ला एन्फोर्सेवल आर आनएन्फोर्सेवल, भेग आर प्रिसाइज। सेई जन्य आमरा जे प्राविशन दियेछी सेई प्राविशन आमरा मोने कोरी एकेवारे भाल, एर थेके भाल आर होते पारे ना। बस्तीवासीदेर जन्य आमरा विरोधी पक्खेर वन्धुदेर भीतर जे भावना आछे तार थेके आमादेर कम भावना नेई। सुधु तफात एई, ओदेर वोलते होवे, आमादेर करते होवे।

नेक्स्ट होच्चे १५%। आमि वड़ो आश्चर्य होलाम जे जारा कम्यूनिस्ट, जादेर सिद्धान्त होच्छे जे, प्रोपर्टी आछे तार कोनो कम्पेनसेशन ना दिये आमरा निये निते पारी सेखाने जदी आमरा १५% वाद दी, तखनोइ चित्कार कोरवेन एटा भावते पारीनी, मनेओ कोरते पारीनी। आमि तो मने कोरेछिलाम आमाके आपनारा प्रशंसाई कोरवेन। किन्तु प्रशंसा न कोरे जे रकम आमार फ्रेन्डस १५% सापोर्ट कोरछेन एते आमार मने तादेर प्रति श्रद्धा एकवारे उड़े गेलो। आमि मने कोरछी एई १५% के

पावे? कलकत्ताय जार एकटा ल्यान्ड आछे, सपोज एकटा बस्ती आछे दुई बीघा जमीन, कोतो दाम होवे बोलुन तो योगेश बाबू? एई ल्यान्डेर जे मालिक होवे ओके १५% बेशी दिते हवे जेखाने कम दिले काज हवे। तिनी चान जे आमरा बाड़ी तैरी कोरे दी, ५ टाका आमरा भाड़ा दी किन्तु आवार १५ पारसेन्टऊ दिते होबे। ता होले आपनारा मने कोरते पारेन एटा की होते पारे। एटा रियालिस्टिक एज, ना कोनो फांटास्टिक एज? आगेकार युगे आछेन ना १९५५ए आछेन? १५% कोस्ट, जादेर संपत्ति आछे, जादेर प्रोपार्टी आछे, एई कलकत्तार जे ल्यान्ड-ओनर्स, एदेर यदि १५% कम देवा होय ता होले एते १० लाख टाका ट्रूस्ट पावे। एई १० लाख टाका निये दुईटी वाड़ी कोरे दिये बस्तीवासीदेर बसाते पारे। आपनारा बोलछेन कि जे १५% आपनारा दिन। आपनारा वोलछेन जा किछू इन्काम आछे छेड़े दीन, ता होले की हऊयार ट्रूस्ट काज कोरवे? एईटा आपनारा की मोने कोरछेन ता आमी एकेवारे वूझते पार्चीना।

(Interruptions)

सुनुन महाशय, आपनारा तो अनेक वोलेछेन, दुईदिन धरे बोलेछेन।

(श्रीयुत गणेश घोषः- आपनी डिस्टर्ट करछेन) आमी डिस्टर्ट करछी ना। आपनारा कोतो नीचे नेमे जाच्छेन। आमी एई असेम्वली थाकते थाकते वूढ़ो होये गेलाम। सेई जन्ये आमी किछु मने कोरछी ना। किन्तु देखते पाच्छीं जे बस्तीर स्टान्ट चोले गेलो, एखन बांगाली-अबांगाली स्टान्ट आरम्भ होल। आपनारा जानेन जे कलकत्ता इम्प्रूभमेन्ट ट्रूस्टेर जे फिनान्सियल स्कीम होच्छे एई फिनान्सियल स्कीमेर ऊपर एइ एतो जे रोड्स होयेछे, एतो जे इम्प्रूभमेन्टस चल्लिश बत्सरे देखेछेन एई कलकत्ताय एर भित्ति होच्छे जखन एकटा स्ट्रीट होवे तार आसेपासे जमी तारा किने नेबेन एवं एई जे जमीगुली तारा हाइएस्ट प्राइसे बिक्री करे तारा रिकुप करेन। जदी ना रिकुप कोरते पारेन ताहाले स्ट्रीट कोरते पारे ना। आमितो हावड़ा इम्प्रूभमेन्ट ट्रूस्टेर स्कीम इन्भेस्टीगेट कोरे आमार मने होच्छे जदी कोनो इन्प्रूभमेन्ट ट्रूस्ट निजेदेर सरप्लस ल्यान्ड बेशी दामे बिक्रय कोरते ना पारे ताहाले कोनो इम्प्रूभमेन्ट ट्रूस्ट चोलते पारे ना। जखन इम्प्रूभमेन्ट ट्रूस्ट कोनो जमी विक्रय करे तखन टेन्डर इन्भाइट करे एवं जे हाइयेस्ट प्राइस ओके देवे ताकेइ दिते होवे। जदी ना हय ताहाले ट्रूस्ट चोलते पारे ना, तार फिनान्सियल स्टाबिलिटी थाकते पारे ना। तार परे जारा हाई प्राइस पेयेछे—आमि कोनो सम्प्रदायेर कथा बोलछी ना—जा होयेचे लेक रोड, हिन्दुस्तान पार्के जमी सस्ताय किने छिलो आज सेई जमीर दाम ३० टाइम्स। सेई जन्यो आपनारा जदी चान कलकत्तार

इम्प्रूभमेन्ट होक ताहाले आपनारा जे मनोवृत्ति प्रकाश कोरेछेन ताते इम्प्रूभमेन्ट होते पारे ना। आमि छोटो-छोटो जिनिस नीये वेशी घाँटते पारबो ना, इच्छाओ नेई। एई सब कथार जवाब आमि निश्चइ दिते पारी। आपनारा जदी चान कलकत्तार इम्प्रूभमेन्ट ट्रास्ट फंक्शन करूक, कलिकातार उद्धार होवे, ताहाले आपनादेर सेई रकम व्यवस्था कोरते होवे जाते इम्प्रूभमेन्ट ट्रास्ट चोलते पारे। आमि एई बिलके ओपेन बिल कोरेछिलाम। अनेक ठाट्टा होलो एई वोले, भूल होये गियेछे, भालो हयनी। किन्तु आमि टेस्ट कोरते चेयेछिलाम जे आमार बन्धुरा जा बराबर बलेन :—Partial Bill, move comprehensive Bill, देखी आमार बन्धुरा की-की अमेन्डमेन्ट दिच्छेन। In the whole Bill ऐ amendment की दिलेन? जा अमेन्डमेन्ट दिलेन सेतो हाउसई छिलो। एकटा अमेन्डमेन्ट होलो ट्रान्सफार अफ प्रोपर्टी ट्याक्स तुले दाऊ, अण्यदार अमेन्डमेन्ट जे कार्पोरेशन कन्ट्रीब्यूशन तुले नाउ। एहे अमेन्डमेन्ट दिच्छेन, एई अमेन्डमेन्ट निये की more comprehensive, more comprehensive Bill आनवेन? आमि वोलछी जे, the whole of the Calcutta Improvement Act was before you आपनारा कोथाय अमेन्डमेन्ट दियेछेन जे, जे जमी विक्रय कोरवेन ता बांगालीके विक्रय कोरते होवे, से विषय कोनो अमेन्डमेन्ट आछे की? की वक्तृता आपनारा दिच्छेन, महाशय? आपनारा जदी सीरियास होतेन ताहाले एई अमेन्डमेन्ट दितेन, ए सब अमेन्डमेन्ट दितेन ना। वक्तृता जन्यो वक्तृता होच्छे। सेई सूर आजके आरम्भ होयेछे, कारन जखन देखलेन जे आमरा अल्टारनेटिव अकोमोडेशन देवो, तार रिजनेवेल रेन्ट होवे, सुतरां की कोरवेन, एकटा नूतन जिनिस तो वेर कोरते होवे, नूतन जिनिस वेर कोरे गवर्नमेन्टके अप्रस्तुत कोरते होवे। किन्तु गवर्नमेन्ट अप्रस्तुत हवार पात्र नय, गवर्नमेन्ट अनेक देखेछे, अनेक देखछे एई जन्यो भावना कोरवेन ना। आमि एकटा कथा वोलते पारी जे आमादेर बस्तीवासीदेर जन्यो जे भावना आछे से भावना आपनादेर चेये किछू कम नय। आमरा चाई जे आमरा तादेर किछू कोरते पारीं। सेई जन्यो आमरा चेष्टा कोरची। आपनारा यथेष्ट अपकार कोरेछेन। यदी ओरिजनल ३६ ए (२) राखा होतो ताहाले एकटी वा दुइटी बस्तीर किछू इन्प्रूभमेन्ट होये जेतो। एखन अल्टारनेटिव अकोमोडेशन दिये सेटा तुले दिते होलो। तारपर सेक्शन ३६ ए जखन आमरा अमेन्डमेन्ट कोरेछिलाम अल्टारनेटिव अकोमोडेशनेर जन्यो, तखन ट्रास्ट बोलेछिलो आमरा आमादेर सामर्थे एटा कोरते पारवो ना। आपनारा यदी साहाज्ज देन ताहोले एई साहाज्जेर अनुरूप आमरा काज कोरते पारवो, ता ना होले आमरा करते पारवो ना।

आमि एकटा कथा एखाने वोले दीच्छि, ट्रस्ट चेयेछिलो कार्पोरेशनेर कन्ट्रीब्यूसन देवार व्यवस्था थाका उचित। किन्तु ऊते सुविधा मने होलो ना। किन्तु आमि वोले दिच्छी जे गवर्नमेन्ट निजेर शक्ति अनुसारे साहज्ज दिते राजी आछे। यदी सेण्ट्रल गवर्नमेन्ट थेके वेशी टाका पावा जाय ताहाले वेशी काज कोरते पारवो, आर यदी कम टाका पावा जाय ताहोले कम काज कोरते पारवो ; आर यदीं टाका एकेवारे ना पावा जाय ताहोले आमादेर जा सामर्थ होवे सेई सामर्थ अनुजाई काज कोरबो। अवश्यई यदी टाका ना पावा जाय ताहाले की कोरबो तार किछू ठीक नाइ। (ए भायसः किछू होवे ना।) किन्तु जामि आपनादेर वोलते पारी जे ट्रस्टेर मने विशेष रूपे एकटा भावना होयेछे जे गवर्नमेन्ट यदी आमादेर टाका ना देय ताहाले आमि तो कोनो इम्प्रूभमेन्ट कोरते पारबो ना। सेई जन्नो ट्रास्ट के साहस देबार जन्य आमि बोलछी आपनी वेशी भय कोरबेन ना। अबश्य आमि एटा वोलते पारी ना जे कोतो टाका दिते पारवो। तवे गवर्नमेन्टेर इच्छा आछे : एकटू सहाय्य देवार एवं साध्यमोतो देवेन ; कारन साहाय्य ना दिले कोनो अल्टारनेटिव अकोमोडेशनेर व्यवस्था होवे ना। आमि चेष्टा कोरछी बांगला भाषाय बोलते यदीओ बांगला भाषाय वोलवार अभ्यास आमार नेई। आज एई प्रथम आमि असेम्वलीते वांगला भाषाय वोललाम, जानी ना की भूल होये गियेछे, सेटा आमि बूझते पारछीं ना।

आमि पुनराय आपनादेर बोलछी आपनारा एई भूल धारणा मने राखवेन ना। आमि एटा आपनादेर बुझावार जन्नो यथासाध्य चेष्टा कोरछी, तवू आपनादेर माथाय ढूके ना। सुतरां एखाने आमि एकटा कथा वोलवो—मानुषेर मरनकाल जखन उपस्थित हय तखन ताके गंगा जल देवा हय एई वोले "औषधे जान्हवी तोयं, वैद नारायनम् हरि"।

आमार आर किछू वोलवार नेईं। एई मोशनटा आपनादेर काछे राखा होलो, आपनारा पास करून वा ना पास करून, आपनादेर जा इच्छा ताई करून।

पंचम खण्ड

अभिनन्दन

श्री ईश्वरदास जालान अभिनन्दन समिति

श्री ईश्वरदास जालान अभिनन्दन समिति

सभापति—श्री राधाकृष्ण कानोड़िया,

उपसभापति—सर्वश्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल, भगवती प्रसाद खेतान, मोहनलाल जालान, भंवरमल सिघी, नन्दकिशोर जालान,

मंत्री—सर्वश्री मोहनलाल चोखानी, रतन शाह,

कोषाध्यक्ष—श्री बजरंगलाल जाजू,

कार्यकारिणी समिति के सदस्य :—सर्वश्री सीताराम सेकसरिया, रामकुमार भुवालका, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, नन्दलाल सुरेका, राधाकृष्ण नेवटिया, दीपचन्द नाहटा, बजरंगलाल लाठ, हरि-प्रसाद माहेश्वरी, नरनारायण हरलालका, मदनलाल सराफ, बनारसीलाल कोटरीवाल, नारायण प्रसाद बुधिया, इन्द्रचन्द्र सचेती,